न्यूयॉर्क टाइम्स का ही एक और रिपोर्टर जूडिथ मिलर आजकल मुश्किल में है। उन्होंने इराक के जन-संहारकारी हथियारों के ज़खीरे रखने सम्बन्धी खोजपूर्ण रिपोर्ट लिखी थी। अब पता चल रहा है कि वह सब गप्प ही थी। बहरहाल अमेरिकी मीडिया में बहस, सफाई चल रही है। दिलचस्प तथ्य, तर्क सामने आ रहे हैं। कोई कहता है कि रिपोर्ट की सच्चाई से ज्यादा उसके आकर्षक, रोमांचक विवरण पर सम्पादक फिदा हो जाते हैं। दूसरा कहता है कि अपने स्वार्थ के लिये या किसी विचारधारा के प्रति आग्रह के कारण वैसी काल्पनिक कहानियां लिखी जाती हैं। किसी अन्य के अनुसार अपने पत्रकार को स्टार बनाने के चक्कर में सम्पादकगण उसकी रिपोर्टों की जांच करना जरूरी नहीं समझते। आदि-आदि, लेकिन इस सम्बन्ध में भारतीय मीडिया किस हाल में है? केवल पिछले साल गोधरा काण्ड और उसके बाद गुजरात दंगों की तमाम रिपोर्टिंग की न्यूयॉर्क टाइम्स जांच करवाई जाए तो भारत में भी दर्जनों जेसन ब्लेयर निकलेंगे। खासकर अंग्रेजी प्रेस में। अनेक पत्रकार वहां सरकार के खिलाफ अभियान चलाते सहमत जैसी घोर राजनीतिक संस्थाओं ने वहां लोगों के मरने, गायब होने के मनगढ़ंत आंकड़े उछाले जिन्हें बगैर परख के भरपूर प्रचारित किया गया। काल्पनिक सर्वेक्षणों के हवाले अपनी इच्छा को वोटरों की राय बताया गया। ऐसी तमाम चीजें छापने में पत्रकारिता के हर मानदंड और मर्यादा की उपेक्षा की गई, क्योंकि फ़ासिस्ट नरेन्द्र मोदी को हटाना अंग्रेजी प्रेस का लक्ष्य बन गया था। अब माना जा चुका है कि गुजरात में ऐसी घोर एकतरफा पत्रकारिता के कारण ही सत्ताधारी दल को जबर्दस्त जीत मिली, क्योंकि ऐसी राजनीति प्रेरित रिपोर्टिंग ने जनता को भड़का कर भाजपा के पक्ष में कर दिया। बाद में कांग्रेस नेताओं ने इस तथ्य को स्वीकार भी किया। तब से वे संभल-संभल कर चल रहे हैं।

इसी प्रकार हमारे यहां दिल्ली में बैठे-बैठे साबरमती का हाल लिखने वाले पत्रकार हैं। बिना गुजरात में पांव धरे वहां किसी को जिन्दा जलाने की प्रत्यक्षदर्शी किन्तु मनगढ़ंत रिपोर्ट लिखने वाली बुकर पुरस्कार लेखिका हैं। पाकिस्तानी शासकों की ख्वाहिश पूरा करने का हर यत्न करने वाली अंग्रेजी अखबार की संपादक हैं। जो हर हफ्ते कोई आचरण के लिये फटकार लगाई थी। मगर इससे क्या। उनकी भद होने के बजाय उनकी उन्नति हुई। यह न्यूयार्क और दिल्ली का फर्क है।

एक खास विचारधारा के अनुरूप रिपोर्ट को रंगने या पूरी तरह गढ़ने के तो यहां सैकड़ों उदाहरण हैं। 1998-99 में भारत के विभिन्न हिस्सों में ईसाइयों पर हमले और अत्याचार के कई मामले आए। न केवल कई खबरें तक पूर्णतः झूठी थीं, बल्कि हर घटना में निरपवाद रूप से आर. एस. एस., विश्व हिन्दू परिषद और बजरंग दल को दोषी ठहराया गया। जबकि घटना में इनका हाथ नहीं था। एक अखबार के संपादक ने अपने एक लेख में स्वीकार भी किया कि उन्हें निराधार बदनाम किया गया। विचारधारा की जिद देखिये कि उनके अखबार में आज भी उन्हीं मामलों में, वही काम किया जा रहा है।

ग्राहम स्टेंस कांड पर सीबीआई की खोजबीन की खबर देते हुये फिर हिन्दू संगठनों पर वही आरोप लगाने का प्रयास किया गया। जबकि स्थानीय पुलिस, सीबीआई, जस्टिस वधवा कमीशन (1999) की रिपोर्ट समेत हरेक जांच में साफ हो चुका है कि स्टेंस की हत्या में किसी हिन्दुत्ववादी संगठन का हाथ न था। एक अंग्रेजी आरोप लगाया। सच्चाई साम... अधिकांश अंग्रेजी प्रेस ने उन... संकोच बरता।

तहलका ने रक्षामंत्री जार्ज... प्रधानमंत्री के सलाहकार ब्रजेश... अनजान किस्म के लोगों की टिप्प... पर हमला किया। न टिप्पणी की स... जरूरत समझी, न टिप्पणी करने वा... गई। यहां अनेक उदाहरण हैं जो... कहीं अधिक घातक, अनैतिक... राष्ट्रविरोधी भी हैं। न्यूयार्क टाइ... ब्लेयर कांड के बाद जेसन के अ... वरिष्ठ संपादको को भी हटा दिय... उससे ज्यादा गम्भीर कारगुजारिय... किसी को सजा नहीं मिलती। हम... को और उसके पिछलग्गू बने हिंद... पत्रकारों को अपने अपराध का भ... वरिष्ठ पत्रकार प्रीतीश नंदी ने कई बा... कर चुके हैं कि केंद्र सरकार को क... करने वाली खबरों के प्रति अंग्रेजी सं... आकर्षण है कि वे उसकी किसी जांच... की जरूरत नहीं समझते। कुलमि... ब्लेयर हमारे यहां भी हैं।

चुनावी मुद्दा नहीं है राम मंदिर

■ राम मंदिर को चुनावी मुद्दा न मानने की सलाह दे रहे हैं हृदयनारायण दीक्षित

राम जन्म भूमि मसले पर केन्द्र सरकार का ताजा रुख राष्ट्रीय चर्चा का विषय बना हुआ है। बाबरी समर्थक राजनीति हलकान है। राष्ट्रवादी जनमानस में प्रसन्नता है। 6 दिसम्बर, 1992 के अयोध्या काण्ड की जांच कर रहे लिब्राहन आयोग के सामने केन्द्र सरकार ने विवादित स्थल को जन्म स्थान बताया और कहा कि मुसलमानों ने विवादित स्थल को 1934 में ही खाली कर दिया के टाइफेन्थेलर सन् 1766-71 तक अवध रहे। वे कहते हैं कि बाबर ने राम मन्दिर को ध्वस्त किया। इसी के स्तम्भों का प्रयोग करके मस्जिद बनाई। (डिस्क्रिप्शन हिस्ट्रिक एट ज्योग्राफिक डि एल. इण्डे, पृष्ठ 253-254) ब्रिटिश सर्वेक्षणकर्ता (1838) मान्टगोमरी मार्टिन के अनुसार मस्जिद में इस्तेमाल स्तम्भ राम के महल से लिए गए। (मार्टिन, "हिस्ट्री एन्टीक्विटीज टोपोग्राफी ... (और अन्य मस्जिदों) में दरारें पड़ गयी थीं।" शेख मोहम्मद अजमत अली काकोरवी ने "तारीखे अवध" व मुरक्काए खुसरवी (1869) में भी मंदिर की जगह मस्जिद बनाने का किस्सा दर्ज किया। इस्लामी परम्परा में अन्तरराष्ट्रीय ख्याति के विद्वान मौ. अबुल हसन नदवी उर्फ अलीमियां के अब्बाजान मौ. अब्दुलहई ने "हिन्दुस्तान इस्लामी ... जरिए मंदिर को क्षति पहुंचा सका।" गजेटियर अंक 36 पृष्ठ 3)। इतिहासविद् राम को काल्पनिक मानते... अयोध्यावासी इस महानायक की ... तिब्बत, जापान, लाओस, मलयेशिया, श्रीलंका, रूस, फिलीपीन्स, थाई देश ... के सबसे बड़े मुस्लिम देश इण्डोनेशि...

नॉडिस और
त्र पर भी दो
यों के आधार
ई परखने की
की जांच की
रन ब्लेयर से
हां तक कि
ने तो जेसन
वा अपने दो
। मगर यहां
के लिये भी
अंग्रेजी प्रेस
के वामपंथी
। तक नहीं।
चिंता जाहिर
घेरे में खड़ा
दकों में ऐसा
प्रमाणिकता
कर जेसन

प्रशा...
प्रशासन का ध्या...

-डा. विनय सिंह, ...

तहसील परिसर में गंदगी का अम्बार

मड़ियाहूं तहसील परिसर में इन दिनों गन्दगी का अम्बार लगा हुआ है। परिसर स्थित बनी पक्की नालियां लबेलब भरकर बजबजा रही हैं। उसका गन्दा पानी बाहर मैदान में बिखरा हुआ है। कहीं-कहीं निर्माण हेतु गिट्टियां व बालू का भी ढेर लगा हुआ है।

नाली की सफाई न होने से बजबजाती पानी से दुर्गन्ध निकल रहा है जिससे वादकारियों व अन्य लोगों को काफी असुविधा होती हैं। परिसर की सफाई अविलम्ब करायी जाय।

-काली प्रसाद जायसवाल, मड़ियाहूं, जौनपुर।

कमी का दावा हास्यास्पद

भदौरा (गाजीपुर) पूर्व रेलवे दानापुर मंडल के सकलडीहा स्टेशन से दानापुर स्टेशन के बीच ट्रेनों में जहरखुरानी की बढ़ती घटनाओं को रोकने में जी.आर.पी. पूरी तरह से अक्षम साबित हो रहा है, उसके बावजूद जी.आर.पी. के वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा जहरखुरानी की घटनाओं में कमी का दावा ...

...जिसमें घोटाले की धनराशि ...काई घोटाला सामने आता है तो उसमें ...और निलम्बन की खबर तो सामने आ जाती है, ले... ...ता नहीं चलता कि अंततः घोटालेबाजों को क्या सजा मिली... इधर-उधर हुई धनराशि का क्या हुआ? क्या यह उम्मीद की... घोटाले के मामले में ऐसा कुछ नहीं होगा? क्या होगा और क्य... समय ही बतायेगा, लेकिन इस बात की अनदेखी नहीं की जा स... प्रदेश में घोटालों की जांच के नाम पर लीपापोती ही अधिक हो...

उत्तर प्रदेश में पिछले वर्षों में जो भी घोटाले हुए, वे चाहे कि... से सम्बन्धित रहे हों उनकी जांच सही तरीके से नहीं हो सकी।... कि अब हर घोटाले की जांच लीपापोती करने के उद्देश्य से... घोटाला चाहे बड़ा हो या छोटा, उसमें लिप्त लोग अंततः बच ही... चूंकि उत्तर प्रदेश में किसी भी छोटे-बड़े घोटाले के दोषी सजा... हैं इसलिये एक ऐसी कार्य संस्कृति उपज गयी है जो घोटालों को... देती है। उदाहरणस्वरूप समाज कल्याण विभाग एक ऐसे विभा... जाना जाने लगा है जो रह-रहकर घोटालों से दो-चार होता... निःसंदेह यह नहीं कहा जा सकता कि राज्य भण्डारण निगम की... अन्य निगमों अथवा विभागों से अलग है। कोई आश्चर्य नहीं कि... की जांच का भी वैसा ही हश्र हो जैसा कि अन्य अनेक घोटालों... हुआ है।

ज्ञान की सुगन्ध है आच...

ज्ञान फूल है और आचरण उसकी सुगन्ध। गन्धहीन फूल की तरह अ... निरर्थक है। कोरा ज्ञान प्रदर्शन है। ज्ञान की सार्थकता इसी में है कि...

...के अनुसार बाबरी मस्जिद पुराने
में हिन्दू-
हैंनि मंदिर
ब्रीं। बेशक
मुसलमानों
र मुस्लिम
का तस ही
''हदीकाए
कहते हैं,
: प्रतिष्ठा की
(अवध को
के पिता को
था वहां बाबर
नाई।'' हाजी
याए अख्तर''
। में कहते हैं,
म चन्दर के
ध्वस्त करके
ाई गई मस्जिद

अनहक ही श्रद्धा नहीं करते। ज...
जन्म किसी न्यास, एक्शन...
दल के प्रस्तावों से नहीं हु...
श्रद्धा लोकजीवन का...
विश्वास होती है। लोकी...
तर्क उठाता है। प्रतितर्क...
करता है। करोड़ों आंखें...
सुनते हैं। करोड़ों हाथ स्प...
एक साथ स्पंदित होते हैं...
ऐसे तथ्यों पर जब कोई...
जन्म लेती है। ऋग्वेद ने...
और वर्तमान से प्रभावित...
को इसीलिए राजनीति...
न्यायालयीय कार्यवाहिय...
के लिए लड़ते हैं। कुछ...
इतिहास के विद्वान कनि...
में लिखते हैं ''अयोध्या...
तोड़े जाते समय हिन्दुअ...
लगा दी। इस लड़ाई में...
की लाशें गिर जाने के...

* श्रीगणेशायनमः *

पद्मपुराणान्तर्गतषष्ठोत्तरखण्डस्थपूर्वार्द्धभागस्य

विषयानुक्रमणिका



समाप्तैषोत्तरखण्डस्यविषयानुक्रमणिका

कलिकातानगर्यां गुरुमण्डलग्रन्थमालाप्रकाशिकाया मोरप्राच्यशोधसंस्थायाः-
सपादनकार्येनियोजिता विद्वच्चरणचञ्चरीकाः लक्ष्मणदुर्गवास्तव्य-
ब्रह्मदत्तत्रिवेदि-नवलगढ़ (जयपुर) वास्तव्य मिश्रोपनामक
कजोडीलाल-दाधीचोपाह्व रामनाथशास्त्रिणः

॥ शुभमस्तुसताम् ॥





॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

पाद्मपुराणम्

अथ षष्ठं उत्तरखण्डम्

ओं श्री विष्णवे नमः ओं श्री वेदव्यासाय नमः ।

प्रथमोऽध्यायः

महेशनारदसंवादे धर्मबीजसमुच्चयवर्णनम् ।

ॐ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया । चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

ऋषय ऊचुः ।

श्रुतं पातालखण्डं च त्वयाऽऽख्यातं विदांवर । नानाख्यानसमायुक्तं परमानन्ददायकम्
अधुना श्रोतुमिच्छामो भगवद्भक्तिवर्धनम् । पाद्मे यच्छेषमस्तीह तद्ब्रूहि कृपया गुरो !

सूत उवाच ।

शृणुध्वं मुनयः सर्वे यदुक्तं शङ्करेण हि । पृच्छते नारदायैव विज्ञानं पापनाशनम् ॥५॥
एकदा नारदो लोकान्पर्यटन्भगवत्प्रियः । गतोऽद्रिं मन्दरं शम्भुं प्रष्टुं किञ्चिन्मनोगतम्
तत्रासीनमुमानाथं प्रणिपत्य शिवाज्ञया । उपविष्टः समादिष्ट आसनेऽभिमुखो विभोः
पप्रच्छ चेदमेवेशं यन्मां पृच्छथ सत्तमाः ॥ ७ ॥

नारद उवाच ।

भगवन्देवदेवेश ! पार्वतीश ! जगद्गुरो ! । भगवत्तत्त्वविज्ञानं येन स्यात्तन्मयाद्विज ॥

शिव उवाच ।

श्रृणु नारद वक्ष्यामि पुराणं वेदसंमितम् । यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः

प्रथमोत्तरकीर्तिः स्यात्पर्वताख्यानमेव च ।

जालन्धरं तथाऽऽख्यानं श्रीशैलाख्यं ततःपरम् ॥१०॥

हरिद्वारस्य व्याख्यानं विष्णुपादोद्भवं तथा । प्रयागतीर्थं ते वक्ष्ये दशाश्वमेधिकं ततः

तुलसीमहिमा चैव शङ्खचक्रगदादिकम् । द्वारकायास्तथाऽऽख्यानं महोत्सवविधिस्ततः

तडाकजं तथा पुण्यं वापीकूपप्रपादिजम् । गाणपत्यं ततो वक्ष्ये वैष्णवागममेव च ॥

जीर्णोद्धारस्य माहात्म्यं मन्दाकिनीसमागमम् ।

साभ्रमत्यास्तु माहात्म्यं माहात्म्यं तीरजं तथा ॥ १४ ॥

स्त्रीशूद्राणां तथा धर्मं तथा त्याज्यैश्च धारणम् । उमामहेशसंवादेप्रोक्तं नामसहस्रकम्

कैलासात्तत्समानीतं नारदेनाग्रजन्मना । लोकानां ब्राह्मणानां च क्षत्त्रियणां विशेषतः

स्त्रीशूद्राणां विशेषेण पठितव्यं समाहितैः । इदं पवित्रं परमं पुण्यमायुष्यवर्धनम् ॥१७

पठितव्यं विशेषेण विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ।

विष्णोर्नामसहस्रं तत्पावनं भुवि विश्रुतम् ॥ १८ ॥

चतुर्विंशतिमूर्तीनां स्थानकानीह संवदे । तेषां च मातापितरावन्तरं च ब्रवीम्यहम् ॥

गोत्रं वेदांश्च तेषां वै कर्माणीह तथैव च । स्त्रियस्तेषां प्रवक्ष्यामियथा विज्ञानदर्शनात्

चतुर्विंशत्येकादशीनां द्वादशीनां प्रभावताम् ।

गोदावर्याश्च माहात्म्यं शङ्खचक्रादिधारणम् ॥२१॥

ब्राह्मणानां विशेषेण धारणं विधिपूर्वकम् । यमुनायाश्च माहात्म्यं गण्डिकायास्तथामुने

वेत्रवत्यास्तु माहात्म्यं वच्म्यहं ते न संशयः ।

गिल्लितीर्थोद्भवं पुण्यं शिलाक्षेत्रं महच्च यत् ॥ २३ ॥

तत्सर्वं सम्प्रवक्ष्यामि खण्डे ह्युत्तरसंज्ञके । अर्बुदेश्वरमाहात्म्यं तत्र तीर्थादिकं यत् ॥

सरस्वत्याश्च माहात्म्यं सिद्धक्षेत्रादिकं च यत् ।
पञ्चनामसमुत्पत्तिं तुलस्याश्चैव धारणम् ॥ २५ ॥
गोपीचन्दनमाहात्म्यं पट्टपूजां तथैव च । निरञ्जनस्य माहात्म्यं तथा विज्ञानदर्शनम् ॥
तत्रदीपप्रदानं च धूपदानं विशेषतः । कार्तिकस्याथ माहात्म्यं माहात्म्यं माघजं तथा ॥
सर्वेषां च व्रतानां च माहात्म्यं विधिपूर्वकम् ।
शृणु नारद ! वक्ष्यामि जगन्नाथाख्यमुत्तमम् ॥ २८ ॥
यं दृष्ट्वामुच्यते लोको ब्रह्महत्यादिपातकात् । यत्रसिद्धं तथाभुक्तं पारलौकिकदायकम्
ब्राह्मणा यत्र भुञ्जन्ति वेदशास्त्रविशारदाः । अन्येषां चैव लोकानां का कथा चैवसुव्रत
पञ्चविंशत्यत्र नागा नर्तक्यो विविधास्तथा । ब्रह्महत्या बालहत्या गवां हत्या तथैवच
ताः सर्वा विलयं यान्ति जगन्नाथस्य दर्शनात् ।
जगन्नाथेत्युच्चरञ्जन्तुर्महापापैः प्रमुच्यते ॥ ३२ ॥
विष्णोः पूजनकं पुष्पैस्तन्माहात्म्यमपि ब्रुवे । पर्वतानां वर्णनं च देशानां वर्णनं तथा
गोपूजनादि माहात्म्यं सिद्धानां चैव पूजनम् ।
सिक्थे दत्ते तुःयत्पुण्यं तत्सर्वं प्रवदाम्यहम् ॥ ३४ ॥
कदलीगर्भदानं च वृक्षदानं ततः परम् । अश्वदानं हस्तिदानं जपमाहात्म्यमुत्तमम् ॥३५
मन्त्रदीक्षागमं चैव गुरोर्लक्षणमेव च । शिष्यस्य लक्षणं प्रोक्तं यथा पौराणिका विदुः
चरणोदकमाहात्म्यं पितृश्राद्धादिकं च यत् । पितृक्षयाहदानं च नीलोत्सर्गविधिस्ततः
ग्रहणं चन्द्रपूष्णोश्च तत्र दानं च यद्भवेत् । शालग्रामस्य दानस्य माहात्म्यं माल्यगन्धयोः
दशम्यैकादशीवेधं द्वादशी हरिवासरम् । तेषां चैव तु माहात्म्यं रुद्रनामादिकं च यत्
मथुरायाश्च माहात्म्यं कुरुक्षेत्रादिकं तथा । सेतुबन्धस्य चाख्यानं श्रीरामेश्वरजं तथा
त्र्यम्बकस्य च माहात्म्यं पञ्चवट्याश्च यत्फलम् ।
दण्डकारण्यमाहात्म्यं शृणु वाडवसत्तम ! ॥ ४१ ॥
दण्डकारण्यमाहात्म्यं नृसिंहोत्पत्तिकारणम् ।
गीतायाश्चैव माहात्म्यं तथा भागवतस्य च ॥ ४२ ॥

कालिन्द्याश्चैव माहात्म्यमिन्द्रप्रस्थस्यवर्णनम् । रुक्माङ्गदचरित्रं तु महिमावैष्णवस्य च
वैष्णवे ह्येकभुक्ते तु शृणु वासवसत्तम । ससागरां च पृथिवीं दत्त्वा चैव तु यत्फलम्
तत्फलं समवाप्नोति भुङ्क्ते ह्येके तु वैष्णवे ।
सात्त्विकाः सत्त्वसम्पन्ना राजसाः कामुकाः स्मृताः ॥ ४५ ॥
तामसा अधमाः प्रोक्ता वैष्वाणां तु लक्षणम् । ब्राह्मणा वैष्णवा ये तु वेदधर्मपरायणाः
तेषां माहात्म्यं वक्ष्यामि यथोक्तं चैव नारद ! ।
विष्णुनिन्दारता ये वै द्रव्यलोभेन सत्तम ! ॥ ४७ ॥
तेषां पापन्तु वक्ष्यामिसाम्प्रतं चर्षिसत्तम । ज्वालामुख्यास्तथा ख्यानंहिमशैलेक्षणं तथा
ब्रह्मोत्पत्तिस्तु वै यत्र तं प्रदेशं वदाम्यहम् ।
कायस्थानां समुत्पत्तिर्गयाव्याख्यानमेव च ॥ ४६ ॥
गदाधरस्वरूपं च फल्गुवर्णनमेव च । एतेषां चैव माहात्म्यं पद्मे दृष्टं तथा श्रुतम् ॥५०
महावोधस्वरूपं च सकल्केर्यश एव च । रामगयायामाहात्म्यं तथा प्रेतशिलाभवम् ॥
ब्रह्मणश्च तथाऽऽख्यानं शिलाख्यानं वदाम्यहम् ।
ब्रह्मयोनेस्तथाख्यानमक्षयाख्यवटस्य च ॥५२॥
श्राद्धे तत्र महत्पुण्यं यत्तत्सर्वं वदाम्यहम् ।
महेश्वरकृतां भक्तिं विष्णुना च महात्मना ॥ ५३ ॥
अद्यापि काश्यां जपतिमहारुद्रो ह्यनामयम् । माहात्म्यं च ततोवक्ष्येसागरस्य हि नारद
तिलतर्पणजं पुण्यं यवजं पुण्यमेव च । तुलसीदलसंयुक्तं तर्पणं देवजं तथा ॥ ५५ ॥
तन्माहात्म्यं प्रवक्ष्यामि यथोक्तं ब्रह्मणा मम ।
शङ्खनादस्य माहात्म्यं पुण्यं चासङ्ख्यसंज्ञकम् ॥ ५६ ॥
रवेर्वारस्य माहात्म्यं योगस्य विष्णुसंज्ञिनः ।
वैधृतस्य च माहात्म्यं व्यतीपातस्य वै तथा ॥ ५७ ॥
एतत्सर्वं प्रवक्ष्यामि यथोक्तं चैव नारद ! । अन्नदानं वस्त्रदानं भूमिदानं तथैव च ॥५८
शय्यादानं च गोदानं तथावृषभमेव च । जन्माष्टम्याश्चमाहात्म्यं मत्स्यमाहात्म्यमेवच

कूर्ममाहात्म्यं तत्प्रोक्तं वाराहस्यतथैव च। माहात्म्यं च गवादीनां दानानां प्रवदाम्यहम्
प्रह्लादमुखभक्ता ये ये केचिद्भुवि विश्रुताः। तन्माहात्म्यं ततो वक्ष्ये शृणु देवर्षिसत्तम
जागरे महिमा चैव दीपदाने कृते च यत्। प्रहरेषु पृथक्पूजा फलं देवर्षिसत्तम! ॥६२
परशुरामस्य चाख्यानं रेणुकायावधस्तथा। ब्राह्मणानां भूमिदानं रामेणैव च यत्कृतम्
रामस्याश्रमजं पुण्यं वदाम्यहमशेषतः। नर्मदायास्तथाऽऽख्यानं पुण्यं पूजानयोस्तथा
दानं वेदपुराणानामाश्रमाणां निरूपणम्। हिरण्यदानपुण्यं च ब्रह्माण्डदानमेव च ॥६५
पद्मपुराणदानं च खण्डानां व्यक्तयस्तथा। प्रथमं सृष्टिखण्डं च द्वितीयं भूमिखण्डकम्
स्वर्गखण्डं तृतीयं तु चतुर्थं ब्रह्मखण्डकम्। पातालं पञ्चमं खण्डं परिशिष्टस्वरूपकम्
षष्ठं क्रियायोगसारमुत्तरं तूत्तरं क्रमात्। एतत्पद्मपुराणं तु व्यासेन तु महात्मना ॥६८
कृतं लोकहितार्थाय ब्राह्मणश्रेयसे तथा। शूद्राणां पुण्यजननं तीव्रदारिद्र्यनाशनम् ॥६९
मोक्षदं सुखदं चाशु कल्याणप्रदमव्ययम्। श्रुत्वा दानं तथा कुर्याद्विधिना तत्र नारद!

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे
महेशनारदसंवादे बीजसमुच्चयो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

———

द्वितीयोऽध्यायः

नारदोमापतिसंवादे बदरीनारायणमाहात्म्यवर्णनम्।

महेश उवाच।

एकलक्षं पञ्चविंशत्सहस्राःपर्वतास्तथा। तेषां मध्ये महत्पुण्यं बदर्याश्रममुत्तमम् ॥१॥
नरनारायणो देवो यत्र तिष्ठति नारद। तस्य स्वरूपं तेजश्च वक्ष्यामीह चसाम्प्रतम् ॥
हिमपर्वतशृङ्गे च कृष्णाकारतया द्विज!। पुरुषौ तत्र वर्तेते नरनारायणावुभौ ॥ ३ ॥
श्वेत एकस्तु पुरुषः कृष्णो ह्येकतमः पुनः। पिङ्गलश्वेतवर्णश्च जटाधारी महाप्रभुः ॥
कृष्णो नारायणो ह्येष जगदादिर्महाप्रभुः।

चतुर्बाहुर्महाञ्छ्रीमान्व्यक्तोऽव्यक्तः सनातनः ॥ ५ ॥
उत्तरायणे महापूजा जायते तत्र सुव्रत ! । षण्मासादिकपर्यन्तं पूजा नैव च जायते ॥
हिमव्याप्तं तदा जातं यावद्वै दक्षिणं भवेत् । अत एतादृशो देवो न भूतो न भविष्यति
तत्र देवा वसन्तीह ऋषीणां चाश्रमास्तथा । अग्निहोत्राणि वेदानांध्वनिःप्रश्रूयते सदा
तस्य वै दर्शनं कार्यं कोटिहत्याविनाशनम् । अलकनन्दा यत्र गङ्गा तत्रस्नानंसमाचरेत्
कृत्वा स्नानं तु वै तत्र महापापात्प्रमुच्यते । यत्र विश्वेश्वरो देवस्तिष्ठत्येव न संशयः
एकस्मिन्समये तत्र सुतपस्तप्तवानहम् ।
तदा नारायणो देवो भक्तानां हि कृपाकरः ॥ ११ ॥
अव्ययः पुरुषःसाक्षादीश्वरो गरुडध्वजः । सुप्रसन्नोऽब्रवीन्मां वै वरं वरय सुव्रत ! ॥

श्रीनारायण उवाच ।

यं यमीप्ससि देव ! त्वं तं तं कामं ददाम्यहम् ।
त्वं कैलासविभुः साक्षाद्रुद्रो वै विश्वपालकः ॥ १३ ॥

रुद्र उवाच ।

अलं गृह्णामि भोदेव सुप्रसन्नो जनार्दन । द्वौ वरौ मम दीयेतां यदिदातुं त्वमिच्छसि
तव भक्तिः सदैवास्तु भक्तराजो भवाम्यहम् । सर्वे लोका ब्रुवन्त्वेवमयं भक्तः सदैवहि
तव प्रसादाद्देवेश मुक्तिदाता भवाम्यहम् । ये लोका मांभजिष्यन्तितेषांदाताम संशयः
विष्णुभक्त इतिख्यातो लोके चैव भवाम्यहम् । यस्याहंवरदाता तु तस्यमुक्तिर्भवेत्प्रभो
जटिलो भस्मलिप्तोह ह्यहं वै तव सन्निधौ । तव देव प्रसादेन लोकेख्यातो भवाम्यहम्
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां षष्ठे उत्तरखण्डे नारदोमापतिसंवादे
बदरीनारायणमाहात्म्ये रुद्रप्रसादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

———

तृतीयोऽध्यायः

युधिष्ठिरनारदसंवादे जालन्धरोत्पत्तिवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

एकदा नारदोद्रष्टुं पाण्डवान्दुःखकर्शितान् । ययौ काम्यवनंविप्रः सत्कृतस्तैर्यथाविधि

अथ नत्वा मुनिश्रेष्ठं युधिष्ठिर उवाच ह ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

भगवन्कर्मणा केन दुःखाब्धौ पतिता वयम् ॥ २ ॥

सूत उवाच ।

तमुवाच ऋषिर्दुःखं त्यजत्वं पाण्डुनन्दन ! । सुखदुःखसमाहारे संसारे कः सुखी नरः

ईश्वरोऽपि हि न स्थायी पीडयते देहसंश्रयैः । न दुःखरहितः कश्चिद्देही दुःखसहो यतः

शरीरं सवितुर्यस्माद्राहुस्तद्ग्रसते बली । राहोरपि शिरश्छिन्नं शौरिणाऽमृतभोजने ॥

सोऽपि शार्ङ्गधरो देव क्षिप्तः सागरगह्वरे । जालन्धरेण वीरेण निहतः सोऽपि शम्भुना

युधिष्ठिर उवाच ।

कोऽसौ जालन्धरोवीरःकस्यपुत्रःकुतो बली । कथं जालन्धरंसङ्ख्ये हतवान्वृषभध्वजः

एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण तपोधन ! ॥ ८ ॥

सूत उवाच ।

राज्ञा स एव मुक्तस्तु कथयामास नारदः ॥ ६ ॥

नारद उवाच ।

श्रृणुभूपकथांदिव्यामशेषाघौघनाशिनीम् । ईशानसिन्धुसून्वोश्च सङ्ग्रामं परमाद्भुतम्

एकदा गिरिशं स्तोतुं प्रययौ पाकशासनः । अप्सरोगणसङ्कीर्णो देवैर्बहुभिरावृतः ॥

गन्धर्वैरावृतो देवस्तन्त्रीशिक्षासुकोविदैः । रम्भा तिलोत्तमा रामा कर्पूरा कदली तथा

मदना भारती कामा सर्वाभरणभूषिता ।

नर्तक्यश्च तथा चान्याः समाजग्मुः सुरान्तिकम् ॥ १३ ॥
गन्धर्वयक्षसिद्धास्तु नारदस्तुम्बुरुस्तथा । किन्नरा मुहुराजग्मुस्तथा किन्नरयोषितः
वायुश्च वरुणश्चैव कुवेरो धनदस्तथा । यमश्चाग्निर्निर्ऋतिश्च ये चान्ये देवतागणाः ॥
विमानसंस्थो मघवा विमानस्थाःसुराङ्गनाः । स्ववाहनगतादेवाः कैलासं प्रययुर्जवात्
ददृशुस्ते ततो देवाः कैलासं पर्वतोत्तमम् । महीधराणां सर्वेषां पृथिव्या इव मण्डनम्
सर्वतः सुखदं शुद्धं सिद्धिराशिमिव स्थितम् ।
यत्र वृक्षाः कल्पवृक्षाः पाषाणाश्चिन्तितप्रदाः ॥ १८ ॥
पुन्नागैर्नागचम्पैश्च तिलकैर्देवदारुभिः । अशोकैः पाटलैश्चूतैर्मन्दारैः शोभितो गिरिः
पर्यन्तकवनामोदवाहका यत्र वायवः । पङ्गुत्वं बहुचारेण यान्ति ते मलयानिलाः ॥
वाप्यः स्फटिकसोपाना ह्यगाधविमलोदकाः । वैडूर्यनालसंसक्तसौवर्णनिभपङ्कजाः ॥
कुमुदानां द्युतिर्यत्र राजते सर्वतो दिशम् ।
कह्लारैः शोभिता वाप्यः पिनद्धाः पद्मरागवत् ॥ २२ ॥
हरिन्मणिनिबद्धाश्च गोमेदैः सर्वतोवृताः । पद्मरागशिलाबद्धा नानाधातुविचित्रिताः ॥
ददृशुः सुन्दरतरं नाकाधिकविनिर्मितम् । कैलासं पर्वतश्रेष्ठं दृष्ट्वा ते विस्मयं गताः ॥
विमानादवतीर्णाश्च मघवा देवताश्च ताः । द्वारपालमथागम्य नन्दिनं वाक्यमब्रुवन् ॥

इन्द्र उवाच ।

भोभोगणवरश्रेष्ठ श्रृणु मे वाक्यमुत्तमम् । समाज्ञापय शीघ्रं त्वं नृत्यार्थमिहमागतम् ॥
ईश्वरं प्रति देवेशं सर्वदेवैः समावृतम् ॥ २६ ॥

नारद उवाच ।

इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा गिरिशं नन्दिरब्रवीत् । प्रभोऽयमागतः सर्वैर्देवराजः पुरन्दरः ॥
नृत्यार्थमथ तं प्राहानय शीघ्रं शचीपतिम् । प्रवेशयामास तदा नन्दी तैः सह वासवम्
स दृष्ट्वा गिरिशं देवं तुष्टाव वृषभध्वजम् ।
रम्भाद्यास्तास्तदा सर्वा नर्तक्यो हरसन्निधौ ॥२९॥
मृदङ्गवीणावाद्यित्रैर्मुदा नाट्यं प्रचक्रिरे ।

कांस्यवाद्यान्प्रगृह्यान्या वंशतालान्सकाहलान् ॥ ३० ॥

चक्रुस्ता नृत्यसंरम्भं स्वयं देवः पुरन्दरः । अतीवनर्तनं चक्रे सुन्दरं देवदुर्ल्लभम् ॥३१

ईश्वरस्तोषमापन्नो वासवं वाक्यमब्रवीत् । प्रसन्नोऽहं सुरश्रेष्ठ जातस्ते व्रियतां वरः

इत्युक्तवति देवेशे स्वबाहुबलगर्वितः । प्रत्युवाच हरं वाक्यं सङ्ग्रामः संवृतो मया ॥

यत्र त्वत्सदृशो योद्धा तद्युद्धं देहि मे प्रभो ! ।

इत्युक्त्वा निर्गतो जिष्णुर्लब्ध्वा शम्भोर्वरं प्रभो ! ।

तस्मिन्गते तदा शक्रे गिरिशो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३४ ॥

शङ्कर उवाच ।

गणा मे श्रूयतां वाक्यं देवराजोऽतिगर्वितः ॥ ३५ ॥

नारद उवाच ।

इत्युक्त्वा क्रोधसंयुक्तोबभूव चततो हरः । आविरासात्ततः क्रोधोमूर्त्तिमान्पुरतःस्थितः

घनान्धकारसदृशो मृडं क्रोधस्ततोऽब्रवीत् । देहिमे त्वं हि सन्देशंकिं करोमि तवप्रभो

उमापतिस्तदोवाच गच्छ त्वं वासवं जय ।

स्वर्गसिन्धुं समासाद्य सागरस्य च वीर्यवान् ॥ ३८ ॥

इत्युक्तोऽन्तर्दधे क्रोधो गणास्ते विस्मयं ययुः । ईशानकल्पे जाते तु कामेनार्णवसङ्गमे

नाकसिन्धुस्तदा मत्ता स्वयौवनभरोष्मणा ।

तां दृष्ट्वा सिन्धुराजश्च जलकल्लोलवानभूत् ॥ ४० ॥

तदाबभूव राजेन्द्र गङ्गासागरसङ्गमः । महानदी तदा प्राप्य रेमे चात्मबलेन च ॥४१॥

अत्रान्तरे समुद्रस्य बभूव सुभटस्ततः । सूनुस्तस्यां महानद्यां समुद्रादभवद्बली ॥४२

महार्णवतनूजेन जातमात्रेण पार्थिव । रुदतोत्कम्पिता पृथ्वी त्रिलोका नादिताऽभवत्

समाधिबद्धमुद्रां च सन्तत्याज चतुर्मुखः ।

अत्रान्तरे परित्रस्तां तां संवीक्ष्य जगत्त्रयीम् ॥ ४४ ॥

धातासुरेन्द्रवाक्येन प्रजगाम महार्णवम् । आश्चर्यमिति सञ्चिन्त्य हंसारूढोजवाद्ययौ

ब्रह्माणमागतं वीक्ष्य सपर्यां विदधेऽर्णवः । तमुवाचततो ब्रह्माकिं गर्जसि वृथाऽम्बुधे !

समुद्र उवाच ।

नाहं गर्जामि देवेश मत्सुतो बलवान्प्रभो । शिशोर्वै कुरु रक्षां च दुर्लभं तव दर्शनम् ॥
सन्दर्शयतां च तनयो भार्यां प्राहातिशोभनाम् ।
ययौ सा भर्तुरादेशात्सपुत्रा ब्रह्मणोऽन्तिके ॥ ४८ ॥
उत्सङ्गदेशे चतुराननस्य विधाय पुत्रं चरणौ ननाम ।
तदा समुद्रात्मजमद्भुतं तं दृष्ट्वा विधातुः किल विस्मयोऽभूत् ॥४९॥
गृहीतकूर्चस्य शिशोः करं च यदा विरिञ्चिर्न शशाक मोचितुम् ।
तदा समुद्रः प्रहसन्प्रयातः कूर्चं प्रगृह्यार्भकरं विमोचयन् ॥५०॥
तादृशं तस्य बालस्य दृष्ट्वा विक्रममात्मभूः ।
प्रीत्या जालन्धरेत्याह नाम्ना जालन्धरोऽभवत् ॥ ५१ ॥
वरं ददावथोतस्य प्रणयेन प्रजापतिः । अयं जालन्धरो देवैरजेयश्च भविष्यति ॥ ५२ ॥
पातालसहितं नाकं मत्प्रसादेन भोक्ष्यति । इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे ब्रह्मा हंसमारुह्य सत्वरः

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे युधिष्ठिर-
नारदसंवादे जालन्धरोत्पत्तिर्ब्रह्मागमो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

जालन्धरोपाख्याने वृन्दाविवाहवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

क्रमेणवर्द्धमानोऽसौ बाल्यभावे स बालकः । निपत्य मातुरुत्सङ्गे सागरं प्रतिधावति
आनीय चक्रे स च पञ्जरस्थान्क्रीडापरः केसरिणं किशोरान् ।
सिंहादिनेभादिभिर्युद्धमेवं युद्धोपयोगीव तदीयवीर्यम् ॥२॥
तस्मादाकाशमुत्पत्य खेचरान्पातयेद्भुवि । गर्जितैर्भीषयामास सरिद्भिस्सहसागरम् ॥

समुद्रान्तर्गतं सर्वं सत्त्वजातं तु पार्थिव । ग्रस्तं सिन्धुसुतेनेति तद्भयाच्छन्नतां गतम्
दृष्ट्वा निःसत्त्वकं तोयं तद्भयाद्वडवानलः । निजदेशं परित्यज्य प्रविवेश हिमालयम्
स बालत्वं परित्यज्य क्रमेणार्णवनन्दनः । ततो नवंवयःप्राप्य विक्रमेणाक्रमद्दिवम् ॥
एकदा पितरं प्राह समुद्रं सिन्धुनन्दनः । मन्निवासोचितंस्थानं देहि तातातिविस्तृतम्
सम्बुध्य वचनं सूनोः स जगाद महार्णवः । पुत्र दास्याम्यहं राज्यं तव वै भुविदुर्ल्लभम्
अनन्तरं दैत्यगुरुःसमुद्रं भार्गवोगतः । तमागतं विलोक्याब्धिर्विधिना समपूजयत् ॥

अथ नदिपतिदत्ते प्राप्तसौन्दर्यनिर्यन्मणिमहसि स तस्मिन्नासने सन्निविष्टः
रुचिररुचिसुमेरोः सुन्दरे शृङ्गभागे कमलज इव कान्ति किञ्चिदुच्चैर्जहार ॥

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा व्याजहारार्णवः कविम् ।
दिष्ट्या तवात्रागमनं वद किं करवाण्यहम् ॥ ११ ॥

तदा दैत्यकुलाचार्यःप्राह तं सागरं कविः । किं तेन जातु जातेन मातुर्यौवनहारिणा ॥

प्ररोहति न यः स्वस्य वंशस्याग्रे ध्वजो यथा ।
तवात्मजो विक्रमेण त्रैलोक्यं भोक्ष्यतिध्रुवम् ॥ १३ ॥

जम्बूद्वीपे महापीठं योगिनीगणसेवितम् । आप्लावितं त्वयेदानींमुञ्च जालन्धरालयम्
तत्रराज्यं प्रयच्छास्मै तनयाय महार्णव ! । अजयश्चाप्यवध्यश्च तत्रस्थोऽयं भविष्यति
एवमुक्तोऽर्णवःप्रीत्या भार्गवेणाथ लीलया । अपासर्पत्सुतप्रीत्यै जले स्थलमदर्शयत्
शतयोजनविस्तीर्णमायतं च शतत्रयम् । देशं जालन्धरं पुण्यं तस्य नाम्नैव विश्रुतम् ॥
दैत्यवर्यं समाहूय मयं प्रोवाच सागरः । पुरं जालन्धरे पीठे कुरु जालन्धराय वै ॥
अम्भोधिनैव मुक्तस्तु चक्रे रत्नमयं पुरम् । प्राकारगोपुरद्वारं सोपानगृहभूमिकम् ॥
यत्रेन्द्रनीलसम्बद्धप्रासादतलसंस्थिताः । मेनिरे जलदोद्योगंताण्डवस्थाःशिखण्डिनः ॥
यत्र प्रवालमाणिक्यभवनोत्था मरीचयः । सेव्यन्ते शकुनैश्चूतरुचिराङ्कुरशङ्कया ॥
यत्र काञ्चनहर्म्येषु त्विषोवह्निषु कातराः । विलोक्य प्रपलायन्तु दावशङ्काःशिखण्डिनः

यत्र स्फटिकशालोत्थप्रभासं मिश्रिता दिशः ।
विभान्ति मन्दरोद्भ्रान्ताः सफेनार्णवसन्निभाः ॥ २३ ॥

यत्रमोहं स्वहर्म्येषुविभातालोकसंस्थिताः । चक्रिरे ललनाःपूर्णं सान्ध्यचन्द्रोपमाननाः
यत्रेन्द्रनीपकादम्बपवनोद्यानमोदिताः । चित्तं विशन्त्यो नारीणां चक्रिरे मोहनज्वरम्
यत्रलेख्यगतं नृणां विलोक्य सुरतं जनः । संयाति द्विगुणं नूनं निजकान्तारतोद्यमम्
यत्र वातायनोद्धूतधूपधूमस्य लेखया । नभो बभूव तद्गङ्गाकालिन्दीसङ्गमोपमम् ॥२७
यत्रानेकगृहोद्भूतप्रभया सकलं नभः । विभातीन्द्रायुधाकीर्णःशरन्मेघ इवोन्नतः ॥२८

यत्रानिशं भ्रमभ्रान्ताः सूर्यवाहाः प्रपीडिताः ।
विश्रामं यान्ति मध्याह्ने प्रासादशिरसि स्थिताः ॥ २९ ॥

यत्रकुत्र च हर्म्येषु विभ्रत्यो मालतीस्रजः । रात्रौ सम्भूतनक्षत्रा इव रेजुर्वराङ्गनाः ॥३०
यत्र हाटकहिन्दोलश्रृङ्खलाघर्षणोद्भवः । चकार सुन्दरीशब्दः स्फुटं मेरुभुवो भुवम् ॥
साकं सरिद्भिःपुत्रस्योशनला सह सागरः। तत्राभिषेकमकरोद्वादित्रैर्निजगर्जितैः ॥३२॥

याः स्कन्दस्य जगाद तारकजये देवः स्वयम्भूः स्वयं ।
स्वःसाम्राज्यमहोत्सवेऽपि च शचीकान्तस्य वाचस्पतिः ॥
ताभिश्चित्रविरिञ्चिवक्त्रसरसीहंसीभिराशास्महे ।
वाणीभिर्वसुधाविवाहसमये मन्त्रोत्सवैर्मङ्गलम् ॥ ३३ ॥

महापद्मसहस्रं तु सैन्यमात्मोदरोद्भवम् । जालन्धराय पुत्राय ददौ भीमं महोदधिः ॥

जालन्धराय शुक्रोऽपि प्रीत्या विद्यां निजां ददौ ।
मृतसञ्जीवनीं नाम्ना मायां रुद्रविमोहिनीम् ॥ ३५ ॥
शस्त्रास्त्रविद्या अन्याश्च विधिना अब्धिसूनवे ।
यदन्यत्सकलं तस्मै व्याख्यातं कविना तदा ॥ ३६ ॥

ततो जालन्धरं पुत्रमभिषिच्यार्णवो ययौ । स्वस्थानं दिव्यदेहेन नदीभिः परिवारितः
दृष्ट्वा जालन्धरो दिव्यपुरं गोपुरमण्डितम् । व्यचरत्सहशुक्रेण द्विजसङ्घैः सुपूजितः
एतस्मिन्नन्तरे दैत्याः पातालस्था महाबलाः । प्राप्ता जालन्धरं सर्वे कालनेमिपुरोगमाः
ततो महाबला वीरा बलं क्षीरोदसन्निभम् । तस्य शुम्भासुरं दैत्यं सेनापतिमकल्पयन्
बलं स्ववशगं कृत्वाकृत्वाभुवि स्थिरं जलम् । जालन्धरस्तदा राज्यं पितृदत्तं चकार सः

अत्रान्तरेऽप्सराः काचित्स्वर्णेत्यासीत्पुरा दिवि ।
तस्याः क्रौञ्चप्रसादेन वृन्दा नाम सुताऽभवत् ॥ ४२ ॥

धात्रा विभवसंयुक्तं सौन्दर्यं यत्कृतं पृथक् । तत्तदेकगतं द्रष्टुं वृन्दागात्रं विनिर्मितम्
तां वृन्दामतिचार्वङ्गीं प्रमदां जनमोहिनीम् । स्वर्णाजालन्धरस्यार्थे ददौ शुक्राय याचते

शुक्र उवाच ।

कन्दर्पस्य जगन्नेत्रशस्त्रेणाश्चर्यकारिणा । रूपेणानेन रम्भोरुदीर्घायुःसुखिनी भव ॥

निर्माय स्वयमेव विस्मितमनाः सौन्दर्यसारेण यं ,
स्वव्यापारपरिश्रमस्य कलशं वेधाः समारोपयत् ।
कन्दर्पं पुरुषं स्त्रियो विदधते यस्मिन्नदृष्टे सति,
द्रष्टव्यावधिरूपमाप्नुहि पतिं तं दीर्घनेत्रं भटम् ॥ ४६ ॥

नारद उवाच ।

उपयेमे विवाहेन गान्धर्वेणार्णवात्मजः । वृन्दां तौ दम्पतीजातौ जनानन्दकरौ नृप ! ॥
चञ्चलत्वं परित्यक्तं तया जालन्धरोऽपि हि । वृत्तेन वृद्धकार्येण चकमे न परस्त्रियम्

कदाचित्स सभासीनो दृष्ट्वा राहुशिरो हृतम् ।
कस्मात्कायार्द्धशेषोऽयमति पप्रच्छ भार्गवम् ॥ ४९ ॥
स तस्य कथयामास पूर्ववृत्तान्तमादितः ।
यथा निर्मथितो देवैः क्षीरोदोऽमृतकारणात् ॥ ५० ॥
तच्छ्रुत्वा विस्मितो वाक्यं प्राह जालन्धरोऽसुरः ।
प्रसादसुमुखो राहुं कामरूपो भवाधुना ॥ ५१ ॥

इति शुक्रस्य मन्त्रेण सिन्धुसूनुः प्रतापवान् । पितृव्यंसंस्मरन्वीरविग्रहं त्वकरोत्सुरैः

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे नारद-
युधिष्ठिरसंवादे जालन्धरोपाख्याने वृन्दाविवाहो जालन्धराभिषेको
नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

———

पञ्चमोऽध्यायः

क्षीरोदधेर्मन्थनकारणज्ञानाय जालन्धरेण शक्रम्प्रति दूतप्रेषणम्

युधिष्ठिर उवाच ।

कः पितृव्यः सिन्धुसूनोः किं वृत्तंतस्य विग्रहे । युयुधेसकथं दैत्यस्तन्मे कथय नारद

नारद उवाच ।

शृणुत्वं नृपशार्दूल पितृव्यःक्षीरसागरः । जालन्धरस्य तं देवैः प्रमथ्य धनमाहृतम् ॥

श्रीचन्द्रामृतनागाश्वपूर्वं तस्य सुरासुरैः । तच्छ्रुत्वाविग्रहं चक्रे देवैर्जालन्धरोऽसुरः ॥

कदाचित्प्रेषयामास दूतं दुर्वारणं बली । शिक्षयित्वा तु वक्तव्यं देवेन्द्रभवनं प्रति ॥

अथ स्यन्दनमारुह्य ययौ दुर्वारणो दिवि । प्रवेष्टुकामो भवनं द्वाःस्थैर्द्वारि निवारितः

दूत उवाच ।

जालन्धरस्य दूतोऽहमागतः शक्रसन्निधौ । गत्वा तत्र भवन्तो मां विज्ञापयितुमर्हथ ॥

नारद उवाच ।

इतितस्य वचः श्रुत्वा तदैव तु शचीपतिम् । गत्वा च प्रणिपत्याह दूतो देवागतो भुवः

दौवारिको महेन्द्रेण प्रत्युक्तो दूतमानय । हस्ते गृहीत्वा तं दूतं वासवान्तिकमानयत्

दुर्वारणो देवसभां प्रविष्टः प्रव्यलोकयत् । हरिं देवैस्त्रयस्त्रिंशत्कोटिभिः परिवेष्टितम्

स्वर्णसिंहासने दिव्यचामरानिलसेवितम् । शचीप्रेमरसोत्फुल्लनयनाब्जसहस्रकम् ॥१०

दुर्वारणोऽथ देवेशं विलोक्य गुरुणा सह । प्रणनामात्मगर्वेण प्रहसन्नयनश्रियम् ॥

निर्दिष्टमानसं भेजे दूतो जालन्धरस्य सः । कस्य त्वं केन कार्येण प्राप्तःप्राहेति तं हरिः

दूतो जालन्धरस्याहं स जगाद पुरन्दरम् ।
स राजा सर्वलोकानां तस्याज्ञां शृणु मन्मुखात् ॥ १३ ॥
पितृव्यो मम दुग्धाब्धिस्त्वया कस्माद्विलोडितः ।
मन्दाराद्रिविधानेन हृतं कोशो महाधनः ॥ १४ ॥

श्रीमद्रत्नानुत्तमांश्चान्यान्मणिं विद्रुमादिकम्। देहि सर्वं तथा स्वर्गं शीघ्रं त्यज पुरन्दर!

किं केकीव शिखण्डमण्डिततनुः सारीव किं सुस्वरः,

किं वा हन्त शकुन्तबालकपितुः कर्णामृतस्यन्दनः।

किं वा हंस इवाङ्गनागतिगुरुः किं कीरवत्पाठकः

काकः केन गुणेन काञ्चनमयेऽलङ्कारितः पञ्जरे ॥ १६ ॥

स त्वं मद्वचनात्तूर्णं कुरु सर्वं यथोचितम्। तं क्षमापय भूपालं यदि जीवितुमिच्छसि

नारद उवाच।

अथ प्रहस्य मघवा प्राह दुर्वारणं प्रति ॥ १८ ॥

इन्द्र उवाच।

शृणु दूत समासेन सिन्धोर्मथनकारणम्। पुरा हिमवतः सूनुर्मैनाको नाम मे रिपुः ॥

स कुक्षौ विधृतस्तेन सागरेण जडेन च। दग्धं चराचरं येन वह्निना हयरूपिणा ॥२०॥

स चापि विधृतस्तेन सागरेण दुरात्मना। धर्मद्विषां दानवानामसौ वा आश्रयः प्रभुः

नित्यं दधिघृतं क्षीरं दानवेभ्यः प्रयच्छति। अत एवायमस्माभिर्दुर्वारण! विलोडितः

दण्डितश्च गतश्रीको देवैरथ पुरातनैः। शृणु दूत! सबन्धेन मम विप्रेण शोषितः ॥

कुम्भोद्भवेन किञ्चैष दुःसङ्गेनैव बाध्यते। सोऽपि युद्धार्थमस्माभिः सर्वसैन्येन संवृतः

आगमिष्यति वै नाशं गमिष्यति तदैव हि ॥ २४ ॥

नारद उवाच।

इतीरयित्वा विरराम वृत्रहा सरित्पतेरात्मजदूतमुच्चकैः।

शशंस चागत्य समुद्रसूनोर्देवेश्वरेणोक्तमशेषमादितः ॥ २५ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे षष्ठे उत्तरखण्डे नारदयुधिष्ठिरसंवादे जालन्धरोपाख्याने

पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

———

षष्ठोऽध्यायः

दैत्यसैन्यानां देवसैन्यैः सह युद्धवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

महेन्द्रवचनं श्रुत्वा निजदूतमुखेन च । समुद्रसूनुः सङ्क्रुद्धः सर्वं सैन्यं समाह्वयत् ॥
रसातलस्थिता दैत्या ये च भूतलवासिनः । आययुः सबलास्तत्र जालन्धरमथाज्ञया ॥
प्रयाणप्रक्रमे सिन्धुसूनोः सैन्यस्यगर्जितैः । स्फुटन्ति नभसो राजन्पातालमखिलादिशः
हयनागोष्ट्रवदना बिडालमुखभीषणाः । व्याघ्रसिंहाखुवदना विद्युत्सदृशलोचनाः ॥४॥
सर्पकेशा महादेहाः केचित्खड्गतनूरुहाः । अन्ये च परिधावन्ति गर्जन्ति जलदस्वनैः ॥

रथगजहयपत्तिसङ्कुलं समरविनोदकदम्बभासुरम् ।
अब्जशतसहस्रकोटिनायकं बलमखिलं च तदा रराज राजन् ! ॥६॥

शतयोजनविस्तीर्णं विमानं हंसकोटिभिः । युक्तं भूतिसहस्रौघं सर्ववस्तुप्रपूरितम् ॥
तद्विमानं समारुह्य सद्यो जालन्धरो ययौ । मध्याह्ने मन्दरं प्राप्तः प्रथमेऽह्निबलैः सह ॥
खण्डितं शिविकावाहैर्दलितं भूरिकुञ्जरैः । द्वितीये दिवसे मेरुं सम्प्राप्तो बलसंयुतः
इलावृते तु शिखरे तस्थौ तत्कटकं महत् । अथ दैत्याधिपैर्भग्नं खाण्डवं नन्दनं वनम्
शिखराणि विशीर्णानि मेरोर्दानवपुङ्गवैः । सन्तानकेषु वृक्षेषु बद्ध्वा हिन्दोलमञ्चकान्
सिद्धाङ्गनाभिः सहिता रेमिरे दैत्यपुङ्गवाः । कुचकुङ्कुमताम्बूलचन्दनागरुभूषणैः ॥१२॥
केशपाशच्युतैः पुष्पैर्मेरोःसम्पूरिता नदी । सुमेरोः पूर्वदिग्भागो गजैस्तस्य विघट्टितः
दक्षिणं च रथैश्चेरुरुत्तरं पश्चिमं भटैः । अथ प्रस्थापयामास सैन्याञ्जालन्धरोऽसुरः ॥

महेन्द्रशिखरं चान्ये ययुर्दुन्दुभिनिःस्वनैः ।
राजराजपुरीं भङ्क्त्वा यमस्य वरुणस्य च ॥ १५ ॥
अन्येषां लोकपालानामाययुस्तेऽमरावतीम् ।
यथोत्पातोऽभवन्नाके दिव्यभौमान्तरिक्षगः ॥ १६ ॥

रजः पपात बहुलं तमस्तोमो विजृम्भते । तदा पपात कुलिशं करादिन्द्रस्य निष्प्रभम्

दृष्ट्वा निमित्तानि भयावहानि नाके महेन्द्रो गुरुमित्युवाच ।
किङ्कुर्महे कं शरणं च यामस्तं पश्य युद्धं समुपस्थितं च ॥ १८ ॥

ततो वाचस्पतिर्वाक्यमुवाच त्रिदशाधिपम् ।
चरणौ याहि शरणं विष्णोर्वैकुण्ठवासिनः ॥ १९ ॥

इत्युक्तो गुरुणा देवैः साकं वैकुण्ठमन्दिरम् । जगामाखण्डलःशीघ्रं शरणं कैटभद्विषः
शशंस वासुदेवाय विजयो द्वारपालकः । जालन्धरभयत्रस्ताः सर्वे देवाः समागताः ॥

श्रीरुवाच ।

न वध्योऽसौ मम भ्राता देवार्थे युध्यता त्वया ।
शापितो देव मत्प्रीत्या वधार्हो भविष्यति ॥ २२ ॥

नारद उवाच ।

इति श्रीवचनं श्रुत्वा विष्णुस्त्रैलोक्यपालकः । अथारुरोह गरुडं पक्षक्षेपावृताम्बरम् ॥
वैकुण्ठभवनात्तूर्णं निर्गतस्त्रिदशान्हरिः । जालन्धरभयत्रस्तान्गतकान्तीनथैक्षत ॥२४॥
ददृशुस्ते सुराः सर्वे हरिं सान्द्रघनोपमम् । शार्ङ्गशङ्खगदापद्म विभूषितचतुर्भुजम् ॥
स्तोत्रं पठित्वा पुरतः प्राहेन्द्रः सरितांपतेः । जालन्धरेणात्मजेन भग्नं देव त्रिविष्टपम्
तदिन्द्रवचनं श्रुत्वाऽभयं दत्त्वा दिवौकसाम् । विजेतुमसुरं देवैः सह रेजेऽसुरान्तकृत्
अथानीतं मातलिना रथमारुह्य वासवः । वासुदेवस्य पुरतः प्रययौ विधृताशनिः ॥२८॥
वामतस्त्रिदशाः सर्वे सव्यतश्च समाययौ । स्वहाप्रियोदक्षिणतःस च मेषं समास्थितः ॥
आरुह्यैरावतं नागं जयन्तः शक्रनन्दनः । उच्चैःश्रवसमिन्द्रश्च उभौभगवतःपुरः ॥३०॥

धाताऽर्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशो भगस्तथा ।
इन्द्रो विवस्वान्पूषा च पर्जन्यो दशमः स्मृतः ॥ ३१ ॥
ततस्त्वष्टा ततो विष्णू रेजेधन्यो जघन्यजः ।
इत्येते द्वादशादित्या इन्द्रस्य पुरतः स्थिताः ॥ ३२ ॥

वीरभद्रश्च शम्भुश्च गिरिशश्च महायशाः । अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी चापराजितः ॥

भुवनाधीश्वरश्चैव कपाली च विशांपते । स्थाणुर्भगश्च भगवान्रुद्रा एकादशस्मृताः ॥
श्वसनः स्पर्शनोवायुरनिलोमारुतस्तथा । प्राणापानौ सजीवौ च मरुतोऽष्टौलद्भुतः ॥
विवस्वानपि तन्मध्ये ययौ द्वादश मूर्तिभिः ।
धनदः शिविकारूढः किन्नरैशो ययौ तदा ॥ ३६ ॥
रुद्राश्च वृषभारूढा मारुतो मृगवाहनः। ययुः सैन्यस्य पुरतस्त्रिशूल परिघायुधाः ॥
गन्धर्वाश्चारणा यक्षाः पिशाचोरगगुह्यकाः ।
सर्वसैन्यस्य पुरतः सर्वशास्त्रभृतो ययुः ॥ ३८ ॥
पूर्वापरौ तोयराशी समाक्रान्तौ च सैनिकैः । तस्मिन्ससारभूमिराड् वराहवपुषा हरिः
स्वर्गादागत्य वेगेन दैत्यसैन्य जिघांसया । सुमेरोरुत्तरोभागः सुरसैन्येनसंवृतः ॥४०॥
सेनाभारोऽद्भुत करस्तस्थौ जालन्धरस्य च ।
आश्रित्य दक्षिणं भागं तूर्णं कनकशृङ्गतः ॥ ४१ ॥
अहोरात्रेणविहिता वर्षे तस्मिन्निलावृते । मेरुमन्दरयोर्मध्ये युद्धभूमिः प्रतिष्ठिता ॥४२
तत्रात्मजयदां भूमिं कविप्रोक्तां मुदायुताः । जग्मुस्ते दानवास्तूर्णं गुरुप्रोक्तां ययु सुराः
रथप्रवीरैः परितश्च सम्प्लवैर्गजैर्घनाकारमदप्रवाहिभिः ।
अश्वैरनन्तैर्गरुडाग्रगामिभिः पदातिभिः सारणभूर्भृता बभौ ॥ ४४ ॥
ततो वादित्रनिर्घोषः सेनयोरुभयोरभूत् ।
कोलाहलश्च वीराणामन्योन्यमभिगर्जताम् ॥ ४५ ॥
अथ दानवदेवानां सङ्ग्रामोऽभूद्भयावहः । सर्वसैन्यस्य संमर्दो यथा त्रिभुवनक्षयः ॥
भयक्रान्ता महाश्रान्ता श्रुतिर्विलपती मुहुः । रोमाञ्चिताबभौ द्यौश्च रजोवस्त्रं विधुन्वती
रौद्रैर्विहङ्गमारावैस्त्रासादाक्रन्दतीव हि । देवेन्द्रेण तदाज्ञप्ता मेघाःसंवर्तकादयः ॥४८॥
गजानुच्चैः समारुह्य तेऽसुरान्युयुधुर्मृधे ।
देवानामश्वारोहाश्च जाता गन्धर्वकिन्नराः ॥ ४६ ॥
रथिनःसाध्यसिद्धाश्च गजिनो यक्षचारणाः । पदातिनःकिम्पुरुषाः पन्नगाः पवनाशनाः
रोगाणामधिपो राजयक्ष्मा च यमनायकः । तदा दानवरोगाणांसङ्ग्रामोऽभूत्सुदारुणः

पतिता लुलुठुर्भूमौ दैत्याःशूलज्वरासयैः । दानवैर्निहता रोगाः पेतुस्समरमूर्द्धनि ॥५२॥
पलायांचक्रिरे केचिद्भयाद्ययो भूधरान्प्रति । ओषध्यस्तत्र सहजा वैशल्यकरणीमुखाः
ताभिर्विशल्याःसैन्येषु युयुधुर्यमकिङ्कराः । दानवैर्निहताःसर्वे शरमुद्गरपट्टिशैः ॥५४॥
पदातयःपरिगणैःखड्गैस्तीक्ष्णैःपरश्वधैः । कोटिशो जघ्नुरन्योन्यारुधिरारुणविग्रहाः ॥
अश्वचारा हयैस्तूर्णैश्चिक्षिपुर्गगने तदा । संश्लिष्य जघ्नुरन्योन्यं रुधिरारुणविग्रहाः ॥

समूहो रथिनां भीमो रथौघैश्छाद्य मेदिनीम् ।
विव्याध निशितैर्बाणैर्धनुर्मुक्तैर्महारथान् ॥ ५७ ॥

मदक्षीणकपोलाङ्गाःकरैर्बद्ध्वा करान्द्रुतम् । गजान्प्रतिगजाःक्रुद्धाःपातयन्ति महीतले

कोऽपि दैत्यो रथं दोर्भ्यामुत्क्षिप्योत्थाय खं ययौ ।
अश्वचारान्हयान्नागान्पातयामास भूतले ॥ ५९ ॥

स्कन्धे गृहीत्वा तरसा ययौ जालन्धरंप्रति । कक्षयोर्वै गजौगृह्य तृतीयं जठरोपरि ॥
चतुर्थं मस्तके गृह्य रणे धावति कश्चन । उत्पाट्य कोशतःखड्गं विधूय विमलाम्बरम्
ययौ सहस्रशो देवान्पातयित्वा रणेऽसुरः । काचित्पीनस्तनीतन्वी खेचरी रतिलम्पटा

आगत्य गगनात्तूर्णं निन्ये दैत्यं रणाङ्गणात् ।
चुचुम्ब सा तद्वदनं तीक्ष्णनाराचकीलितम् ॥ ६३ ॥

देवसैन्यं ततो बद्ध्वा कालनेमिर्ननर्त्तह । ततो जनार्दनःक्रुद्धो निर्ययौ कालनेमिनम् ॥
यमोदुर्वारणंवीरं स्वर्भानुश्चन्द्रभास्करौ । केतुं वैश्वानरो देवो ययौ शुक्रं बृहस्पतिः
अश्विनौ संयतौ तत्र दैत्यमङ्गारपर्णकम् । संह्रादं शक्रपुत्रश्च निर्ह्रादं धनदो ययौ ॥
निशुम्भश्चावृतोरुद्रैःशुम्भो वसुभिराहवे । मेघाकारंस्थितं जम्भं विश्वेदेवाःसमाययुः ॥
वायवो वज्ररोमाणमथ मृत्युर्मयं ययौ । नमुचिं वासवो व्यग्रंशक्तिहस्तोऽभ्यधावत ।

अन्यैरपि सुरैर्दैत्याःस्वस्ववीर्यसमैर्वृताः ॥ ६८ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्सहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे युधिष्ठिरनारद-
संवादे देवदानवयुद्धं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

विष्ण्वादीनां कालनेम्यादिभिः सह द्वन्द्वयुद्धम् ।

नारद उवाच ।

एवं द्वन्द्वेषु युद्धेषु सम्प्रवृत्तेष्वनेकशः । जघानाथ हरिःक्रुद्धो गदया कालनेमिनम् ॥१॥
विहाय मूर्च्छां सञ्चिन्त्य विष्णुं बाणैर्जघान सः ।
ततः क्रुद्धेन हरिणा स क्षितौ पातितो व्यसुः ॥ २ ॥
राजञ्जघान सञ्चिन्त्य राहुं खड्गेन चन्द्रमाः । राहुस्तु तं परित्यज्य तदा सूर्यमधावत ॥
सहस्रांशुं रणेजित्वा राहुश्चन्द्रमधावत । जघान तं च खड्गेन समरे रजनीपतिः ॥ ४ ॥
सैंहिकेयाङ्गकाठिन्यात्खड्गं चूर्णमभूत्तदा । जघान मुष्टिना गाढं कठिनेन विधुन्तुदः ॥५
चन्द्रं मूर्च्छापरिक्लिष्टं धृत्वा वेगान्महामृधे ।
गिलित्वा राहुणा चन्द्रोऽप्युद्गीर्णश्च ततः पुनः ॥६॥
मृगं स्वचिह्नमुरसि निधाय विससर्ज ह । स उच्चैःश्रवसं गृह्य हयरत्नं विधुन्तुदः ॥
जालन्धरान्तिकं नीत्वा भक्त्या तस्मै न्यवेदयत् ।
दुर्वारणो रणे क्रुद्धस्तं यमं गदयाऽवधीत् ॥ ८ ॥
निशितैर्मार्गणैर्भिन्नःशक्रपुत्रेण चाहवे । धृत्वा जयन्तं संह्लादःपरिघाघातमूर्च्छितम् ॥
ऐरावतं समारुह्य ययौ जालन्धरं प्रति । हतवांश्चैव गदया निह्लादं धनदोरणे ॥ १० ॥
रुद्रास्त्रिशूलनिर्घातैर्निशुम्भं जघ्नुरोजसा । निशुम्भो बाणजालैश्चपीडयामास तानति
शुम्भासुरो देवगणान्पूरयामास मार्गणैः । मृत्युं मायामयमयो बद्ध्वापाशैर्निनाय तम्
ददौ जालन्धरायासौ पौलोम्ने सोऽपि सिन्धवे ।
अग्निना च मुखे क्षिप्तो लोको जीवतु निर्भयः ॥१३॥
बद्ध्वा च नमुचिं पाशैर्वासवोऽपि रसातलम् ।
निन्ये विश्वस्य हन्तारमथ जालन्धरो ययौ ॥ १४ ॥

अथेन्द्रबलयोर्युद्धमभूद्राजन्सुदारुणम् । बलाङ्गरोचिषो भान्ति दिशोदश रवेरिव ॥१५॥
सर्वाण्यङ्गानि शक्रस्य शीर्णान्यङ्गे बलस्य च । बलीयसा बलेनेन्द्रो मुद्गरेणहतोहृदि

ननादेन्द्रस्ततो भीमं तच्छ्रुत्वा स बलोऽहसत् ।
हसतस्तस्य निश्चेरुर्मुखतो मौक्तिकानि च ॥ १७ ॥

तस्याङ्गस्याभिलाषेण न युद्धमकरोत्तदा । तुष्टाववासवोऽत्यर्थं तं बलं बलसागरम् ॥
वरं वृणु सुरश्रेष्ठेत्युक्तःप्राह बलंप्रति । यदि तुष्टोऽसि दैत्येश स्वं वपुर्दातुमर्हसि ॥१९

तदिन्द्रवचनं श्रुत्वा भित्त्वा शस्त्रैर्गृहाण माम् ।
इत्युवाच बलं सोऽपि किमदेयं महात्मनाम् ॥ २० ॥

गीरिव श्रोत्रहीनस्य लोलाक्षीव विचक्षुषः । परासोःपुष्पमालेवश्रीःकदर्यस्य निष्फला
महात्मानो न गृह्णन्ति हिंसमानान्रिपूनपि । सपत्नीःप्रापयन्त्यब्धि सिन्धवो नगनिम्नगाः

सुजनो न याति विकृतिं परहितनिरतो विनाशकालेऽपि ।
छिन्नोऽपि चन्दनतरुः सुरभयति मुखं कुठारस्य ॥ २३ ॥
दैवं परं विनश्यति तनुरपि न श्रीनिवेदिता सत्सु ।
अवशिष्यते हिमांशोः सैव कलाशिरसि या शम्भोः ॥ २४ ॥
ते साधवो भुवनमण्डलमौलिभूता ये साधुतामनुपकारिषु दर्शयन्ति ।
आत्मप्रयोजनवशात्कृतछिन्नदेहाः पूर्वापकारिषु खलोऽपि हितानुरक्तः ॥२५

तथेत्युक्त्वा सहस्राक्षो मुद्गरेणाहनद्बलम् । न भिद्यते यदा देहःशक्रश्चिन्तामवापह ॥
स स्मारितो मातलिना वज्रेणाङ्गं जघान तत् । तेन वज्रप्रहारेण बलाङ्गं तद्व्यशीर्यत ॥
बलाङ्गस्यैकभागस्तु पपात कनकाचले । तुहिनाद्रौ द्वितीयस्तु तृतीयो गोनगेऽपतत्
चतुर्थो देवनद्यां च पञ्चमो मन्दरे तथा । वज्राकरे पपातांशःषष्ठश्च विजयाङ्गजः ॥२९॥
तस्य जातिविशुद्धस्य परिशुद्धेन कर्मणा । कायस्यावयवाःसर्वे रत्नबीजत्वमागताः ॥

वज्रादस्थिकणाः कीर्णाःषट्कोणा मणयोऽभवन् ।
अक्षिभ्यामिन्द्रनीला वै माणिक्यश्रुतिसम्भवम् ॥ ३१ ॥
क्षतजात्पद्मरागाः स्युर्मेदसो मरकतास्तथा ।

प्रवालानि च जिह्वातो दन्ता मुक्तास्तथाऽभवन् ॥ ३२ ॥

मज्जोद्भवं मरकतं गारुत्मतमभून्नसा । कांस्यं पुरीषं रजतं वीर्यं ताम्रं च मूत्रजम् ॥

अङ्गस्योद्वर्तनाज्जातं पित्तलं ब्रह्मवीतिकाः । नादाद्वैदूर्यमुत्पन्नं रत्नं चारुतरं तथा ॥

नखेभ्यःकनकोत्पत्ती रुधिराच्च रसोद्भवः । मेदसः स्फटिकं जातंप्रवालं मांससम्भवम् ॥

बलदेहोद्भवान्यासन्रत्नानि पृथिवीतले । पुण्योपचयसम्पत्त्या भोक्ष्यन्ते विमलैर्जनैः ॥

अत्रान्तरे हतंश्रुत्वा बलं मघवतामृधे । प्रभावती नाम राज्ञी ययौ तच्चरणान्तिकम् ॥

विललाप पतिं दृष्ट्वा विकीर्णाऽवयवं रणे । प्रभावत्यश्रुपूर्णाक्षी मुक्तकेशी घनस्तनी

हा नाथ बलविक्रान्त कान्तदेह जगत्प्रिय । मां त्वं विहाय किंचात्र कैवल्यं गतवानसि

जराकुष्ठादिभिर्व्याप्तं बुद्ध्वा देहं त्यजन्ति न ।

देहिनोऽन्ये परं कान्तं त्वया देहो वृथोज्झितः ॥ ४० ॥

तव देहेन दिव्येन हारकं भूष्यते प्रिय । रणोत्सुकेन भवता या वेणी ग्रथिता मम ॥

तामुद्ग्रथय वैधव्यदुःखार्त्तायाः स्वयंप्रिय । एवं विलपतीं वीक्ष्य बलराज्ञीं समुद्रजः

दुःखितः शुक्रमित्याह बलंजीवय भार्गव ! ॥ ४२ ॥

शुक्र उवाच ।

इच्छया मरणं प्राप्तं तं कथं जीवयाम्यहम् ।

तथापि मन्त्रसामर्थ्याद्वाचमुच्चारयिष्यति ॥ ४३ ॥

जालन्धर उवाच ।

बलस्यरूपवचनं श्रोतुमिच्छामि भार्गव ! । जालन्धरेणैवमुक्तः क्षणं ध्यानपरोऽभवत् ॥

अथोदतिष्ठद्वदनात्स्वनः श्रोत्रमनोरमः । प्रभावतीं प्रतिव्यक्तं वाद्यभाण्डादिवोत्थितः

प्रभावति ! स्वदेहं त्वं ममाङ्गेषु लयंनय । इति तस्य वचःश्रुत्वा नदीजाता प्रभावती ॥

बलाङ्गेष्वेव लीना सा सुमेरोः पूर्ववाहिनी । यस्यास्तोयेन सञ्जाता रत्नानां कान्तिरुत्तमा

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे जालन्धरोपाख्याने बलदैत्यस्वर्गारोहणं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

———

अष्टमोऽध्यायः

जालन्धरेणेन्द्रपराभवकरणम् ।

नारद उवाच ।

ततो जालन्धरःक्रुद्धः प्राह तं दैत्यसूदनम् । कपटेन बलंहत्वा क यास्यसि बलाधम ! ॥
इत्युक्त्वा तं शतमखं सिन्धुसूनुःप्रतापवान् । ससूताश्वध्वजरथं छादयामास मार्गणैः ॥
पपात मूर्च्छितःशक्रो रथोपरि शरैःक्षतः । दृष्ट्वा तं पतितं शक्रं जगर्जार्णवनन्दनः ॥३॥

मूर्च्छां त्यक्त्वा मुमोचेन्द्रो वज्रं जालन्धरं प्रति ।
तदाद्रिदलनं हस्ते गृहीत्वा सिन्धुसम्भवः ॥ ४ ॥

वज्रंकक्षापुटे धृत्वा रथादुत्तीर्य सत्वरम् । अभ्यधावत दैत्येन्द्रो देवेन्द्रं धर्तुमाहवे ॥
ततो दुद्राव मघवा रथंत्यक्त्वा हरिं स्मरन् । रथमिन्द्रस्य मदवानारुह्यार्णवनन्दनः ॥
यन्तारं मातलिं कृत्वा ययौ प्राप्तमनोरथः । रथमिन्द्रस्य तरसा यत्र यत्र ययौ बले ॥

जालन्धरो महाबाहुः स्वयं चाम्बुधरो यथा ॥ ८ ॥
ततः स कोपात्पुरुषोत्तमः स्वयं खड्गं समुद्यम्य च नन्दकं रणे ।
सम्प्रेरयित्वा गरुडं मनोजवं जघान कोपेन च दैत्यवाहिनीम् ॥ ९ ॥
रथान्हयान्कुञ्जरपत्तिसङ्घान्स पातयामास बलात्सहस्रशः ।
जनार्दनः कश्यपसूनुसंवृतश्चकार सङ्ख्ये चरितं भयावहम् ॥ १० ॥
केशास्थिमज्जारुधिरौघवाहिनी पिशाचवेतालविहङ्गसेविताम् ।
करोरुजङ्घायुधशस्त्रपूरितां सुदुस्तरां व्याघ्रगजेन्द्रसेविताम् ॥ ११ ॥
रक्तान्त्रहाराङ्गदभूषितान्तां विघूर्णनेत्रोत्सवकान्तिवाससम् ॥ १२ ॥

विष्णुना निहतं सैन्यं दृष्ट्वा दानवपुङ्गवाः । जालन्धराज्ञया सर्वे रुरुधुः परिताहरिम्
दैत्यास्ते तत्र बाणौघान्वर्षमाणा यथाम्बुदाः । यथा द्विरेफाःकमलं पर्वतं जलदा इव

चूतं यथा पक्षिगणा गगनं धूमसञ्चयः ।

न दृश्योऽभूत्तदा विष्णुर्न तार्क्ष्यो रणसङ्कटे ॥ १५ ॥

सर्वे ते रथमारूढाःसर्वशस्त्रैर्महासुराः । वैकुण्ठाधिपतिं जघ्नुर्गर्जन्तो भीमनिस्वनैः ॥

तान्सर्वान्भीमरूपेण दैत्यारिः कुपितस्तदा ।

रणे निपातयामास वायुः पर्णचयं यथा ॥ १७ ॥

शैलरोमा ततो विष्णुं दैत्यः कोपादधावत । हरेरपि शरास्तस्य शरीरे शीर्णतां गताः

शैलरोमा च दैत्यारिशरीरं चावधीच्छरैः । हरिःखड्गं विनिर्धूयशिरस्तस्यजहारह ॥१९

छिन्नेशिरसि दैत्यस्य कबन्धो विक्रमन्रणे । शैलरोमाभुजाभ्यां च तार्क्ष्यं जग्राह पक्षयोः

शिरश्चोत्पत्य तरसा विलग्नं स्कन्धोर्द्ध्वगम् ।

ततस्तत्रास्य युद्धेन हृषीकेशोऽपि विस्मितः ॥ २१ ॥

शिरः संलग्नमालोक्य गरुडोन्यपतद्भुवि । पुनश्चोत्पत्य वेगेन शिरःस्थानं समाश्रयत् ॥

शैलरोमा ततो विष्णुं जहार गरुडाद्बली । हरिर्जघ्ने तलेनाशु गतायुश्चापतद्भुवि ॥

ततो जालन्धरःसूतं खड्गरोमाणमब्रवीत् । सम्प्रेषय रथं तत्र यत्र देवो जनार्दनः ॥२४॥

जालन्धरस्य वचनात्खड्गरोमानयद्रथम् । दृष्ट्वा तं पुरतो विष्णुमुवाचार्णवनन्दनः ॥

निःशङ्कं जहि मां विष्णो नाहं त्वाहन्मिमाधव । तस्य तद्वचनंश्रुत्वाक्रोधसंरक्तलोचनः

नारायणःप्राणहरैःशरैरेनमपूरयत् । विष्णुना च विभिन्नान्तोऽर्णवसूनुःप्रतापवान् ॥

हरिं सम्पूरयामास मार्गणौघैर्निरन्तरम् ।

अस्य बाणशतैर्भिन्नो गरुडो मूर्च्छितोऽपतत् ॥ २८ ॥

गरुडं पतितं दृष्ट्वा सिन्धुसूनोःशरैर्भुवि । रथं संस्मारयामास वैकुण्ठस्थं जनार्दनः ॥

स रथस्तस्य सम्प्राप्तःसूतहीनो हयैर्वृतः । अश्वैर्युतंरथं दृष्ट्वा विस्मितो भगवान्रणे

सम्बोधयित्वा गरुडं सारथ्ये समयोजयत् ।

स धृत्वा मुकुटं मूर्ध्नि कौस्तुभं हृदये मणिम् ॥ ३१ ॥

पुरुषार्थान्हयान्कृत्वा ययौ जालन्धरं हरि । मेदिनीं रथचक्रेण दारयंश्च सुरैःसह ॥३२॥

जघान तरसा बाणैर्दानवानां च वाहिनीम् । देवराजेन सन्दिष्टो वीतिहोत्रो रणाङ्गणे ॥

ददाह दानवानीकं समीरणसमन्वितम् । तदा हतं भगवता दैत्यसैन्यं सुरैःसह ॥३४॥

जालन्धरः स्वल्पशेषं दध्यौ दृष्ट्वा बलं स्वकम् ।
अथाह भार्गवं राजा मत्सैन्यं निहतं सुरैः ॥ ३५ ॥
त्वयि तिष्ठति मन्त्रज्ञे विख्यातो विद्यया भवान् ।
किं तया विद्यया ब्रह्मन्क्षत्त्रेणाथ बलेन च ॥ ३६ ॥

या न रक्षति रोगार्तान्यद्‌बलं शरणागतान् । जालन्धरवचःश्रुत्वा भार्गवस्तमभाषत ॥
पश्य राजन्ममबलं ब्राह्मणस्य रणाङ्गणे । इत्युक्त्वावारिणास्पृष्टा हुङ्कारेण प्रबोधिता
उत्थापितास्ते कविना शरौघैःप्राणहारकैः । देवाहता रणेपेतुःसमन्तात्सिन्धुसूनुना ॥
बाणैर्जर्जरदेहास्ते धृतप्राणा नराधिप । न मृतास्त्वमरत्वाच्च बाणैर्भिन्नाश्च सत्तम ॥
ततो नारायणो देवो बृहस्पतिमभाषत । धिग्बलं दैवतगुरो यो न जीवयसे सुरान् ॥
धिषणस्तु जगन्नाथमुवाच त्वरितं तदा । ओषधीभिरहं स्वामिञ्जीवयिष्यामि निर्जरान्

इत्युक्त्वा धिषणःसोऽपि ययौ क्षीरार्णवस्थितम् ।
द्रोणमद्रिं तदा गत्वा सुखं गृह्यौषधीःस्वयम् ॥ ४३ ॥
गुरुस्तासां च योगेन जीवयामास निर्जरान् ।
उत्थितास्ते ततो देवा जघ्नुर्दानववाहिनीम् ॥ ४४ ॥
देवान्समुत्थितान्दृष्ट्वा बभाषे सिन्धुजः कविम् ।
विना त्वद्विद्यया काव्य ! कथमेते समुत्थिताः ॥ ४५ ॥

इति दैत्योक्तमाकर्ण्य शुक्रःप्राहार्णवात्मजम् । क्षीरसागरमध्यस्थो द्रोणोनाम महागिरिः

ओषध्यस्तत्र तिष्ठन्ति जीवयन्ति च या मृतान् ।
तत्र गत्वा सुराचार्यो गृहीत्वौषधिसञ्चयम् ॥ ४७ ॥

रणे विनिहतान्देवानुत्थापयति मन्त्रतः । भार्गवोक्तमथाकर्ण्य सैन्यभारं महाबलः ॥४७

शुम्भे निक्षिप्य तरसा ययौ जालन्धरोऽर्णवम् ।
अथ प्रविष्टःक्षीराब्धौ वेश्मदिव्यं महाप्रभम् ॥ ४९ ॥
प्रविश्य तत्र क्षीराब्धेः क्रीडास्थानं ददर्श सः ।
नोष्णो न शीतलो वायुर्न तमो यत्र दृश्यते ॥ ५० ॥

यत्र गायन्ति नृत्यन्ति क्रीडन्ति चवरस्त्रियः। सुपीनस्तनभाराढ्या कृशोदर्यः सुदन्तिकाः
नेत्रविभ्रमविक्षेपैर्नितम्बपरिवर्त्तनैः। अङ्गैः संमोहनैरम्यैर्बाहुवल्लीदिचालनैः ॥ ५२ ॥
पादविन्यासरणितैर्मधुरैर्वचनस्तवैः। सौगन्ध्यसौख्यदैर्वासैर्नेत्रभ्रमरझांकृतैः ॥ ५३ ॥

चामरान्दोललीलाभिः स्रग्भिः स्मितविलोकितैः।
सेवां चक्रुर्विलासिन्यस्तत्र गत्वोदधेः सुतः ॥ ५४ ॥
क्रीडन्तं तत्र दुग्धाब्धिं संवीक्ष्य समरोत्सुकः।
अथाह प्रणिपत्यासौ क्षीराब्धिं तात हंसि माम्।
द्रोणाचलौषधीर्व्याजादम्बुभिः प्लावयस्वतः ॥ ५५ ॥

क्षीरसागर उवाच।

तं प्राप्तं शरणं पुत्र प्लावयाम्यूर्मिभिः कथम्।
मुनीन्द्रास्तं न शंसन्ति यस्त्यजेच्छरणागतम् ॥ ५६ ॥

पितृव्यवचनं श्रुत्वा सङ्क्रोधात्सन्ततं गिरिम्। तलप्रहरणेनैव ताडयामास दैत्यराट्
ततो द्रोणगिरी राजन्भीतो जालन्धराद्भृशम्। अथाजगाम रूपेण प्राह जालन्धरंप्रति
तवाहमभवं दासो रक्ष मां शरणागतम्। रसातलं महाबाहो यास्यामि तव शासनात्

यावत्त्वं कुरुषे राज्यं तावत्स्थास्याम्यहं प्रभो !।
ओषधीनां विरावेण सिद्धानां रोदनेन च ॥ ६० ॥

रसातलं जगामाद्रिः सिन्धुसूनोः प्रपश्यतः। ततो जालन्धरो वीर आजगाम महारणम्
पूर्वकल्पितमारुह्य रथस्थं केशवं ययौ। रथस्थं माधवं दृष्ट्वा जहासोच्चैर्नदीसुतः ॥
तावत्त्वं तिष्ठ शकटे यावद्धन्यामरीनहम्। एवमुक्त्वा जघानाशु शरैस्तां देववाहिनीम्
बाणैर्विदारिता देवास्त्राहीत्यूचुर्बृहस्पतिम्। ततो बृहस्पतिः शीघ्रमगमत्क्षीरसागरम् ॥
अदृष्ट्वा तं ततो द्रोणमभूच्चिन्तापरो नृप। अथागत्य रणं तूर्णममरान्प्राह गीष्पतिः
पलायध्वं सुराः सर्वे द्रोणाद्रिः क्षयमागतः। एवमुक्तवतस्तस्य गुरोश्चिच्छेद सिन्धुजः
यज्ञोपवीतं केशांश्च बाणैस्तीक्ष्णैर्हसन्सुरान्। ततो दुद्राववेगेन गुरुः प्राणभयार्दितः ॥
देवाः सव रणंहित्वा पलायाञ्चक्रिरे नृप। एवं विद्राव्य देवान्वै जनार्दनमधावत ॥६८॥

हृषीकेशोऽपि दैत्येशमन्वधावद्रणोत्सुकः । ततो युद्धमभूद्घोरं विष्णोर्जालन्धरस्य च
दुर्द्धर्षणो बाणजालैः प्लावयामास केशवम् । तान्बाणान्खण्डशःकृत्वा पूरयित्वा शरैर्महान्
वासुदेवोऽसुरं बाणैर्जालन्धरमपीडयत् । जालन्धरो रथंत्यक्त्वा शरपीडितविग्रहः ॥
विष्णुंविजेतुं दुद्राव संयतिस्थमथ द्रुतम् । तमायान्तं रणेदृष्ट्वा हरिर्विव्याध सायकैः
बाणानङ्गेऽसहद्विष्णोःप्राप्तोऽसौ रथसन्निधौ । हस्तेनैकेन गरुडं द्वितीयेन रथंहरेः ॥
भ्रामयित्वाऽम्बरे शश्वच्छ्वेतद्वीपेन्यपातयत् । जालन्धरकरक्षिप्तो गरुडोऽपि पपातह

क्रौञ्चद्वीपे स तत्रैव विश्राममकरोच्चिरम् ।
अच्युतः प्रच्युतस्तस्माद्भ्रमतो रथमण्डलात् ॥ ७५ ॥

रणमागत्य दैत्येशं तिष्ठ तिष्ठेत्यभाषत । दृष्ट्वा तमागतं भूयःकेशवं समरप्रियः ।

पूरयन्मार्गणैर्भूमिं जगर्जार्णवनन्दनः ॥ ७६ ॥
विव्याध दैत्यं हरिराशु शक्त्या हृदि स्फुरन्त्या स ततः पपात ।
सूतोऽनयत्तं समरान्निवासं तं प्राह रे केन कृतोऽस्यलज्जः ॥७७॥
दैत्यारिजालन्धरयोर्महत्तदा बभूव युद्धं धरणीतलस्थयोः ।
प्रेम्णा श्रियस्तं न जघान दानवं स्वयं हरिस्तस्य शरैः पपात ॥ ७८ ॥

ततो निरीक्ष्य गोविन्दं पतितं धरणीतले । प्रगृह्यार्णवजो दैत्य आरुरोह निजंरथम् ॥
ततस्तमिन्दिराप्राप्ता रुदन्ती विष्णुवल्लभा । संस्थिता कमला तत्र पतिंकमललोचनम्

पतितं तु पतिं वीक्ष्य लक्ष्मीः प्राहार्णवात्मजम् ।
शृणुष्व वचनं भ्रातर्जितो विष्णुर्धृतस्त्वया ॥ ८१ ॥

भगिन्या न च वैधव्यं दातुंयुक्तं महाबल । श्रुत्वा तु वचनं तस्या मुमोच जगतःपतिम्

जालन्धरो महाबाहुः स्वस्रे भक्त्या ननाम च ।
ववन्दे चरणौ विष्णोः स्वसुः स्नेहात्तदाञ्जसा ॥ ८३ ॥

विष्णुर्जालन्धरं प्राह तुष्टोऽस्मि तवकर्मणा । वरंवरय दैत्येश किं प्रयच्छामि ते वरम्

जालन्धर उवाच ।

यदि त्वं ममतुष्टोऽसि शौर्येणानेनकेशव । स्थातव्यं मत्पितुःस्थानेत्वया कमलयासह

तथेत्युक्त्वा च संस्मृत्य गरुडं धरणीधरः । आरुह्य चजगन्नाथःक्षीराब्धिं प्रियया सह
तदाप्रभृति कृष्णस्य वासःश्वशुरमन्दिरे । अब्धौवसति देवेशो लक्ष्म्याःप्रियचिकीर्षया

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे
युधिष्ठिनारदसंवादेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

जालन्धरस्य सकलदेवपराजयपूर्वकं सौराज्यप्रतिष्ठापनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

देवान्विद्राव्यसमरे विष्णुं स्थाप्यात्ममन्दिरे । जालन्धरेणाब्धिजेन यत्कृतंब्रूहि नारद

नारद उवाच ।

शुम्भादीनां तु वीराणां दत्त्वा दानं प्रसादजम् ।
जालन्धरो जगामाथ स्वर्गं प्राप्यावलोकयत् ॥ २ ॥

हिरण्यवर्षेणजनान्भूषयन्ति दिनेदिने । फलन्ति तरवोऽजस्रं वाजिमेधक्रतोःफलम् ॥
गजवस्त्रसुवर्णानि धेनुकन्यातिलानि च । पुष्पकर्पूरताम्बूलकस्तूरीकुङ्कुमानि च ॥
ये यच्छन्ति महात्मानस्ते पश्यन्त्यमरावतीम् । वर्षासु गृहदानेन शिशिरेऽग्निप्रदानतः

वादित्राणि च सर्वाणि वादयन्ति शिवालये ।
प्रपां कुर्वन्ति ये चैत्रे दध्योदनसमन्विताम् ॥६॥

यत्र हिन्दोलपर्यङ्कं स्वयमान्दोलयन्ति च । सारिकाशुकहंसाश्च भ्रमद्भ्रमर कोकिलाः
कुर्वन्तो दूतकार्याणि यच्छन्ते प्रियसङ्गमम् । रम्भा यत्र पुरैरामा मेनका च तिलोत्तमा
सुषमासुन्दरी यत्र घृताची पुञ्जिकस्थली । सुकेशी सुमुखी रामा मञ्जुघोषा च मालिनी
मृगोद्भवा च सुखदा धनदंष्ट्रा तिलप्रभा । वाजिमेधफलग्राहा राजसूयं फलन्ति याः ॥

कोटिशो यत्र निष्पापाःक्रीडन्त्यप्सरसो नृप ! ।

एवं भूरिसुखे स्वर्गे स्थापयामास सिन्धुजः ॥ ११ ॥
शुम्भप्राणसमं दैत्यं निशुम्भं युवराजके । स्वयं जालन्धरे पीठे स्वर्गादागत्य सिन्धुराट्
वर्षार्बुदद्वयं राज्यं चकारात्मबलेन च ॥ १२ ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

युयुधे सुरसङ्ग्रामे स सुरैरपराजितः । ततःकिमकरोद्राजा सिन्धुसूनुःप्रतापवान् ॥१३॥
तन्ममाचक्ष्व देवर्षे ! श्रोतुकामस्य विस्तरात् ॥ १४ ॥

नारद उवाच ।

शृणु राजन्यथातथ्यं कृतं सागरसूनुना । सदेवान्समरेजित्वा राज्यंचक्रे ह्यकण्टकम् ॥
गन्धर्वाश्चित्रसेनाद्याःसेवन्ते चासुरेश्वरम् ।
यज्ञभागांश्च यो भुङ्क्ते सर्वेषामसुरेश्वरः ॥ १६ ॥
क्षीरसागरतो देवैर्हृतं रत्नादिकं च यत् । तत्सर्वं च तथान्यच्च निर्जित्य हृतवान्बली ।
समुद्रतनयेराज्यं भुवो राजन्प्रशासति ।
न कश्चिन्म्रियते मर्त्यो नरकं कोऽपि न व्रजेत् ॥ १८ ॥
न कलिःप्रणयादन्यो न भोगादपरःक्षयः । न वन्ध्यादुर्भगानारी नालङ्कारैर्विवर्जिता ॥
कुरूपादुर्गतादुष्टाऽयशस्या न च दृश्यते । न तत्र विधवानारी न कश्चिन्निर्धनोजनः ॥
दातारः सन्ति सर्वत्र न प्रतिग्राहिणः क्वचित् ।
पुण्याजनाः प्रयच्छन्ति द्विजेभ्यो ह्यात्मनो धनम् ॥२१॥
रूपयौवनशालिन्यःसीमन्तिन्यो गृहेगृहे । गोक्षीरं दधिसर्पिश्च यत्र निर्जरसोजनाः ॥
मङ्गलं तत्र सर्वेषां न क्वचिद्वधबन्धनम् । मरणं न च हिंसाऽस्ति न कश्चित्केन बाध्यते
ऋणं न दृश्यते राजन्धनिनः सन्ति सर्वतः ।
सन्तुष्टाः सर्वसस्याढ्याः प्रजाः सर्वत्र पार्थिव ! ॥ २४ ॥
केलीक्षुदण्डप्रभवश्च दुग्धरसोऽति सुस्वादुतरो गृहे नृणाम् ।
शुश्राव नारी नरयोर्हितं वचो न चापहर्ताऽध्वनि गच्छतां सदा ॥ २५ ॥
पतन्त्यखण्डा नभसो यतस्ततो धाराश्च कर्मारविमिश्रसर्पिषः ।

संमिश्रिताः शर्करया परिश्रुताः समुद्रसूनोःस्म रणान्मुखे नृणाम् ॥ २६ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे युधिष्ठिरनारद सम्वादे जालन्धरसौराज्यवर्णनंनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

सर्वदेवप्रार्थनया शङ्करेण सर्वदेवतेजोमयचक्रनिर्माणम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

इन्द्रादिभिस्तदा देवैःकिं कृतं द्विजसत्तम । जालन्धरेणविजितैः स्वर्गराज्ये हृते सति ॥

नारद उवाच ।

अथ त्यक्त्वा दिवं देवाः प्रापुस्ते दुर्दशां चिरम् ।
न पीयूषं नैव यज्ञा ययुः स्थानं स्वयम्भुवः ॥ २ ॥

ददृशुर्ब्राह्मभुवने ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् । प्राणायामेन युञ्जानं मनःस्वंपरमात्मनि ॥ ३ ॥

ते तुष्टुवुः सुराः सर्वे वाग्भिस्तथ्याभिरादृताः ।
ततः प्रसन्नो भगवान्किं करोमीति चाब्रवीत् ॥४॥

ततो निवेदायश्चक्रुर्ब्रह्मणे विबुधाःपुनः । जालन्धरस्य सकलं तथा निजपराभवम् ॥

क्षणंध्यात्वा ययौ ब्रह्मा कैलासं त्रिदशैःसह ।
तस्य शैलस्यपार्श्वे ते वैचित्र्येणसमाकुलाः ॥ ६ ॥

स्थिताः सन्तुष्टुवुर्देवा ब्रह्मशक्रपुरोगमाः । नमो भवाय शर्वाय नीलग्रीवाय ते नमः ॥

नमःस्थूलाय सूक्ष्माय बहुरूपाय ते नमः । इति सर्वमुखोभूत्वा वाणीमाकर्ण्य शङ्करः

प्रोवाच नन्दिनं देवानानयस्वेति सत्वरम् ।
श्रुत्वा शम्भोर्वचो देवा आहूता नन्दिना द्रुतम् ॥ ९ ॥

प्रविश्यान्तःपुरे देवाः ददृशुर्विस्मितेक्षणाः । तत्रासने समासीनं शङ्करं लोकशङ्करम् ॥

गणैःकोटिसहस्रैस्तु सेवितं भक्तिशालिभिः । नग्नैर्विरूपैःकुटिलैर्जटिलैर्धूलिधूसरैः ॥
प्रणिपत्याब्रवीत्प्राह सहदेवैः पितामहः । सुखरागो यथाऽस्यासीच्छक्रःसोऽयं वृथागतः
कृपांकुरु महादेव शरणागतवत्सल । ततउच्चैर्विभोर्हास्यं श्रुत्वा ब्रह्मा पिनाकिनः ॥१३

उवाच देवदेवेशं पश्यावस्थां दिवौकसाम् ।
ततः सर्वेश्वरो ज्ञात्वा ब्रह्मणो मनसेप्सितम् ॥१४॥

शक्रस्य मानभङ्गं च देवार्थे परमेश्वरः । प्रेम्णा भवान्याविज्ञप्तो नृप ! प्राह वचोहरः ॥
विष्णुना न हतो योऽरिः सकथं हन्यते मया । पूर्वसृष्टान्यायुधानि वज्रादीनिपितामह
तैःशस्त्रैर्नैव वध्योऽसौ वलीजालन्धरोऽसुरः । हेतिभिःपूर्वसंसृष्टैःसमयाऽपि न हन्यते

देवाः कुर्वन्तु शस्त्रं हि ममप्राणसहं दृढम् ।
शम्भोरित्युत्तरं श्रुत्वा ब्रह्मोवाचाथ शङ्करम् ॥ १८ ॥
स्वयं कुरु महाशस्त्रं त्वं वेत्थ स्वात्मनोवलम् ।
इति तस्य वचःश्रुत्वा प्रत्युवाच महेश्वरः ॥ १९ ॥

ब्रह्मन्विमुञ्च तेजस्त्वं क्रोधयुक्तं सुरैःसह । ततस्तेजो मुमोचाथ ब्रह्मा ब्रह्मास्त्रसूचकः
रुद्रस्त्रिनेत्रजं तेजस्ततो निर्मुक्तवान्स्वयम् । देवाश्च मुमुचुःसर्वे सक्रोधं तेजसांचयम्
अत्रान्तरे स्मृतःप्राप्तो हरेण मधुसूदनः । किं करोमीति तेनोक्तःशिवःप्राह जनार्दनम् ॥

विष्णो जालन्धरः कस्मान्न हतःसङ्गरे त्वया ।
कथं सुरान्परित्यज्य क्षीराब्धिं शयितुं गतः ॥ २३ ॥

श्रीविष्णुरुवाच ।

यदि तं हन्मि देवेश श्रीःकथं ममवल्लभा । तस्मात्त्वं पार्वतीकान्त जहि जालन्धरं रणे
तेजस्त्वं क्रोधजं मुञ्चेत्युक्तःशर्वेण केशवः । मुमोच वैष्णवं तेजस्तत्सर्वं समवर्द्धत ॥

तेजःप्रवृद्धं तद् दृष्ट्वा व्यापकं प्राह केशवम् ॥२५॥

शङ्कर उवाच ।

एतेन तेजसा शीघ्रं ममास्त्रं कर्तुमर्हथ । विश्वकर्मादयस्तच्च श्रुत्वा शङ्करभाषितम् ॥

निरीक्ष्य च तदान्योन्यं किं कुर्म इतिशङ्किताः ।

दृष्ट्वा तूष्णीं स्थितांस्तांश्च ज्ञात्वा तन्मनसि स्थितम् ॥ २७ ॥
तदाह भगवान्ब्रह्मा अनालोक्यं हि दैवतैः । सोढुं न शक्तास्ते तेजो धर्तुं केन वशक्यते
ततःप्रहस्य भगवानुत्पत्योपरितेजसः । वामाङ्घ्रिपार्ष्णिनाशम्भुर्ननर्त भ्रमरीचयम् ॥
ततो देवा महेन्द्राद्यास्तेजसोपरि शङ्करम् । नृत्यमानं तदा दृष्ट्वा मुदावाद्यान्यवादयन्
तदा प्रभृति नृत्येषु भ्राम्यते भ्रमरीचयम् । अथ चक्रं समुत्पन्नं शम्भोर्नर्तनमर्दनात् ॥
आरलक्षत्रयोपेतमस्थिकोटिसमाकुलम् ।
शर्वाङ्घ्रिकर्षणात्तस्य तेजसो निसृताः कणाः ॥ ३२ ॥
विश्वकर्मा च तेनास्त्रं विमानानि च निर्ममे ।
ततस्ते निर्जराभीत्या दृष्ट्वा चक्रं सुदर्शनम् ॥ ३३ ॥
त्राहि त्राहीति देवेशं प्रत्यूचुस्ते सुरान्नृप । पृथ्वीकाठिन्यमादायलोहानामपितेजसाम्
यद्विश्वकर्मणाकोशंकृतं भस्मीकृतं चतत् । सृष्टेन तेन चक्रेण दग्धःकालोऽपतत्क्षितौ ॥
ततस्तद्ब्रह्मणोहस्ते ददौ चक्रं स धूर्जटिः । चक्रार्चिर्निचयैःकूर्चं दृष्ट्वा दग्धमुमापतिः
हसित्वा ब्रह्मणो हस्ताद् गृहीत्वा सत्वरं शिवः ।
दधौ कक्षापुटे चक्रं निधानं निर्धनो यथा ॥ ३७ ॥
ततो न दृश्यते चक्रं शिवकक्षापुटे स्थितम् । महामूर्खस्ययद्दत्तं दानं तस्य फलं यथा ॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां षष्ठे उत्तरखण्डे युधिष्ठिरनारदसंवादे
जालन्धरोपाख्याने सर्वदेवतेजोमयचक्रोत्पत्तिर्नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

नारदमुखाज्जालन्धरेण पार्वतीसौन्दर्यश्रवणम् ।

नारद उवाच ।

अत्रान्तरे मयागत्वा कथितं सिन्धुसूनवे । त्वां हन्तुं सर्ववीरेश प्रतिज्ञा शम्भुना कृता
श्रुत्वेत्थं मद्वचो राजंस्ततःपप्रच्छ सोऽसुरः ॥

जालन्धर उवाच ।

किमस्ति शूलिनो गेहे रत्नजातं महामुने । तन्ममाचक्ष्व सकलं नास्ति युद्धं निरामिषम्

नारद उवाच ।

भूतिर्गात्रे वृषो जीर्णः फणिनोऽङ्गे गले विषम् । शिक्षापात्रं करे पुत्रौ गजाननषडाननौ
इत्यादिविभवस्तस्य यदन्यत्तन्निबोध मे । तनया गिरिराजस्य विशाला ह्युन्नतस्तनी
दुग्धस्मरोऽपि भगवान्यस्या रूपेण मोहितः । महेशो यद्विनोदाय कुरुते नित्यकौतुकम्

नृत्यन्गायंश्च तां शम्भुः स्वयं भवति हासकः ।
सा पार्वतीति विख्याता सौन्दर्यावधिदैवतम् ॥ ६ ॥
वृन्दा वराङ्गना राजन्निमाश्चाप्सरसः शुभाः ।
न चाप्नुवन्ति पार्वत्याः षोडशीमपि तां कलाम् ॥ ७ ॥

इत्युक्त्वाऽहं महीपाल जालन्धरममर्षणम् । पश्यतां सर्वदैत्यानमन्तर्धानंगतः क्षणात्
अथ संप्रेषयद्दूतं सिन्धुजः सिंहिकासुतम् । क्षणेनासाद्य कैलाशं देवावासमपश्यत ॥
अत्रान्तरे हरिर्भीममापृच्छ्य तु तदा हरम् । जगामालक्षितस्तूर्णं क्षीराब्धिं भेदशङ्कया
ददर्श राहुर्भवनं शङ्करस्यातिदीप्तिमत् । आत्मानमात्मनावीक्ष्य किमित्याह सुविस्मितः

प्रवेष्टुकामो बलिभिर्द्वारि द्वाःस्थैर्निरोधितः ।
यत्नवान्स निषिद्धोऽपि तदा ते प्रोद्यतायुधाः ॥ १२ ॥

तान्निवार्य गणान्नन्दी व्याजहार विधुन्तुदम् । कस्त्वं कस्मादिहायातः किं कार्यं तव बर्बर

ब्रूहि कार्यं गणा यावत्त्वां न हन्युर्भयावहाः ॥ १३ ॥

राहुरुवाच ।

दूतो जालन्धरस्याहं त्वं मां शर्वान्तिके नय । न वाच्यमन्तरे द्वाःस्थ महाराज प्रयोजनम्
नन्दी दूतोक्तमाकर्ण्य नीललोहितमाययौ । दण्डवत्प्रणिपत्याग्रे स्थित्वा शङ्करमब्रवीत् ॥
सैंहिकेयो महाराज द्वारे तिष्ठति कार्यतः । स प्रयात्वथवा यातु भवानाज्ञप्तुमर्हति ॥

नन्दिनोक्तमथाकर्ण्य त्वरन्निव महेश्वरः ।
सुप्तामन्तःपुरा देवीं प्रस्थाप्य च सखीवृताम् ॥ १७ ॥

पश्चाद्द्वाःस्थं जगादाथ नन्दिन्दूतं प्रवेशय । ततो हस्ते प्रगृह्यामुं दूतं नन्दी महाबलः ॥
अनयामास देवानां मध्ये शम्भुमदर्शयत् । तं ददर्श तदा राहुर्जटिलं नीलभास्मनि ॥
पञ्चवक्त्रं दशभुजं नागयज्ञोपवीतिनम् । देवीविरहितं मूर्ध्नि चन्द्रलेखाविभूषितम् ॥
उच्छ्वासोच्छ्वासनिर्मुञ्चत्पृदाकुगणसेवितम् । सर्वदेवगणोपेतं सेवितं गणकोटिभिः
प्राप्तं ज्ञात्वा ततो दूतं शम्भुरालोक्य चाग्रतः । प्राह ब्रूहि तदा राहुर्वक्तुं समुपचक्रमे ॥

राहुरुवाच ।

देव जालन्धरेणाहं प्रेषितस्तव सन्निधौ । तस्य शिष्टं वचः श्रुत्वा मन्मुखेन द्रुतं कुरु ॥
गिरिश ! त्वं तपोनिष्ठो निर्गुणो धर्मवर्जितः ।
तव नास्ति पिता माता वसुगोत्रादिवर्जितः ॥ २४ ॥
जालन्धरो महाबाहुर्भुङ्क्तेऽसौ भुवनत्रयम् । तस्यैव वश्यस्त्वमपि ततश्चोक्तं समाचर
पुराणपुरुषः कामी वृषारूढः कथं भवान् । एवं वदति सम्प्राप्तौ सुतौ स्कन्दविनायकौ
तस्मिन्काले देवदेवो यतवागङ्गमर्दनम् । चकार च करैर्न्यस्तै र्वासुकिर्भूतलेऽपतत् ॥
हेरम्बवाहनस्याखोः पुच्छे ग्रस्तमथाहिना । स्वपत्रं ग्रस्तमालोक्य मुञ्चमुञ्चेत्युवाच ह
अत्रान्तरे स्कन्दवाहं क्षुब्धं वीक्ष्य महास्वरम् । तद्भयाद्वासुकिर्ग्रस्तमाखुपुच्छमथोद्गिरत्
अथारुह्य हरस्याङ्गं गलमावेष्ट्य संस्थितः । तस्य निश्वासपवनैरथ जातो हुताशनः ॥
तस्योष्मणा चन्द्रलेखा जटाजूटाटवीस्थिता ।
सार्द्रतां तु तदा साऽऽयात्प्लावितं तद्वपुर्यथा ॥ ३१ ॥
तस्याह्यमृतधाराभिर्ब्रह्ममस्तकमालिका । हरमौलिकपालानामभूत्सञ्जीविता तदा ॥ ३२
पपाठ पूर्वमभ्यस्तं सर्वयोगश्रुतिक्रमम् । श्रुत्वा परस्पराधितं विवदन्ति शिरांस्यथ ॥
अहमादिरहं पूर्वमहमेव परात्परः । अहं स्रष्टा अहं पातेत्युत्सुकानि परस्परम् ॥३४॥
शोचन्त्येतानि नो दत्तं नो भुक्तं न हुतं मया ।
लोभग्रस्तेन मनसा नो वित्तं ब्रह्मणेऽर्पितम् ॥ ३५ ॥
अथेश्वरजटाजूटादाविरासीद्गणो महान् । त्र्याननस्त्रिचरणस्त्रिपुच्छः सप्तहस्तवान् ॥
सच कीर्तिमुखो नाम पिङ्गलो जटिलो महान् ।

तं दृष्ट्वा सा कपालाली भयात्तस्थौ मृतेव सा ॥३७॥

पुरतः प्राह सगणस्ततः कीर्तिमुखः प्रभुम्। प्रणिपत्य शिवं देवमत्यर्थं क्षुधितः प्रभो

यदोक्तः शङ्करेणाहो भक्षयत्वं रणे हतान्। क्षणं विचार्य सगणः काप्यदृष्ट्वारणं तदा

ब्रह्माणं भक्षितुं प्राप्तः शङ्करेण निवारितः।

ततः कीर्तिमुखेनाथ स्वाङ्गं सर्वं च भक्षितम् ॥ ४० ॥

बुभुक्षितेन चात्यन्तं निषिद्धेन च सर्वतः। तत्साहसं तदा दृष्ट्वा भक्तिं कीर्तिमुखस्यच

तमुवाचेश्वरः प्रीतः प्रासादे तिष्ठ मे सदा।

त्वच्चित्तरहितो यश्च भविष्यति ममालये ॥ ४२ ॥

स पतिष्यति शीघ्रं हीत्युक्तः सोऽन्तर्हितोऽभवत्।

शम्भोर्मूर्ध्नि तदा देवा ववृषुः पुष्पवृष्टिभिः ॥ ४३ ॥

एवमत्यद्भुतं दृष्ट्वा सभायां तु त्रिशूलिनः। स्वर्भानुरपि देवेशं पुनः प्रोवाच विस्मितः

स्पृशन्ति त्वां कथं भावाः स्वाधीनं योगिनं बलात्।

इन्द्रियैः पूज्यसे त्वं हि प्राप्योऽयं विषयैः कथम् ॥ ४५ ॥

ब्रह्मादिलोकपालानां पूजां गृह्णासि सर्वतः। न त्वं पश्यसि कं देवंत्वं पूजयसि कश्चन

ईश्वरोऽसि कथं लोके भिक्षाभोजी प्रतिष्ठितः।

सङ्गोपयसि योगीन्द्र! गौरीं रम्यां प्रयच्छ मे ॥४७॥

स्कन्दलम्बोदराभ्यां त्वं पुत्राभ्यां सहितोऽधुना ॥

भिक्षापात्रं गृहीत्वा तु भ्रम नित्यं गृहे गृहे ॥४८॥

एवं बहुविधं तत्र राहुराहेश्वरंप्रति। भगवानपि तच्छ्रुत्वा नोत्तरं किंचिदब्रवीत् ॥४९

अथेशं मौनिनं त्यक्त्वा राहुर्नन्दिनमब्रवीत्।

त्वं मन्त्री ह्यसि सेनानीर्विकटाननबिम्बधृत् ॥ ५० ॥

एवमाचरितभ्रष्टं त्वं शिक्षयितुमर्हसि। नो चेद्रोषेणेन्द्र इव पतिष्यति रणे हतः ॥५१॥

इत्याकर्ण्यवचस्तस्य नन्दी विज्ञाप्य चेश्वरम्। भ्रूसंज्ञयैव स तदा मतमाज्ञाय शूलिनः ॥

सम्पूज्य प्रेषयामास राहुं नन्दीगणाग्रणीः।

अथ जालन्धरं गत्वाकथयामास विस्तरात् । स्वर्भानुस्तस्य वृत्तान्तंगौरीरूपं अमोहरम् ॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे नारदयुधिष्ठिर-संवादे जालन्धरोपाख्याने कैलासाद्राहुप्रत्यागमनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

जालन्धरस्य युद्धार्थयात्रावर्णनम् ।

नारद उवाच ।

अथ जालन्धरो दूतवचः श्रुत्वा प्रतापवान् । सर्वसैन्यं समाहूय प्रयाणमकरोत्तदा ।
ततस्ततः समेतानां सैन्यानां श्रूयते ध्वनिः ॥ १ ॥
सस्त्रीन्मन्दरकन्दरेषु शयितानुत्थापयन्किन्नरा-
न्मेरोर्मन्दरकन्दरे प्रतिरवानुत्थापयन्वारणान् ।
सिंहानां च ततीर्व्यमुञ्चत पुरः पन्थानमेवंविध-
स्त्रैलोक्यं बधिरीचकार महतः सैन्यस्य कोलाहलः ॥ २ ॥
ततो दुन्दुभिनादोऽभूत्पीठे जालन्धरे नृप !। तन्निनादेन शूराणां प्रियेण महता तदा ॥
कम्पन्ते गिरयस्तुङ्गाः प्रासादा विचलन्ति च । सप्तसागरगर्भेभ्यो निःसृतादैत्यदानवाः
सन्नद्धाश्चातिगर्जन्ति नानावाहनसंयुताः । हेषारवो महानासीद्वाजिनां बाह्यतःपुरः ॥५
रथाङ्गेनाथ सङ्घृष्टा धरा संचलतेऽथवा । चालितैर्गजयूथैश्च पृथ्वी रुद्धा सकानना
जालन्धरैरितैर्भीमैर्युतैः स्यन्दनस्थितैः । अश्वार्बुदसहस्रे द्वे अर्बुदं दन्तिनामपि ॥ ७ ॥
रराज सैन्यलक्षैकं रथिनां सपताकिनाम् । परार्द्धनवतिः कोट्यो दृश्यन्तेमुख्यनायकाः
निर्जगाम महासैन्यं छत्रैः संछाद्य भास्करम् ॥ ८ ॥
आसीत्पिञ्जरपाण्डुपङ्कजवनं श्वेतातपत्रैःक्वचिन्-
मायूरातपवारणैः क्वचिदभूदुन्नीलनीलोत्पलम् ।

उन्मेघं क्वचिदूर्ध्वधूलिपटलैर्यस्य प्रयाणेऽभवत्-
सद्वीचिक्वदिम्बरं सर इवोत्सर्पत्पताकापटैः ॥ ९ ॥
गजवाजिमयी भूमिर्ध्वजच्छत्रमयं नभः। दिक्चक्रं चामरमयं दैत्यसैन्ये प्रसर्पति ॥१०
ततो जालन्धरोदैत्यः प्रयाणायसमुत्सुकः। स्कन्धेचारोपयच्छक्तिंनानारत्नविभूषिताम्
आजगाम महाविष्णुं प्रष्टुं सागरवासिनम्।
अभिवाद्य जगादाथ हरिं जालन्धरस्त्विदम् ॥ १२ ॥
भोगार्थं किं प्रयच्छामि तुभ्यं भावुक! कथ्यताम्।
श्रुत्वा नारायणो वाक्यमब्धिजस्य मुदान्वितः ॥ १३ ॥
उवाच किं करोमीति प्रियं सिन्धुसुतेप्सितम्।
इत्युक्तः स प्रहृष्टोऽथ हरिं प्रोवाच सत्वरः ॥ १४ ॥
यामि योद्धुं रणेऽहं त्वंसुखी तिष्ठेहसागरे। लक्ष्म्यादत्ताक्षतस्तत्रकेशवेनाथ पूजितः
स निर्गत्य हरेःस्थानात्समुद्रं प्रष्टुमागतः। सोऽर्णवं प्रणिपत्याहतात यास्यामि दूरतः
नीलकण्ठं रणे जेतुमनुज्ञां दातुमर्हसि। पुत्रस्य वचनं श्रुत्वा यियासोः शङ्करं प्रति ॥
सिन्धुराजेन सोऽप्युक्तः पुत्र! तं तापसं त्यज।
भुङ्क्ष्व राज्यं मया दत्तं तापसं त्यज दूरतः ॥ १८ ॥
अत्यद्भुतः प्रतापस्ते त्वत्तुल्यो नास्ति भूमिपः।
स्वर्गादधिकतां नीतं त्वया वत्स! धरातलम् ॥ १९ ॥
तव राज्ये वसुमती वैकुण्ठ इव राजते। यो देवो दुर्जयोदैत्यैरानीतः सह सश्रिया ॥
ममान्तिके वत्स वस शङ्करं भिक्षुकं त्यज। एवमुक्तो ह्यर्णवेन गिरिजां प्रति रागवान्
पितृवाक्यमवज्ञाय चागतस्सुभटान्स्वकान्। सज्जीभूतं तु युद्धाय वृन्दा जालन्धरंजगौ

वृन्दोवाच।

नाथ युद्धं न कर्तव्यं राजेन्द्र कुत्सयोगिना। मनो निवर्त्यतां पश्य प्रवृत्तं पार्वतीं प्रति-
गौरीं त्वं वाञ्छसि कस्मात्पार्वती किं ममाधिका।
तपस्विनी निरालम्बा संसक्ता स्थाणवे सदा ॥ २४ ॥

सुतानुरागिणी वन्ध्या ततः कृत्रिमपुत्रिका ।

वृथा स्तुता नारदेन तां त्यजस्व भजस्व माम् ॥ २५ ॥

इति वृन्दावचः श्रुत्वा प्रत्युवाचार्णवात्मजः । अदृष्ट्वा पार्वतीरूपं मच्चेतो न निवर्तते

वृन्दे त्वया जनपदो राजधानी प्रपाल्यताम् ।

स्मर्तव्योऽहं सदा चण्डि यदि मां हन्ति शङ्करः ॥ २७ ॥

इति भर्तृवचः श्रुत्वा वृन्दा हाससमन्विता । जगाम शिबिकारूढा पीठं जालन्धरं तदा

अथ प्रतस्थे कैलासं सिन्धुसूनुर्महाबलः । महापद्मसहस्राणां षष्ट्यासैन्येन संवृतः ॥

अत्रान्तरे परित्यज्य कैलासं शङ्करो गतः । गणपुत्रप्रियायुक्तः कैलासं मानसोत्तरम्

जालान्धरस्ततः प्राप्तःकैलासं प्रथमेऽहनि । सेनाःसंस्थाप्य कैलासआलोकनकुतूहली ॥

दिव्यकेसरमन्दाररजः पुञ्जपरिश्रिताः । शीताम्बुशीकरासारैः प्रभुग्ना वान्ति वायवः ॥

यत्र सिद्धाङ्गनापीनस्तनोत्तुङ्गतरङ्गिणः । मन्दारमकरन्दाढ्याःसुन्दरा वान्ति वायवः ॥

यत्र शोकरुचिस्निग्धपादन्यासं च योषिताम् ।

विलोक्य दानवेन्द्रोऽभून्मनोरथसमाकुलः ॥ ३४ ॥

प्राप्नुवन्ति सुराः प्रीतिंस्वबिम्बालोकहर्षिताः । यत्र किन्नरकान्तानां सुरतव्यञ्जितप्रभाः

विभान्ति सर्वतस्तत्र मन्दाराशोकपल्लवाः । यत्र शम्भुगणाक्रान्ता नानावेलाकुलद्रुमाः

भान्ति मन्मथभूपाल यशसा सुधूता इव । यत्र चन्दनकस्तूरी गन्धोन्मत्तालिसञ्चयाः

विभान्ति दग्धकन्दर्पनिर्वाणाङ्गारसन्निभाः ॥ ३७ ॥

यत्राङ्गनानां सकलं विलोक्य सौरभ्यमत्युत्तमकान्तिमित्रम् ।

मन्ये परिष्वक्तमनोविनोदा कस्तूरिकागाहतिकालिमानम् ॥ ३८ ॥

क्वचित्प्रवरगैरिकासमसमुल्लसत्पङ्कजं लवङ्गदलसन्निभासनचलच्चकोरं क्वचित् ।

क्वचिद्गिरिसरित्तटीतरणिवत्स्फुरत्कुण्डलं चलन्निचुलमञ्जरीविनयनप्रभृङ्गं क्वचित् ॥

क्वचिद्दलितकोकिलाकुलितनूतनचूताङ्कुरं कुरङ्गकुलसेवितं प्रवलशालिमूलं क्वचित् ।

क्वचित्प्रवरसुन्दरैः सुरवधूपदैः पावनं वनं नयति विक्रियामिह मनो मुनीनामपि ॥४०

एवं गुणसमायुक्तं विलोक्य हरमन्दिरम् । विचित्रं चापि कैलासं सर्वरत्नसमाश्रयम्

अत्यन्तविस्मितो दैत्यः प्रोवाच भृगुनन्दनम् ।

कस्मात्त्वं तापसं तात ! प्रवदन्ति भवादृशाः ॥४२॥

तादृशी यस्य सा भार्या गृहमीदृङ् मनोहरम् । तत्रादृष्ट्वाऽवदच्छम्भुं हरःकुत्र गतःकवे

कथं मम भयाच्चेति पृष्टः प्रोवाच भार्गवः । देव शम्भुर्महाशैलमगम्यं मानसोत्तरम् ॥

ययौ तत्र महादेवो गन्तुं चान्यैर्नशक्यते । इति काव्यवचः श्रुत्वा प्राह दैत्यो महाबलः

अहं यास्यामि देवेशं त्वं पुरा गच्छ भार्गव ! ।

इत्युक्त्वा प्रययौ तत्र यत्रास्ते शङ्करः स्वयम् ॥ ४६ ॥

अपश्यत्तं गिरिवरं सिन्धुजो मानसोत्तरम् । तस्य षष्टिसहस्राणि योजनानां समुच्छ्रयः

स शैलो मानसो राजन्दैत्यसैन्यैः समावृतः । बहवो दैत्यराजानः शैलमारुरुहुर्द्रुतम् ॥

छत्रान्धकारं पर्यासीद्वाद्यनादेन वेपथुः । सैन्यकोलाहलस्तेषां पूरयामास रोदसी ॥४९

अथैवमागतं दृष्ट्वा दैत्यसैन्यं महत्तदा । अत्युच्चेसगिरेःशृङ्गेस्थाप्यगौरींसखीवृताम्

भगवांश्चगणैः सर्वैः सन्नद्धैर्युद्धदुर्मदैः । त्रिंशन्महाब्जसाहस्रैः प्रमथानां वृतः शिवः

उवाच नन्दिनं शम्भुर्गणानामधिपं त्वया । प्रहर्तव्यो महादैत्यो वीरो जालन्धरो रणे

महाकालादिभिः शूरैर्याहि त्वं परिवारितः ।

तावदाजौ त्वया तस्माद्योद्धव्यमतिपौरुषात् ॥ ५३ ॥

यावद्युद्धेनारिजयो मम वीर भविष्यति । इति शम्भोर्वचः श्रुत्वास च सारथिमब्रवीत्

काकतुण्डरथं मेऽद्य समानय महामते । नन्दिनो वचनं श्रुत्वा सोऽपि स्यन्दनमाहरत्

द्वात्रिंशदश्वसंयुक्तं चक्रषोडशसंयुतम् । षष्टिध्वजसमोपेतं द्वात्रिंशद्योजनायुतम् ॥५६॥

सर्वशस्त्रैश्च सम्पूर्णं प्राप्तं साङ्ग्रामिकं रथम् ।

नन्दिनश्चक्ररक्षार्थं पुत्रौ स्कन्दविनायकौ ॥ ५७ ॥

समादिष्टौ शङ्करेण सन्नद्धौ तौ स्ववाहनौ ।

गणैः परिवृतो नन्दी वाग्भिः सम्पूज्य चेश्वरम् ॥ ५८ ॥

नन्दी रथं समारुह्य निर्ययौ दानवान्प्रति । विराजते तस्य मूर्ध्नि छत्रं द्वादशयोजनम्

यावत्स निर्ययौ नन्दी तावत्ते दानवाः पुरः । शैलोपरिसमारूढा दानवा घोरदर्शनाः ॥

गणानामायुधैस्तीक्ष्णैर्निहताः पतिताभुवि । हन्यमानागणैर्दैत्यास्तत्यजुर्दूरतोगिरिम्
ततो भूमिगतांस्तस्मादवरुह्य शिलोच्चयात् ।
जघ्नुर्दैत्याञ्छितैः शस्त्रैर्गणा राजन्महाबलान् ॥ ६२ ॥
अमरैराचितं दृष्ट्वा रुरुधुर्दैत्यसैनिकाः । ततः समभवद्युद्धं गणानां दानवैः सह ॥६३
शरवर्षमथात्युग्रं दानवानां दिवौकसाम् । ततः समस्तान्मातङ्गाञ्जघ्नुः शिखिमुखारणे
रथान्हयान्पदातींश्च काकतुण्डा महाबलाः । हतानां दैत्यसङ्घानां सङ्गरे भृशमाग्विनाम्
शिरोभिर्गगनं व्याप्तं प्रहसद्भिर्भयावहैः । मुक्तकेशारुणमुखैर्भीमदंष्ट्राविलोचनैः ॥६६॥
सिंहैः कवन्धजङ्घोरुकटिपृष्ठनिकृन्तनैः । चिता सर्वत्र वसुधा कवन्धैरुधिरारुणैः ॥६७
तते विरावः सुमहान् बभूव दैत्येश्वराणां ध्वजिनीषु धावताम् ।
शम्भोर्गणैः पातितसैनिकानां यथार्णवानां नदतां युगक्षये ॥ ६८ ॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरेखण्डे नारदयुधिष्ठिर-
संवादे जालान्धरोपाख्याने दैत्यसैन्यपराजयो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

शुम्भादीनां नन्द्यादिभिःसहयुद्धम् ।

नारद उवाच ।

दैत्यसैन्यं हतं दृष्ट्वागणैर्नन्दिपुरोगमैः । क्रुद्धाः शुम्भादयो दैत्याःसमाजग्मुर्गणान्प्रति
ततः शुम्भो महादैत्यो नन्दिनं प्रत्ययुध्यत ।
महाकालं निशुम्भोऽथ कालो लोकेश्वरं रणे ॥ २ ॥
पुष्पदन्तं शैलरोमा माल्यवन्तं महाबलः । कोलाहलो रणे राजन्प्राप्तो मायाबलेन च ॥
चण्डं भयानको नाम राहुः स्कन्दमधावत । कूष्माण्डं सर्परोमा च घर्घरो मदनं तथा
शुभ्रं केतुमुखो हन्तुं ययौ जम्भो विनायकम् । हासंपातालकेतुश्च भृङ्गीशं रोमकण्टकः

युयुधुः कोटिशो रुद्रगणा दैत्याः परस्परम् ।
पश्यतोरुभयोस्तत्र स्वामिनोरिति ते युधि ॥ ६ ॥

दृढप्रहारिणो जघ्नुर्गणादैत्याः शरैरथ । नन्दी मुमोच तान्बाणान्महासारो यथा नगे
ततः सम्पूरयामास मुखं शुम्भस्य पत्रिभिः । यथा पर्णचयैर्वातो मन्दरस्येव कन्दरम् ॥

शुम्भोऽथ कार्मुकं त्यक्त्वा रथात्तं प्रत्यधावत ।
उत्पाट्य च गिरिं तेन जघान हृदि नन्दिनः ॥ ९ ॥

नन्दिनो हृदयं भित्त्वा चूर्णयित्वा रथं रणे । पपात भूमौ सगिरिर्वज्रं प्राप्य गिरिर्यथा

मूर्च्छां प्राप्य क्षणात्संज्ञां वेगवान्स पलायितः ।
महाकालो निशुम्भेन मुद्गरेण हतो हृदि ॥ ११ ॥

आगत्य दैत्यं गदया जघान मुकुटोपरि । तत्प्रहारमचिन्त्याथ निशुम्भोऽपि महाबलः
तं गृहीत्वा चरणयोर्महाकालं महाबलः । भ्रामयित्वा करतलाच्चिक्षेप च ननाद च ॥
स तद्वक्त्रानिलं पीत्वा ननाद रुधिरारुणः । पुष्पदन्तः शैलरोम्णा चाहतो मुष्टिनामुखे
गदया शैलरोमाणं हत्वा भूमौ न्यपातयत् । तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ गिरिकेतुर्महाबलः
पुष्पदन्तं महाभीमं मुद्गरेण व्यपोथयत् । पुष्पदन्तोऽथखड्गेन गिरिकेतोः शिरोऽच्छिनत्

गृहीत्वा चर्मखड्गं च गिरिकेतोरधावत ।
शिरस्तं प्राह किं यासि मां त्यक्त्वा समरार्थिनम् ॥ १७ ॥
शिरोहीने च कायेऽस्मिन्कि तु धावन्न लज्जसे ।
इत्युक्ते शिरसा तेन कबन्धेन तु पादयोः ॥ १८ ॥
विधृतः पुष्पदन्तश्च कुक्षौ तीक्ष्णासिनाऽच्छिनत् ।
निश्चक्रामासुरः कुक्षेः शतशीर्षो महाबलः ॥ १९ ॥

द्विशताक्षिसमायुक्तःशतद्वयभुजाकुलः । भ्रमत्तस्थ शिरोराजन्कबन्धोपान्तमागमत् ॥

तच्छिरः प्राप्तमालोक्य पुष्पदन्तोऽसिनाऽच्छिनत् ।
ततो भूकम्पनो नाम ज्वरो दैत्यो भयावहः ॥ २१ ॥

पुष्पदन्तस्तदा तत्र द्वाभ्यां राजन्विमर्दितः । ज्वरेण तेन च क्लिष्टो दुःसहेनातिवेगिना

त्यक्त्वा शिवगणः सङ्ख्यं कम्पमानो गिरिं ययौ ।
कोलाहलो महाधन्वी माल्यवन्तं शरैस्त्रिभिः ॥ २३ ॥
विव्याध स्कन्धयोर्भाले माल्यवांश्च ततोऽसुरम् ।
बाणाहतो माल्यवता शस्त्रैर्नानाविधैः शितैः ॥ २४ ॥
कोलाहलः प्रहृतवान्दर्शयन्नात्मलाघवम् ।
सोऽपि हेतिव्यथां त्यक्त्वा माल्यवांश्च गणाग्रणीः ॥ २५ ॥
गिरिं गृहीत्वा तेनाजौ कोलाहलमथाहनत् ।
निश्चक्राम ज्वरस्तस्माज्ज्वलनो नाम भीषणः ॥ २६ ॥
त्रिशीर्षो नवहस्तश्च नवपादोऽतिपिङ्गलः । स ज्वरो मोहयामासमाल्यवन्तं स्वतेजसा
माल्यवान्समरं त्यक्त्वा पराक्रान्तो गिरिं ययौ । चण्डिर्भयानकेनाजौ पाशेन हृदये हतः
हयो विनिर्गतस्तस्मात्क्षिप्तः सोऽपि च सागरे ।
कार्त्तिकेयो रणे राहुं शितैर्बाणैः समाहनत् ॥ २९ ॥
आच्छाद्य शरजालैश्च शीघ्रं शक्तिं मुमोच ह ।
आपतन्तीं महाशक्तिं ज्वलन्तीमिव तेजसा ॥ ३० ॥
दृष्ट्वा राहुः खमुत्पत्य कराभ्यां जगृहे द्रुतम् ।
स तां शक्तिं गृहीत्वा तु विनद्योच्चैः पुनः पुनः ॥ ३१ ॥
स्वर्भानुः शिरसोनोऽपि तस्य शक्त्या जघान तम् ।
वक्षस्यभिहते शक्त्या तद्देहान्निर्गता सरित् ॥ ३२ ॥
तया सम्प्लावितः पुत्रो महादेवस्य संयुगे ।
कथञ्चित्सा नदी रुद्धा समं पूरो गिरिं ययौ ॥ ३३ ॥
श्रुत्वाऽर्णवजो ज्वरतः कटुककदम्बस्य कर्कशं विरुतम् ।
सुस्वरवचनविदग्धमपि कोकिलापतिं न सस्मार ॥ ३४ ॥
शरैः किरन्तं दहनमसिना बर्बरोऽवधीत् ।
कूष्माण्डो निहतो मूर्ध्नि सर्परोमणाऽथं मुष्टिना ॥ ३५ ॥

पातालकेतुनाहासोमुद्गरेण समाहतः । तस्य देहाद्विनिष्क्रम्य हस्ती मुद्गरमाभुनक् ॥
शुण्डायां मुष्टिघातेन हतः पातालकेतुना । आयुधैर्जर्जरं चक्रे भृङ्गीशं रोमकण्टकः ॥
भृङ्गीशोऽपि रणाद्भीतस्त्वरन्नेव गिरिं ययौ । सहसाधूम्रवर्णश्च शुभ्रः केतुमुखेऽपतत्
गणं गिलितवान्दैत्यो महाकायो महाननः । हाहाकारो महानासीद् गिलिते केतुनारणे

जृम्भस्य निशितैर्बाणैश्छिन्नाङ्गोऽथ विनायकः ।
शुण्डादण्डं परशुना तस्य चिच्छेद दन्तिनः ॥ ४० ॥

जृम्भासुरो जघानाथ शक्त्या लम्बोदरोदरम् । मूषकोऽपि शरैर्भिन्नः प्रविवेश गुहामुखम्
विनायकः प्रहारार्त्तो विललापाकुलो रणे । हामातस्तातहाभ्रातर्हामूषक ममप्रिय ॥४२
गणेशक्रन्दितं श्रुत्वा भगवत्या तयातदा । समेत्य कूटादन्यस्मात्पार्वत्योक्तः शिवस्तदा

हेरम्बो वध्यते दैत्यैः स्कन्दोऽपि विनिपातितः ।
शिव ! किं क्रीडसे शैले रक्षपुत्रौ गणानपि ॥ ४४ ॥
सदा शूलादिशस्त्राणां धृतानामद्य वै क्षणः ।
अथ गौर्यावचः श्रुत्वा वीभद्रं शिवोऽब्रवीत् ॥ ४५ ॥

वृषः सज्जीयतां शीघ्रमित्युक्तस्स तदाऽकरोत् । बबन्धमुकटं तस्यश्रृङ्गयोर्भास्करप्रभम्
कण्ठे घण्टाशतं बद्ध्वा कर्णयोर्दर्पणौ धृतौ । स्कन्धे च किङ्किणीजालं चरणे नूपुरंमहत्
पुच्छे चामरसाहस्रं तस्य पाशाष्टकं मुखे । कल्याणी च तदा देवी शर्वपार्श्वे व्यवस्थिता
पाशाष्टकेन संयुक्ता तत्र खड्गधराऽम्बिका । न्यस्तानि सर्वशस्त्राणि सवृषःसज्जितोबभौ

पार्वत्या भूषितः सोऽथ निजया घण्टमालया ।
कृतं च तिलकं देव्या प्रोक्तः सत्कृतिपूर्वकम् ॥ ५० ॥

हरस्त्वया न मोक्तव्यो वृषेन्द्ररणसङ्कटे । आगन्तव्यमरीञ्जित्वा शम्भुना सह सङ्गरे ॥
इति श्रुत्वा वचो देव्या हरो वृषमथारुहत् । धृत्वाऽऽयुधसहस्रं तु निजालङ्कारभूषितः
रणं गच्छामि तां प्राह पार्वतीं प्रतिसादरम् । त्वं तिष्ठसिस्वरूपेणएकाकिन्यपिसस्पृहा
भामिनी दुरभिप्राया दानवा हि समागताः । तस्मात्त्वयात्मनैवात्मा रक्षणीयोवरानने
इत्युक्त्वा वृषभारूढो ययौ रुद्रो रणाङ्गणम् । त्रिंशन्महाब्जसाहस्रैः प्रमथानां वृतः शिवः

वीरभद्रो रथेनाशु सिंहयुक्तेन सत्वरः । वामपार्श्वं महेशस्य शूरो रक्षति पार्थिव ! ॥
मणिभद्रोऽश्वयुक्तेन रथेन परवीरहा । दक्षिणं धूर्जटेःपार्श्वं संरक्षति धनुर्द्धरः ॥ ५७ ॥
तुङ्गादुत्तीर्य शैलेन्द्राद्रणं प्राप्तो गणैः सह । दृष्ट्वा जगर्जुस्ते दैत्या महेशानं वृषस्थितम्
ततो महान्निनादोऽभूद्दैत्यप्रमथसेनयोः । तयोरभून्मिथो राजन्सप्रमर्दोऽथ दारुणः ॥

ततो नन्दी महाकालः कालस्कदौ महाबलः ।
माल्यवान्पुष्पदन्तश्च वृषली स्वर्णदन्तिकः ॥ ६० ॥
चण्डीशो मदनश्चण्डः कूष्माण्डो गुप्तलोमकः ।
ये ये पूर्वं रणे भग्नाः प्राप्तास्ते रणसङ्कटम् ॥ ६१ ॥

शिवस्य पुरतो दैत्या युयुधुस्ते महाबलाः । गणदानवयोद्धानां सङ्ग्रामोऽभूद्भयावहः
ततो गणानां विद्राव्य सैन्यं ते च महाबलाः । रणे संवेष्टयामासुः शरौघैः सर्वतःशिवम्
शूलैः कुन्तैर्गदाभिश्च मुद्गरैः परिघैरपि । इन्द्रियाणि यथात्मानं विषयैः पञ्च पञ्चभिः

जघानाथ रणे दैत्याञ्छम्भुर्बाणैः सुदारुणैः ।
यथाऽश्वमेधः पापानि हन्ति स्नानेन तत्क्षणात् ॥ ६५ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे युधिष्ठिर-नारदसंवादे जालन्धरोपाख्याने श्रीमहादेवरणसमागमनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

शिवजालन्धरयोर्घोरसङ्ग्रामवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

ततो जालन्धरः श्रुत्वा दैत्यकोलाहलं रणे । आजगाम रथारूढो यत्र देवः सदाशिवः
सारथिं खड्गरोमाणं कोपात्सत्वरमब्रवीत् । सम्प्रेषय रथं शीघ्रं सहस्रहययोजितम् ॥
हन्मि तं तापसं शौर्याज्जटाभस्मास्थिभूषितम् । वृषारूढस्य का शक्तिःपङ्गोर्युद्धेमयासह

इत्युक्त्वा खड्गरोमाणमाभाष्य च तथोद्धतः । गृहीत्वा कार्मुकं घोरं रथेनाधावत द्रुतम्
तं रुरोध तदाऽऽयान्तं वीरभद्रः शितैः शरैः । निरुच्छ्वासीकृतेनापि स कायेन शरैर्वृतः
देवैर्यद्यपि तुल्योऽभूद्भूतेशस्य परिग्रहः । तथापि किं कपालानि तुलांयान्ति कलानिधेः
विव्याध मणिभद्रोऽपि शरैःसागरनन्दनम् । पाशेन मणिभद्रं तु हत्वोवाचेश्वरं वचः

एहि योद्धुं महादेव ! शस्त्राभ्यासोऽस्ति ते यदि ।
त्वं मां प्रहर न त्वाऽहमादौ हन्मि जटाधरम् ॥ ८ ॥

इतिब्रुवन्तं तं गर्वाद्वीरभद्रोऽथ सायकैः । पूरयामास सङ्क्रुद्धो यथा पद्मं रविःकरैः ॥
मणिभद्रोऽथ गदया सैन्यं तस्य समाहनत् । रथोपरि रथं वीर ! तुरगं तुरगोपरि ॥
गजोपरि गजंहत्वा पातयामास भूतले । रक्तपङ्कारुणाभूमिःसञ्जाता दुर्गमां क्षणात् ॥
शैलाश्च गणमुख्याश्च दानवाञ्जघ्नुराहवे । पतन्ति दानवाःशूरा गतप्राणा महीतले ॥
रुण्डदोर्दण्डमुण्डैश्च करिपृष्ठकरोरुभिः । पतन्ति दानवाःशूराःपूरिता वसुधा नृप ! ॥
एवंविधं रणेदृष्ट्वा हरमत्यन्तदुर्नयम् । भुवने च तथान्यानि दृष्टवाँल्लक्षणानि सः ॥
तेजोऽन्यदेवनक्षत्रशशाङ्कसकलादिषु । उद्घाटितजगत्कोशमन्यदेव रवेर्महः ॥ १५ ॥

भग्नः पुनश्चिन्तितवांस्ततो जालन्धरो नृप ! ।
न दृष्टा सा मया गौरी यां मामाहाति नारदः ॥ १६ ॥
साम्प्रतं शाश्वते स्थाने कथं द्रक्ष्याम्युमां स्थिताम् ।
तां हि द्रष्टुं व्रजाम्यादौ पश्चाद्योत्स्यामि शम्भुना ॥ १७ ॥

चिन्तयित्वेति मनसा दैत्यं प्राहार्णवात्मजः । शुभं चण्डजयेवीर ममतुल्यपराक्रम ॥
धृत्वा मत्सदृशं रूपं सङ्ग्रामं कर्तुमर्हसि । तव युद्धस्यभारोऽयं शिबिरस्य बलस्य च

अहं यास्यामि तां द्रष्टुं गौरीं मच्चित्तहारिणीम् ।
इत्युक्त्वाऽथ ददौ तस्मै स्वाङ्गादुत्तार्य मण्डनम् ॥ २० ॥

वर्मशस्त्रादिकं दत्त्वा रथसारथिसंयुतम् । दुर्वारणेन सहितः सैन्यं मुक्त्वोदधेःसुतः ॥
अलक्षितस्ततो गत्वा गुहांगुप्तां तु पार्थिव ! । मानसोत्तरशैलस्य हररूपं दधार सः ॥
धृत्वा दुर्वारणोरूपं नन्दिनःसदृशं तथा । अथारुरुहतुःशैलं छद्मशङ्करनन्दिनौ ॥ २३ ॥

यत्रास्ति शिखरे गौरी सखीभिः सहिता नृप ! ।
तमायान्तं शरैर्भिन्नं स्कन्धमालम्ब्य नन्दिनः ॥ २४ ॥
रक्ताक्तमम्बरं दृष्ट्वा भवानी विस्मिताऽभवत् ।
सख्यस्तस्य जयाद्यास्ता जग्मुस्तं सम्भ्रमान्विताः २५ ॥
शङ्करस्यान्तिकं गत्वा पप्रच्छुस्तं सुदुःखिताः । किंजातं तव देवेश केन त्वं सङ्गरे जितः
स शल्यस्त्वं कथं नाथ संसारीव प्ररोदिषि ।
इत्युक्तः प्रददौ ताभ्यो भूषणानि पृथक्पृथक् ॥ २७ ॥
उत्तार्य शनकैरङ्गाद्वासुकिप्रभृतीनि च । गणेशस्कन्दशिरसीच्छिन्नेकुक्षौ विलोक्य च ॥
हास्कन्द हागणेशेति हारुद्रेत्यम्बिकाऽरुदत् ।
तस्याः सख्यस्ततः सर्वा रुरुदुः शोककर्शिताः ॥ २९ ॥
अत्राब्रवीज्जयां नन्दी त्वमेनं परिपालय । मणिभद्रो वीरभद्रः पुष्पदन्तश्च वीर्यवान् ॥
दम्भनो धूमतिमिरः कूष्माण्डाद्या रणे हताः ।
चण्डी भृगी(ङ्गी) किरीटिश्च महाकालश्च शृङ्खली ॥३१॥
चण्डीशो गुप्तनेत्रश्च कालाद्याश्च हतारणे । विनायकस्य स्कन्दस्य शिरसीभ्रमता मया
दृष्टे महारणे देवि इत्युक्त्वाथपुरोऽक्षिपत् । तच्छ्रुत्वानन्दिनेवाक्यं शिरसी गृह्य पुत्रयोः
पार्वती विललापोच्चैः पुत्र पुत्रेति जल्पती । तारकारे ! कथं युद्धे हतस्त्वं सिन्धुसूनुना
त्वं हि त्रिवासरो देवैः सैनापत्येऽभिषेचितः ।
तदा त्वया कथं वीर ! तारकाख्यो निपातितः ॥ ३५ ॥
नीलकण्ठेन किं त्यक्तो यतस्त्वं पतितो भुवि ।
स्नुषामुखं न दृष्टं च मया पुत्रावभाग्यया ॥ ३६ ॥
न भोगा वत्स ! ते भुक्ताः संसारस्यापि येऽभवन् ।
तात ! हेरम्ब ! विघ्नेश ! लम्बोदर ! गजानन ! ॥ ३७ ॥
रणाङ्गणे केन पुत्र सिद्धैः पूज्योनिपातितः । वाहनोऽसौ कुतो वत्समूषकःकेनहिंसितः
एवं विलपती गौरी शिवंप्राह सुदुःखितम् । साक्षाद्रुद्रोऽसि देवेशहरस्त्वं मा भयं कुरु

पुत्रशोकगतो देव हतो जालन्धरेण वै। शरजर्जरदेहस्य किं करोमि प्रियं तव ॥ ४० ॥
ततः श्रुत्वा वचो देव्या निःश्वस्योवाच शङ्करः।
दीर्घं विनिहतौ पुत्रौ वृथा शोचसि किं प्रिये ! ॥ ४१ ॥
अधुना तेऽङ्गसङ्गेन देवि ! मां त्रातुमर्हसि। शङ्करस्य वचःश्रुत्वा समयोचितमातुरम्
प्रत्युवाचाम्बिका देवं वभाषे नोचितं वचः ॥ ४२ ॥
महाविषादे पतिते भये च कृते समाधौ वमने महाज्वरे।
श्राद्धे प्रयाणे गुरुवृद्धसन्निधौ रतिं बुधाः शङ्कर ! वर्जयन्ति ॥ ४३ ॥
कथं मां दुःखदुःखार्तां पुत्रशोकेन पीडिताम्।
म्लानां वाष्पपरिम्लानां सम्प्रार्थयसि चातुराम् ॥ ४४ ॥
भवान्या इति वाक्यानि श्रुत्वा मायामहेश्वरः।
उवाच स्वार्थमुद्दिश्य गौर्या रूपेण मोहितः ॥ ४५ ॥
पुरुषस्यार्तियुक्तस्य न यच्छन्ति रतिंस्त्रियः। तथैव रौरवेघोरे पतिष्यन्ति न संशयः ॥
गणशून्यः पुत्रशून्यो धीशून्योऽहं वरानने !।
साम्प्रतं गृहशून्योऽहं सर्वशून्योऽस्मि भामिनि ! ॥ ४७ ॥
सजीवितविहीनोऽहं त्वां प्रष्टुमिह चागतः।
स्वगृहं तु प्रविश्याशु त्यजामि प्रकृतिं स्वकाम् ॥ ४८ ॥
उत्तिष्ठ नन्दिन्संयावस्तीर्थे भव पुरःसरः।
त्वं याहि स्वेच्छया कान्ते ! प्रकृतिं स्वां परित्यज ॥ ४९ ॥
इति मायामहेशस्य वचः श्रुत्वाऽम्बिका ततः। दीर्घं दध्यौ महाश्वासं शोकेन चजडीकृता
तस्यैवं परमेक्षोभे किञ्चिन्नोवाच सा क्षणम्। यया संमोहितं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्
सैव संमोहिता तेन न जाने दुःखमात्मनः ॥ ५१ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे नारद-
युधिष्ठिरसंवादे जालन्धरोपाख्याने मायामाहेशस्य गौरीसमीपगमनं
नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

विष्णुना जालन्धरकृतपार्वतीच्छलं परिज्ञाय वृन्दाहरणविषयकोद्योगकरणम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

इति मायामहेशेन मोहिता गिरिजा यदा । अतः किं समभूद्ब्रह्मंस्तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥

नारद उवाच ।

क्षीराब्धौ तु शयानस्य चुक्षोभ हृदयं हरेः । अकस्मादेव राजेन्द्र ! नयनेऽश्रुपरिप्लुते

दृष्ट्वा यन्महदुत्पातलक्षणं भगवांस्ततः । उत्थाय शेषपर्यङ्कान्मां च वायुं विलोक्य च

किं कार्यमिति गोविन्दस्तन्नागारिमथास्मरत् ।

स चाग्रे स्मृतिमात्रेण तस्थौ बद्धाञ्जलिः प्रभोः ॥ ४ ॥

विनतानंदनं दृष्ट्वा पुरतःप्राह केशवः । सुपर्ण ! तत्र गच्छत्वं यत्र युद्धं प्रवर्तते ॥५॥

हतो जालन्धरो वीरो हरो वा तेन मोहितः ।

दृष्ट्वा तं शीघ्रमागत्य कथयस्व ममाखिलम् ॥ ६ ॥

जालन्धरेशयोर्युद्धं द्रष्टुं शक्तस्त्वमेव हि ।

कोऽन्यो महाहवे यस्मिञ्ज्ञात्वाऽऽयाति शरीरवान् ॥ ७ ॥

कदाचिद्दुर्गमं तत्र युद्धं शस्त्रास्त्रवृष्टिभिः । अथ त्वं बाणसञ्चारं गत्वा पिहितविग्रहः

सन्दृश्य पार्वतीवृत्तिं शीघ्रमायातुमर्हसि ।

दैत्यमायानिरासार्थं विचिन्त्य भगवांस्त्वरन् ॥ ९ ॥

गुटिकां सर्वसिद्धां च गरुडाय ददौ हरिः ।

अनया न भ्रमो वीर ! तथेत्युक्त्वा मुखेऽक्षिपत् ॥ १० ॥

एवं सम्प्रेरितःपत्री हरिंकृत्वा प्रदक्षिणम् । निश्चक्राम खमाविश्यजगामाद्भुतवेगवान्

तत्र गत्वा रणंघोरंदैत्यसङ्घैःसुदुःसहम् । दृष्टवानखिलेनासौ न किञ्चिज्ज्ञातवान्किल

तस्मादुप्यत्य वेगेन गतोऽसौ मानसोत्तरम् । शैलं तुङ्गतरं दुर्गमगम्यं मरुतामपि ॥

विलोकयन्न ददृशे गौरीस्थानं पतङ्गराट् । तत्रागत्य भुजङ्गारिर्ध्वनिं संश्रुतवान्किल
गत्वा समीपे ददृशे मायापशुपतिं ततः । गरुडो गुटिकांक्षिप्य मुखेन भ्रममाप सः ॥
ज्ञात्वा बुद्ध्वाऽथ दैत्योऽयमिति नायं वृषध्वजः ।
हा कष्टमिति चोक्त्वा च रुदन्नागत्य चार्णवम् ॥ १६ ॥
कथयामास वृत्तान्तं पुरतः कैटभद्विषः । देव जालन्धरेणायं हरो देवो विडम्बितः॥१७
उमाःप्रतारिता तेन पापेन च्छद्मरूपिणा । सुरस्त्वं यदि गोविन्द समरंप्रति याह्यतः ॥
मायायुद्धं तु देवेश कुरु जालन्धरंप्रति । तस्य राज्ञी मयादृष्टा पीठे जालन्धरे शुभे ॥
प्रासादभूम्यां क्रीडन्ती वाद्यगीतादि वर्त्तनैः ।
सा सुन्दरतरा गौर्या रम्भोर्वश्योः शतादपि ॥ २० ॥
नेदानीं मानुषेलोके न पातालेषु तत्समा । भार्या तेन समावेश्या नारीणां का कथा हरे
यस्तां स्पृशति देहेन सकृतार्थःपुमान्भवेत् । तव श्यालकपत्नी च हर त्वं तां रमप्रियाम्
शङ्करस्योपकारं च कुरु चैवात्मनःसुखम् ॥ २२ ॥

नारद उवाच ।

श्रुत्वा तार्क्ष्यस्य वचनं तं निर्भर्त्स्य रमाप्रियः ।
सम्यग्व्यवस्य चोपायं विससर्ज द्रुतं द्विजम् ॥ २३ ॥
श्रियं प्रतार्य सञ्छाद्य मञ्चके पीतवाससा । निर्गतोऽन्येनरूपेण योगमायाबलेन च ॥
वृन्दारिकानुरागेण मोहितो मधुसूदनः । दृष्ट्वाहरिं तु गच्छन्तं प्रतिच्छन्नं युधिष्ठिर
शेषोऽप्यन्यतमेनासौ रूपेणागत्य केशवम् । जगाद भक्त्या त्वं तिष्ठ मामनुज्ञातुमर्हसि
किं करोमि क्व गच्छामि ब्रूहि कार्यं जनार्दन ! ।
सदा तवमुखं दृष्ट्वा भोक्ष्यामीति भवेत्सुखम् ॥ २७ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

जालन्धरस्त्रियं रम्यां हरिष्ये हरकारणात् ।
पार्वत्याश्चोपकाराय सञ्छाद्य स्वात्मनस्तनुम् ॥ २८ ॥
एहियामोवयं बन्ध्योकान्तरं दुरतिक्रमम् । वृन्दाकर्षणसिद्ध्यर्थमित्युक्त्वा तौ वनंगतौ

ततो विष्णुश्च शेषश्च जटावल्कलधारिणौ । आश्रमं चक्रतुःपुण्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥
तयोःशिष्याःप्रशिष्याश्च वभूवुःकामरूपिणः । सिंहव्याघ्रवराहाश्च ऋक्षवानरमर्कटाः ॥
अथ तस्मिन्वने वृन्दां मन्त्रेणाकर्षयद्धरिः । तस्या हृदयसन्तापं चकार मधुसूदनः ॥३२
एतस्मिन्नन्तरे राज्ञी तापमुग्रमुपागता । चामराश्चालयामास दिव्यस्त्रीकरचालिताम् ॥

प्रियस्यागमनं तन्वी चिन्तयन्ती मुहुर्मुहुः ।
चन्दनागुरुलिप्ताङ्गी मूर्च्छां याति हि सत्वरम् ॥ ३४ ॥

तुर्ययामे विभावर्याश्चतुर्दश्यां नृपाङ्गना । स्वप्नं ददर्श भयदं वैधव्यभयसूचकम् ॥३५॥
जालन्धरशिरःशुष्कं मर्दितं पाण्डुभस्मना । गृध्रेणकृष्टनयनं छिन्नकर्णाग्रनासिकम् ॥
मुक्तकेशी करालास्या कृष्णवर्णारुणाम्बरा । चखाद कालीरक्तास्या हस्तेविधृतखर्परा
ईदृशं ददृशेस्वप्नं तथात्मानं विडम्बितम् । दैत्यक्षयगुणोपेतं सावददर्श नृपाङ्गना ॥३८

ततः प्रवुद्धाऽसुरराजपत्नी गीतेन वाद्येन च मागधानाम् ।
गेयप्रवन्धैः स्तवनैर्वचोभिर्वंशस्तवैःकिंपुरुषप्रपाठितैः ॥ ३९ ॥
ततस्तान्सकलाञ्छान्तान्धनंदत्त्वा प्रसादजम् ।

निवार्य विप्रानाहूय स्वप्नंदृष्टंन्यवेदयत् । तं स्वप्नंब्राह्मणाःश्रुत्वातामूचुःशास्त्रपारगाः

द्विजा ऊचुः ।

देवि दुःस्वप्नमत्युग्रमचिन्त्यं भयदायकम् ।
देहि दानं द्विजातिभ्यो ह्यचिन्त्यभयनाशकम् ॥ ४१ ॥
धेनूर्वासांसि रत्नानि गजांश्चाभरणानि च ।
ब्राह्मणाः परिसन्तुष्टाःसिषिचुस्तां नृपस्त्रियम् ॥ ४२ ॥

अभिषिक्ताऽपि सा वृन्दा ज्वरेण परितप्यते । विसृज्य विप्रप्रवरान्प्रासादमगमत्तदा
तत्र-स्थिताऽपि स्वपुरं ददृशे दीप्तमङ्गला । ततः स्वकर्मणा राजन्नाकृष्टा हरिणा तु सा
न शशाक गृहेस्थातुं ततो राज्ञी वनं ययौ । रथमश्वतरीयुक्तं स्मरदूतीसखीवहम् ॥

समारुह्य क्षणात्तन्वी प्राप्ता सौभाग्यकाननम् ।
नानावृक्षसमायुक्तं नानापक्षिगणान्वितम् ॥ ४६ ॥

पुष्पप्रश्रयणोपेतं स्वर्गनारी विभूषितम् ।
मन्दानिलप्रवेशोऽस्ति यत्र नान्यस्य कस्यचित् ॥ ४७ ॥

वनं वृन्दारिका दृष्ट्वा सस्मार पतिमात्मनः । कथं जालन्धरं वीरं द्रक्ष्यामि प्राप्तमग्रतः
सा तत्र न सुखं लेभे विवेशान्यतमं वनम् । सखी रथसमायुक्ता विष्णुमायाविमोहिता
ततो विलोकयामास विपिनं तरुसङ्कुलम् । उरुपाषाणसंरुद्धं कुरङ्गाक्षी भयावहम् ॥

सिंहव्याघ्रभयाकीर्णं शृगालव्यालसेवितम् ।
द्रुमैःस्पृशच्छिखाकाशैर्गुहासु ध्वान्तपूरितम् ॥ ५१ ॥
वनं विलोक्य सा भीमं चकिता चपलेक्षणा ।

स्मरदूतीं सखीं वृन्दा जगाद रथवाहिनीम् । रथं प्रेषय मे शीघ्रं स्मरदूति ! गृहंप्रति

स्मरदूतिरुवाच ।

नाहं जानामि दिग्भागं न यामि क्व रथं सखि ।
श्रान्ता अश्व्यः प्रवर्तन्ते मार्गश्चात्र न विद्यते ॥ ५३ ॥
प्रेरितो दैवकेनापि स्यन्दनो यातु यत्र च ।
अत्र कोऽपि च मांसादो भक्षयिष्यति नान्यथा ॥ ५४ ॥

इत्युक्त्वा सा द्रुततरा रथं शीघ्रमवाहयत् । स रथोवेगतःप्राप्तो यत्र सिद्धा मुदान्विताः
तत्र सिद्धाश्च दृश्यन्ते काननं च भयावहम् । न यत्र प्रबलोवायुर्न शब्दःपक्षिणामपि ॥
न च तेजःप्रकाशोऽस्ति न जलं प्रदिशोदिशः । तत्र प्राप्तरथस्यापि लक्षणोऽभूद्विपर्ययः

अश्वतर्यो न हेषन्ते न च शब्दश्च नेमिजः ।
न चलन्ति पताकास्ता घण्टिका न क्वणन्ति च ॥ ५८ ॥
न स्वनन्ति महाघण्टा ध्वजस्तम्भे निवेशिताः ।
विलोक्यैवंविधं प्राह तत्र वृन्दा सखींप्रति ॥ ५९ ॥

स्मरदूति क्व यास्यामो व्याघ्रसिंहभयं वनम् । न गृहे न सुखं राज्ये ममजातं वनेसखि

स्मरदूतिरुवाच ।

शृणुष्व देवि ! पश्य त्वं पुरःशैलोऽतिदारुणः ।

दृष्ट्वाऽग्रतो न गच्छन्ति तुरङ्ग्यो भयविह्वलाः ॥ ६१ ॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा सन्त्रस्ता सा नृपाङ्गना ।
दृष्ट्वा हारं स्वकण्ठस्थं स्यन्दनाच्छीघ्रमुत्थिता ॥ ६२ ॥
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो राक्षसो भीषणाकृतिः । त्रिपादःपञ्चहस्तश्च सप्तनेत्रोऽतिदारुणः
पिङ्गलो व्याघ्रकर्णश्च सिंहस्कन्धस्तथाननः । विहङ्गेशसमाःकेशा लम्बन्ते रुधिरारुणाः
तं दृष्ट्वा पद्मकोशाङ्गी सहसा सभयाऽभवत् ।
नेत्रे कराभ्यामाच्छाद्य चकम्पे कदलीव सा ॥ ६५ ॥
प्रतिहारी प्रतोदं तु त्यक्त्वा राज्ञीमभाषत ।
भीतां मां त्राहि देवि त्वमयं धावति भक्षितुम् ॥६६ ॥
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो राक्षसो रथसन्निधौ । रथमुत्क्षिप्य हस्तेनभ्रामयंश्चाश्विनीयुतम्
सा राज्ञी पतिता भूमौ मृगी व्याघ्रभयादिव ।
स्मरदूती तरोर्मूले च्छिन्नाऽशोकलता यथा ॥ ६८ ॥
ततस्ताश्चाश्विनीःसर्वा भक्षयामास राक्षसः । तेन राज्ञीधृता हस्ते सिंहेनैणवधूरिव ॥
तामुवाच ततो रक्षःप्राणैस्ते कारणं यदि । तवभर्ता हतः सङ्ख्ये हरेणेति श्रुतं मया ॥
मामासाद्याद्य भर्तारं चिरंजीवाकुतोभया ।
पिबाथ वारुणीं स्वाद्वीं महामांससमन्विताम् ॥
शृण्वन्तीति वचो राज्ञी गतसत्त्वेव चाभवत् ॥ ७१ ॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे नारदयुधिष्ठिर-संवादे जालन्धरोपाख्याने श्रीमन्माधवमायाकथनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोड़शोऽध्यायः

विष्णुना तापसवेषधारणम् ।

नारद उवाच ।

नारायणस्तदा देवो जटा वल्कलधार्यथ । द्वितीयोऽनुचरस्तस्य ह्यायमौ फलहस्तवान्
तौ दृष्ट्वा स्मरदूती सा विललाप मृगेक्षणा ।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्याः प्रोचतुस्तां च तावुभौ ॥२॥
भयं मागच्छकल्याणि त्वामावां त्रातुमागतौ । वनं घोरं प्रविष्टासि कथंदुष्टनिषेवितम्
एवमाश्वास्य तां तन्वीं राक्षसं प्राहमाधवः । मुञ्चेमामधमाचार मृद्वङ्गीं चारुहासिनीम्
रेरे मूर्ख दुराचार किं कर्तुं त्वं व्यवस्थितः । सर्वस्वं लोकनेत्राणामाहारं कर्तुमुद्यतः
भवपुण्यप्रभावेयं हंस्येतां मण्डनंभुवः । अद्यलोकं निरालोकं कन्दर्पं दर्पवर्जितम् ॥६॥
करिष्यत्यधुना त्वञ्च हत्वावृन्दारिकांवने । तस्मादिमांविमुञ्चाशु सुखप्रासाददेवताम्
इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं राक्षसः कुपितोऽब्रवीत् ।
समर्थस्त्वं यदि तदा मोचयाद्यैव मत्करात् ॥ ८ ॥
इत्युक्तमात्रे वचने माधवेन क्रुधेक्षितः । पपातभस्मसाद्भूतस्त्यक्त्वा वृन्दां सुदूरतः ॥
अथोवाच प्रमुग्धा सा मायया जगदीशितुः ।
कस्त्वं कारुण्यजलधिर्येनाहमिह रक्षिता ॥ १० ॥
शारीरं मानसं दुःखं सन्तापं तपसांनिधे । त्वया मधुरयावाचा हृतं राक्षसनाशनात् ॥
तवाश्रमे तपः सौम्य ! करिष्यामि तपोधन ! ॥ १२ ॥

तापस उवाच ।

भरद्वाजात्मजश्चाहं देवशर्मेति विश्रुतः । विहाय भोगानखिलान्वनं घोरमुपागतः ॥१३
अनेन बटुना सार्धं मम शिष्येण कामगाः । बहुशःसन्तिचान्येऽपिमच्छिष्याः कामरूपिणः
त्वं चेन्ममाश्रमे स्थित्वा चिकीर्षसितपःशुभे । एहि राज्यपरंयामो वनंदूरस्थितं यतः

इत्युक्त्वा राजपत्नीं तां ययौ प्राचीं दिशं हरिः ।
वनं प्रेतपिशाचाढ्यं मन्दगत्या नराधिप ! ॥ १६ ॥
वृन्दारिकाश्रुपूर्णाक्षी तस्य पृष्ठानुगा ययौ । स्मरदूती च तत्पृष्ठे मां प्रतीक्षेतिवादिनी ॥
अत्रान्तरे दुराचारःकोऽपि पापाकृतिर्वने । जालं प्रसारयामास तद्यदाजीवपूरितम् ॥
ततःसंकोचयामास तज्जालं पापनायकः । जालस्थांस्तु तदा जीवानुपाहृत्य मुमोचह ॥
स च व्याधः स्त्रियो दृष्ट्वा स्मरदूती जगाद ताम् ।
देवि मामत्तुमायाति करे गृह्णातु मां सखी ॥ २० ॥
वृन्दा तयोक्तं श्रुत्वैनं विकृतास्यं व्यलोकयत् ।
वीक्ष्य तं भयवातेन निर्धूता सिन्धुजप्रिया ॥ २१ ॥
दुद्राव विकलं श्वभ्रं स्मरदूत्या समंवने । विद्रवन्ती समंसख्या तापसाश्रममागता ॥
सा तापसवने तस्मिन्ददर्शात्यन्तमद्भुतम् ।
पक्षिणःकाञ्चनप्रख्यान्नानाशब्दसमाकुलान् ॥ २३ ॥
सा पश्यद्धेमपद्माढ्यां वापीं तु स्वर्णभूमिकाम् । क्षीरंवहन्तिसरितःस्रवन्ति मधुभूरुहः
शर्कराराशयस्तत्र मोदकानां च संचयाः। भक्ष्याणिस्वादुसर्वाणि बहून्याभरणानिच
बहुशस्त्राणिदिव्यानि नभसःसंपतन्ति च । क्रीडन्ति हरयस्तृप्ता उत्पतन्ति पतन्ति च
मठेऽतिसुन्दरं वृन्दा तं ददर्शतपस्विनम् । व्याघ्रचर्मासनगतं भासयन्तं जगत्त्रयम् ॥
तमुवाच विभो पाहि पाहि पापार्द्धिकादथ । तपसा किं च धर्मेण मौनेन च जपेन च
भीतत्राणात्परंनान्यत्पुण्यमस्तितपोधन ! । एवमुक्तवती भीता सालसाङ्गीतपस्विनम्
तावत्प्राप्तः स दुष्टात्मा सर्वजीवप्रबन्धकः ।
वृन्दादेवी भयत्रस्ता हरिकण्ठे समाश्लिषत् ॥ ३० ॥
सुखस्पर्शभुजाभ्यां साऽशोकवल्लीवलिङ्गिता । तवालिङ्गनभावेन पुनरेव भविष्यति ॥
शिरःसर्वाङ्गसंपन्नं त्वद्भर्तुरधिकं गुणैः। अथ त्वं प्रमदे ! गच्छपत्यर्थे चित्रशालिकाम्
सा चित्रशालामित्युक्त्वा विवेश मुनिना तदा । दिव्यपर्यङ्कमारूढा गृह्यकान्तस्यतच्छिरः
चकाराधरपानं सा मि(मी)लिताक्ष्यतिलोलुपा ।

यावत्तावदभूद्राजन्रूपं जालन्धराकृति ॥ ३४ ॥

तत्कान्तस्तद्गुणाकारस्तद्वक्षास्तद्वदुन्नतिः । तद्वाक्यस्तन्मनोभावस्तदासीज्जगदीश्वरः ॥

अथ सम्पूर्णकायं तं प्रियं वीक्ष्य जगाद सा । तत्रकुर्वे प्रियंस्वामिन्ब्रूहित्वंस्वरणं च मे

वृन्दा वचनमाकर्ण्य प्राह मायासमुद्भवः । शृणु देवि यथायुद्धं वृत्तं शम्भोर्मया सह ॥

प्रिये ! रुद्रेण रौद्रेण छिन्नं चक्रेण मे शिरः ।

तावत्त्वत्सिद्धियोगाच्च त्वद्दूतेन महारणात् ॥ ३८ ॥

छिन्नं तदत्र चानीतं जीवितं तेऽङ्गसङ्गतः ।

प्रिये ! त्वं मद्वियोगेन बाले ! जातासि दुःखिता ॥३९॥

क्षन्तव्यं विप्रियं मह्यं यत्त्वांत्यक्त्वारणंगतः । इत्यादिवचनैस्तेनवृन्दा संस्मारितातदा

ताम्बूलैश्च विनोदैश्च वस्त्रालङ्करणैः शुभैः । अथ वृन्दारिकादेवी सर्वभोगसमन्विता

प्रियं गाढं समालिङ्ग्य चुचुम्ब रतिलोलुपा ।

मोक्षादप्यधिकं सौख्यं वृन्दामोहनसंभवम् ॥ ४२ ॥

मेने नारायणो देवो लक्ष्मीप्रेमरसाधिकम् । वृन्दावियोगजं दुःखं विनोदयति माधवे

तत्क्रीडा चारुविलसद्वापिका राजहंसके ।

तद्रूपभावात्कृष्णोऽसौ पद्मायां विगतस्पृहः ॥ ४४ ॥

अभूद्वृन्दावने तस्मिस्तुलसीरूपधारिणी । वृन्दाङ्गस्वेदतो भूम्यां प्रादुर्भूतातिपावनी

वृन्दासङ्गजं चेदमनुभूयसुखं हरिः । दिनानि कतिचिन्मेने शिवकार्यं जगत्पतिः ॥४६॥

एकदा सुरतस्यान्ते सा स्वकण्ठे तपस्विनम् । वृन्दाददर्श सँलग्नं द्विभुजं पुरुषोत्तमम्

तं दृष्ट्वा प्राह सा कण्ठाद्विमुच्य भुजवन्धनम् ।

कथं तापसरूपेण त्वं मां मोहितुमागतः ॥ ४८ ॥

निशम्य वचनं तस्याः सान्त्वयन्प्राह तां हरिः ।

शृणु वृन्दारिके ! त्वं मां विद्धि लक्ष्मीमनोहरम् ॥ ४९ ॥

तवभर्ताहरं जेतुं गौरीमानयितुं गतः । अहं शिवः शिवश्चाहं पृथक्त्वेन व्यवस्थितौ ॥

जालन्धरो हतः सङ्ख्ये भज मामधुनाऽनघे ! ।

नारद उवाच ।

इति विष्णोर्वचः श्रुत्वा विषण्णवदनाभवत् । ततो वृन्दारिकाराजन्कुपिता प्रत्युवाचह
रणे बद्धोऽसि येन त्वं जीवन्मुक्तः पितुर्गिरा । विविधैः सत्कृतोरत्नैर्युक्तंतस्यहृतावधूः
पतिर्धर्मस्य यो नित्यं परदाररतः कथम् । ईश्वरोऽपि कृतं भुङ्क्ते कर्मेत्याहुर्मनीषिणः॥

अहं मोहं यथा नीता त्वया माया तपस्विना ।
तथा तव वधूं मायातपस्वीकोऽपि नेष्यति ॥५४॥
इति शप्तस्तथा विष्णुर्जगामादृश्यतां क्षणात् ।
सा चित्रशाला पर्यङ्कः स च तेऽथ प्लवङ्गमाः ॥ ५५ ॥
नष्टं सर्वं हरौ याते वनं शून्यं विलोक्य सा ।
वृन्दा प्राह सखीं पश्य जिह्मं तद्विष्णुना कृतम् ॥ ५६ ॥

त्यक्तं पुरं गतं राज्यं कान्तः संदेहतां गतः। अहं वने विदित्वैतत्क यामि विधिनिर्मिता
मनोरथानां विषयमभून्मे प्रियदर्शनम् । प्राह निःश्वस्य चैवोष्णंराज्ञी वृन्दातिदुःखिता

मम प्राप्तं हि मरणं त्वया हि स्मरदूतिके ।
इत्युक्ता सा तया प्राह मम त्वं प्राणरूपिणी ॥ ५९ ॥
तस्यास्तथोक्तमाकर्ण्य इतिं कर्त्तव्यतां ततः ।
वने निश्चित्य सा वृन्दा गत्वा तत्र महत्सरः ॥ ६० ॥

विहाय दुःखमकरोद्गात्रक्षालनमम्बुना । तीरे पद्मासनं बद्ध्वा कृत्वा निर्विषयं मनः

शोषयामास देहं स्वं विष्णुसङ्गेन दूषितम् ।
तपश्चचार साऽत्युग्रं निराहारा सखी समम् ॥ ६२ ॥
गन्धर्वलोकतो वृन्दामथागत्याप्सरोगणः ।
प्राह याहीति कल्याणि ! स्वर्गं मा त्यज विग्रहम् ॥६३॥
गान्धर्वं शस्त्रमेतत्त्रिभुवनविजयि श्रीपतिस्तोषमग्र्यं,
नीतो येनेह वृन्दे ! त्यजसि कथमिदं तद्वपुः प्राप्तकामम् ॥
कान्तं ते विद्धि शूलीप्रवरशरहतं पुण्यलभ्यस्य भूषा

स्वर्गस्य त्वं भवाद्य द्रुतममरवनं चण्डि ! भद्रे ! भज त्वम् ॥ ६४ ॥
श्रुत्वा शास्त्रं वधूनां जलधिजदयिता वाक्यमाह प्रहस्य
स्वर्गादाहृत्य मुक्ता त्रिदशपतिवधूश्चातिवीरेण पत्या ।
आदौ पात्रं सुखानामहममरजिता प्रेयसी तद्वियुक्ता
निर्दुष्टा तद्यतिष्ये प्रियममृतगतं प्राप्नुयां येन चैव ॥ ६५ ॥
इत्युक्त्वा ससखी वृन्दा विससर्जाप्सरोगणान् ।
तत्प्रीतिपाशबद्धास्ता नित्यमायान्ति यान्ति च ॥ ६६ ॥
योगाभ्यासेन वृन्दाऽथ दग्ध्वा ज्ञानाग्निना गुणान् ।
विषयेभ्यः समाहृत्य मनः प्राप ततः परम् ॥ ६७ ॥
दृष्ट्वा वृन्दारिकां तत्र महान्तश्चाप्सरोगणाः । तुष्टुवुर्नभसस्तुष्टा ववृषुः पुष्पवृष्टिभिः
शुष्ककाष्ठचयं कृत्वा तत्र वृन्दाकलेवरम् । निधायाग्निं च प्रज्वाल्य स्मरदूतीविवेशतम्
दग्धवृन्दाङ्गरजसा विम्बतद्गोलकात्मकम् ।
कृत्वा तद्भस्मनः शेषं मन्दाकिन्यां विचिक्षिपुः ॥ ७० ॥
यत्र वृन्दा परित्यज्य देहं ब्रह्मपथं गता । आसीद्वृन्दावनं तत्र गोवर्धनसमीपतः॥७१॥
देव्योऽथ स्वर्गमेत्य त्रिदशपतिवधूसत्त्वसंपत्तिमाहु-
र्देवीभ्यस्तन्निशम्य प्रमुदितमनसो निर्जराद्याश्च सर्वे ।
शत्रोर्दैत्यस्य हित्वा प्रबलतरभयं भीमभेरी निजघ्नुः
श्रुत्वा तत्रासनस्थः परिजननिवहोऽवाप शोभां शुभस्य ॥ ७२ ॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे जालन्धरो-
पाख्याने वृन्दाया ब्रह्मपदप्राप्तिर्नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

———

सप्तदशोऽध्यायः

मायाशिवस्य जालन्धरस्य परीक्षार्थं पार्वत्याऽग्रे सखीप्रेषणम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

कथं जालन्धरो गौरीं हररूपधरो मुने । दृष्ट्वा चकार किं तत्र तन्मे कथय विस्तरात्

नारद उवाच ।

यदा मायाशिवस्तत्र प्रार्थयद्‌ गिरिजां प्रति ।
ततः सा चुक्षुभे राजन्किञ्चिन्नोवाच तं प्रति ॥ २ ॥

अनातुरस्य देवस्य प्राप्तस्य तपसा मया । न युक्तमिति निश्चित्य पार्वती नाह तं नृप
सा न तत्र प्रतीकारं दृष्ट्वा तस्य प्रपश्यतः । निर्गता तत उत्थाय ददर्शाकाशवाहिनीम्
गङ्गां वासोचितां मत्वा भवानी तपसे ययौ । पुराऽपितपसा लब्धोमयेशः साम्प्रतंतथा
इत्यव्रजच्चिन्तयन्ती सखीभिः सहिता ततः । पुरः क्षीरनिभां राजन्पार्वतीगगनात्परम्
मन्दाकिनी ददर्शाथ पतन्तीं मानसोत्तरे । हारमालामिवायान्तीं विविक्तां गगनस्रजः
मन्दाकिन्याः पयः पूरो ह्याकृष्टः स्वर्गतो यथा । श्रुतीनां पूरधारेव ब्रह्मणो वदनच्युता

दृष्ट्वा मुमोद तां गङ्गां स्नात्वा चालिसमन्विता ।
संपूज्य स्वतनुं पश्चान्निविष्टा स्वर्णदीतटे ॥ ६ ॥
परस्परमथालोक्य गौरी प्राह सखीं जयाम् ।
त्वं गच्छ मद्वपुः कृत्वा तत्समीपं सखि ! त्वर ॥ १० ॥
जानीहि तत्त्वं किं शम्भुर्यदि वाऽन्यो भविष्यति ।
यद्यसौ त्वां समालिङ्ग्य कुरुते चुम्बनादिकम् ॥ ११ ॥
तदा मायां समास्थाय जानीह्यसुरमागतम् ।
यदि चेत्त्वां प्रतिब्रूयान्मन्निमित्तं शुभाशुभम् ॥ १२ ॥
असंशयं पिनाकी स्यादत्रागत्याभिधेहि माम् ।

इत्यादिष्टा जया देव्या गता गङ्गा धरान्तिकम् ॥ १३ ॥
तामायान्तीं स दृष्ट्वा च भृशं मन्मथपीडितः ।
चकारा लिङ्गनं तस्या गौरीरूपेण भावयन् ॥ १४ ॥
ततो जालन्धरः सद्यो वीर्यं स्त्रं प्रमुमोचह । अल्पेन्द्रियश्च संजातो वेगतः कुरुनन्दन ॥
तथा स प्रोदितो दैत्य न त्वं रुद्रो भविष्यसि ।
अल्पवीर्योऽधमाचारो नाहं गौरी हि तत्सखी ॥ १६ ॥
इत्युक्त्वा निजमास्थाय रूपं सा प्राह तं पुनः । अनेन बतपापेनहतस्त्वं हि पिनाकिना
इति ज्ञात्वा च सा प्राप्ता तत्र गत्वाऽब्रवीदुमाम् । देवि! जालन्धरोह्येषन शम्भुस्तववल्लभः
ततो भयार्ता हरवल्लभाऽभूद् द्रुतं विवेशाथ सरोजमध्ये ।
सख्यो भ्रमर्यः कमलेषु जाता भयेन जालन्धरजेन राजन् ! ॥ १९ ॥
अत्रान्तरे वनगतामदृष्ट्वा तां नृपाङ्गनाम् । भीतास्तु रक्षकास्तस्याः सत्वरं रणमाययुः
ततः शुम्भेन ते पृष्टास्तं नत्वोचुः ससाध्वसाः ।
आत्मनः परिहारार्थे विष्णुमित्यसुरैश्वरम् ॥ २१ ॥
श्रुत्वा वृन्दां हृतां त्रस्तो रुद्रात्त्यक्त्वाऽथ सङ्गरम् ।
शुम्भेन प्रेषितौ चण्डमुण्डो जालान्धरं प्रति ॥ २२ ॥
मानसोत्तरमागत्य दानवौ वेगवत्तरौ । हररूपधरं दैत्यमूचतुर्विटपान्तरे ॥ २३ ॥
किं तया नृपशार्दूल विदेशगतया श्रिया । अरयो यां न पश्यन्ति बन्धुभिर्यान भुज्यते
जितः शुम्भो हतं सैन्यं देवरुद्रेण ते रणे । पह्येहिकुरु सङ्ग्रामं न त्वंप्राप्नोषि पार्वतीम्
पञ्चाननस्य महिषीं कथं प्राप्नोति जम्बुकः ।
अन्धकारः कथं राजन्प्राप्नोति सवितुः प्रभाम् २६ ॥
तव जालन्धरात्पीठादधृता राज्ञी मुरारिणा । इति संश्रूयते वार्तातस्मात्त्वंकुरु सङ्गरम्
रणे शर्वं विजित्याशु भव सर्वेश्वरेश्वरः । अथवा शिवनाराचैः खण्डितोयासि तत्पदम्
इति जालन्धरः श्रुत्वा भाषितं चण्डमुण्डयोः ।
निःससार गिरेस्तस्मात्सक्रोधं रक्तलोचनः ॥ २९ ॥

चण्डमुण्डौ समाश्वास्य त्यक्त्वा रूपं हरस्य च ।
गच्छञ्जालन्धरो मार्गे दुर्वारणमुवाचह ॥ ३० ॥
पश्य दुर्वारणेदानीं तत्र यद्विष्णुना कृतम् ।
मायामाश्रित्य सा राज्ञी वृन्दा नीताऽऽत्मनः पदम् ॥ ३१ ॥
गृहे स्थितस्य जामातुर्विश्वसेन्नैव बुद्धिमान् ।
नूनं तस्मै प्रदत्त्वा च कन्यकां विसृजेद् बुधः ॥ ३२ ॥
जामातरं गृहे नैव स्थापयेत्सर्वथा नरः । धनदारादिकं सर्वं स गृह्णाति शनैः शनैः ॥

दुर्वारण उवाच ।

राजन्यत्क्रियते कर्म तत्तथैव तु भुज्यते । त्वं हर्तुमागतो गौरीं हरिणा ते हृता वधूः
तस्य स्पष्टं वचः श्रुत्वा क्षणं मौनी व्यचिन्तयत् ॥ ३४ ॥

जालन्धर उवाच ।

किं प्रयामि हरं जेतुमथवा हरिमुल्बणम् । कार्यद्वये समुत्पन्ने यत्परं तत्प्रकथ्यताम् ॥

दुर्वारण उवाच ।

यदि यासि हरिं जेतुं हरः पृष्ठे हनिष्यति । हनिष्यन्ति रणे शूरा यातुं रुद्रो न दास्यति
तस्मात्पशुपतिं जित्वा कृत्वा त्वं वश्यमात्मनः ।
पश्चात्प्रयाहि गोविन्द यदि जानासि तत्पदम् ॥ ३७ ॥
अधुना सत्वरं वीर याहि दैत्यान्महाबलान् । रणं कुरु महाघोरं यथा सम्पूज्यसे बुधैः
देशकालोचितं श्रुत्वा दुर्वारणवचस्तदा । ययौ जालन्धरो योद्धुं सह रुद्रेण योगिना
इति श्रीपाद्मेमहापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे जालन्धरो-
पाख्याने जालन्धरस्य मायारूपपरित्यागो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

———

अष्टादशोऽध्यायः

जालन्धरस्य शङ्करेण सहयुद्धम्

नारद उवाच ।

अथ जालन्धरोऽपश्यत्कबन्धचयभीषणम् । रणं रुधिरमांसौघमज्जामेदोऽस्थि दुर्गमम्

तत्र जालन्धरो दैत्यः प्रियाहरणदुःखितः ।

रणे विलोकयामास वृषस्थं पार्वतीपतिम् ॥ २ ॥

घोरा हि भोगेन विभूषिताङ्गं जटाकलापे शशिभूषणाङ्कितम् ।

नेत्राग्निकीलोपरिशोभिताङ्गं विना रणं सम्प्रददर्श सिन्धुजः ॥ ३ ॥

शीघ्रं स्वरथमारुह्य समुद्रतनयस्तदा । संहृष्टः प्राह तं शुम्भं तापसो न हतस्त्वया ॥

प्राह जालन्धरं शुम्भस्तपस्तेन महत्कृतम् । हन्तुं न शक्यतेऽस्माभिर्हरः सङ्ग्रामदुर्जयः

इति शुम्भोक्तमाकर्ण्य सिन्धुजः क्रोधमूर्च्छितः ।

हरं पद्मसहस्रेण दैत्यसैन्येन संवृतम् ॥ ६ ॥

गृहीत्वा कालकेदारं धनुर्जालन्धरो ययौ ।

बाणांस्तीक्ष्णानतिस्थूलाँल्लोहस्तम्भांस्तथा बहून् ॥ ७ ॥

मुमोच युधि दुर्धर्षोवर्षन्मेघ इवागमे । आयान्तं रुरुधुः सिन्धुसूनुं शम्भुगणा युधि ॥

ततो रुद्रेण रौद्रैश्च शरौघैस्ताडियो रुषा । रुद्रबाणैस्तदा तस्य कवचं भुवि पातितम्

विवर्माऽपिवभौसोऽथ मेघमुक्तो यथाऽचलः। पुनर्जालन्धरस्याङ्गं शम्भुना कीलितं शरैः

रुधिरं बहु सुस्राव जालन्धरशरीरतः । तेनाशु रुधिरौघेण प्लाविता सकला मही ॥

ततो देवाभयं जग्मुर्दानवाश्च चकम्पिरे । त्यक्त्वा ते प्रमथा वीरा रणभूमिं प्रदुद्रुवुः ॥

नद्या इव परामूर्तिः प्रसृता सर्वतोऽपि च । अथाहार्णवजो रुद्रं धनुर्धरवरो ह्यसि ॥

इदानीं तत्करिष्यामि येन गच्छसि संक्षयम् ।

इत्युक्त्वा कालकेदारं सशरं प्रतिगृह्य तत् ॥ १४ ॥

शीघ्रं संपूरयामास शरैर्नानाविधैः शिवम् ।
शिवः सहस्रकोटीभिः पूरिताङ्गो रणे बभौ ॥ १५ ॥
विहङ्गमैर्यथाकाशं वृक्षैरिव महागिरिः । दैत्यमुक्तैस्तुतैर्बाणैर्दृष्ट्वा व्याप्तं महेश्वरम् ॥
वीरभद्रस्तथा कोपाज्जालन्धरमधावत । अपीडयदमेयात्मा समुद्रतनयं बली ॥ १७ ॥
जालन्धरोऽथ संक्रुद्धो विध्यन्बाणैः सहस्रशः ।
धनुः शरान्रथं छत्रं सारथिं तिलशः शरैः ॥ १८ ॥
चकार वीरभद्रस्य सिन्धुसूनुः प्रतापवान् । वीरभद्रोऽथ विरथो हतवान्गदयाब्धिजम्
तथैव गदया सोऽपि तं हत्वा पातयद्भुवि । गदाप्रहारपतितमालोक्यातिविमूर्छितम् ॥
मणिभद्रोऽथ समरे जालन्धरमधावत । अतिक्रुद्धं तमायान्तं दृष्ट्वा दैत्यो महारणे ॥
शरैर्व्यस्तोपकरणं स चकार नदीसुतः । अथ मूर्छां परित्यज्य उत्तस्थौ सिंहवन्नदन् ॥
वीरभद्रस्ततः कोपान्मणिभद्रः प्रतापवान् ।
जघ्नतुः पर्वताभ्यां तौ व्योमस्थं तटिनीसुतम् ॥ २३ ॥
तदङ्गे पतितौ दृष्ट्वा पर्वतौ विनिनद्य च । जघान मुष्टिपातेन वीरभद्रो नदीसुतम् ॥
मणिभद्रश्चरणयोर्धृत्वा सागरनन्दनम् । स्यन्दनाद्भ्रामयामास तदद्भुतमिवाभवत् ॥
मणिभद्रगृहीतोऽपि दैत्यराट् स महाबलः ।
हत्वा चरणघातेन मणिभद्रमपातयत् ॥ २६ ॥
जालन्धरो महाबाहुर्वीरभद्रं च मुष्टिना । अथागतः परिवृतोगणैर्दैनन्दिकेश्वरः ॥ २७ ॥
शुम्भस्तमागतं दृष्ट्वा रुरोध सह सैनिकैः । द्वन्द्वयुद्धैरथाजग्मुर्गणा दैत्यैः परस्परम् ॥
शुम्भः शिलादजं राहुर्महाकालं रणे ययौ । कोलाहलं निशुम्भोऽथ केतुः कालमधावत
शैलोदरो गुहं जम्भो माल्यवन्तं महाबलः ।
महापार्श्वो ययौ चण्डं चण्डीशो रोमकण्टकम् ॥ ३० ॥
विकटास्योऽथ वै भृङ्गिमुरुनेत्रो विनायकम् । एवं दैत्येश्वरैः सार्द्धं गणानामधिपाययुः
अथशुम्भायुधैर्बाणैः प्रहतश्च शिलादजः । चूर्णीचकाराद्रिशृङ्गैः कपितुण्डो महत्तरैः ॥
शुम्भस्तेनार्दितः शक्त्या शिलादं च जघान तम् । महाकाले जघानाथ तं राहुं रणमूर्द्धनि

शक्त्याऽथ तस्य हतवान्स्यन्दनं समहाद्रिणा ।
कोलाहलो हतः शक्त्या निशुम्भेन प्रतापवान् ॥ ३४ ॥
शक्तिं गृहीत्वा ह्यहनद्रथं सारथिना सह । विरथेनाथ दैत्येन भृशं क्रुद्धेन संयुगे ॥३५
कोलाहलोऽसुरेन्द्रेण सहस्रफणिना हतः । तं हत्वा चातिवेगेन रथं चान्यमुपागतः ॥
फणिचक्रंहतः सङ्ख्ये क्षणान्मूर्छां विहाय च ।
स्वरथाच्छीघ्रमुत्तीर्य गृहीत्वा खड्गचर्मणी ॥ ३७ ॥
सर्वं चक्रे निशुम्भस्य सरथाद्यसिनापृथक् । पुनः स्वरथमारुह्य दैत्यं बाणैरताडयत् ॥
निशुम्भोऽप्यतिरोषाच्च तत्पराक्रमविस्मितः। शक्त्या महाबलस्तस्यरथं साश्वं न्यषूदयत्
कोलाहलो रणेऽधावन्निशुम्भं विरथो बली । गतः स सरथं चक्रे विरजं भुजबन्धनात्
केतुपुच्छं गृहीत्वा च भ्रामयामास चाम्बरे ।
कालश्चिक्षेप सोऽप्यद्रिं स चिच्छेद गिरिं जवात् ॥ ४१ ॥
तं नगं चूर्णितं दृष्ट्वा ताडयामास मुष्टिना । कालश्चूर्णितसर्वाङ्गःकेतुना प्राद्रवद्भयात्
शैलोदरस्तथा स्कन्दं जघान गदयोरसि ।
षडाननोऽपि तं शक्त्या हत्वा भूमावपातयत् ॥ ४३ ॥
शक्तिप्रहारेण मृतं दानवं वीक्ष्य षण्मुखः । जगर्ज तत्र वैचित्र्यं यथा क्रौञ्चे विदारिते
माल्यवानथ बाणौघैर्जम्भमभ्यर्दयद्रणे ।
जम्भोऽपि सायकैस्तीक्ष्णैर्भित्त्वा तं मूर्च्छितं जहौ ॥ ४५ ॥
महापार्श्वो रथं धृत्वा बाणौघैर्वाजिवर्जितम् ।
लीलयैव च खे नीत्वा व्यश्वं चण्डमपातयत् ॥ ४६ ॥
व्यश्वं रथं विलोक्याथ ततश्चण्डोऽग्रहीद्गजम् ।
आपतन्तं महापार्श्वं चण्डस्तं गदयाऽहनत् ॥ ४७ ॥
अचिन्त्येव गदापातं सोऽसुरो भृशदारुणः । प्रहत्य मुष्टिना चण्डं पातयामास भूतले
चण्डीश शस्त्राभिहतोरोमकण्ठोमहासुरः । चण्डीशं पादयोर्धृत्वा रथमूर्ध्नि न्यपातयत्
पपात सहसा भूमौ ययौ तं भीषणेक्षणः । उरुनेत्रेण समरे हतो लम्बोदरः शरैः ॥५०॥

दन्तेनोरसि तं हत्वा पातयामास भूतले । उरुनेत्रःक्षणाच्छान्तिमागत्याशु रथं क्षणात्
जघान मुद्गरेणासौ मूर्ध्नि सिन्दूरमण्डिते । गणेश्वरः पट्टिशेन जघानोरसि दानवम् ॥

तन्मुखादथ निष्क्रान्तो नवशीर्षोऽसुरो महान् ।
अष्टादशभुजो राजन्सोऽप्यधावत शाङ्करिम् ॥ ५३ ॥

नवशीर्षोरुनेत्राभ्यां रणेरुद्धो विनायकः । जर्जरीकृतदेहोऽपि जग्राह परशुं रुषा ॥५४॥

तेन चिच्छेद शस्त्राणि तयोराजौ गणेश्वरः ।
रुद्धं गणेश्वरं दृष्ट्वा ताभ्यां सङ्ख्येऽथ षण्मुखः ॥ ५५ ॥

शीघ्रमागत्य सेनानीर्जघान नवशीर्षकम् । नवशीर्षं रणे हत्वा चोरुनेत्रमधावत ॥५६॥

स्कन्दः स्वशक्तिघातेन पातयामास तं नृप ! ।
पश्यञ्जालन्धरः स्कन्दं ययौ सैन्येन संवृतः ॥ ५७ ॥

पुत्रप्रीत्याऽसुरान्हन्तुं सगणः शङ्करोऽपि च । ततो घोरतरं युद्धमभूदद्भुतसैन्ययोः ॥
हरसिन्धुजयोर्युद्धे गतप्राणेव रोदसी । अथ जालन्धरः क्रुद्धो बाणं संधाय दारुणम् ॥
सहस्रं शतसङ्ख्याकैः पत्रैः सर्वत्र भूषितम् । दैत्येन्द्रस्तेन बाणेन ललाटेऽताडयच्छिवम्

ममज्जापुङ्खमर्यादं ललाटे शङ्करस्य च ।
भाले शशाङ्कवच्छम्भोः स रराज महाप्रभः ॥ ६१ ॥
यथाऽऽदित्यो हि घर्मान्ते सन्ध्याकालेऽम्बुदागमे ।
अथ रुद्रो महाबाणं जग्राह ज्वलनोपमम् ॥ ६२ ॥

यस्य वेगेतु पवनःफले यस्याग्निभास्करौ । कालो ग्रन्थिषु सर्वेषु शरेदेवी धरास्थिता
हरस्तेन शरेणाशु विव्याध हृदि सिन्धुजम् । तेन बाणप्रहारेण रुधिरौघपरिप्लुतः ॥
पपात शरभिन्नाङ्गो वज्राहत इवाचलः । तदा दैत्याः समाक्रन्दञ्जगर्जुः प्रमथास्तथा ॥६५

सिन्धुजं मूर्च्छितं दृष्ट्वा रुरुधुर्दानवाः शिवम् ।
रक्षार्थमुद्यताः केचिन्केचित्तं परितः स्थिताः ॥ ६६ ॥

यावज्जालन्धरो मूर्च्छां प्राप्तो वारिधिनन्दनः । तावद्रुद्रेण नाराचैर्हता जालन्धरी चमूः

चिराज्जालन्धरस्त्यक्त्वा मूर्च्छां सैन्यं हतं नृप ! ।

दृष्ट्वा भयान्वितः सेनां विकीर्णां च तथा रणे ॥ ६८ ॥

ततःकाव्यं स सस्मार मनसा परमंगुरुम् । स्मृतस्तेन त्वरन्प्राप्तःकविर्जालन्धरंप्रति ॥

स्वस्तिकृत्वा जगादाथ भार्गवःसिन्धुनन्दनम् । किं करोमि महाराज तवकार्यं महाबल

नारद उवाच ।

इति काव्यवचःश्रुत्वा भार्गवं बहुमानयन् । नत्वा गुरुमुवाचाथ राजा जालन्धरस्तथा

राजोवाच ।

जीवयैतान्मृतान्छुक्र दैत्यान्सर्वान्समन्ततः ।

इत्युक्तः सिन्धुजेनाजौ सैन्यं तत्र व्यलोकयत् ॥ ७२ ॥

पञ्चविंशत्सहस्राणि योजनानां प्रमाणतः । दैत्याङ्गरथसंकीर्णमुपर्युपरि पार्थिव ! ॥७३

उच्छ्रये पञ्चनवतियोजनानां महींचिताम् । योधवाहनदेहाद्यैरिव पूर्णां धरां ततः ॥

मन्त्रोदकेन चाभ्युक्ष्य दैत्यानुत्थापयत्कविः । यावद्रुद्रो जटाजूटं बबन्धभुजगैर्दृढम् ॥

तावत्काव्येनतत्सैन्यंमन्त्रेणोत्थापितं नृप । व्याघ्रान्यथाकेसरिणोगजेन्द्राःशूकरान्यथा

आगतान्दानवान्दृष्ट्वा चिन्तयामास शङ्करः ।

किमेतदिह संजातं मृतान्सृजति कुत्रचित् ॥ ७७ ॥

ददर्श चिन्तयन्काव्यमिति तस्मिन्रणेभवः । जीवयन्तं रणे दैत्यान्धावन्तं वेगवत्तरम् ॥

ततःक्रुद्धो महादेवःशुक्रंहन्तुं मनोदधे । त्रिशूलिनमनुज्ञाय रहश्चोवाच तं कविः ॥ ७९ ॥

ब्राह्मणोऽहं कथं हंसि सर्वविद्याविशारदम् ।

ब्रह्महत्या मयि हते तव रुद्र ! भविष्यति ॥ ८० ॥

इति श्रुत्वा कवेर्वाक्यं शूलं तत्याज शङ्करः। स्मृत्वा तत्पूर्ववृत्तान्तं यल्लूनं ब्रह्मणःशिरः

ब्राह्मणो न हि हन्तव्यो हरन्प्राणानपि प्रियान् ।

अयं तु जीवयन्दैत्यान्निग्राह्यः सर्वथा मया ॥ ८२ ॥

तस्मादेनं क्षिपाम्याशु स्त्रीयोनौ दैत्यजीवनम् ।

एवमुक्तवतः शम्भोस्तृतीयनयनाद् द्रुतम् ॥ ८३ ॥

कृत्या विवासाश्चात्युग्रा मुक्तकेशी महोदरा ।

स्थूललम्बस्तनी योनिदंष्ट्रा लोचनभीषणा ॥ ८४ ॥
आज्ञापयेति स तया प्रोक्तस्तामब्रवीच्छिवः ।
कृत्ये ! त्वं दानवाचार्यं स्वयोनौ क्षिप दुर्मतिम् ॥ ८५ ॥

यावज्जालन्धरं हन्मि तावदेनं भगे वह । हते जान्लधरेदैत्ये पश्चान्निस्तीर्यं मोचय ॥
हरेणोक्तेति सा कृत्या भार्गवं समधावत । पपातभूमौ तां दृष्ट्वा कविर्दैत्याः मुहुर्मुहुः

केशेष्वाकृष्य धुन्वाना नग्नमालिङ्ग्य भार्गवम् ।
योनौ दधार सा कृत्या हसन्ती जयनन्दन ॥ ८८ ॥

भगेक्षिप्तंगुरुंदृष्ट्वायावज्जालन्धरोऽसुरः । संदधेमार्गणांस्तावत्साकृत्याऽदृश्यतांगता

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे युधिष्ठिर-नारदसंवादे जालन्धरोपाख्याने शुक्रयोनिप्रवेशो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

एकोनविंशोऽध्यायः

दैत्यानां शिवगणैः सह युद्धवर्णनम् ।

श्रीनारद उवाच ।

अथ जालन्धरःप्राह रक्षात्मानमितःशिवम् । शिवाद्यत्वां क्षिपाम्याशु यत्रास्ते मधुसूदनः
पश्चाद्ब्रह्माणमाकृष्य पातयिष्यामि सागरे । धृतेषु युष्मासु यदा तदा सर्वेश्वरो ह्यहम्
इत्युक्त्वा सैन्यसंभारं न्यस्य शुम्भासुरादिषु । भटैर्गुप्तं निशुम्भाद्यैश्चतुरङ्गमनन्तकम्
शुम्भो निशुम्भःफेङ्कारो फेरुण्डो धूम्रलोचनः । केतुर्विडालजङ्घश्च राहुर्दुर्वारणा यमः

कालासुरोऽथ लवणो भूमिरैतोऽन्धकासुरः ।
रक्तवीर्यादयश्चण्डी चामुण्डी दैत्यपुङ्गवाः ॥ ५ ॥
सर्वानेवोद्यतान्दृष्ट्वा सङ्ख्ये दानवपुङ्गवान् ।
रुरुधुः समरे राजन्वीरभद्रादयो गणाः ॥ ६ ॥

ततो युद्धमभूद्घोरं तुमुलं लोमहर्षणम्। पतन्ति प्रमथा यत्र दैत्याश्चापि क्षतातुराः॥
अथ शुम्भादिभिर्दैत्यैः सर्वशस्त्रैर्महामृधे। हताःपेतुर्गणाश्चान्ये पलायांचक्रिरे नृप!॥
गणान्विजित्य समरे रुरुधुर्दानवाः शिवम्। वर्षन्तः शरधाराभिर्घना मेरुगिरिं यथा॥
ततः पिनाकमाकृष्य वृषभोपरि भैरवः। जघान बाणानिवहैर्दानवान्समराङ्गणे॥१०॥
तीक्ष्णाग्रैस्तु क्षुरप्रौघैर्दानवानहनद्बली। केचिन्नन्दिप्रहारेण पेतुः सङ्ग्राममूर्धनि॥

बाणैश्च जर्जरान्कृत्वा शुम्भादीन्वृषभध्वजः।
शेषं सैन्यं जघानाशु शस्त्रास्त्रैः समराङ्गणे॥ १२॥

गजैर्नरैर्हयैर्व्याप्तं पतितैः समराङ्गणम्। बभूव वज्रनिर्भिन्नैः पर्वतैरिव भूतलम्॥१३॥
अथ मायामयीं गौरीं विदधे सिन्धुनन्दनः। सौन्दर्यगुणसंपन्नां सर्वालङ्कारभूषिताम्
जयां मायामयीं कृत्वा समुवाचाब्धिनन्दनः। गच्छ त्वं पुरतो रुद्रं विमोहयरणे द्रुतम्
इत्युक्त्वादैत्यपतिना ययौ मामामयी जया। रणे गत्वा शिवस्याग्रे मुक्तकेशी रुरोदह
पृष्टा हरेण सा प्राह मानसोत्तरपर्वतात्। हृता तव प्रिया देव! पार्वती सिन्धुसूनुना

श्रुत्वेति वचनं तस्यास्तामुवाच वृषध्वजः।
जये! त्वमेहि वृषभं त्वां हरिष्यन्ति दानवाः॥ १८॥

ततो वृषभमारुह्य जया चालिङ्ग्य शङ्करम्। प्राहप्रयामिपार्वत्या न जीवामि विना हर

चन्द्रशम्भुजटाविष्टं गृहीत्वा वृषभाद्द्रुतम्।
अवारोहत सा माया मायास्वक्तो रणं ययौ॥ २०॥

ततो गौरीं हृतां श्रुत्वा चिन्तयामास शङ्करः। दैत्यमायापरिष्वक्तो नात्मानं बुबुधेनृप

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः सैन्येन महतावृतः।
मायामृडानीं स्वरथे निधायार्णवजः शिवम्॥ २२॥

जालन्धरजये तद्वदासीद्वादित्रनिस्वनः। चचाल वसुधा येन प्रतिनेदुर्महीधराः॥२३॥
हरस्य दर्शयामास पार्वतीं सिन्धुनन्दनः। रुद्रोऽप्यरिरथस्थां तां ददर्श निजवल्लभाम्

वियोगविधुरां दीनां तन्वीमातुरलोचनाम्।
हा नाथ प्रिय रुद्रेति प्रजल्पन्तीं पुनः पुनः॥ २५॥

प्रौढवैरिरथे दृष्ट्वा पाखण्डिस्थां यथाश्रुतिम् ।
गौरीं दध्यौ तथा स्थाणुः कथं प्राप्या प्रिया मया ॥ २६ ॥
विललाप ततः शम्भुर्दैत्यमायाविमोहितः । मोहो मे दानवैःकान्ते हृतासित्वं क्वप्रिये
शोकमोहप्लुप्तं दृष्ट्वाशङ्करं सागरात्मजः । जगाद प्रहसन्वाक्यंकञ्चित्कारुण्यजान्यथा
सर्वप्रमाणशून्योऽसि स्मरशृङ्गारवर्जितः ।
ईश्वरोऽपि वराकस्त्वं संजातोऽम्बिकया विना ॥ २६ ॥
मा रोदीर्हि विरूपाक्ष ददामि तव वल्लभाम् ।
रक्षितोऽसि मया रुद्र ! गृहीत्वा पार्वतीं रणात् ॥ ३० ॥
इत्युक्त्वा गिरिशं तूर्णमुत्तार्य स्वरथादुमाम् । सैन्यं संप्रेषयामासशङ्कराभिमुखं किल ॥
हरोऽपि वृषभेणाशु तत्सैन्यं समधावत । ग्रहीतुं पार्वतीं पाहि त्राहित्राहीति जल्पतीम्
यावद् गृह्णाति तां गौरीं करेण वृषभध्वजः ।
तावच्छुम्भासुरः शीघ्रं गृहीत्वा चाम्बरे स्थितः ॥ ३३ ॥
शूलं मुमोच बलवान्हन्तुं शुम्भासुरं हरः । शुम्भेन सा परित्यक्ता शूलोपरि पपातह ॥
रुदन्ती चारुसर्वाङ्गी त्यक्ता शूलेन संयुता । पतिता शङ्करस्याग्रे तथेत्युक्त्वा ममार च
मायागौरीं मृतां दृष्ट्वा शोकमोहपरिप्लुतः । हा प्रियेति रुदन्रुद्रः पपातभुवि मूर्च्छितः
क्षणं संज्ञामवाप्याथ रणभूमावुमापतिः । शशाप शुम्भप्रमुखान्गौरी युष्मान्हनिष्यति

नारद उवाच ।

अथ शुम्भादयो दैत्यारणे देव्या निपातिताः । महेश्वरस्य शापेन गते मन्वन्तरे नृप ! ॥
शपित्वा तान्रुरोदाथ जल्पन्निर्गत्य शङ्करः ।
क्व गताऽसि प्रिये ! त्यक्त्वा दुःखितं मां रणाङ्गणे ॥ ३९ ॥
रतिं त्यक्त्वा वियोगार्तः श्रीकण्ठोऽहं त्वया कृतः ।
वासुदेवोऽपि मां त्यक्तं न जानाति त्वया प्रिये ! ॥ ४० ॥
यज्ञे दक्षस्याग्निकुण्डे शिरो देवि हुतं त्वया ।
भूयो हि भवती लब्धा कथं त्यजसि मां पुनः ॥ ४१ ॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ चार्वङ्गि गिरिजेमांप्रबोधय । अत्रान्तरे शिवं ज्ञात्वादैत्यमायाविमोहितम्
देवतागणमध्यस्थो ह्यन्तरिक्षादुपागमत् । विलपन्तमुवाचेदमदृश्यः कमलासनः ॥४३

ब्रह्मोवाच ।

त्वं शोकमोहपितृमातृविवर्जितोऽसि दुःखं सुखं सुतकलत्ररिपुर्न चास्ति ॥
जातोऽसि नैव जनकेन जनिष्यमाणस्त्वं मन्यसे ऋषिगणैश्च कुतो विमोहः ॥ ४४ ॥
एकोऽसि नाथ बहुधा कृतविग्रहोऽसि सूर्यो यथा जलधिवीचिषु दृश्यमानः ।
ध्यानेन यान्ति यमिनस्तव पादमूलं रूपं परं दुरवबोधमवाच्यमेव ॥ ४५ ॥
नैषा प्रिया तव समानतया विपन्ना जालन्धरेण रचितां जहि देवमायाम् ।
सा पार्वती कमलकोशगता हि शम्भो युध्यस्व वैरिनिवहं जहि पाहि चास्मान् ॥४६॥

श्रुत्वेति ब्रह्मणो वाक्यमवबुद्धो महेश्वरः ।
ज्ञात्वा तां दानवीं मायां मुमोच महतीं शिलाम् ॥ ४७ ॥

तया जघान समरे दैत्यकोटिशतत्रयम् । ततो वृषभमारुह्य क्रोधेन महता नृप ! ॥४८॥
धनुः पिनाकं सन्धाय धूर्जटिर्जगृहे शरान् । अथ मायापरित्यक्तं शर्वमालोक्यसिन्धुजः
सुरेशमोहनं मायाजालमत्यद्भुतं नृप । अन्यदाविश्वकाराशु भृशं मायामहाबलम् ॥

जालन्धरः कोटिभुजो बभूव वृक्षास्त्रशस्त्रैर्युयुधे वृषाङ्कम् ।
अथान्तराले पृथिवीं चकार समुद्रसूनुर्गिरिधातुमण्डिताम् ॥ ५१ ॥

देवतायतनैरम्यैर्नानापुष्पसमाकुलैः । मण्डितां नृपभूमिं च चकारोदधिनन्दनः ।

नृत्यन्ति यत्राप्सरसो मेनकाद्या मनोहराः ॥ ५२ ॥
विस्मृत्य शम्भुस्तदपास्य कार्मुकं सद्यः प्रतस्थे वृषभोपरि स्थितः ।
वादित्रगीतैर्भुवि मोहितो भृशं दैत्येन्द्रमायामयताण्डवेन सः ॥ ५३ ॥
विमोहितं वीक्ष्य वृषस्थितं हरं नित्यं समुद्रः सह ताण्डवेन ।
गीतेन वाद्येन च नृत्यलीलया ननाद रूपी तरसा विमोहितुम् ॥ ५४ ॥
जन्तून्क्षिप्त्वोदधौ तांश्च सहस्रं स ततोत्सवः ।
क्व च ता देवताः सर्वाः क्व नन्दिप्रमुखा गणाः ॥ ५५ ॥

अपि त्वं माननीयोऽसि मोहितो दैत्यमायया।
किमद्य शम्भो ! भगवन्नुपेक्ष्ये उदीर्य चक्रं जठरस्थितं च ॥ ५६ ॥
वधाय चास्यैव कृतं महेश ! जालन्धरं संहरते न चाजौ।
इति कृष्णस्य वचनात्तत्स्मृत्वाऽऽत्मानमीश्वरम् ॥ ५७ ॥

आरुह्य वृषभं शीघ्रमाजगाम महारणम्। तमागतं शिवं दृष्ट्वा सर्वसैन्यसमावृतः ॥
रुरोध समरे राजन्क्रुद्धो जालन्धरोऽसुरः। हरस्य कुपितस्यासीत्सृष्टिसंहारकारकम्
रूपं तृतीयनेत्राग्नौ दानवाः शलभा यथा। रूपं दृष्ट्वा भगवतो रौद्रज्वालामतं नृप ! ॥
शुम्भादयस्तदा दैत्या राहुप्रभृतयश्च ये। रुद्रं निरीक्ष्य संत्रस्ताः पातालं विविशुर्भयात्

सेना भटाननेकांश्च हतान्दृष्ट्वा महामृधे।
शुम्भादीन्हतशेषांस्तान्दृष्ट्वाऽऽत्मानं पलायितान् ॥ ६२ ॥
तदा जालन्धरः सङ्क्रुद्ध एको गिरिरिव स्थितः।
परमार्थं रुद्ररूपं हृष्टः साक्षाद्विलोकयन् ॥ ६३ ॥

ततो जालन्धरः प्राह महादेवं प्रहस्य च। रूपं संहर येन त्वं दहसे सचराचरम् ॥ ६४ ॥
शस्त्रेण कुरुसंग्रामं त्यक्त्वा योगबलं निजम्। इति जालन्धरवचः श्रुत्वोवाच ततः शिवः
वरं वरय दैत्येश प्रीतोऽस्मि तव कर्मणा। ईदृक्षमपि मद्रूपं दृष्ट्वा यन्निर्भयोऽधुना
अपि ब्रह्माण्डमखिलं मद्रूपस्यास्य दानव !। तेजसोवीक्षणेनालं तत्र त्वमसि निर्भयः

नारद उवाच।

इति शम्भोः प्रसादं च मत्वा संसारनिःस्पृहः।
जालन्धरो हराद्वव्रे मुक्तिं सायुज्यतां पराम् ॥ ६८ ॥

श्रीमहादेव उवाच।

दिव्यं देहमिदं दैत्य ! भोगसिद्धियुतं तव। वृन्दामनोहरं रम्यमिहस्थं कालमश्नुते ॥
मुहूर्तं परमात्मानं तमेकाकिनमव्ययम्। अबुद्ध्वा त्यजसे मूर्ख कथं त्वंमुक्तिमिच्छसि
वृन्दा तव प्रिया राज्ञी हृता सा योगमायया। ब्रह्मस्वरूपं विज्ञाय प्राप्तातत्परमं पदम्
इदानीं दुर्ल्लभा सा च तत्पदं चैव दुर्ल्लभम्। स्वर्गापवर्गयोर्मध्ये संसारे वरमाप्नुहि

जालन्धर उवाच ।

देवमुक्तिपदं लभ्यं कृतकृत्येन केनचित् । इदानीं कृतकृत्योऽस्मि यस्त्वां पश्येत्वया हतः

शिव उवाच ।

मत्स्थानं परमं क्षेत्रं यदि त्वं गन्तुमुत्सुकः । तर्हि मां कोपयस्वाशु दैत्यं हत्वाद्दृढैःशरैः

ततोऽहं त्वां हनिष्यामि मत्स्थानं यास्यसेऽनघ !।

महेश्वरवचः श्रुत्वा प्राह जालन्धरः शिवम् । त्वयि सर्वजगत्पूज्ये पूर्वं न प्रहराम्यहम्

नारद उवाच ।

एवमुक्तो जघानाशु सिन्धुजं विशिखैः शिवः ।

ते शराः सिन्धुपुत्रस्य देहलग्ना विभान्ति च ॥ ७६ ॥

यथा लोहगिरिप्रान्ते वेणवो वह्निदीपिताः । जालन्धरो हरस्याङ्गं पूरयामास मार्गणैः

तैः शरैः शुशुभे रुद्रो यथा खं खेचराकुलम् । जालन्धरेशयोर्युद्धं तथा द्वन्द्वमभून्नृप ॥

हरादन्यो न हन्ताऽस्ति न सोढाऽन्योऽर्णवात्मजात् ।

गिरिकोटिसहस्रैस्तु तदा पृथ्वीपुटोद्धृतैः ॥ ७९ ॥

पूरयामास समरे सिन्धुजः पार्वतीपतिम् । ततः शूलेन निहतो रुद्रेणोरसि दानवः ॥

निःससार मुखात्तस्य ज्वरो जम्भो भयङ्करः । सचवीरज्वरोनामसिंहवक्त्रोनराकृतिः

दैत्यदेहाद्विनिष्क्रान्तं दृष्ट्वा सिंहमुखं ज्वरम् । हुङ्कारमकरोद्घोरं शरभस्तत्र निर्ययौ ॥

शिवस्य निःसृतेनासौ शरभेण निपातितः । अजेयं शङ्करंदृष्ट्वा वृषभेन्द्रेण संयुतम् ॥

आययौ वृषभाभ्याशे तरसासागरात्मजः । वृषं पुच्छे गृहीत्वा च भ्रामयामास चाम्बरे

जालन्धरो महाबाहुश्चिक्षेप हिमवद्गिरौ । ततस्त्रिशूलमत्युग्रं मुमोच गिरिजापतिः ॥

तद्धस्तेन गृहीत्वा च दैत्येशः शिवसन्निधौ । रथारूढो धनुर्गृह्य कालकेदारमब्धिजः

पूरयामास विशिखैः शिवमुर्वीतले स्थितम् । उग्रः शस्त्राञ्छराञ्छित्त्वाबाणैरथमचूर्णयत्

दशयोजनविस्तीर्णं सारथ्यश्वसमन्वितम् ।

जालन्धरोऽपि विरथो ह्यभ्यधावन्मृधे शिवम् ।। ८८ ॥

तयोर्युद्धमभूद्घोरमद्भुतं लोमहर्षणम् । तद्दृष्ट्वाऽकाण्डकल्पान्तशङ्कया तत्रसुः सुराः ॥

सर्वास्त्रैस्तावदन्योन्यं जघ्नतुर्भीमविक्रमौ ।
पद्भिः पृथ्वीं चालयन्तौ कम्पयन्तौ नभः स्वनैः ॥ ९० ॥
अथोत्कटं बलं दृष्ट्वा दानवेन्द्रस्य शङ्करः । शस्त्रजालं जहाराशु योगमायाबलेन सः ॥
ततः कोटिभुजो दैत्यो दंष्ट्राभीषणलोचनः । शस्त्रहीनोऽपि तरसा धावमानो हरं ययौ
विशालकरबन्धेन बबन्ध समरे शिवम् । ततस्तस्य कृपाणेन चिच्छेद करकाननम् ॥
सिन्धुजेन भुजाक्रान्तो रुद्रोऽभून्नीललोहितः ।
लीलया योधयामास रणेऽसौ सिन्धुनन्दनः ॥ ९४ ॥
छिन्नहस्तोऽपि युयुधे स्वर्भानुः शिरसा यथा । नियुद्धेन नदीसूनुस्तोषयामास शङ्करम्
परितुष्टोऽब्रवीच्छम्भुर्वरं वरय दुर्लभम् । जालन्धरेण सोऽप्युक्तस्त्वं मे देह्यात्मनःपदम्
ममदोःशस्त्रहीनस्य नावज्ञां कर्तुमर्हसि । शीघ्रं प्रयच्छमे सिद्धिं नोचेत्त्वां संहराम्यहम्
इत्युक्त्वा स भुजो भूत्वा जघ्ने तं मुष्टिनोरसि ।
ततः सुदर्शनं चक्रं पुरा यन्निर्मितं स्वयम् ॥९८॥
मुखादुद्गीर्य तद्धस्ते गृहीत्वाऽतोलयद्रुषा । सूर्यकोटिसहस्राभं ग्रसन्तं सचराचरम् ॥९९
तेन चक्रेण चिच्छेद शिरो जालन्धरस्य च । ततस्तच्छीर्षमुत्प्लुत्य गगने शतयोजनम्
दंष्ट्राशतकरालास्यं स्वर्भूमिनयनं च यत् । व्याघ्रगत्या ततो यातं सदनं ब्रह्मणो नृप ॥
भूयः स्वर्गे ततो दृष्ट्वा मृडः शीर्षमधावत । स्रवत्तद्रुधिरं भूरि प्रकुर्वद्भैरवस्वनम् ॥१०२
ततो दिशः प्रनष्टास्ता गगनं विलयं गतम् ।
न तेजसां प्रकाशोऽस्ति चचाल वसुधा भयात् ॥ १०३ ॥
आपतन्निजघानाशु रुद्रश्चक्रेण तच्छिरः । द्विधा भूत्वाऽथ राजेन्द्र ! पपात हिमवद्गिरौ
ततो जालन्धरस्याशु शिरसः शकले किल । विशतः सर्वभूतानां पश्यतांस्म वृषाकपौ
तस्य कण्ठात्समुद्भूता दैत्याः शतसहस्रशः । ते हतास्तेन चक्रेण कपर्दिकरशालिना ॥
जालन्धरकबन्धं तन्ननर्त रुधिरारुणम् । पुनः पुनः समुद्भूतास्तस्य कण्ठात्तु दानवाः
पुनः पुनःर्बलवता छिन्नाश्चक्रेण शम्भुना । मेदसा सिन्धुपुत्रस्य पूरिता सकला मही ॥
मेदिनी मेदसैवैषा ख्यातिं प्राप्ता तु पार्थिव ! ।

यत्र दैत्यवरस्यास्य शोणितं शैलतां गतम् ॥१०९॥
कैलासस्योत्तरे भागे तत्राभूच्छोणितं पुरम् ।
अथ मांसचयान्दृष्ट्वा सर्वतो व्याप्य तिष्ठतः ॥ ११० ॥
तदा सस्मार देवेशश्चतुःषष्टिगणं रणे । विज्ञानस्मरणाद्देव्यः संप्राप्ताः शङ्करान्तिकम्
कृताञ्जलिपुटाः प्रोचुः शिव ! किं करवामहे ॥ ११२ ॥

महादेव उवाच ।

य एते दैत्यमांसस्य राशयो गिरिसन्निभाः । भक्षयध्वं युताः शीघ्रं दत्तानुज्ञामयातुवः
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ।
वाराही चैव माहेन्द्री सर्वाः स्वगणशोभिताः ॥ ११४ ॥
एवं शङ्करनिर्दिष्टा देव्यस्तामांससंचयान् । क्रूरेणचक्षुषाऽऽलोक्यनिन्युश्चादर्शनं क्षणात्
अथ जालन्धरवपुः क्षीणं क्रान्तं तु शक्तिभिः ।
ताभिर्ग्रस्ते शरीरे तु तस्य देहाद्विनिःसृता ॥ ११६ ॥
प्रभा सा शङ्करं प्राप्ता जगामादर्शनं क्षणात् । तत्तेजः सूर्यसङ्काशं लयं प्राप्तं महेश्वरे ॥
एवं सविलयं प्राप्तस्त्रिदशारिस्त्रिलोचनात् । वृणुध्वं च वरं सर्वाः प्रीतः प्राहमहेश्वरः ॥
तदा ताः सर्वयोगिन्यः पप्रच्छुर्जगदीश्वरम् । मर्त्यलोकेषु ये लोकाभोगमोक्षवरेप्सवः
पूजयिष्यन्ति ते नित्यं स्वगृहे योगिनीगणम् ।
तत्तेषां वाञ्छितं सर्वं सिध्यतां त्वत्प्रसादतः ॥ १२० ॥

महादेव उवाच ।

यः कश्चित्पूजयेन्नित्यं भक्तिभावसमन्वितः । युष्मद्गणं च तस्याहंवरदोऽस्मिधरातले
मद्भक्तः केशवस्यापि द्वेष्टि यो योगिनीगणम् । भैरवोऽहं तदातस्यहरिष्ये सुकृतं कृतम्
इति दत्तवरा हृष्टा योगिन्यो विभुना मृधे । अत्रान्तरे भवानीं तां सस्मार वृषभं हरः
स्मृतमात्रा पार्वती सा वृषभश्चागमत्क्षणात् । सखीगणसमायुक्ता संप्राप्ताहरवल्लभा
संत्यक्त्वा भ्रामरीं मूर्तिं हरस्यार्द्धं समारुहत् । गिरिजासहितो राजन्महेशोमुमुदे ततः
योगिनीः प्रत्युवाचेदं पिबध्वं रुधिरं नृषु ।

जालन्धरकबन्धस्थं ताः श्रुत्वा जहृषुर्भृशम् ॥ १२६ ॥
मांसमेदो ह्यसृक्पीत्वा योगिन्यो ननृतुर्मुदा ।
ततो हरः प्रसन्नोऽभूत्तासां क्रीडनवीक्षणात् ॥ १२७ ॥
स्वयं च भैरवं रूपं कृत्वा तन्मध्यगः पपौ ।
तीक्ष्णदंष्ट्रा महाकाकास्तदाऽऽसन्योगिनीगणाः ॥ १२८ ॥
ग्रसन्तोऽद्यापि मांसानि काले चापि पिबन्त्यसृक् ।
तेन जालन्धरो दैत्यो नोत्तिष्ठति रणे हतः ॥ १२६ ॥
ततस्तत्र समाजग्मुर्ब्रह्माद्या देवता गणाः । ऋषयो मरुतो देवाः स्तुवन्तिस्म महेश्वरम्
दिशः प्रसेदुः सुरभिर्ववौ मरुद्दिवः प्रपेतुर्भुवि पुष्पवृष्टयः ।
कृताभिषेकस्य च तस्य निःस्वनान्संनादिता दुन्दुभयोऽपि चक्रिरे ॥१३१॥
उपरि परिमलान्धैः सुस्वरं संपतद्भिर्मधुकरनिकुरम्बैरुह्यमाना भरेण ।
अविरलमधुधारासारसंसिक्तभूमिः सदसि सुरविमुक्ता प्रापतत्पुष्पवृष्टिः ॥
हते तदा सिन्धुसुते हरेण नाराचघातैस्त्रिजगत्तदा बभौ ।
प्रसूनवृष्टिर्ननृतुस्तदाऽङ्गना जगुश्च यक्षाः सुरकिन्नराद्याः ॥ १३३ ॥
शम्भुर्वैरिजयोत्थितेन यशसा स्फाराङ्ककीर्तिर्गिरि-
स्वं भेजे सुरसिद्धचारणगणैः संस्तूयमानः सदा ।
गौरी चापि जगाम चाशु गिरितः श्वेतं सखीसंवृता,
संचक्रुस्त्वभिसेचनं सुमनसां वर्षेण देवाङ्गनाः ॥ १३४ ॥
देवोऽसौ करुणामयः सुरगणान्स्वे स्वे पदे स्थापय-
न्प्रादादन्यदपि स्वकं वसु ततो ज्ञात्वा पतिः शङ्करः ।
किं वक्तव्यमतः परं यदि भवेदीशानुकम्पा परा,
कोऽयं वा त्रिदिवो धरातलमिदं स्यादात्मसात्सर्वतः ॥१३५॥
देवाः स्वराज्यमासाद्य यथा पूर्वं चकाशिरे ।
बुभुजुर्यज्ञभागांस्ते लोकपालत्वमाश्रिताः ॥ १३६ ॥

नारद उवाच।

इति जालन्धरस्योक्तं यथावदनुपूर्वशः । चरितं लोकवीरस्य राजन्नत्यद्भुतं तव ॥१३७॥

त्रिष्णुस्त्यजति नाद्यापि क्षीराब्धिं यद्वशो नृप ! ।
सर्वोऽपि भुङ्क्ते स्वं कर्म कर्म तद्विद्ध्यसंशयम् ॥ १३८ ॥
तुभ्यं दुःखनिरासाय प्रोक्तमाख्यानमुत्तमम् ।
यावद्देहोऽस्ति कर्माणि सुखदुःखानि कर्मतः ॥ १३९ ॥

देही भुङ्क्ते वशोराजस्त्राणं न ज्ञानतः परम् । कृष्णादीनां देहबन्धे सुखदुःखादिवर्तते
तत्रेतरेषां किं वाच्यं ये वैराग्यपराङ्मुखाः । ज्ञात्वेद्दशीं कर्मगतिंसर्वेभ्यो बलवत्तमाम्
धीरो भव प्रतीक्षस्व शुभकर्मागमं पुनः । शत्रूञ्जित्वा तु समये स्वं राज्यं पुनराप्स्यसि
इतिहासमिमं श्रुत्वा न दुःखैः परिभूयते । धर्मार्थकाममोक्षाश्च यथावच्चात्र कीर्त्तिताः

स्वर्ग्यं पापहरं पुण्यं शोकमोहविनाशनम् ।
ब्राह्मणो ज्ञानमाप्नोति राज्यं प्राप्नोति क्षत्रियः ॥ १४४ ॥
वैश्यश्च बह्वीं संपत्तिं श्रुत्वा शूद्रः सुखं लभेत् ।
यो राजा भ्रष्टराज्योऽपि रतः सन्नेव सत्पथि ॥ १४५ ॥

सराज्यं पुनराप्नोति श्रवणान्नित्यमस्यतु । आकर्ण्यैतत्सतां राजञ्छ्राव्यमन्यन्नरोचते
कलं च कोकिलालापं रूक्षं ध्वाङ्क्षरुतं यथा । आख्यानमेतदनघं श्रुत्वा सज्जनहृत्प्रियः
हिरण्यतिलवस्त्राद्यैर्धेनुभूमिप्रदानतः । संतोषयेद्वाचकं तु तस्मिंस्तुष्टे फलं लभेत् ॥
देवताश्च प्रसीदेयुरर्चिते वाचके गुरौ । अन्नदानानि दद्याच्च ब्राह्मणेभ्यः प्रपूजयेत् ॥

जायते विजयी नित्यं पुत्रपौत्रसमृद्धिमान् ।
जायते विष्णुलोके यः शृणोत्याख्यानमुत्तमम् ॥ १५० ॥

इति व्याजेन भोभूप तुलस्युत्पत्तिकारणम् । ये शृण्वन्ति नरश्रेष्ठा न तेषांपातकं क्वचित्
तुलसीमाहात्म्यमिदं पवित्रं पापनाशनम् । श्रुत्वा तु लभते मोक्षमुक्त्वा चैव न संशयः
स्वगृहे रोपिता चैव तुलसी पापनाशिनी । दर्शनाद्ब्रह्महत्याऽपि नश्यते नात्र संशयः
कार्त्तिके चैव माघेतु तुलस्या पूजयेद्धरिम् । वैशाखे तु विशेषेण पूजनं च हरेः स्मृतम्

एकेनैव प्रदक्षिणेन सकलं पापं गतं वै सदा,
ये शूद्रा भुवि सन्ति दाननिरताः कालेन शुद्धिं गताः।
तेऽपि स्युः सुरपूजनार्हतनवः पापाच्च दूरं गता,
ये वै विष्णुजनाश्च दुर्लभतरा ह्यस्मिन्कलौ साम्प्रतम्॥ १५५॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे जालन्धरोपाख्याने श्रीजालन्धरवधनामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

त्रिंशोऽध्यायः

श्रीशैलमाहात्म्यवर्णनम्।

युधिष्ठिर उवाच।

श्रीशैलः पर्वतो रम्यः कुत्र तिष्ठति नारद। किं तत्र वर्त्तते तीर्थं कस्य देवस्य पूजनम्
कस्यां दिशि समाख्यातो लोकेषु च वदाधुना॥ १॥

नारद उवाच।

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि श्रीशैलं पर्वतोत्तमम्।
यं श्रुत्वा मुच्यते लोको बालहत्यादिपातकात्॥ २॥

तत्पर्वतवरं रम्यं मुनिभिश्चोपसेवितम्। नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम्॥
हंसकोकिलषट्पादमयूरध्वनिनादितम्। श्रीवृक्षैश्च कपित्थैश्च शिरीषै राजवृक्षकैः॥४
पारिजातकपुष्पैश्च कदम्बोदुम्बरैस्तथा। नानापुष्पैः सुगन्धाढ्यैर्वासितं तद्वनं गिरौ॥
सर्वाभिर्ऋषिपत्नीभिः सशिष्याभिः सुसेवितम्।
केचिदभ्यासयुक्ताश्च केचिद् व्याख्यानतत्पराः॥ ६॥

केचिदूर्ध्वभुजास्तत्र चाङ्गुष्ठाग्रैःस्थिताः परे। शिवध्यानरताः केचित्केचिद्विष्णुपरायणाः
निराहाराश्च केऽप्यत्र केचित्पर्णाशने रताः। कन्दमूलफलाहाराःकेचिन्मौनव्रताः स्थिताः

एकपादाः स्थिताः केचित्केचित्पद्मासने स्थिताः ।
केचिच्चैव निराहारास्तपस्तेपुः सुदुष्करम् ॥ ९ ॥
आश्रमाणि च पुण्यानि नद्यश्च विविधाः शुभाः ।
देवखातान्यनेकानि तडागानि बहूनि च ॥ १० ॥
पर्वतोऽयं महाराज दृश्यते किल सर्वतः । मल्लिकार्जुनको राजन्यत्र तिष्ठति नित्यशः
तच्चैवं शिखरं रम्यं पर्वतोपरि शोभितम् । शृङ्गदर्शनमात्रेण मुक्तिरेव न संशयः ॥१२
दक्षिणां दिशमाश्रित्य वर्त्तते पर्वतोत्तमः । अत्र गङ्गा महारम्या पातालाख्या समन्विता
तत्र च स्नानमात्रेण महापापैः प्रमुच्यते ।
श्रीशैलशिखरं दृष्ट्वा वाराणस्यां मृतौ ध्रुवम् ॥ १४ ॥
केदारे ह्युदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते । तापसानां महत्स्थानं योगिनां च तथैव च
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दर्शनं तस्य कारयेत् । अयं विज्ञानदेवोऽसौ महापातकनाशनः ॥
सिद्धं पुरं च नगरं रम्यं स्वर्गसुखावहम् । नित्यमप्सरसो यत्र (आ)यन्ति च रमन्ति च
अतः पर्वतराजोऽयं दर्शने सौख्यकारकः । तस्य तैर्दर्शनं कार्यं मुक्तिमिच्छन्ति ये नराः

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे
श्रीशैलोपाख्याने विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

हरिद्वारमाहात्म्यवर्णनम् ।

श्रीमहादेव उवाच ।

हरिद्वारं महापुण्यं शृणु देवर्षिसत्तम । यत्र गङ्गा वहत्येव तत्रोक्तं तीर्थमुत्तमम् ॥ १ ॥
यत्र देवा वसन्तीह ऋषयो मनवस्तथा । यत्र देवः स्वयं साक्षात्केशवो नित्यमाश्रितः
पुरा तु तत्र भोवत्स तीर्थं जातं महत्तदा । यस्य दर्शनमात्रेण दूरतो याति पातकम् ॥

यत्र गङ्गा महारम्या जाता पुण्यविशेषतः। विष्णुपादोदकी जाता चरणस्पर्शनात्ततः
भगीरथेन भोविद्वन्नानीता तत्र मार्गतः। उद्धारः पूर्वजानां तु कृतस्तेन महात्मना ॥

नारद उवाच।

कोऽयं देव! समाख्यातो भगीरथो महातपाः।
येन तीर्थं समानीतं लोकानां हितकारणात् ॥ ६ ॥

गङ्गातीर्थं महत्पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्। लोकाःसर्वे वदन्त्येवमेतत्तीर्थोत्तमोत्तमम् ॥
गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति

कथं तेन समानीता किं कार्यं वद सुव्रत! ॥ ६ ॥

महादेव उवाच।

येन गङ्गा यथाऽऽनीता गङ्गाद्वारेऽतिशोभने। तत्सर्वं संप्रवक्ष्यामि क्रमानुक्रमयोगतः ॥
पूर्वमासीद्धरिश्चन्द्रस्त्रैलोक्ये सत्यपालकः। रोहितस्तस्य पुत्रोऽभूदेको विष्णुपरायणः

तस्यापि च वृकः पुत्रो धर्मिष्ठः सत्पथे स्थितः।
तस्य पुत्रः सुबाहुश्च जातोऽस्मिन्वै कुले तदा ॥ १२ ॥
तस्य पुत्रो गरो नाम नात्यन्तं धार्मिकोऽभवत्।
कदाचित्कालयोगेन दुःखीजातोऽत्र कारणात् ॥ १३ ॥
राजा प्रच्यावितो राज्याल्लोकैश्चाधर्मकारणात्।
स्वकुटुम्बं गृहीत्वा तु गतोऽसौ भार्गवाश्रमे ॥ १४ ॥

रक्षितो भार्गवेणाथ कृपया तत्र वै तदा। तत्र पुत्रो ह्यभूत्तस्य सगरो नाम वै द्विज! ॥
ववृधे चाश्रमे पुण्ये भार्गवेणाभिरक्षितः। उपवीतादिकं सर्वं क्षत्रियस्य तदा कृतम् ॥

शस्त्राणां च तथाऽभ्यासो वेदानां तु तथैव च।
आग्नेयास्त्रं ततो लब्ध्वा भार्गवात्सगरो नृपः ॥ १७ ॥

जघान पृथिवीं गत्वा तालजङ्घान्सहैहयान्। सशकान्पारदांश्चैव जघान स महातपाः

नारद उवाच।

माहात्म्यं सगरस्याथ वद शङ्कर विस्तरात्। सूर्यवंशी महाराज विख्यातःस महाबली

महादेव उवाच ।

गरस्य अस्मिं तात हृतं राज्यमभूत्किल । हैहयैस्तालजङ्घाद्यैःशकैःसार्द्धं च नारद ! ॥
यवनाःपारदाश्चैव काम्बोजाःपह्लवास्तथा । एते पञ्चगणा ब्रह्मन्हैहयार्थे पराक्रमन् ॥
हृतराज्यस्ततो राजा सगरोऽथ वनं ययौ ।
पत्न्या चानुगतो दुःखी स वै प्राणानवासृजत् ॥ २२ ॥
तस्य पत्नी तु कल्याणी सगर्भा च व्रतान्विता ।
सपत्न्या भार्गवस्तस्य वृतःपूर्वं सुतेप्सया ॥ २३ ॥
सा तु भर्तृ चितां कृत्वा वने तं प्ररुरोदह । और्वस्तां वारयित्वा च गरपत्नीं तु नारद
न्यवेदयत तत्पुत्रं धर्मिष्ठं सात्त्विकं प्रियम् । निवेदिते ततो बाले मरणात्सा न्यवर्त्तत
ततो मासद्वये जाते ववृधे तस्य चाश्रमे । जातकर्मादि योगश्च और्वेण च तथाकृतः ॥
उपवीतादिकं सर्वं जातं तत्र महामुने ! । तत्र वेदादिकं सर्वं पठितं चौर्वयोगतः ॥२७
अध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽस्त्रं प्रत्यपादयत् । आग्नेयं तं महाभाग अमरैरपि दुःसहम्
स तेनास्त्रबलेनाजौ बलेन च समन्वितः । हैहयान्वै जघानाशु संक्रुद्धःस्वबलेन च ॥
आजहार च लोकेषु स च कीर्तिमवाप सः । ततःशकाः सयवनाःकाम्बोजाःपह्लवास्तथा
हन्यमानास्तदा ते तु वसिष्ठं शरणं ययुः ।
वसिष्ठोऽपि च तान्कृत्वा समये स महाद्युतिः ॥ ३१ ॥
सगरं वारयामास तेषांदत्त्वाऽभयं नृपः । सगरःस्वां प्रतिज्ञां तु गुरोर्वाक्यं निशम्य च
धर्मभ्रष्टांश्च विकृतांस्तान्कृत्वा पूरयत्स तु ।
अर्द्धं शकानां शिरसो मुण्डं कृत्वा व्यसर्जयत् ॥ ३३ ॥
यवनानां शिरःसर्वं काम्बोजानां तथैव च । पारदा मुण्डकेशाश्च पह्लवाःश्मश्रुरक्षकाः ॥
एवं विजित्य सर्वान्वै कृतवान्धर्मसङ्ग्रहम् । सर्वधर्मजयी राजा विजित्येमां वसुन्धराम्
अश्वं संस्कारयामास वाजिमेधाय पार्थिवः । तस्य चारयतःसोऽश्वःसमुद्रे पूर्वदक्षिणे
वेलासमीपेऽपहृतो भूमिंचैव प्रवेशितः । स तं देशं तदा पुत्रैःखानयामास सर्वतः ॥
नाश्वं प्रापुस्तदा ते वै खन्यमाने महार्णवे । तत्रैकमादिपुरुषं ददृशुस्ते त्वरान्विताः ॥

कपिलं जगतां नाथं चोरोऽयमिति चाब्रुवन् । तस्य चक्षुःसमुत्पन्नवह्निना [illegible]
दग्धाःषष्टिसहस्राणि चत्वारस्तेऽवशेषिताः । हृषीकेतुःसुकेतुश्च तथा धर्मरथोऽपरः
शूरःपञ्चजनश्चैव तस्य वंशकरा द्विज ! । प्रादाच्च तस्मै भगवान्हरिःपञ्चवरान्[illegible] ॥
यशं मोक्षं सुकीर्तिं च समुद्रं तनयं विभुः । सागरत्वं च लेभेऽथ कर्मणा तेन तस्य वै
तमाश्वमेधिकं सोऽश्वं समुद्रादुपलब्धवान् । आजहाराश्वमेधानां शतं स च महायशाः
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे नारदयुधिष्ठिर-
संवादे गङ्गोत्पत्तिप्रसङ्गेन सगरवृत्तान्तवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

गङ्गायाः पृथ्वीतले गमनवृत्तान्तवर्णनपुरःसरं हरिद्वारप्रशंसावर्णनम् ।

नारद उवाच ।

सगरस्यात्मजा वीराःकथं जाता महाबलाः । विक्रान्ताःषष्टिसाहस्रा विज्ञानेश्वर तद्वद

श्रीपार्वतीपतिरुवाच ।

द्वे पत्न्यौ सगरस्यास्तां तपसा दग्धकिल्बिषे ।
और्वस्ताभ्यां वरं प्रादात्तोषितो मुनिसत्तमः ॥२॥
षष्टिं पुत्रसहस्राणि एकावव्रे तरस्विनाम् । एकावंशधरं त्वेकं यथेष्टं वरशालिनी ॥३॥
तत्रैका सुषुवे तुम्ब्यां पुत्राञ्शून्यस्य(?) बहूनथ ।
ते तु सर्वेऽपि धात्रीभिर्वर्द्धितास्तु यथाक्रमम् ॥ ४ ॥
घृतपूर्णेषु कुम्भेषु कुमाराःप्रीतिवर्द्धनाः । कपिलानां तु दुग्धानि धात्र्यस्तानप्यपाययन्
तेनैव दुग्धयोगेन ववृधुस्ते महाबलाः । एकःपञ्चजनो नाम पुत्रो राजा बभूव ह ॥६॥
ततःपञ्चजनस्यासीदंशुमान्नाम वीर्यवान् । दिलीपस्तनयस्तस्य पुत्रोयस्य भगीरथः ॥
यस्तु गङ्गां सरिच्छ्रेष्ठामानिनाय च सुव्रतः । अब्धिमेनां समानीय दुहितृत्वमकल्पयत्

नारद उवाच ।

कथं गङ्गा समानीता किं तपस्तेन वै कृतम् । तत्सर्वं मे समाचक्ष्व सुव्रतोऽसिदयानिधे

महादेव उवाच ।

पूर्वजानां हितार्थाय गतोऽसौ हैमके गिरौ । तत्र गत्वा तपस्तप्तं वर्षाणामयुतं तदा

आदिदेवःप्रसन्नोऽभूद्योऽसौ देवो निरञ्जनः । तेन दत्ता इयं गङ्गा आकाशात्समुपस्थिता

तत्र विश्वेश्वरो देवो यत्र तिष्ठति नित्यशः ।

गङ्गां दृष्ट्वाऽऽगतां तेन गृहीता जाह्नवी तदा ॥ १२ ॥

जटाजूटे च संधार्य वर्षाणामयुतंस्थितम् । न निःसृता तदा गङ्गा ईशस्यैव प्रभावतः

विचारितं तदा तेन क्व गता मम मातृका । स ध्यानेन विचार्यैवं गृहीता चेश्वरेण तु

ततः कैलासमगमत्स तु भगीरथो नृपः । तत्र गत्वा मुनिश्रेष्ठ ! ह्यकरोदुल्बणं तपः ॥

आराधितस्तदा तेन दत्तवानहमापगाम् । एकं केशं परित्यज्य दत्ता त्रिपथगा तदा ॥

स गृहीत्वा गतो गङ्गां पाताले यत्र पूर्वजाः ।

अलकनन्दा तदा नाम गङ्गायाः प्रथमं स्मृतम् ॥ १७ ॥

हरिद्वारेयदाऽऽयाता विष्णुपादोदकी तदा । तदेव तीर्थं प्रवरं देवानामपि दुर्ल्लभम् ॥

तत्तीर्थे च नरः स्नात्वा हरिं दृष्ट्वा विशेषतः ।

प्रदक्षिणं ये कुर्वन्ति न चैते दुःखभागिनः ॥ १९ ॥

ब्रह्महत्यादि पापानां राशयःसन्त्यनेकशः । विलयं यान्ति ते सर्वे हरेर्दर्शनतःसदा ॥

एकदा केशवस्थाने हरिद्वारे ह्यहंगतः । तस्मात्तीर्थप्रभावाच्च जातोऽहंविष्णुरूपवान् ॥

ये गच्छन्ति नरश्रेष्ठास्ते वै यान्ति ह्यनामयम् । चतुर्भुजास्तु ते लोकानरानार्यश्च सर्वशः

वैकुण्ठं यान्ति ते सर्वे हरेर्दर्शनमात्रतः । ममाप्यधिकतीर्थं तु हरिद्वारं सुशोभनम् ॥२३

तीर्थानां प्रवरं तीर्थं चतुर्वर्गप्रदायकम् । कलौ धर्मकरं पुंसां मोक्षदं चार्थदं तथा ॥

यत्र गङ्गा महारम्या नित्यं वहति निर्मला ।

एतत्कथानकं पुण्यं हरिद्वाराख्यामुत्तमम् ॥ २५ ॥

उक्तं च शृण्वतां पुंसां फलं भवति शाश्वतम् । अश्वमेधे कृते यागे गोसहस्रे तथैवच ॥

तत्पुण्यं लभते विद्वान्हरेर्दर्शनमात्रतः । गोहन्ता ब्रह्महा चैव ये चान्ये पितृघातकाः ॥२७
एवं विधानि पापानि बहून्यपि च वै द्विज । विलयं यान्ति सर्वाणि हरेर्दर्शनमात्रतः ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादे हरिद्वारमाहात्म्ये गङ्गोत्पत्तिपूर्वकं हरिद्वारमाहात्म्यं नाम
द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

गङ्गामाहात्म्यवर्णनम् ।

महादेव उवाच ।

गाङ्गं वक्ष्यामि माहात्म्यं यथोक्तं मुनिसत्तम ! ।
यस्य श्रवणमात्रेण अघं नश्यति तत्क्षणात् ॥ १ ॥
गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैपि । मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति
चरणाब्जसमुद्भूता गङ्गा नामेति विश्रुता ।
पापानां स्थूलराशीनां नाशिनी चेति नारद ! ॥ ३ ॥
नर्मदा सरयूश्चैव तथा वेत्रवती नदी । तापी पयोष्णी चन्द्रा च विपाशा कर्मनाशिनी
पुष्या पूर्णा तथा दीपा विदीपा सूर्यनन्दना । सहस्रवृषदानात्तु यत्फलं लभते ध्रुवम् ॥
तत्फलं समवाप्नोति गङ्गादर्शनतः क्षणात् । इयं गङ्गा महापुण्या ब्रह्मघ्नानां विशेषतः
तेषां निरययुक्तानां गङ्गा पापापहारिणी । चन्द्रसूर्योपरागे च यत्फलं विद्यतेऽनघ ! ॥
तत्फलं समवाप्नोत गङ्गादर्शनमात्रतः । यथा सूर्योदये तात तमो गच्छति दूरतः ॥८॥
तथा गङ्गाप्रभावेण विलयं याति पातकम् ।
मान्येयं सर्वदा लोके पवित्रा पापनाशिनी ॥ ९
कल्याणरूपा सततं विष्णुना निर्मिता पुरा । दिव्यरूपा तु जननी दीनानां पावनीस्मृता

देवानां च यथा विष्णुस्तथा गङ्गोत्तमा नदी ।
ये कुर्वन्ति नराः स्नानं माघमासे निरन्तरम् ॥ ११ ॥
न तेषां विद्यते दुःखं कल्पानां च शतत्रयम् । यत्र गङ्गा च यमुना यत्रचैव सरस्वती ॥
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मुक्तिभागी न संशयः ॥ १२ ॥
त्वद्वार्तां प्रियतो ब्रवीमि यदहं साऽस्तु स्तुतिस्ते प्रभो !
यद्भुञ्जे तव तन्निवेदनमथो यद्यामि सा प्रेष्यता ।
यच्छन्तः स्वपिमि त्वदङ्घ्रियुगले दण्डप्रणामोऽस्तु नः,
स्वामिन्यच्च करोमि तेन स भवान्विश्वेश्वरः प्रीयताम् ॥१३॥
दृष्टेन वन्दितेनापि स्पृष्टेन च धृतेन के । नरा येन विमुच्यन्तो तदेतद्यामुनं जलम् ॥
तावद् भ्रमन्ति भुवने मनुजा भवोत्थदारिद्र्यरोगमरणव्यसनाभिभूताः ।
यावज्जलं तव महानदिनीलनीलं पश्यन्ति नो दधति मूर्धसु सूर्यपुत्रि ! ॥१५
यत्संस्मृतिः सपदि कृन्तति दुष्कृतौघं पापावलीं जयति योजनलक्षतोऽपि ।
यन्नाम नाम जगदुच्चरितं पुनाति दिष्ट्या हि सा पथि दृशो भविताऽद्य गङ्गा
आलोकोत्कान्तितेन प्रमुदितमनसा वर्त्म यस्याः प्रयातं,
सत्यस्मिन्कृत्यमेतामथ प्रथमकृती जज्ञिवान्स्वर्गसिन्धुम् ।
स्नानं सन्ध्यानिवापः सुरयजनमपि श्राद्धविप्राशनाद्यं,
सर्वं सम्पूर्णमेतद्भवति भगवतः प्रीतिदं नातिचित्रम् ॥ १७ ॥
देवि त्वं तु परब्रह्म परमानन्ददायिनि । अर्घ्यं गृहाण मे गङ्गे पापं हर नमोऽस्तु ते ॥१८
साक्षाद्धर्मद्रवौघं मुररिपुचरणाम्भोजपीयूषसारं,
दुःखस्याब्धेस्तरित्रं सुरमनुजनुतं स्वर्गसोपानमार्गम् ।
सर्वांहोहारि वारि प्रवरगुणगणं भासि या संवहन्ती,
तस्यै भागिरथि श्रीमति मुदितमना देवि ! कुर्वे नमस्ते ॥ १९ ॥
स्वः सिन्धोदुरिताब्धिमग्नजनतासन्तारणिप्रोल्लसत्-
कल्लोलामलकान्तिनाशिततमःस्तोमे जगत्पावनि ! ।

गङ्गे ! देवि ! पुनीहि दुष्कृतभयक्रान्तं कृपाभाजनम् ।
मातर्मां शरणागतं शरणदे ! रक्षाथ भो भीषितम् ॥ २० ॥
हंहो मानसकम्पसे किमु सखे त्रस्तं भयान्नारका,
त्किं ते भीतिरितिश्रुतिदुं रितकृत्संजायते नारकी ।
मा भैषी श्रृणु मे गतिं यदि मया पापाचलस्पार्द्धिनी,
प्राप्ता ते निरयः कथं किमपरं किं मे न धर्मं धनम् ॥२१॥
सर्वेशादि प्रशंसामुदमनुभवितुं मज्जनं यत्र चोक्तं,
स्वर्नार्यो वीक्ष्य हृष्टा विबुधसुरपतिप्राप्तिसंभावनेन ।
नीरे श्रीजह्नुकन्ये यमनियमरताः स्नान्ति ये तावकीने,
देवत्वं ते लभन्ते स्फुटमशुभकृतोऽप्यत्र वेदाः प्रमाणम् ॥ २२ ॥
बुद्धे ! सद्बुद्धिरेवं भवतु तवसखे मानसे स्वस्ति तेऽस्तु,
आस्तां पादौ पदस्थौ सततमिहयुवां साधुदृष्टी च दृष्टी ।
वाणि ! प्राणप्रियेऽधिप्रकटगुणवपुः प्राप्नुहि प्राणपुष्टिं,
यस्मात्सर्वैर्भवद्भिः सुखमतुलमहं प्राप्नुयां तीर्थपुण्यम् ॥ २३ ॥
श्रीजाह्नवीरविसुतापरमेष्ठिपुत्रीसिन्धुत्रयाभरणतीर्थवरप्रयाग ! ।
सर्वेश ! मामनुगृहाण नयस्व चोर्ध्वमन्तस्तमो दशविधं दलयस्वधाम्ना ॥२४॥
वागीशविष्ण्वीशपुरन्दराद्याः पापप्रणाशाय विदांविदोऽपि ।
भजन्ति यत्तीमरनीलनीरं स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥ २५ ॥
कलिन्दजासङ्गमवाप्य यत्र प्रत्यग्गता स्वर्गधुनी धुनोति ।
अध्यात्मतापत्रितयं जनस्य स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥२६॥
श्यामो जटःश्यामगुणो वृणोति स्वच्छायया श्यामलया जनानाम् ।
श्यामः श्रमं कृन्ति यत्र दृष्टः स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥ २७ ॥
ब्रह्मादयोऽप्यात्मकृतिं विहाय भजन्ति पुण्यात्मकभागधेयम् ।
यत्रोज्झिता दण्डधरः स्वदण्डं स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥२८॥

यत्सेवया देव नृदेवतादि देवर्षयः प्रत्यहमामनन्ति ।
स्वर्गं च सर्वोत्तम भूमिराज्यं स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥ २९ ॥
पनांसि हन्तीति प्रसिद्धवार्ता नाम प्रतापेन दिशो द्रवन्ति ।
यस्य त्रिलोकी प्रतता यशोभिः स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥ ३० ॥
धत्तेऽभितश्चामरचारुकान्तिसितासिते यत्र सरिद्वरेण्ये ।
आद्यो वटश्छत्रमिवातिभाति स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥ ३१ ॥
ब्राह्मीनपुत्रीत्रिपथास्त्रिवेणीसमागमे साक्षतयागमात्रात् ।
यत्राप्लुतान्ब्रह्मपदं नयन्ति सतीर्थराजो जयति प्रयागः ॥ ३२ ॥
केषांचिज्जन्मकोटिर्व्रजति सुवचसा यामियामीति यस्मिन् ,
केषांचित्प्रोषितानां नियतमतिपतेद्वर्षवृन्दं वरिष्ठम् ।
यत्प्राप्तं भाग्यलक्ष्मैर्भवति भवति नो वासवाचामवाच्यो,
दिष्ट्या वेणीविशिष्टो भवति दृगतिथिः कस्प्रयागप्रयागः ॥३३॥
लोकानामक्षमाणां मखकृतिषु कलौ स्वर्गकामैर्जयस्तु-
त्यादिस्तोत्रैर्वचोभिः कथममरपदप्राप्तिचिन्तातुराणाम् ।
अग्निष्टोमाश्वमेधप्रमुखमखफलं सम्यगालोच्य साङ्गं
ब्रह्माद्यैस्तीर्थराजोऽभिमतद उपविष्टोऽयमेव प्रयागः ॥ ३४ ॥
मया प्रमादातुरतादि दोषतः सन्ध्याविधिर्नो समुपासितोऽभूत् ।
चेदत्र सन्ध्यां चरतोऽप्रमादतः सन्ध्यास्तु पूर्णाऽखिलजन्मनोऽपि मे ॥३५॥
अन्यत्रापि प्रगर्जन्महिमनितपसिप्रेमभिर्विप्रकृष्टै,
र्ध्यातः संकीर्तितो योऽभिमतपदविधाताऽनिशं निर्व्यपेक्षम् ।
श्रीमत्पांसु त्रिवेणीपरिवृढमतुलं तीर्थराजं प्रयागं,
गोलङ्कारप्रकाशं स्वयममरवरैश्चार्चितं तं नमामि ॥ ३६ ॥
अस्माभिः सुतपोऽन्यतत्तत्किमहो ऐज्यन्त किंवाध्वराः,
पात्रे दानमदायि किं बहुविधं किं वा सुराश्चार्चिताः ।

किं सत्तीर्थमसेवि किं द्विजकुलं पूजादिभिः सत्कृतं,
येन प्रापि सदाशिवस्य शिवदा सा राजधानी स्वयम् ॥ ३७ ॥
भाग्यैर्मेऽधिगता ह्यनेकजनुषां सर्वाघविध्वंसिनी;
सर्वाश्चर्यमयी मया शिवपुरी संसारसिन्धोस्तरी ।
लब्धं सज्जनुषः फलं कुलमलञ्चक्रे पवित्रीकृतः,
स्वात्मा चाप्यखिलं कृतं किमपरं सर्वोपरिष्टात्स्थितम् ॥ ३८ ॥
जीवन्नरः पश्यति भद्रलक्षमेवं वदन्तीति मृषा न यस्मात् ।
तस्मान्मया वै वपुषेदृशेन प्राप्ताऽपि काशी क्षणभङ्गुरेण ॥३९॥
काश्यां विधातुममरैरपि दिव्यभूमौ सत्तीर्थलिङ्गगणनार्चनतो न शक्या ।
यानीह गुप्तविवृतानि पुरातनानि सिद्धानि योजितकरः प्रणमामि तेभ्यः ॥ ४० ॥
किं भीत्या दुरितव्रजात्किमु मुदा पुण्यैरगण्यैः कृतैः,
किं विद्याभ्यसनान्मदेन जडता दोषाद्विषादेन किम् ।
किं गर्वेण धनोदयादधनता तापेन किं भोजनाः,
स्नात्वा श्रीमणिकर्णिकापयसि चेद्विश्वेश्वरो दृश्यते ॥ ४१ ॥
अल्पस्फीतिनिरामयाऽपि तनुता प्रव्यक्तशक्यात्मता-
प्रोत्साहाढ्यबलेन केवलमनो रागद्वितीयेन यत् ।
अप्राप्यापि मनोरथैरविषयास्वप्नप्रवृत्तेरपि-
प्राप्ता सापि गदाधरस्य नगरी सद्योऽपवर्गप्रदा ॥४२॥
मन्ये नात्मकृतिर्नपूर्वपुरुषप्राप्तेर्बलं चात्रय-
न्नापीदं स्वजनप्रमाणमचलं किं स्वापतापादिकम् ।
या दुष्प्रापगयाप्रयागयमुनाकाशीसुपर्वागमात्-
प्राप्तिस्तत्र महाफलो विजयते श्रीशारदानुग्रहः ॥ ४३ ॥
यः श्राद्धसमये दूरात्स्मृतोऽपि पितृमुक्तिदः ।
तं गयायां स्थितं साक्षान्नमामि श्रीगदाधरम् ॥४४॥

पन्थानं समतीत्य दुस्तरमिमं दूराद्दवीयस्तरं,
क्षुद्व्याघ्रतरक्षुकण्टकफणिप्रत्यर्थिभिः सङ्कुलम् ।
आगत्य प्रथमन्ययं कृपणवाग्याचेज्जनः कं परं,
श्रीमद्दुद्वारि गदाधर ! प्रतिदिनं त्वां द्रष्टुमुत्कण्ठते ॥ ४५ ॥
सर्वात्मन्निजदर्शनेन च गयाश्राद्धेन वै देवताः,
प्रीणन्विश्वमनीहवत्कथमिहौदासीन्यमालम्बसे ।
किं ते सर्वद निर्दयत्वमधुना किं वा प्रभुत्वं कलेः,
किं वा सत्त्वनिरीक्षणं नृषु चिरं किं वाऽस्य सेवारुचिः ॥ ४६ ॥

गदाधर ! मया श्राद्धं संचीर्णं त्वत्प्रसादतः । अनुजानीहि मां देव गमनाय गृहं प्रति ॥ चतुर्णां देवतानां च स्तोत्रं स्वर्गार्थदायकम् । श्राद्धकालेपठेन्नित्यं स्नानकालेतुयःपठेत् सर्वतीर्थसमं स्नानं श्रवणात्पठनाज्जपात् । प्रयागस्य च गङ्गाया यमुनायाःस्तुतेर्द्विज ॥

श्रवणेन विनश्यन्ति दोषाश्चैव तु कर्मजाः ॥ ४९ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादे गङ्गाप्रयागयमुनास्तुतिर्नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

प्रयागतीर्थमाहात्म्यवर्णनम् ।

महादेव उवाच ।

प्रयागतीर्थमाहात्म्यं प्रवक्ष्यामि यथाश्रुतम् । महादानपराः पुण्यकर्माणोयत्र सन्तिहि यत्र गङ्गा च यमुना यत्र चैव सरस्वती । तद्देवतीर्थप्रवरं देवानामपि दुर्लभम् ॥ २ ॥ ईदृशं त्रिषु लोकेषु भूतं न च भविष्यति । ग्रहाणां च यथा सूर्यो नक्षत्राणां यथाशशी तीर्थानामुत्तमं तीर्थं प्रयागाख्यमनुत्तमम् । प्रातःकाले तु भोविद्वन्प्रयागे स्नानमाचरेत्

महापापाद्विनिर्मुक्तः स याति परमं पदम् ।
देयं किंचिद्यथाशक्ति दारिद्र्याभावमिच्छता ॥ ५ ॥
यो नरस्तत्र गत्वा वै प्रयागे स्नानमाचरेत् । धनिको दीर्घजीवी च जायते नात्र संशयः
यत्र वटस्याक्षस्य दर्शनं कुरुते नरः । तेन दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्या विनश्यति ॥ ७ ॥
स चाक्षयवटः ख्यातः कल्पान्तेऽपि च दृश्यते ।
शेते विष्णुर्यस्य पत्रे अतोऽयमव्ययः स्मृतः ॥ ८ ॥
तत्र पूजां प्रकुर्वन्ति मानवा विष्णुवल्लभाः । सूत्रेणाच्छादितं कृत्वा पूजां चैव तु कारयेत्
माधवाख्यस्तत्र देवः सुखं तिष्ठति नित्यशः । तस्य वै दर्शनं कार्यं महापापैः प्रमुच्यते
यत्र देवाश्च ऋषयो मनुष्याश्चापि सर्वशः ।
स्वस्वस्थानं समाश्रित्य तत्र तिष्ठन्ति नित्यशः ॥ ११ ॥
गोघ्नो वापि च चाण्डालो दुष्टो वा दुष्टचेतनः ।
बालघाती तथाऽविद्वान्म्रियते तत्र वै यदा ॥ १२ ॥
स वै चतुर्भुजो भूत्वा वैकुण्ठे वसते चिरम् । प्रयागे तु नरो यस्तु माघस्नानं करोति च
न तस्य फलसङ्ख्यास्ति शृणु देवर्षिसत्तम । आपो नारा इति प्रोक्ताः सर्वलोकेषु शुश्रुम
तेन नारायणः प्रोक्तः स्नातानां भुक्तिमुक्तिदः ।
ग्रहाणां च यथा सूर्यो नक्षत्राणां यथा शशी ॥ १५ ॥
मासानां हि तथा माघः श्रेष्ठः सर्वेषु कर्मसु ।
मकरस्थे रवौ माघे प्रातःकाले तथाऽमले ॥ १६ ॥
गोःपदेऽपि जले स्नानं स्वर्गदं पापिनामपि ।
योगोऽयं दुर्लभो विद्वंस्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ १७ ॥
अस्मिन्योयत्नमापन्नःस्नायादपि दिनत्रयम् । पञ्च वा सप्तवाप्यत्रस्नानंकुर्वन्प्रयागजम्
चन्द्रवद्वर्धते सोऽपि कुले वाडवसत्तम । चराचराश्च ये जीवास्तथैव मनुजादयः॥१९॥
प्रयागं तीर्थमाश्रित्य वैकुण्ठं यान्ति तेऽचिरात् ।
ये वसिष्ठादयस्तत्र ऋषयः सनकादयः ॥ २० ॥

तेऽपि प्रयागजं तीर्थं सेवन्ते च पुनःपुनः। यत्र विष्णुश्च रुद्रश्च यत्रेन्द्रश्च तथा पुनः ॥
तेऽपि सर्वे वसन्तीह प्रयागे तीर्थसत्तमे। दानंतत्र प्रशंसन्ति नियमांश्च तथैव च ॥२२
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च पुनर्जन्म न विद्यते ॥ २३ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे प्रयागमाहात्म्ये चतुर्विंशोऽध्यायः २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

तुलसीशालग्राममाहात्म्यवर्णनम् ।

महादेव उवाच ।

श्रृणु नारद ! वक्ष्यामि माहात्म्यं तुलसीभवम् ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते पापादाजन्ममरणान्तिकात् ॥ १ ॥
पत्रं पुष्पं फलं मूलं शाखात्वक्स्कन्धसंज्ञितम् ।
तुलसीसंभवं सर्वं पावनं मृत्तिकादिकम् ॥ २ ॥
शरीरं दह्यते येषां तुलसीकाष्ठवह्निना । दत्त्वा च तुलसीकाष्ठं सर्वाङ्गेषु मृतस्य वै ॥
पश्चाद्यः कुरुते दाहंसोऽपि पापात्प्रमुच्यते । मरणे यस्य संप्राप्तं कीर्तनं स्मरणं हरेः ॥
तुलसीदारुणादाहो न तस्य पुनरावृत्तिः ।
यद्येकं तुलसीकाष्ठं मध्ये काष्ठशतस्य हि ॥ ५ ॥
दाहकाले भवेन्मुक्तिः कोटिपापयुतस्य च ।
गङ्गाम्भसाभिषेकेण यान्ति पुण्यानि पुण्यताम् ॥ ६ ॥
तुलसीकाष्ठमिश्राणि यान्ति दारूणि पुण्यताम् ।
तुलसीकाष्ठसंमिश्रा यावत्प्रज्वलते चिता ॥ ७ ॥
दह्यन्ति तस्य पापानि कल्पकोटिकृतानि वै । दह्यमानं नरं दृष्ट्वा तुलसीकाष्ठवह्निना

नयन्तितं विष्णुदूता न च वै यमकिङ्कराः । जन्मकोटिसहस्रैस्तु मुक्तोयाति जनार्दनम्
दह्यन्ते ये नरा लोके तुलसी काष्ठवह्निना ।
तान्विमानस्थितान्देवाः क्षिपन्ति कुसुमाञ्जलिम् ॥ १० ॥
नृत्यन्त्यप्सरसः सर्वा गीतं गायन्ति गायकाः ।
जायन्ते वीक्ष्य तं विष्णुः संतुष्टः शम्भुना सह ॥ ११ ॥
गृहीत्वा तं करे शौरिर्गृहं नीत्वाऽस्य चाङ्गतः ।
मार्जयेत्सर्वपापानि पश्यतां त्रिदिवौकसाम् ॥ १२ ॥
महोत्सवं कारयित्वा जयशब्दपुरःसरम् । ज्वलते यत्र चाज्येन तुलसीकाष्ठपावकः ॥
[अग्न्यगारे श्मशाने वा दह्यते पातकंनृणाम् । होमं कुर्वन्ति ये विप्रास्तुलसीकाष्ठवह्निना
सिक्थे सिक्थे तिले वापि अग्निष्टोमफलं लभेत् ।
यो ददाति हरेर्धूपं तुलसीकाष्ठसंभवम् ॥ १५ ॥
शतक्रतुसमं पुण्यं लभते गोशतं फलम् । नैवेद्यं पचते यस्तु तुलसीकाष्ठवह्निना ॥१६
मेरुतुल्यं भवेद्दत्तं तदन्नं केशवस्य हि । तुलसीपावकेनाथ यो दीपं कुरुते हरेः ॥ १७ ॥
दीपलक्षसहस्राणां पुण्यं स लभते फलम् । न तेन सदृशो लोके वैष्णवो भुवि दृश्यते
यः प्रयच्छति कृष्णस्य तुलसीकाष्ठचन्दनम् । स जायते कृपापात्रं विष्णोर्वाडवसत्तम
तुलसीदारुजातेन चन्दनेन कलौ हरिम् । विलिप्य भक्तितो नित्यं रमते हरिसन्निधौ
तुलसीपङ्कलिप्ताङ्गः कुरुते विष्णुपूजनम् ।
पूजाशतदिनैकाह्ना लभ्यते गोशतं फलम् ॥ २१ ॥
विलेपार्थे तु कृष्णस्य तुलसीकाष्ठचन्दनम् । मन्दिरे तिष्ठते यावत्तावत्पुण्यफलं शृणु ॥
तिलप्रस्थाष्टकं दत्त्वा यत्पुण्यंप्राप्नुयान्नरः । तत्फलंजायतेपुंसांप्रसादाच्चक्रपाणिनः
योददातिपितॄणां तु पिण्डे तुलसिसंभवम् । दलं संजायतेतृप्तिःपत्रे पत्रे शताब्दिका
तुलसीमूलमृद्भिश्च स्नानं कुर्याद्विशेषतः । तेन तीर्थे कृतं स्नानं यावच्चाङ्गे च मृत्तिका
तदीयया तु मञ्जर्या पूजनं च करोति यः । नानापुष्पैः कृता पूजा यावच्चन्द्रदिवाकरौ
यस्मिन्गृहेऽवतिष्ठेत तुलसीवृक्षवाटिका । दर्शनात्स्पर्शनाच्चैव ब्रह्महत्यादिपातकम् ॥

तत्सर्वं विलयं याति दर्शनेनैव नारद ! ॥ २७ ॥

महादेव उवाच ।

अथान्यत्ते प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकाग्रमानसः । न कस्यापि च कथितं शृणु देवर्षिसत्तम

यत्र यत्र गृहे ग्रामे वने वा तुलसी भवेत् ।

तत्र तत्र जगत्स्वामी प्रीतात्मा च वसेद्धरिः ॥ २६ ॥

गृहे तस्मिन्न दारिद्र्यं नायोगो बन्धुसम्भवः । न दुःखं नभयं रोगस्तुलसी यत्रतिष्ठति
सर्वत्र तुलसी पुण्या पुण्यक्षेत्रे विशेषतः । संनिधौ तस्य देवस्य रोपणात्पृथिवीतले
तेषां विष्णुपदं नित्यं तुलस्या रोपणे कृते । उत्पातान्दारुणान्रोगान्दुर्निमित्तान्यनेकशः
तुलस्याभ्यर्च्चितो भक्त्या हन्तशान्तिकरो हरिः। तुलसीगन्धमाघ्राययत्र गच्छति मारुतः
दिशो दश च ताः पूता भूतग्रामश्चतुर्विधः । यस्मिन्गृहे मुनिश्रेष्ठ तुलसीमूलमृत्तिका
सर्वदा तत्र तिष्ठन्ति देवताश्च शिवो हरिः । तुलसीवनजा च्छाया यत्रयत्र भवेद्द्विज
तर्पणं कुरुते तत्र पितृणां दत्तमक्षयम् । तस्यमूले स्थितो ब्रह्मा मध्ये देवो जनार्दनः ॥

मञ्जर्यां वसते रुद्रस्तुलसी तेन पावनी ।

विना यस्तुलसीं कुर्यात्सन्ध्याकाले तु मार्जनम् ॥ ३७ ॥

तत्सर्वं राक्षसहृतं नरकं च प्रयच्छति । तुलसीपत्रगलितं तोयं यः शिरसा वहेत् ॥३८
गङ्गाफलमवाप्नोति शतधेनुफलं लभेत् । शिवालये विशेषेण रोपयेत्तुलसीं यदि ॥३९॥
बीजसङ्ख्यावसेत्स्वर्गे प्रत्येकं युगसङ्ख्यया । उमया तु पुरादेवि शङ्करार्थं हिमालये

रोपिताः शतवृक्षास्तु तुलस्याः प्रणतोऽस्म्यहम् ।

पर्वण्यवसरे यस्तु श्रावणे चाथ रोपयेत् ॥ ४१ ॥

संक्रान्तिदिवसे चैव तुलसी चातिपुण्यदा । तुलसीं पूजयेन्नित्यं :दरिद्र ईश्वरो भवेत्

सर्वसिद्धिकरा मूर्तिः कृष्णः कीर्तिं ददाति च ।

शालग्रामशिला यत्र तत्र संनिहितो हरिः ॥ ४३ ॥

तत्र स्नानं च दानं च वाराणस्याः शताधिकम् । कुरुक्षेत्रं प्रयागं च नैमिषारण्यमेव च

तस्य कोटिगुणं पुण्यं शालग्रामशिलार्चनात् ।

शालग्राममयी मुद्रा संस्थिता यत्र हि क्वचित् ॥ ४५ ॥
वाराणस्यां च यत्पुण्यं सर्वं तत्रैव तद्भवेत् । ब्रह्महत्यादिकं पापं यत्किंचित्कुरुते नरः
तत्सर्वं नाशयेदाशु शालग्रामशिलार्चनात् ॥ ४६ ॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादे तुलसीशालग्राममाहात्म्यं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

षड्विंशोऽध्यायः

तुलसीत्रिरात्रव्रतविधिमाहात्म्यवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

एवं तुलस्यामाहात्म्यंत्वत्प्रासादाच्छ्रुतं मया ।साम्प्रतंतु समाचक्ष्व त्रिरात्रंतुलसीव्रतम्

सदाशिव उवाच ।

श्रृणु विप्र महाबुद्धे व्रतमेतत्पुरातनम् । यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥
पुरा रथन्तरे कल्पे राजा ह्यासीत्प्रजापतिः । तस्यभार्या च विख्याता चन्द्ररूपा महासती
सा वै व्रतमिदं चक्रे सर्वकामफलप्रदम् । त्रिरात्रं तु व्रतं तस्या धर्मकामार्थमोक्षदम् ॥
सफलं जीवितं तेषां यैः श्रुतं तुलसीव्रतम् । कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु नवम्यां चैव नारद ॥
नियमस्थो व्रती तिष्ठेद्भूमिशायीजितेन्द्रियः । व्रतं त्रिरात्रमुद्दिश्यशुचिः संयतमानसः
स्वपेन्नियमपूर्वं तु तुलसीवनसंनिधौ । ततो मध्याह्नसमये नद्यादौ विमलेजले ॥ ७ ॥
स्नानं कृत्वा पितॄन्देवांस्तर्पयेद्विधिपूर्वकम् । सौवर्णं कारयेद्देवंलक्ष्म्यासह जनार्दनम्
वित्तशाठ्यं न कर्तव्यमात्मनः श्रेयमिच्छता । वस्त्रयुग्मं ततः कार्यं पीते शुक्ले च वाससी
नवग्रहाणामारम्भं शान्तिकं विधिपूर्वकम् । श्रपयित्वा चरुं तत्र वैष्णवं होममाचरेत्
द्वादश्यां देवदेवेशं पूजयित्वा प्रयत्नतः । अव्रणं शुद्धकलशं स्थापयेद्विधिपूर्वकम् ॥११॥
पञ्चरत्नसमोपेतं पल्लवैश्चौषधीयुतम् । तस्योपरि न्यसेत्पात्रे लक्ष्म्या सह जनार्दनम् ॥
स्थापयेत्तुलसीमूले मन्त्रैर्वेदपुराणकैः । पयसा केवलेनैव सिञ्चयेत्तुलसीवनम् ।

पञ्चामृतेन संस्नाप्य देवदेवं जगद्गुरुम् ॥ १३ ॥

योऽनन्तरूपोऽखिलविश्वरूपो गर्भोदके लोकविधिं बिभर्त्ति ।

प्रसीदतामेष स देवदेवो यो मायया विश्वकृदेष देवः ॥ १४ ॥

प्रार्थना मन्त्रः

आगच्छाच्युत देवेश तेजोराशे जगत्पते । सदैवतिमिरध्वंसी पाहि मां भवसागरात्

आवाहनमन्त्रः

पञ्चामृतेन सुस्नानं तथा गन्धोदकेन च । गङ्गादीनां च तोयेनस्नातोऽनन्तः प्रसीदतु ॥

स्नानमन्त्रः

श्रीखण्डागुरुकर्पूरं कुङ्कुमादिविलेपनम् । भक्त्या दत्तं मया देव लक्ष्म्या सह गृहाणवै ॥

विलेपनमन्त्रः

नारायण ! नमस्तेऽस्तु नरकार्णवतारण ! । त्रैलोक्याधिपते तुभ्यं ददामि वसने शुभे

वस्त्रमन्त्रः

दामोदर नमस्तेऽस्तु त्राहि मां भवसागरात् । ब्रह्मसूत्रं मया दत्तं गृहाण पुरुषोत्तम ! ॥

उपवीतमन्त्रः

पुष्पाणिचसुगन्धीनिमालत्यादीनिवैप्रभो । मयादत्तानिदेवेशप्रीतितः प्रतिगृह्यताम् ॥

पुष्पमन्त्रः

नैवेद्यं गृह्यतां नाथभक्ष्यभोज्यैः समन्वितम् । सर्वैरसैः सुसंपन्नं गृहाण परमेश्वर ! ॥

नैवेद्यमन्त्रः

पूगानि नागपत्राणि कर्पूरसहितानि च । मया दत्तानिदेवेश ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥

ताम्बूलमन्त्रः

धूपंदत्त्वाऽगुरुं भक्त्या गुग्गुलं घृतमिश्रितम् । एवं पूजा प्रकर्त्तव्या घृतेन दीपमाचरेत्

विविधं मुनिशार्दूल दीपं कृत्वा समाहितः । लक्ष्मीनारायणस्याग्रे तुलसीवनसन्निधौ

अर्घं तत्र प्रदातव्यं देवदेवाय चक्रिणे । नवम्यां नालिकेरेण पुत्रार्थमर्घमुत्तमम् ॥२५ ॥

दशम्यां बीजपूरं तु धर्मकामार्थसिद्धये । एकादश्यां दाडिमेन दारिद्र्यं नाशयेत्सदा ॥

सप्तधान्येन संयुतं वंशपात्रेण नारद । फलसप्तकसंयुक्तं पत्रं पूगसमन्वितम् ॥ २७ ॥
वस्त्रेणाच्छादितं कृत्वा देवस्याग्रे निवेदयेत् । मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्र शृणुष्वैकाग्रमानसः
तुलसीसहितो देव सदा शङ्खेन संयुतम् । गृहाणार्घं मया दत्तं देवदेव ! नमोऽस्तु ते ॥

अर्घमन्त्रः

एवं संपूज्य देवेशं लक्ष्म्या सह जनार्दनम् । प्रार्थयेद्देवदेवेशं व्रतसंपूर्तिसिद्धये ॥ ३० ॥
उपषितोऽहं देवेश कामक्रोधविवर्जितः । व्रतेनानेन देवेश त्वमेव शरणं मम ॥ ३१ ॥
गृहीतेऽस्मिन्व्रते देव ! यदपूर्णं कृतं मया । सर्वं तदस्तु संपूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ! ॥३२
नमः कमलपत्राक्ष नमस्ते जलशायिने । इदं व्रतं मया चीर्णं प्रसादात्तव केशव ! ॥३३॥
अज्ञानतिमिध्वंसिन्व्रतेनानेन केशव । प्रसादसुमुखो भूत्वा ज्ञानदृष्टिप्रदो भव ॥ ३४ ॥

ततो जागरणं रात्रौ गीतपुस्तकवाचनम् ।
नादनृत्यकलाभिज्ञैः पुण्याख्यानैः सुशोभनैः ॥ ३५ ॥
विभातायां तु शर्वर्यामुदिते विमले रवौ ।
निमन्त्र्य ब्राह्मणान्भक्त्या श्राद्धं कुर्याच्च वैष्णवम् ॥ ३६ ॥
भोजयित्वा यथा कामं पायसेन घृतेन च ।
ताम्बूलपुष्पगन्धादिदक्षिणाभिः समन्वितम् ॥ ३७ ॥
उपवीतानि वासांसि दत्त्वा मालां च चन्दनम् ।
दाम्पत्यत्रितयं भोज्यं वस्त्र(स्त्र) भूषणकुङ्कुमैः ॥ ३८ ॥

वंशपात्राणि शक्त्या च विरूढैः परिपूरयेत् । नालिकेरैश्च पक्वान्नैर्वस्त्रैश्च विविधैः फलैः

सपत्नीकं गुरुं तत्र वस्त्राणि परिधापयेत् ।
विभूषणानि दिव्यानि गन्धमाल्यैः प्रपूजयेत् ॥ ४० ॥
सर्वोपस्करसंयुक्तां गां दद्याच्च पयस्विनीम् ।
सदक्षिणां सवस्त्रां च तन्मे निगदतः शृणु ॥ ४१ ॥

सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं स्नातानां जायते नृणाम् । तत्फलं स लभेत्सर्वं देवदेवप्रसादतः ॥

भुक्त्वा च विपुलान्भोगान्सर्वकामान्मनोरमान् ।

वैष्णवं पदमाप्नोति अन्ते विष्णोः प्रसादतः ॥ ४३ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादे तुलसीत्रिरात्रव्रतवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

———

सप्तविंशोऽध्यायः

दानेषु मुख्यस्यान्नदानस्यप्रशंसावर्णनम् ।

नारद उवाच ।

गुणाधिकेभ्यो विप्रेभ्यो दातुकामोऽपि मानवः ।
कानि कानि च लोकेऽस्मिन्दद्यात्सर्वं तथा वद ॥ १ ॥

महादेव उवाच ।

लोके तत्त्वं हि संज्ञाय शृणु देवर्षिसत्तम । अन्नमेव प्रशंसन्ति सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम् ॥२॥
तस्मादन्नं विशेषेण दातुमिच्छन्ति मानवाः । अन्नेन सदृशं दानं न भूतं न भविष्यति
अन्नेन धार्यते विश्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् । अन्नमूर्जस्करं लोके प्राणाह्यन्ने प्रतिष्ठिताः

दातव्यं भिक्षते चान्नं ब्राह्मणाय महात्मने ।
कुटुम्बं पीडयित्वाऽपि आत्मनो भूतिमिच्छता ॥ ५ ॥

नारदासौ विदांश्रेष्ठो यो दद्यादन्नमर्थिने । ब्राह्मणायार्तरूपाय पारलौकिकमात्मनः ॥
आत्मीयभूतिमन्विच्छन्काले द्विजमुपस्थितम् । श्रान्तमध्वनिवर्तन्तं गृहस्थं गृहमागतम्

अन्नदः प्राप्नुते विद्वन्सुशीलो वीतमत्सरः ।
क्रोधमुत्पतितं हित्वा दिवि चेह च यत्सुखम् ॥ ८ ॥

न चाभिनिन्देदतिथिं न द्रुह्याच्च कथञ्चन । ब्रह्मविदेऽर्पयेदन्नं तच्च दानं विशिष्यते
श्रान्तायादृष्टपूर्वाय अन्नमध्वनिवर्तिने । यो दद्यादपरिक्लिष्टस्सर्वधर्ममवाप्नुयात् ॥१०॥
पितृदेवांस्तथा विप्रानतिथींश्च महामुने । यो नरःप्रीणयेतान्नैस्तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥

कृत्वाऽपि सुमहत्पापं यो दद्यादन्नमर्थिने । ब्राह्मणाय विशेषेण स तु पापैः प्रमुच्यते
ब्राह्मणेष्वक्षयं दानमन्नं शूद्रे महत्फलम् । अन्नदानं च शूद्रे च ब्राह्मणे च विशिष्यते ॥
न पृच्छेद्गोत्रचरणं न च स्वाध्यायमेव च । भिक्षुको ब्राह्मणो ह्यत्र दद्यादन्नं प्रयाति च
अन्नदस्यशुभा वृक्षाः सर्वकामफलान्विताः । संभवन्तीह लोकेच हर्षयुक्तास्त्रिविष्टपे

अन्नदानेन ये लोकास्ताञ्छृणुष्व महामुने ।
विमानानि प्रकाशन्ते दिवि तेषां महात्मनाम् ॥ १६ ॥
नानासंस्थानरूपाणि नानाकामान्वितानि च ।
सर्वकामफलाश्चापि वृक्षा भुवनसंस्थिताः ॥ १७ ॥

हेमवाप्यः शुभाः सर्वा दीर्घिकाश्चैव सर्वशः । घोषवन्ति च यानानिमुक्तान्यथ सहस्रशः

भक्ष्यभोज्यमयाः शैला वासांस्याभरणानि च ।
क्षीरं स्रवन्त्यः सरितस्तथैवाज्यस्य वापिकाः ॥ १९ ॥
प्रासादाः शुभ्रवर्णाभाः शय्याश्च कनकोज्ज्वलाः ।
तदन्नं दातुमिच्छन्ति तस्मादन्नप्रदो भवेत् ॥ २० ॥

एतेलोकाः पुण्यकृतामन्नदानं महाफलम् । तस्मादन्नं विशेषेणदातव्यं मानवैर्भुवि ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादेऽन्नदानप्रशंसा नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

पानीयदानादीनां प्रशंसावर्णनम् ।

महादेव उवाच ।

पानीयदानं परमं दानानामुत्तमं सदा । तस्माद्वापीश्च कूपांश्च तडागानि च कारयेत् ॥

अर्धं पापं संहरन्ति पुरुषस्य विकर्मणः ।

कूपाः प्रवृत्तपानीयाः सुप्रवृत्तस्य नित्यशः ॥ २ ॥

स च तारयते वंशं यस्य खातजलाशये । गावः पिबन्ति विप्राश्च साधवश्च नराःसदा

निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठति नारद ! । दुर्गं विषमकृच्छ्रं च न कदाचिदवाप्यते ॥

तडागानां च वक्ष्यामि कृतानां ये गुणाः स्मृताः ।

त्रिषु लोकेषु सर्वत्र पूजितो यस्तडागवान् ॥ ५ ॥

अथवा मित्रसदनं मित्रमैत्रीविवर्धनम् । कीर्तिसंजननं श्रेष्ठं तडागानां निवेशनम् ॥

धर्मस्यार्थस्य कामस्य फलमाहुर्मनीषिणः । तडागं सुकृतं देशे क्षेत्रमध्ये महाश्रयम् ॥

चतुर्विधानां भूतानां तडागस्योपलक्षयेत् ।

तडागानि च सर्वाणि दिशन्ति श्रेय उत्तमम् ॥ ८ ॥

देवा मनुष्या गन्धर्वाः पितरो नागराक्षसाः ।

स्थावराणि च भूतानि संश्रयन्ति जलाशयम् ॥ ६ ॥

वर्षाऋतौ तडागे तु सलिलं यत्र तिष्ठति । अग्निहोत्रफलं तस्य जायते नात्र संशयः ॥

हेमन्ते शिशिरे चैव सलिलं यस्य तिष्ठति । गोसहस्रफलं तस्य लभते नात्र संशयः ॥

वसन्तेऽपि तथा ग्रीष्मे सलिलं तिष्ठतेयदि । अतिरात्राश्वमेधाभ्यां फलमाहुर्मनीषिणः

अथैतेषां तु वृक्षाणां रोपणे च गुणाञ्छृणु । अतीतानागतौ चोभौ पितृवंशौ महामुने

तारयेद्वृक्षरोपी च तस्माद्वृक्षांस्तु रोपयेत् । पुत्रपौत्राभवन्त्येते पादपा नात्र संशयः

परलोकं गतः सोऽपि लोकानाप्नोति चाक्षयान् ।

पुष्पैः सुरगणान्सर्वान्पत्रैश्चापि तथा पितॄन् ॥ १५ ॥

छायया चातिथीन्सर्वान्पूजयन्ति महीरुहाः । किन्नरोरगरक्षांसि देवगन्धर्वमानवाः

तथा ऋषिगणाश्चैव संश्रयन्ति महीरुहान् । पुष्पिताः फलवन्तश्च तर्पयन्तीह मानवान्

इहलोके परे चैव पुत्रास्ते धर्मतः स्मृताः । तडागवृक्षरोपाश्च इष्टयज्ञाश्च ये द्विजाः ॥

एते स्वर्गान्नहीयन्ते ये चान्ये सत्यवादिनः । सत्यमेव परं ब्रह्म सत्यमेव परन्तपः ॥

सत्यमेव परो यज्ञः सत्यमेवपरं श्रुतम् । सत्यं देवेषु जागर्ति सत्यं च परमं पदम् ॥

तपो यज्ञाश्च पुण्यं च तथा देवर्षिपूजनम् ।

आद्यो विधिश्च विद्या च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥ २१ ॥
सत्यं यज्ञस्तथा दानं मन्त्रा देवी सरस्वती । व्रतचर्या तथा सत्यमोङ्कारः सत्यमेव च
सत्येन वायुरभ्येति सत्येन तपते रविः । सत्येन चाग्निर्दहति स्वर्गः सत्येन तिष्ठति
पूजनं सर्वदेवानां सर्वतीर्थावगाहनम् । सत्यं च वदते लोके सर्वमाप्नोत्यसंशयः ॥२४
अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् । सर्वेषां सर्वयज्ञानां सत्यमेव विशिष्यते ॥
सत्येन देवाः प्रीयन्ते पितरोऽप्यृषयस्तथा । सत्यमाहुः परं धर्मं सत्यमाहुः परंपदम्

सत्यमाहुः परं ब्रह्म तस्मात्सत्यं वदामि ते ।

मुनयः सत्यनिरतास्तपस्तप्त्वा सुदुष्करम् ॥ २७ ॥

सत्यधर्मरताः सिद्धास्ततः स्वर्गमितो गताः । अप्सरोगणसङ्घुष्टैर्विमानैः परितोवृताः
वक्तव्यं च सदा सत्यं न सत्याद्विद्यते परम् । अगाधे विपुलेसिद्धे सत्यतीर्थे शुचिह्रदे

स्नातव्यं मनसा युक्तैः स्नानं तत्परमं स्मृतम् ।

आत्मार्थे वा परार्थे वा पुत्रार्थे वाऽपि मानवाः ॥ ३० ॥

अनृतं ये न भाषन्ते तेनराः स्वर्गगामिनः । वेदायज्ञास्तथामन्त्राः सन्ति विप्रेषुनित्यशः

न भान्त्युज्झितसत्येषु तस्मात्सत्यं समाचरेत् ॥ ३१ ॥

नारद उवाच ।

तपसां मे फलं ब्रूहि पुनरेव विशेषतः । सर्वेषां चैव वर्णानां ब्राह्मणानां तपोबलम् ॥

महादेव उवाच ।

प्रवक्ष्यामि तपोऽध्यायं सर्वकामार्थसाधकम् । सुदुश्चरं द्विजातीनां तन्मे निगदतः शृणु
तपोहि परमं प्रोक्तं तपसा विन्दते फलम् । तपो रतोहि यो नित्यं मोदते सह दैवतैः॥

तपसा प्राप्यते स्वर्गस्तपसा प्राप्यते यशः ।

तपसा मोक्षमाप्नोति तपसा विन्दते महत् ॥ ३५ ॥

ज्ञानविज्ञानसंपत्तिः सौभाग्यं रूपमेव च । तपसा लभते सर्वं मनसा यद्यदिच्छति ॥
नातप्ततपसो यान्ति ब्रह्मलोकं कदाचन । यत्कार्यं किं चिदास्थाय पुरुषस्तप्यते तपः ॥
तत्सर्वं समवाप्नोति परत्रेह च मानवः । सुरापः परदारी च ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥३८॥

तपसा तरते सर्वं सर्वतश्च विमुच्यते ॥ अपि सर्वेश्वरः स्थाणुर्विष्णुश्चैव सनातनः ॥
ब्रह्मा हुताशनः शक्रो ये चान्ये तपसाऽन्विताः ।
षडशीति सहस्राणि मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥ ४० ॥
तपसा दिवि मोदन्ते समेता दैवतैः सह । तपसा प्राप्तवान्राज्यं शक्रः सर्वसुरेश्वरः ॥
तपसा पालयन्सर्वे स्वं स्वं लोकं च लोकपाः । सूर्याचन्द्रमसौ देवौ सर्वलोकहितेरतौ
तपसैव प्रकाशन्ते नक्षत्राणि ग्रहास्तथा । सर्वं च तपसाऽभ्येति सर्वं च सुखमश्नुते
तपस्तपति योऽरण्ये} वनमूलफलाशनः । योऽधीते श्रुतिमेवादौ समं स्यात्तपसा मुने ॥
श्रुतेरध्यापनात्पुण्यं यदाप्नोति द्विजोत्तमः । तदध्यायस्य जप्याच्च द्विगुणं फलमश्नुते
जगद्यथा निरालोकं जायते शशिभास्करौ । विना तथा पुराणं हि ध्येयमस्मान्महामुने
तप्यमानस्तपो ज्ञानं यो धारयति शाश्वतः ।
संबोधयति लोकं च तस्मात्पूज्यतमो गुरुः ॥ ४७ ॥
सर्वेषां चैव पात्राणां श्रेष्ठं पात्रं पुराणवित् । पतनात्त्रायते यस्मात्तस्मात्पात्रमुदाहृतम्
धनं धान्यं हिरण्यं वा वासांसि विविधानि च ।
ये यच्छन्ति सुपात्राय ते यान्ति च परां गतिम् ॥ ४९ ॥
गाश्चैव महिषीर्वापि गजानश्वांश्च शोभनान् ।
यः प्रयच्छति मुख्याय तत्पुण्यस्य फलं शृणु ॥ ५० ॥
अक्षयं सर्वलोकानां सोऽश्वमेधफलं लभेत् । महीं ददाति यस्तस्मै कृष्टांफलवतीं शुभाम्
स तारयति वै वंशान्दशपूर्वान्दशापरान् । विमानेन च दिव्येन विष्णुलोकं सगच्छति
न यज्ञैस्तुष्टिमायान्ति देवाः प्रोक्षणकैरपि । बलिभिः पुष्पपूजाभिर्यथा पुस्तकवाचनैः
विष्णोरायतने यस्तु कारयेद्धर्मपुस्तकम् । देव्याः शम्भोर्गणेशस्य अर्कस्य च तथापुनः
राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं प्राप्नोति मानवः ।
इतिहासपुराणाभ्यां पुण्यं पुस्तकवाचनम् ॥ ५५ ॥
सर्वान्कामानवाप्नोति सूर्यलोकं भिनत्ति सः ।
सूर्यलोकं च भित्त्वाऽसौ ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥ ५६ ॥

स्थित्वा कल्पशतान्यत्र राजाभवति भूतले। अश्वमेधसहस्रस्य यत्फलं समुदाहृतम् ॥
तत्फलं समवाप्नोति देवाग्रे यो जयं पठेत्। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्यं पुस्तकवाचनम् ॥

इतिहासपुराणाभ्यां विष्णोरायतने शुभम्।
नान्यत्प्रीतिकरं विष्णोस्तथाऽन्येषां दिवौकसाम् ॥ ५६ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे वृक्षप्रपासरोवरतपोऽध्ययनधर्मव्याख्यानमाहात्म्यं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

ऊनत्रिंशोऽध्यायः

इतिहासपुराणपठनप्रशंसावर्णने धरापालवृत्तान्तवर्णनम्।

महादेव उवाच।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। पुराणं परमं पुण्यं सर्वपापहरं शुभम् ॥ १ ॥
कुमारेण च लोकानां नमस्कृत्य पितामहम्। प्रोक्तं चेदं ममाख्यानं देवर्षे ब्रह्मसूनुना ॥

सनत्कुमार उवाच।

गतोऽहं धर्मराजानं द्रष्टुं संपूजितो मुदा।
श्रुतिभिः परया भक्त्या तेनोक्तोऽस्मि सुखासने ॥ ३ ॥

मया तत्रोपविष्टेन दृष्टं किंचिन्महाद्भुतम्। काञ्चनेन विमानेन वैडूर्यकृतवेदिना ॥ ४ ॥
मणिमुक्ताविचित्रेण किङ्किणीजालशोभिना। आगतं पुरुषं तत्र आसनाद्देवसत्तम ! ॥

ससंभ्रमं समुत्थाय दृष्ट्वा धर्मः स्वयं विभुः।
गृहीत्वा दक्षिणे पाणौ पूजितोऽर्घेण वै ततः ॥ ६ ॥

शिरस्याघ्राय देवेशः पुरः स्थाप्यः ततः परम्। पूजयित्वा तु तं धर्म इदंवाक्यमुवाच ह
सुस्वागतं धर्मदर्शिन्प्रीतोऽस्मिदर्शनात्तव। समीपेमम तिष्ठस्व किंचिज्ज्ञानं वदस्व मे

पुनर्यास्यसि तत्स्थानं यत्र ब्रह्मा व्यवस्थितः ।
इत्युक्ते च तदन्यो विमानवरमास्थितः ॥ ९ ॥

आगतः पुरुषो देवो यत्र तिष्ठति धर्मराट् । स पूजितो विमानस्थः प्रश्रयावनतेन च
सामपूर्वं तथोक्त्वा तु यथापूर्वं नरः स्वयम् । किमनेन कृतं कर्म यस्य तुष्टोभवान्भृशम्
अत्र मे कौतुकं जातं कृता हि स्वयमेव तु । यदस्य भवता पूजासविस्मयमनन्तरम् ॥
तथैवास्य कृता पूजा द्वितीयस्य नरस्य तु । मेनेऽहं शुभकर्माणौ विमानं वरसत्तमौ ॥

यस्त्वमाभ्यां स्वयं पूजां कुरुषे धर्मकारणात् ।
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैस्तु पूज्यसे त्वं सदाऽनिशम् ॥ १४ ॥

यस्येदृक्परमं पुण्यं किमेतौ कर्म चक्रतुः । कथ्यतां मम सर्वज्ञ फलं दिव्यमवापतुः ॥

तच्छ्रुत्वा स तु मां प्राह श्रृणु कर्मानयोः कृतम् ।
यत्कृत्वा चार्हतां यातौ तच्छृणुष्व महामते ! ॥ १६ ॥

धर्म उवाच ।

वैदिशं नाम नगरं पृथिव्यामस्ति विश्रुतम् । तत्राभूत्पृथिवीपालो धरापाल इति श्रुतः
कस्मिन्काले पुरा देवी शशाप स्वगणं क्रुधा । मद्व्रतेऽत्र परा नारी भर्त्तुर्यन्मे निवेशिता
तस्माद्द्वादशवर्षाणि जम्बुकस्त्वं भविष्यसि । इत्युक्तः सचबभ्रामजम्बुकोमेदिनीतलम्
वेतसीवेत्रवत्योस्तु सङ्गमे लोकविश्रुते । शापान्तो भविता पुत्रइत्युक्तं गिरिकन्यया ॥

तत्र चानशनं कृत्वा क्षेत्रे प्राणांस्ततोऽत्यजत् ।
दिव्यरूपवपुर्भूत्वा जगाम विष्णुसन्निधौ ॥ २१ ॥
तत्राश्चर्यं महद् दृष्ट्वा धरापालो महीपतिः ।
विष्णोरायतनं कृत्वा क्षेत्रे प्राणांस्ततोऽत्यजत् ॥ २२ ॥
दिव्यरूपवपुर्भूत्वा स्थापयामास तं प्रभुम् ।
तस्मिन्पुरे नरान्सर्वान्सन्नियोज्यास्य वीक्षणे ॥ २३ ॥

शुभमायतनंविष्णोस्तस्मिन्ग्रामे सदा जनैः । पूर्णं तु ब्राह्मणादीनांपूजयित्वाकदम्बकम्
इतिहासपुराणज्ञं वाचकं तु विशेषतः । पूजयित्वा द्विजश्रेष्ठं विद्याश्रेष्ठं महामतिः ॥

पुस्तकं चापि संपूज्य गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ।
ततस्तमाह राजाऽसौ वाचकं विनयान्वितः ॥२६॥
एतदायतनं विष्णोः कारितं च तवाग्रतः । चातुर्वर्ण्यमिदं चापि श्रोतुकामकदम्बकम्
तिष्ठतीह द्विजश्रेष्ठ कुरु पुस्तकवाचनम् । यावत्संवत्सरं विप्र गृह्यवृत्तिंत्वमुत्तमाम् ॥
स्वर्णनिष्कशतं चात्र ततो दास्ये तथापरम् ।
पूर्णे वर्षे द्विजश्रेष्ठ ! श्रेयोऽर्थमहमात्मनः ॥ २९ ॥
एवं प्रवर्तितं तत्र पुण्यं पुस्तकवाचनम् । वर्षसङ्कतमात्रे तु तथा च मुनिसत्तम ! ॥३०॥
अथायुषः क्षयाच्चायं कालधर्ममुपेयिवान् ।
मया चास्य विमानं हि विष्णुना प्रेरितं दिवः ॥ ३१ ॥
इत्येषा कर्मणां व्युष्टिः पुण्यमाख्यानसंज्ञकम् ।
श्रुतं पाद्मं महत्पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् ॥ ३२ ॥
गन्धपुष्पोपहारैस्तु न तुष्टिर्जायते तथा । देवानामिह सर्वेषां पुराणश्रवणाद्यथा ॥३३
स्वर्णरत्नादिवस्तूनां वस्त्राणां चापि कृत्स्नशः ।
ग्रामाणां नगराणां च दानात्तुष्टिर्भवेन्नहि ॥ ३४ ॥
यथा स्याद्धर्मश्रवणात्प्रीतिः सर्वदिवौकसाम् । इतिहासपुराणानां श्रवणे मुनिसत्तम ! ॥
यथा स्यान्मे महाप्रीतिः साध्ये सर्वार्थकामिके ।
कन्यादाने महाप्रीतिर्मम स्यान्मुनिसत्तम ! ॥ ३६ ॥
न तथा रोचते सा च यथा पुस्तकवाचनात् । अथ किं बहुनोक्तेननान्यत्प्रीतिकरं मम
पुण्याख्यानमृते विप्र गुह्यमेतत्प्रकीर्तितम् । यश्चायमपरो विप्र इहायातो नरोत्तमः ॥
संगत्यानुगतश्चायं धर्मश्रवणमुत्तमम् । श्रुत्वा भक्तिरभूदस्य श्रद्धया परमात्मनः ॥ ३९॥
कृत्वा प्रदक्षिणं तस्य वाचकस्य महात्मनः ।
एष विप्रो मुनिश्रेष्ठ ! ददौ स्वर्णस्य माषकम् ॥ ४० ॥
नान्यद्दानं कदा चक्रे लोभाविष्टेन चेतसा । पात्रदानात्फलप्राप्तिस्तस्यजातान संशयः
इत्येतत्कथितं कर्म आभ्यां चैव महामुने ॥४२॥

महादेव उवाच ।

एतत्पुण्यस्य माहात्म्यं ये शृण्वन्ति मनीषिणः ।

न तेषां दुर्गतिः क्वचिज्जन्मजन्मनि जायते ॥ ४३ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारद-संवादे शास्त्रव्याख्यामहिमानामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

———

त्रिंशोऽध्यायः

गोपीचन्दनमाहात्म्यवर्णनम् ।

महादेव उवाच ।

अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि शृणु देवर्षिसत्तम । गोपीचन्दनमाहात्म्यं यथादृष्टं श्रुतं मया ॥

ब्राह्मणोवाऽथवैश्यो वा शूद्रोवाप्यथ बाहुजः । गोपीचन्दनलिप्ताङ्गोमुच्यते ब्रह्महत्यया

तिलकं कुरुते यस्तु गोपीचन्दनसंभवम् । मद्यपानादि दोषैस्तु मुच्यते नात्रसंशयः ॥

गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो वैष्णवो विष्णुतत्परः । सर्वदोषैःप्रमुच्येत यथा गङ्गाम्भसा पुनः

ब्रह्महा मद्यपानी च स्वर्णस्तेयी तथैव च । गुरुतल्पगमोवाऽथ शूद्रो वाप्यथ वै द्विजः॥

स सद्यो मुच्यते पापादाजन्मशत कारणात् ।

द्वादश तिलकं प्रोक्तं सर्वेषां वै विशेषतः ॥ ६ ॥

वैष्णवानां ब्राह्मणानां कर्तव्यं भूतिमिच्छताम् ।

दण्डकारं ललाटे स्यात्पद्माकारं तु वक्षसि ॥ ७ ॥

वेणुपत्रनिभं बाहुमूलेऽन्यद्दीपकाकृति । उच्चैश्चक्राणि चत्वारि बाहुमूले तु दक्षिणे ॥

नाम मुद्राद्वयं नीचैः शङ्खमेकं तयोरपि । मध्ये तत पार्श्वयोस्तु द्वे द्वे पद्मे च धारयेत्

वामेऽपि चतुरःशङ्खान्नाममुद्रे च पूर्ववत् । चक्रमेकं गदे द्वे द्वेः तयोरिति विभेदतः ॥

ललाटे च गदामेकां नाममुद्रां तथा हृदि ।

त्रीणि त्रीणि च चक्राणिं मध्ये शङ्खावुभावुभौ ॥ ११ ॥

हृदि पार्श्वे स्तनादूर्ध्वंगदापद्मानि बाहुवत् । त्रीणि चत्वारिचक्राणिकर्णमूले द्वयोरपः

एकमेकं तदन्येषु तिलकेषु च धारयेत् । सम्प्रदायजमुद्रा तु धार्या शिष्टानुसारतः ॥१३

यथारुच्यथवा धार्या न तत्र नियमो यतः ।

आचाण्डालाद्विशुद्ध्यन्ति तिलकस्यैव धारणात् ॥ १४ ॥

चाण्डालादधिकं मन्ये वैष्णवानां हि निन्दकम् ।

स च विष्णुसमो ज्ञेयो नात्र कार्या विचारणा ॥ १५ ॥

वैष्णवो ब्राह्मणो यस्तु विष्णुध्यानेषु तत्परः । नान्तरं तस्यवै ज्ञेयंस वै विष्णुर्भवेदिह

शङ्खचक्रधरो विप्रो वेदाध्ययनतत्परः । स वै नारायण इति वेदे चैव तु पठ्यते ॥१७॥

तप्तचक्रधरो विप्रः पङ्क्तिपावनपावनः । तस्य भक्तियुतो ब्रह्मन्महापापैः प्रमुच्यते ॥

तुलसीपत्रमालां वा तुलसीकाष्ठसंभवाम् ।

धृत्वा वै ब्राह्मणो भूयान्मुक्तिभागी न संशयः ॥ १९ ॥

विष्णुरूपो यतो विप्रो वैष्णवः स इहस्मृतः । पञ्चत्वे यस्यतिलकं गोपीचन्दनसंभवम्

विमानं स समारुह्य याति विष्णोः परं पदम् ।

कलौ नारद वक्ष्यामि तिलकं गोपिचन्दनम् ॥ २१ ॥

ये कुर्वन्ति नरश्रेष्ठा न तेषांदुर्गतिः क्वचित् । शङ्खं चैव तथाचक्रं दक्षिणे चापि सव्यके

हस्ते धृत्वा विशेषेण महापापैः प्रमुच्यते । मद्यपानरता ये च ये च स्त्रीबालघातकाः ॥

अगम्यगमका ये वै दृश्यन्ते भुवि वाडव । भक्तानां दर्शनादेव मुक्तिस्तेषां न संशयः ॥

संसारे तुच्छसारेऽस्मिन्कुतो वै वैष्णवा जनाः ।

अहं हि वैष्णवो जातो विष्णोर्भक्तिप्रसादतः ॥ २५ ॥

काश्यां निवसतां ह्यत्र रामरामेति संजपन् । तेन पुण्यादियोगेन शिवो वै नात्र संशयः

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे

उमापतिनारदसंवादे गोपीचन्दनमाहात्म्यं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

कार्तिकशुक्लैकादश्यां दीपव्रतविधानवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

ब्रह्मन्संवत्सराख्यस्य दीपस्य विधिमुत्तमम् । सर्वव्रतप्रधानस्य माहात्म्यं प्रवदस्व मे
येन व्रतानि सर्वाणि कृतान्येव न संशयः । सर्वकामसमृद्धिश्च सर्वपापक्षयो भवेत् ॥

महादेव उवाच ।

वदामि तव देवर्षे रहस्यं पापनाशनम् । यच्छ्रुत्वा ब्रह्महा गोघ्नो मित्रघ्नो गुरुतल्पगः ॥
विश्वासघाती क्रूरात्मा मुक्तिमाप्नोति शाश्वतीम् ।
शतं कुलानामुद्धृत्य विष्णोर्लोकं स गच्छति ॥ ४ ॥
तदहं कथयिष्यामि दीपव्रतमनुत्तमम् । संवत्सरप्रमाणस्य विधिं माहात्म्यमेव च ॥
हेमन्ते प्रथमे मासि प्राप्य ह्येकादशीं शुभाम् । ब्राह्मे मुहूर्त्तेचोत्थाय कामक्रोधविवर्जितः
नदीसंगमतीर्थेषु तडागेषु सरित्सु च । स्नानं समाचरेत्तत्र गृहे वा नियतात्मवान् ॥
स्नातोऽहं सर्वतीर्थेषु तत्स्नानं देहि मे सदा ॥ ८ ॥

स्नानमन्त्रः ।

देवान्पितॄंश्च संतर्प्य कृतजप्यो जितेन्द्रियः । ततः संपूजयेद्देवं लक्ष्मीनारायणं प्रभुम्
पञ्चामृतेन संस्नाप्य ततो गन्धोदकेन च । स्नातोऽसि लक्ष्म्यासहितोदेवदेव जगत्पते
मां समुद्धर देवेश घोरात्संसारबन्धनात् । ततः सम्पूजयेद्देवं लक्ष्म्या सह जनार्दनम् ॥
मन्त्रैस्तु वैदिकैर्भक्त्या तथा पौराणिकैरपि । अतो देवेति सूक्तेन पौरुषेणापि वा पुनः
नमो मत्स्याय देवाय कूर्मदेवाय वै नमः । नमो वाराहदेवाय नरसिंहाय वै नमः ॥१३
वामनाय नमस्तुभ्यं पर्शुरामाय ते नमः । नमोस्तु रामदेवाय विष्णुदेवाय ते नमः ॥
नमोऽस्तु बुद्धदेवाय कल्किने च नमोनमः । नमः सर्वात्मने तुभ्यं शिर इत्यभिपूजयेत्
केशवादीनि नामानि तैर्वा संपूजयेद्धरिम् ॥ १५ ॥

वनस्पतिरसो दिव्यः सुरभिर्गन्धवाञ्छुचिः । धूपोऽयं देवदेवेश नमस्ते प्रतिगृह्यताम् ॥

धूपमन्त्रः ।

दीपोस्तमोनाशयति दीपः कान्ति प्रयच्छति । तस्माद्दीपप्रदानेन प्रीयतां मे जनार्दनः ॥

दीपमन्त्रः ।

नैवद्यमिदमन्नाद्यं देवदेव ! जगत्पते ! । लक्ष्म्या सह गृहाण त्वं परमामृतमुत्तमम् ॥

नैवेद्यमन्त्रः ।

अर्घ्यं दद्यात्ततो भक्त्या एवं ध्यात्वा जनार्दनम् ।
फलेन चैव हस्तेन शङ्खेनादाय चोदकम् ॥ १९ ॥

जन्मान्तरसहस्रेण यन्मया पातकं कृतम् । तत्सर्वं नाशमायातु प्रसादात्तव केशव ! ॥

अर्घमन्त्रः ।

ततः कुम्भं नवं शुभ्रं घृतपूर्णं समानयेत् । लक्ष्मीनारायणस्याग्रे तैलपूर्णमथापि वा ॥
तस्योपरि न्यसेत्पात्रं ताम्रं मृण्मयमेव च । नवतन्तुसमां वर्तितस्मिन्पात्रे तु निर्वपेत्

ततः प्रबोधयेद्दीपं स्थाप्य कुम्भं सुनिश्चलम् ।
पुष्पगन्धादिभिः पूज्य ततः संकल्पयेच्छुचिः ॥ २३ ॥

मन्त्रेणानेन देवर्षे असमीरेषु धामसु । कामो भूतस्य भव्यस्य सम्राडेको विराजते ॥
दीपः संवत्सरं यावन्मयाऽयं परिकल्पितः । अग्निहोत्रमविच्छिन्नं प्रीयतां मम केशवः॥

ततो जितेन्द्रियो भूत्वा श्रुतिज्ञानपरायणः ।
नालपेत्पतितान्पापांस्तथा पाखण्डिनो नरान् ॥ २६ ॥

रात्रौ जागरणं गीतं नृत्यवाद्यादिकैस्तथा । पुण्यपाठैश्च विविधैर्धर्माख्यानैरुपोषणैः॥
ततः प्रभातसमये कृतपूर्वाह्णिकक्रियः । ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या यथाशक्त्या प्रपूजयेत् ॥
स्वयं च पारणं कृत्वा प्रणिपत्य विसर्जयेत् । एवं संवत्सरं यावदहोरात्रं दृढव्रतः ॥
दीपं पलसुवर्णेन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः । वर्तिस्तु राजती प्रोक्ता द्विपलार्द्धार्द्धिकापि वा ।
घृतपूर्णं तथा कुम्भं ताम्रपात्रसमन्वितम् । लक्ष्मीनारायणोदेवोयथा शक्त्या हिरण्मयः

कार्यो भक्तिमता पुंसा मुक्तिद्वारमभीप्सता ।

ततो निमन्त्रयेद्विद्वान्ब्राह्मणान्साधुसत्तमान् ॥ ३२ ॥

द्वादशोत्तमपक्षे तु विप्रान्षण्मध्यमे तथा । अन्यथा कारयेत्त्रीन्वा एकं कर्मकरं द्विजम्

सपत्नीकं द्विजं शान्तं क्रियावन्तं विशेषतः। इतिहासपुराणज्ञं धर्मज्ञं मृदुमेव च ॥३४॥

पितृभक्तं गुरुपरं देवब्राह्मणपूजकम् । पाद्यार्घदानविधिना वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥ ३५ ॥

संपूज्य पत्न्या सहितमेकं भक्त्या च पूर्ववत् । लक्ष्मीनारायणं देवं दीपवर्तियुतं तथा

ताम्रपात्रोपरि स्थाप्यघृतकुम्भेन संयुतम् । ब्राह्मणायततो दद्याद्ध्यात्वा नारायणंपरम्

मन्त्रेणानेन देवर्षे! तमहं कथयामि ते ॥ ३७ ॥

अविद्यातमसा व्याप्ते संसारे पापनाशनः । ज्ञानप्रदो मोक्षदश्च तस्माद्दत्तो मयाऽनघ

इति दीपमन्त्रः ।

दक्षिणां च यथाशक्त्या दत्त्वा विप्राय भक्तितः ।

भोजयेद् ब्राह्मणान्पश्चाद् घृतपायसमोदकैः ॥ ३९ ॥

वस्त्रैराच्छादयेत्पश्चात्सपत्नीकं तथा द्विजम्।

शय्यां सोपस्करां दद्याद् धेनुं चैव सवत्सिकाम् ॥ ४० ॥

तेभ्यस्तु दक्षिणां दद्याद्यथाविवत्तानुसारतः ।

सुहृत्स्वजनबन्धूंश्च भोजयेत्पूजयेत्तथा ॥ ४१ ॥

एवं महोत्सवं कुर्याद्दीपव्रतसमापने । ततो विसर्जयेत्पश्चात्प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥४२

एवं कृते तु यत्पुण्यं तथा सांक्रान्तिकैश्च यत् ।

संवत्सराख्यदीपस्य तत्फलं प्राप्यते नरैः ॥ ४३ ॥

मासव्रतैश्च यत्पुण्यं तत्पुण्यं प्राप्यते नरैः । संवत्सरस्य दीपस्य व्रतेन चरितेन च ॥

दानव्रतैर्यथा सङ्ख्यैर्यश्च योगव्रतैस्तथा । तत्फलं समवाप्नोति दीपे सांवत्सरे कृते

गोभूहिरण्यदानानि गृहादीनां विशेषतः । यत्फलं लभते विद्वांस्तत्फलं दीपदो भवेत्

दीपदःकान्तिमाप्नोति दीपदो धनमक्षयम् । दीपदो ज्ञानमाप्नोति दीपदःपरमंसुखम् ॥

दीपदानाच्च सौभाग्यं विद्यामत्यन्तनिर्मलाम् । आरोग्यं परमामृद्धिं लभते नात्रसंशयः

दीपदः सुभगां भार्यां सर्वलक्षणसंयुताम् ।

पुत्रान्पौत्रान्प्रपौत्रांश्च सन्ततिं चाक्षयां लभेत् ॥ ४६ ॥

ब्राह्मणःपरमं ज्ञानं क्षत्त्रियो राज्यमुत्तमम् । वैश्यो धनपशून्सर्वाञ्छूद्रःसुखमवाप्नुयात्
कुमारीचापि भर्तारं सर्वलक्षणसंयुतम् । प्राप्नोति परमायुश्च पुत्रान्पौत्रांश्च पुष्कलान्
वैधव्यंनैव युवती कदाचिदपि पश्यति । न वियोगमवाप्नोति दीपदानप्रभावतः ॥५३॥
नाधयो व्याधयश्चैव जायन्ते दीपदानतः । भयात्प्रमुच्यते भीतो बद्धो मुच्येत बन्धनात्
ब्रह्महत्यादिभिःपापैर्दीपव्रतपरायणः । मुच्यते नात्र संदेहो ब्रह्मणो वचनं यथा ॥५४ ॥

चान्द्रायणानि कृच्छ्राणि चरितानि न संशयः ।
येन सांवत्सरोदीपो बोधितः शाश्वतो हरेः ॥ ५५ ॥
ते धन्यास्ते महात्मानस्तैःप्राप्तं जन्मनःफलम् ।
यैः संपूज्य हरिंभक्त्या दीपः सांवत्सरःकृतः ॥ ५६ ॥

येऽपि संवर्त्तयन्तीह दीपवर्तिं शलाकया । ते यान्ति परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम्
ये च तैलं च वर्तिं च यथाशक्त्या प्रदीपके । प्रक्षेपयन्ति सततं ते यान्ति परमांगतिम्

गच्छन्तं दीपकं शान्तिं न शक्नोति प्रबोधितुम् ।
कथयत्यन्यलोकानां तेऽपि तत्फलभागिनः ॥ ५९ ॥
स्तोकं स्तोकं च भिक्षित्वा तैलं दीपार्थमेव च ।
करोति दीपकं विष्णोः पुण्यं तेनापि लभ्यते ॥ ६० ॥
दीपं प्रज्वाल्यमानं तु यः पश्यत्यधमो नरः ।
कृताञ्जलिपुटो विष्णोर्विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ ६१ ॥

दीपप्रज्वालने बुद्धिं यो दद्यात्कुरुतेस्वयम् । सर्वपापविनिर्मुक्तोविष्णुलोकमवाप्नुयात्
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । यस्य श्रवणमात्रेण मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥
सरस्वत्यास्तटे रम्ये सिद्धाश्रम इति श्रुतः । तत्रोवास द्विजःपूर्वं कपिलो नाम वेदवित्
व्रतोपासनिरतो दरिद्रःश्रोत्रियस्तथा । भिक्षावृत्त्या च कुरुते कुटुम्ब परिपालनम् ॥
व्रतोपवासनियमैर्विष्णुमाराधयत्यसौ । विष्णुं संपूज्य विधिवद्दीपं बोधयते सदा ॥
समादाय च तत्तैलं स्वगृहे पूज्य केशवम् । दीपं भक्त्या च परया बोधयेद्धरितुष्टये ॥

एवं प्रवर्तमानस्य कपिलस्य महात्मनः । मार्जारस्तीक्ष्णदंष्ट्रस्तु मूषकान्भक्षयेत्सदा ॥

तत्रागच्छति भक्ष्यार्थं मूषकानामहर्निशम् ।
कृत्वा ध्यानं स भक्ष्यार्थं नित्यं नारायणाग्रतः ॥ ६९ ॥

भक्षिता वहवस्तेन मूषका द्विजवेश्मनि । ये ये तैलार्थमायान्ति वर्त्यपाहरणाय च ॥
तांस्तांस्तु भक्षयत्येव मूषकान्ध्यानतत्परः । एवं प्रवर्तमानस्य कदाचित्कालपर्ययात्

एकादश्यां स कपिलो ब्राह्मणः स्वगृहे शुचिः ।
सोपवासः सपत्नीकः पूजयामास चाच्युतम् ॥ ७२ ॥

ततो जागरणं चक्रे स्तुतिनृत्यपरायणः । अर्धरात्रे तु संप्राप्ते निद्रया मोहितो द्विजः ॥
मार्जारश्चागतस्तत्र तीक्ष्णदंष्ट्रो लघुक्रमः । भक्षयामासनैवेद्यं गृहकोणेस्थितःसदा ॥७४
अद्राक्षीन्मूषिकां क्षुद्रां तैलपानार्थमागताम् । मन्दतेजसि दीपे तु वर्त्यपाहरणोचिताम्

समुत्पत्य पदाक्रम्य तदा सा बिलमाविशत् ।
तस्याः पादेन वै वर्त्या दीपः संबोधितो भृशम् ॥ ७६ ॥
तैलपात्रं च नमितं सुप्रकाशोऽभवत्तदा ।
ब्राह्मणोऽपि जजागार त्यक्त्वा निद्रां विमोहिनीम् ॥ ७७ ॥
मार्जारोऽपि च तां रात्रिमजाग्रच्चाखुभक्षकः ।
ततः प्रभाते विमले कृत्वा नित्यक्रियां द्विजः ॥ ७८ ॥

ततश्च पारणं चक्रे विप्रो बन्धुजनैःसह । एवं प्रवर्त्तमानस्य कपिलस्य महात्मनः ॥७९॥
बभूवुःपुत्रपौत्राश्च धनधान्यमनुत्तमम् । आरोग्यं परमामृद्धिमवाप महतीं श्रियम् ॥८०
दीपव्रतप्रभावेण कपिलो मोक्षमागतः । संभेद्य मण्डलं पुण्यं सवितुःशशिनस्तथा ॥
दीपज्योतिःस्वरूपेण परमात्मनि युक्तवान् । मूषिकापि च कालेन ममार बिलमध्यतः

विमानवरमासाद्य विष्णुलोकं जगाम सा ।
मार्जारोऽपि च कालान्ते मृतः स्वर्गं जगाम सः ॥ ८३ ॥

विमानवरमारुह्य देवगन्धर्वसेवितम् । अप्सरोभिःपरिवृतो विद्याधरगणैर्युतः ॥ ८४ ॥
स्तूयमानो महातेजा जयशब्दादि मङ्गलैः । स्तूयमानः स वै नारैर्विष्णुलोकं जगाम सः

कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।
भुक्त्वा च विपुलान्भोगांस्ततो राजाऽभवद् भुवि ॥ ८६ ॥
सुधर्मानाम धर्मात्मा देवब्राह्मणपूजकः । रूपवान्सुभगश्चैव महाबलपराक्रमः ॥ ८७ ॥
तस्य प्रियतमा भार्या सर्वलक्षणसंयुता ।
भर्तृभक्ता तथा शीला नाम्ना सा रूपसुन्दरी ॥ ८८ ॥
सर्वासां चैव नारीणां मध्ये सासुभगाऽभवत् । पुत्राश्च बहवोजातास्तथा दुहितरोघनाः
एवं विहरतोस्तद्वद्दम्पत्योःप्रीतिपूर्वकम् । आगतःकार्त्तिकोमासो हरिनेत्रावबोधकृत्
तस्मिन्दीपाःप्रबोध्यन्ते नारायणपरायणैः ।
कृच्छ्रचान्द्रायणादीनि व्रतानि नियमास्तथा ॥ ९१ ॥
क्रियन्ते विष्णुभक्तैश्च संसारभयभीरुभिः ।
अथ प्रबोधिनीं प्राप्य राजा राज्ञीमथाब्रवीत् ॥ ९२ ॥
भद्रे ! प्रबोधिनी पुण्या विष्णोर्नाभिसरोरुहे ।
करिष्याम्यद्य पूजां च सोपवासो जितेन्द्रियः ॥ ९३ ॥
स्नात्वा च पुष्करे तीर्थे पुण्डरीकाक्षमच्युतम् ।
पूजयिष्यामि देवेशं लक्ष्म्या सह जनार्दनम् ॥ ९४ ॥
इति सा वाञ्छितं श्रुत्वा भर्तुःप्रियहितेरता । उवाच वचनं गुह्यं भर्त्तारं चारुहासिनी॥

रूपसुन्दर्युवाच ।

ममापि हृदये कामःसमुत्पन्नो नराधिप । रूपसौन्दर्यवाञ्छा च हृदये मम वर्त्तते ॥
पुष्करं प्रथमं तीर्थं गन्तुमिच्छे त्वया सह । ततो राजा तयासार्द्धमागतःपुष्करं तदा ॥
हस्त्यश्वरथवृन्दैश्च समागत्य पुरोहितैः ।
ततः स्नात्वा तथा ध्यायंस्तर्पयन्पितृदेवताः ॥ ९८ ॥
पूजयामास देवेशं पुण्डरीकाक्षमच्युतम् । दीपमालाकुले तत्र सर्वतः सुमनोहरे ॥९९॥
ददर्श लिखितं तत्र मार्जारं देवतालये ।
तं दृष्ट्वा प्राकृतं कर्म जन्म स्मृत्वा नृपस्तदा ।

मुखपङ्कजमालोक्य प्रियायाः प्रजहास च ॥ १०० ॥

रूपसुन्दर्युवाच ।

मम सम्मुखमालोक्य भर्तः ! किं स्मितकारणम् ।

कथयामास हृष्टात्मा प्राक्तनं कर्मणः फलम् ॥ १०१ ॥

राजोवाच ।

अहमासं पुरा देवि मार्जारो ब्राह्मणालये । भक्षिता मूषकास्तत्र मया शतसहस्रशः ॥

ततो नारायणस्याग्रे दीपः संरक्षितो यतः ।

व्याजेनापि मया देवि ! प्राप्तं तत्कर्मणः फलम् ,

विष्णुलोकमनुप्राप्य राज्यं प्राप्तं मयाऽधुना ॥१०३॥

रूपसुन्दर्युवाच ।

ममापि स्मरणं जातं प्राक्तस्य च जन्मनः । मूषिका चाह मप्यासं क्षुद्राब्राह्मणवेश्मनि

कार्त्तिके च प्रवोधिन्यां मन्दीभूते च दीपके । वर्त्यग्राहरणार्थाय निर्गताऽहंतदा बिलात्

दृष्ट्वा नारायणं देवं पूजितं कुसुमैस्तथा । निद्राभिभूतं विप्रं च वर्त्तिःकृष्टा मया तदा

उत्थितस्त्वं यदा तत्र मां ग्रहीतुं कृतक्षणः ।

दृष्ट्वा त्वां च प्रनष्टाऽहं प्रविष्टा बिलमध्यतः ॥ १०७ ॥

विशन्त्या मम पादेन दीपवर्त्तिर्विजृम्भिता । तैलपात्रं च नमितं तेनाहं सुखभागिनी ॥

तन्मया राजराजेन्द्र दीपं चैव प्रकाशितम् । इदानीं च मया प्राप्तं रूपलावण्यमुत्तमम्

त्वं च भर्त्ता तथा राज्यं पुत्राश्चैवंविधं सुखम् ।

दीपप्रबोधनाज्जातं ज्ञानमत्यन्तदुर्लभम् ॥११०॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दीपव्रतमनुत्तमम् । आवां हि परया भक्त्या कुर्वंश्चैव विशेषतः ॥

तदेतत्कर्मणः प्राप्तं फलं राज्यादिसम्पदः । पूर्वजन्मस्मृतं चापि सर्वपापक्षयस्तथा

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन विधिमन्त्रादि पूर्वकम् ।

दीपव्रतं कृतं पुम्भिः पुण्यमाचन्द्रतारकम् ॥ ११३ ॥

इति श्रुत्वा वचो राजाचक्रे दीपव्रतं तदा । प्रियया सह देवर्षे सम्यक्छ्रद्धासमन्वितः

तस्मिंस्तु पुष्करे तीर्थे कृत्वा दीपव्रतं तुतौ । अवापतुः परां मुक्तिं देवदानवदुर्लभाम् ॥

एतद् द्वीपस्य मांहात्म्यं ये शृण्वन्ति नरा भुवि ।
सर्वपापविनिर्मुक्ताः प्रयान्ति हरिमन्दिरम् ॥ ११६ ॥
ये च कुर्वन्ति पुरुषाः स्त्रियो वा भक्तितत्पराः ।
ते सर्वे पापनिर्मुक्ता यान्ति ब्रह्म सनातनम् ॥ ११७ ॥

दीपव्रतमिदं विद्वन्कथितं ते विमुक्तिदम् । सर्वसौख्यप्रदं धन्यं महाव्रतमिदं तव ॥११८

नेत्ररोगा विनश्यन्ति यथा पापप्रभावजाः ।
आधयो व्याधयः सर्वे नश्यन्ते हि कृते क्षणात् ॥ ११९ ॥
न दारिद्र्यं न शोकं च न मोहो न च विभ्रमः ।
गृहे लक्ष्मीः समायाति जन्मजन्मनि वाडव !॥ १२० ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति नारदसंवादे दीपव्रतमाहात्म्यं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

हरिश्चन्द्रसनत्कुमारसंवादे जन्माष्टमीव्रतविधानवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

देवदेव ! जगन्नाथ ! भक्तानामभयप्रद । व्रतं ब्रूहि महादेव ! कृपांकृत्वा ममोपरि ॥१॥

श्रीमहादेव उवाच ।

सार्वभौमः पुरा ह्यासीद्धरिश्चन्द्रो महीपतिः ।
तस्य तुष्टोऽददाद् ब्रह्मा पुरीं कामदुघां शुभाम् ॥ २ ॥

सर्वरत्नमयीं दिव्यां बालार्कसदृशप्रभाम् । तत्र स्थितो महीपालो सप्तद्वीपां वसुन्धराम्
पालयामास धर्मेण पिता पुत्रमिवौरसम् । प्रभूतधनधान्यस्तु पुत्रदौहित्रवान्नृपः ॥

स्वपालयन्सुखं राज्यं परं विस्मयमागतः। न तादृशमभूत्पूर्वं राज्यं कस्य हि कर्हिचित्
न चेदृशं नरैरन्यैर्विमानमधिरोहितम्। कस्येह कर्मणो व्युष्टिर्येनाहं सुरराडिव ॥६॥
इति चिन्तापरो भूत्वा विमानवरमास्थितः। ददर्श पार्थिववरो मेरुं शिखरिणां वरम् ॥
तत्रास्ते च महात्मासौ द्वितीय इव भास्करः। आसीनं पर्वतवरे शैलपट्टे हिरण्मये ॥
सनत्कुमारं ब्रह्मर्षिं ज्ञानयोगपरायणम्। दृष्ट्वा ह्यवातरद्राजा प्रष्टुकामोऽथ विस्मयम्
ववन्दे चरणौ हृष्टस्तेनापि स च नन्दितः। सुखोपविष्टस्तु नृपः पप्रच्छ मुनिपुङ्गवम्
भगवन्दुर्लभा लोके सम्पच्चेयं यथा मम।
कर्मणा केन लभ्येत कश्चाहं पूर्वजन्मनि। तत्त्वं कथय मे सर्वमनुग्राह्योऽस्मि ते यदि

सनत्कुमार उवाच।

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि पूर्ववृत्तस्य कारणम्। येन कृत्वा विशेषेण तव चानुग्रहोऽभवत्
त्वमासीःपूर्वजनुषिसुवैश्यःसत्यवाक्छुचिः। स्वं कर्म ते परित्यक्तं ततस्त्यक्तस्तुबान्धवैः
सत्वं वृत्तिपरिक्षीणो भार्ययानुगतस्तथा। निर्गतः स्वजनांस्त्यक्त्वा परप्रेषणलिप्सया
न च प्रेषणदो ह्यासीत्काले दुर्भिक्षपीडितः। ततः कदाचिद्गहने सरश्चोत्फुल्लपङ्कजम् ॥
दृष्ट्वा तत्र कृतो भावो गृह्णीवः पङ्कजानिवै। एतावदुक्त्वापुष्पाणि तान्यादाय पदे पदे
आस्थितौ नगरीं पुण्यां नाम्ना वाराणसीं शुभाम्।
ततो विक्रीणतः कश्चिन्नैव गृह्णाति पङ्कजम् ॥१७॥
तन्मठान्निर्गतः कश्चित्तत्रैव प्राङ्गणेऽस्थितः। तत्रस्थाने प्रविशता श्रुतो वादित्रनिस्वनः
कस्मिंश्च श्रूयतेह्येष वादित्रस्य च निस्वनः। इतिपृष्टे तदातूर्यं तेनोक्ते प्रस्थितोऽन्तरम्
काशिराजस्तु विख्यात इन्द्रद्युम्नस्तु पार्थिवः।
तस्यास्ति दुहिता ख्याता नाम्ना चन्द्रावती सती ॥ २० ॥
उपोषिता महाभागा जयन्तीमष्टमीं शुभाम्। तत्रागतोऽसौ वैश्यस्तु यत्र तिष्ठतिसाशुभा
संतुष्टचित्तः स तदा हर्षस्तत्रागतो महान्। तत्रस्थानेत्वया दृष्टो देववैतानिको विधिः
आदित्यसहितो यत्र पूज्यते भगवान्हरिः। तद्भक्त्या चत्वयापत्न्यासहपुष्पार्चनं कृतम्
शैषैस्तु प्रकरस्तत्र कृतः पुष्पमयस्तथा। तं दृष्ट्वा विस्मता साह केनेहाभ्यर्चनं कृतम्

ज्ञात्वा तत्कर्म तत्सर्वं कृतं संरक्षणं तथा ।
ततस्तुष्टा तु सा तुभ्यं ददौ वित्तं बहुस्वयम् ॥ २५ ॥
त्वया वित्तं नोगृहीतंभोजनायानुमन्त्रितः । न गृहीतं भोजनं च न च वित्तं त्वया तदा
आदित्यो विष्णुसंयुक्तः पूजितोऽसौ यथाविधि ।
ततः प्रभातसमये रक्ष्यमाणस्तया सदा ॥ २७ ॥
विश्रम्भयित्वा तान्सर्वान्निर्गतोऽसि यथेच्छया ।
तदेतदन्यजनुषि सुकृतं चार्जितं त्वया ॥ २८ ॥
पञ्चत्वं च त्वया प्राप्तं स्वीयकर्मानुयोगतः । तेन पुण्येन महता विमानमागमत्तदा ॥
तत्फलं भुज्यते भूप ! पूर्वजन्मकृतं च यत् ॥ ३० ॥

हरिश्चन्द्र उवाच ।

केनैव च विधानेन कस्मिन्मासे च सा तिथिः ।
कर्त्तव्या तन्ममाचक्ष्व अनुग्राह्योऽस्मि ते यदि ॥ ३१ ॥

सनत्कुमार उवाच ।

शृणुष्वावहितो राजन्कथ्यमानं मया तव ।
श्रावणस्य तु मासस्य कृष्णाष्टम्यां नराधिप ! ॥ ३२ ॥
रोहिणी यदि लभ्येत जयन्ती नाम सा तिथिः ।
भूयो भूयो महाराज ! भवेज्जन्मनि कारणम् ॥ ३३ ॥
विधानमस्या वक्ष्यामि यथोक्तंब्रह्मणा मम । यत्कृत्वामुक्तपापस्तुविष्णुलोकंप्रगच्छति
उपोषितस्ततः कृत्वा स्नानं कृष्णतिलैः सह । स्थापयेदव्रणं कुम्भं पञ्चरत्नसमन्वितम्
वज्रमौक्तिकवैडूर्यपुष्परागेन्द्रनीलकम् । पञ्चरत्नं प्रशस्तं तु इति कात्यायनोऽब्रवीत् ॥
तस्योपरि न्यसेत्पात्रं सौवर्णं लक्षणान्वितम् ।
सौवर्णां विन्यसेत्तत्र यशोदां नन्दगेहिनीम् ॥ ३७ ॥
प्रददानां तु पुत्रस्य स्तनं वै विस्मिताननाम् । पिबमानं स्तनं मातुरपरं पाणिनास्पृशत्
आलोक्यमातरं प्रेम्णा सुखयन्तं मुहुर्मुहुः । सौवर्णं कारयेद्देवं यावच्छक्तिश्च विद्यते ॥

द्विनिष्कमात्रं कर्तव्यं यदि शक्तिश्च विद्यते। त्रिलोहेनैव कर्तव्यं सौवर्णेनाथ वा पुनः॥
तद्वच्च रोहिणीं कुर्यात्सौवर्णीं राजतः शशी।
अङ्गुष्ठमात्रस्तु शशी रोहिणी चतुरङ्गुला॥ ४१॥
कर्णयोः कुण्डले दद्यात्कण्ठाभरणकं गले।
एवं कृत्वा तु गोविन्दं मात्रा सार्धं जगत्पतिम्॥ ४२॥
क्षीरादिस्नपनं कृत्वा चन्दनेनानुलेपयेत्। श्वेतवस्त्रयुगच्छन्नं पुष्पमालोपशोभितम्॥
नैवेद्यैर्विविधैर्भक्ष्यैः फलैर्नानाविधैरपि। दीपं च कारयेत्तत्र पुष्पमण्डपशोभितम्॥४४॥
गीतं नृत्यं च वाद्यं चकारयेद्भक्तिमान्बुधैः। एवं कृत्वा विधानं तु यथाविभवसारतः
गुरुं संपूजयेत्पश्चात्पूजां तत्र समापयेत्॥ ४५॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादे जन्माष्टमीव्रतं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

पृथ्वीदानवस्त्रदानयोः प्रशंसावर्णनम्।

महादेव उवाच।

दृष्ट्वा शतक्रतुं सिद्धं समाप्तवरदक्षिणम्। मघवा जातसंकल्पः पर्यपृच्छद् बृहस्पतिम्
भगवन्केन दानेन सर्वतः सुखमेधते। यदक्षयं महार्घं च तन्मे ब्रूहि महातपः॥ २॥
एवमिन्द्रेण चोऽक्तोसौ देवदेवः पुरोहितः। प्रहस्य तं महाप्राज्ञो बृहस्पतिमुवाचह॥
हिरण्यदानं गोदानं भूमिदानं च वासव!। एतत्प्रयच्छमानस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
सुवर्णं रजतं वस्त्रं मणिरत्नं च वासव!। सर्वमेव भवेद्दत्तं वसुधां यः प्रयच्छति॥
फालकृष्टां महीं दत्त्वा सबीजां सस्यमालिनीम्।
यावत्सूर्यः कृतालोकस्तावत्स्वर्गे महीयते॥ ६॥

यत्किंचित्कुरुते पापं पुरुषो वृत्तिकर्शितः । अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन शुध्यति ॥
दशहस्तेन दण्डोऽत्र त्रिंशद्दण्डानिवर्तनम् । दश तान्येव गोचर्म ब्रह्मगोचर्मलक्षणम् ॥
सवृषं गोसहस्रं तु यत्र तिष्ठत्ययन्त्रितम् । बालवत्सप्रसूतानां तद्गोचर्म इति स्मृतम्
विप्राय दद्याच्च गुणान्विताय तपोयुताय प्रजितेन्द्रियाय ।
यावन्मही तिष्ठति सागरान्ता तावत्फलं तस्य भवेदनन्तम् ॥ १० ॥
यथाऽप्सु पतितः शक्रतैलबिन्दुः प्रसर्पति । एवं कृतं भूमिदानं सस्ये सस्ये प्रसर्पति ॥
यथा बीजानि रोहन्ति प्रकीर्णानि महीतले । एवं कामान्प्ररोहन्ति भूमिदानसमन्विताः
अन्नदाः सुखिनो नित्यं वस्त्रदो रूपवान्भवेत् ।
स नरः सर्वदो भूयो यो ददाति वसुन्धराम् ॥ १३ ॥
यथा गौर्भरते वत्सं क्षीरमुत्सृज्य क्षीरिणी । एवं दत्ता सहस्राक्ष भूमिर्भरति भूमिदम्
शङ्खो भद्रासनं छत्रं वराश्ववरवारणाः । भूमिदानस्य पुण्यस्य फलं स्वर्गः पुरन्दर ! ॥
आदित्यो वरुणो वह्निर्ब्रह्मासोमो हुताशनः । शूलपाणिश्च भगवानभिनन्दन्ति भूमिदम्
आस्फोटयन्ति पितरो वर्णयन्ति पितामहाः ।
भूमिदाता कुले जातः स नस्त्राता भविष्यति ॥ १७ ॥
त्रीण्याहुरति दानानि गावः पृथ्वी सरस्वती । नरकादुद्धरन्त्येते जपवापनदोहनात् ॥
दुर्गतिं तारयन्त्येते विद्वद्भिर्विप्रधारणैः । प्रावृता वस्त्रदा यान्ति नग्ना यान्ति त्ववस्त्रदा
तृप्ता यान्त्यनन्नदातारः क्षुधिता यान्त्यनन्नदाः
काङ्क्षन्ति पितरः सर्वे नरकाद्भयभीरवः ॥ २० ॥
गयां यास्यति यः पुत्रः स नस्त्राता भविष्यति ।
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥ २१ ॥
यजेत वाश्वमेधे न नीलंवा वृषमुत्सृजेत् । लोहितो यस्तु वर्णेनपुच्छाग्रे यस्तु पाण्डुरः
श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते । नीलपाण्डुरलाङ्गूलस्तोयमुद्धरते तु यः
षष्टि वर्षसहस्राणि पितरस्तेन तर्पिताः । यच्च शृङ्गगतं पङ्ककुलं तिष्ठति चोद्धृतम्
पितरस्तस्य चाश्नन्ति सोमलोकं महाद्युतिम् ।

आसीद्राज्ञो दिलीपस्य नृगस्य नहुषस्य च ॥२५॥
अन्येषां तु नरेन्द्राणां पुनरन्यो न गच्छति ।
बहुभिर्वसुधा दत्ता राजभिः सगरादिभिः ॥ २६ ॥
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम् ।
ब्रह्मघ्नो वाथ स्त्रीहन्ता बालघ्नः पतितोऽथवा ॥ २७ ॥

गवां शतसहस्राणि हन्ता तत्तस्य दुष्कृतम् । स्वदत्तां परदत्तां वा योहरेत्तु वसुन्धराम्
स च विष्ठाकृमिर्भूत्वा पितृभिः सह पच्यते । षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गे तिष्ठति भूमिदः
प्रहर्ता चानुमन्ता च तावद्वै नरकं व्रजेत् । भूमिदाद्भूमिहर्तुश्च नापरः पुण्यपापवान् ॥

ऊर्ध्वाधस्तौ च तिष्ठेते यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ३१ ॥
अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं भूर्वैष्णवी सूर्यसुतास्तु गावः ।
तेषामनन्तं फलमश्नुवीत यः काञ्चनं गां च महीं च दद्यात् ॥ ३२ ॥
भूमिं यः प्रतिगृह्णाति यश्च भूमिं प्रयच्छति ।
उभौ तौ पुण्यकर्माणौ नियतौ स्वर्गगामिनौ ॥ ३३ ॥

अन्यायेन हृता भूमिर्यैर्नरैरपहारिता । हरन्तो हारयन्तश्च हन्युस्ते सप्तमं कुलम् ॥३४॥
हरेद्धारयते यस्तु मन्दबुद्धिस्तमोवृतः । स बद्धो वारुणैः पाशैस्तिर्यग्योनिषु जायते॥
अश्रुभिः पतितैःस्तेषां दानानामवकीर्तनम् । ब्राह्मणस्य हृते क्षेत्रे हतं त्रिपुरुषं कुलम् ॥
वापीकूपसहस्रेण अश्वमेधशतेन च । गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्ता न शुध्यति ॥ ३७ ॥

कृतं दत्तं तपोऽधीतं यत्किंचिद्धर्मसंस्थितम् ।
अर्धाङ्गुलस्य सीमाया हरणेन प्रणश्यति ॥ ३८ ॥

गोतीर्थं ग्रामरथ्यां च श्मशानग्राममेव च । संपीड्य नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम्
पञ्चकन्यानृते हन्ति दश हन्ति गवानृते । शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥ ४० ॥
हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन् । सर्वं भूम्यनृते हन्ति मास्मभूम्यनृतं वद
ब्रह्मस्वे नोरतिं कुर्यात्प्राणैः कण्ठगतैरपि । अग्निदग्धाः प्ररोहन्ति ब्रह्मदग्धो न रोहति
अग्निदग्धाः प्ररोहन्ति सूर्यदग्धास्तथैव च । राजदण्डहताश्चैव ब्रह्मशापहता हताः ॥

ब्रह्मस्वेन च पुष्टानि अङ्गानि च मुहुर्मुहुः। कार्यकाले विशीर्यन्ते सिकताभिस्यो यथा
ब्रह्मस्वहरणं कुर्वन्नरो यातिह रौरवम्। न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते ॥४५॥
विषमेकाकिनं हन्ति ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकम्। लोहचूर्णं चाश्मचूर्णं विषं संजरयेन्नरः॥
ब्रह्मस्वं त्रिषु लोकेषु कः पुमाञ्जरयिष्यति। ब्रह्मस्वेन तु यत्सौख्यं देवस्वेन तु या रतिः
तद्धनं कुलनाशाय भवत्यात्मविनाशनम्। ब्रह्मस्वं ब्रह्महत्या च दरिद्रस्य तु यद्धनम्॥

गुरुमित्रहिरण्यं च स्वर्गस्थमपि पीडयेत्।
श्रोत्रियाय कुलीनाय दरिद्राय च वासव ! ॥ ४६ ॥

संतुष्टाय विनीताय सर्वस्वसहिताय च। वेदाभ्यासतपपोज्ञानेन्द्रियसंयमशालिने॥
ईदृशाय सुरश्रेष्ठ यद्दत्तं हि तदक्षयम्। आमपात्रे यथान्यस्तं क्षीरं दधिघृतं मधु ॥५१॥

भिनत्ति पात्रं दौर्बल्यान्न च पात्रं विनश्यति।
एवं गां च हिरण्यं च वस्त्रमन्नं महीं तिलान् ॥ ५२ ॥

अविद्वान्प्रतिगृह्णातिभस्मीभवति काष्ठवत्। यस्तडागं नवंकुर्यात्पुराणं वापि खानयेत्
सर्वं कुलं समुद्धृत्य स्वर्गलोके महीयते। वापीकूपतडागानि उद्यानप्रभवाणि च॥
पुनर्नीतानि संस्कारं ददते मौक्तिकं फलम्। निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठति वासव
स दुर्गं विषमं कृच्छ्रं न कदाचिदवाप्नुयात्। एकाहं तु स्थितं तोयंपृथिव्यां देवसत्तम
कुलानि तारयेत्तस्य सप्तपूर्वापराण्यपि। दीपालोकप्रदानेन वपुष्मान्स भवेन्नरः॥

दक्षिणायाः प्रदानेन स्मृतिं मेधां च विन्दति
कृत्वाऽपि पातकं कर्म यो दद्यादनुसन्धिने ॥ ५८ ॥

ब्राह्मणाय विशेषेण न स पापैर्हिलिप्यते। भूमिर्गावस्तथा दासः प्रसह्य प्रहृता यदा॥
न निवेदयते यस्तु तमाहुर्ब्रह्मघातकम्। उपस्थिते विवाहे च यज्ञे दाने च वासव ॥६०

मोहाच्चरति विघ्नं यः स मृतो जायते कृमिः।
धनं फलति दानेन जीवितं जीवरक्षणात् ॥ ६१ ॥

रूपमैश्वर्यमारोग्यमहिंसाफलमश्नुते। फलमूलाशनात्पूजां स्वर्गः सत्येन लभ्यते ॥६२॥
प्रायोपवेशनाद्राज्यं सर्वत्र सुखमश्नुते। सुखाढयः शक्रदीक्षायां सुगामी च तृणाशनः

रूपी त्रिषवणस्नायी वायुंपीत्वाक्रतुं लभेत् । नित्यस्नायी भवेद्दक्षःसन्ध्यावेदजपान्वितः
अहिंस्रो यातिवै राज्यं नाकपृष्ठमनाशकम् । अग्निप्रवेशी नियतं ब्रह्मलोके महीयते ॥
रसानां प्रतिसंहारे पशून्पुत्रांश्च विन्दति । नाके चिरं सवसति उपवासी च यो भवेत्
सततं भूमिशायी यः स लभेदीप्सितां गतिम् । वीराशनं वीरशयं वीरस्थानमुपासतः

अक्षयास्तस्य लोकाः स्युः सर्वकामगमास्तथा ।
उपवासं च दीक्षां च अभिषेकं च वासव ! ॥६८॥

कृत्वा द्वादशवर्षाणि वीरस्थानाद्विशिष्यते । पावनं चरते धर्मं स्वर्गलोके महीयते ॥
बृहस्पतिमतं पुण्यं ये पठन्ति द्विजोत्तमाः । तेषां चत्वारि वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्

नारद उवाच ।

इतीन्द्राय बृहस्पतिप्रणीतं धर्मशास्त्रकम् । मह्यं भक्ताय सम्प्रोक्तं महेशेनाखिलं नृप ! ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादे धर्मकथने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

रोहिण्यां शनिगमनप्रतिरोधे दशरथप्रयत्नः ।

नारद उवाच ।

शनिपीडा कथं याति तन्मे वद सुरोत्तम । त्वन्मुखाच्छ्रूयते यद्वै तेन जन्तुः प्रमुच्यते

महादेव उवाच ।

देवर्षे ! शृणु वृत्तान्तं येन मुच्येत बन्धनात् । ग्रहाणां ग्रहराजोऽयं सौरिः सर्वमहेश्वरः
अयंतु देवो विख्यातः कालरूपी महाग्रहः । जटिलो वज्ररोमा च दानवानां भयङ्करः ॥

तस्याख्यानं च लोकेऽस्मिन्प्रथितं नास्ति वै प्रभो ! ।
मया गुप्तं विशेषेण नोक्तं हि कस्यचित्कदा ॥ ४ ॥

रघुवंशेऽति विख्यातो राजा दशरथः पुरा। चक्रवर्ती महावीरः सप्तद्वीपाधिपोऽभवत्
कृत्तिकान्ते शनिं ज्ञात्वा दैवज्ञैर्ज्ञापितो हि सः।
रोहिणीं भेदयित्वा च शनिर्यास्यति साम्प्रतम्॥ ६॥
शाकटं भेदमत्युग्रं सुरासुराभयङ्करम्। द्वादशाब्दं तु दुर्भिक्षं भविष्यति सुदारुणम्॥
एतच्छ्रुत्वा ततो वाक्यं मन्त्रिभिः सह पार्थिवः।
मन्त्रयामास किमिदं भयङ्करमुपस्थितम्॥ ८॥
आकुलं च जगद्दृष्ट्वा पौरजानपदादिकम्। ब्रुवन्ति सर्वतो लोकाः क्षय एष समागतः
देशाः सनगरा ग्रामा भयभीताः समन्ततः। पप्रच्छप्रयतो राजा वसिष्ठप्रमुखान्द्विजान्
सम्विधानं किमत्रास्ति ब्रूत मां हि द्विजोत्तमाः! ॥ ११॥

वसिष्ठ उवाच।

प्राजापत्यमृक्षमिदं तस्मिन्भिन्ने कुतः प्रजाः।
अयं योगो ह्यसाध्यस्तु ब्रह्मशक्रादिभिस्तथा॥ १२॥
इति संचिन्त्य मनसा साहसं परमं महत्। समादाय धनुर्दिव्यं दिव्यायुधसमन्वितम्
रथमारुह्य वेगेन गतो नक्षत्रमण्डलम्। सपादं योजनं लक्षं सूर्यस्योपरि संस्थितम्॥
रोहिणीपृष्ठमास्थाय राजा दशरथः पुरा।
रथं तु काञ्चने दिव्ये मणिरत्नविभूषिते॥ १५॥
हंसवर्णहयैर्युक्ते महाकेतुसमुच्छ्रये। दीप्यमानो महारत्नैः किरीटमुकुटोज्ज्वलः॥१६॥
बभ्राज स तदाऽऽकाशे द्वितीय इव भास्करः।
आकर्णपूर्णचापे तु संहारास्त्रं न्ययोजयत्॥ १७॥
संहारास्त्रं शनिर्दृष्ट्वा सुरासुरभयङ्करम्। हसित्वा तद्भयात्सौरिरिदं वचनमब्रवीत्॥

शनिरुवाच।

पौरुषं तव राजेन्द्र परं रिपुभयङ्करम्। देवासुरमनुष्याश्च सिद्धविद्याधरोरगाः॥ १९॥
मया विलोकिता राजन्भस्मसाच्च भवन्तिते। तुष्टोऽहंतव राजेन्द्र तपसा पौरुषेणच
वरं ब्रूहि प्रदास्यामि मनसा यत्किमिच्छसि॥ २०॥

दशरथ उवाच ।

रोहिणीं भेदयित्वा तु न गन्तव्यं कदाचन । सरितः सागरा:यावद्यावच्चन्द्रार्कमेदिनी

याचितं तु मया सौरे ! नान्यमिच्छामि ते वरम् ।

एवमस्तु शनिः प्राह वरं दत्त्वा तु शाश्वतम् ॥ २२ ॥

पुनरेवाब्रवीत्तुष्टो वरं वरय सुव्रत ! । प्रार्थयामास हृष्टात्मा वरमन्यं शनेस्तदा ॥ २३ ॥

न भेत्तव्यं हि शकटं त्वया भास्करनन्दन । द्वादशाब्दंतु दुर्भिक्षं न कर्तव्यं कदाचन ॥

शनिरुवाच ।

द्वादशाब्दं तु दुर्भिक्षं न कदाचिद्भविष्यति । कीर्तिरेषा त्वदीया च त्रैलोक्येविचरिष्यति

वरद्वयं तु सम्प्राप्य हृष्टरोमा च पार्थिवः । रथोपरि धनुर्मुक्त्वा भूत्वा चैव कृताञ्जलिः

ध्यात्वा सरस्वतीं देवीं गणनाथं विनायकम् ।

राजा दशरथः स्तोत्रं सौरेरिदमथाब्रवीत् ॥ २७ ॥

दशरथ उवाच ।

नमः कृष्णाय नीलाय शितिकण्ठनिभाय च ।

नमःकालाग्निरूपाय कृतान्ताय च वै नमः ॥ २८ ॥

नमो निर्मांसदेहाय दीर्घश्मश्रुजटाय च । नमो विशालनेत्राय शुष्कोदर भयाकृते ॥२९॥

नमःपुष्कलगात्राय स्थूलरोम्णेऽथ वै नमः । नमो दीर्घायशुष्काय कालदंष्ट्र नमोऽस्तुते

नमस्ते कोटराक्षाय दुर्निरीक्ष्याय वै नमः । नमो घोराय रौद्राय भीषणाय कपालिने

नमस्ते सर्वभक्षाय वलीमुख नमोऽस्तु ते । सूर्यपुत्र नमस्तेऽस्तु भास्करे भयदाय च ॥

अधोदृष्टे ! नमस्तेऽस्तु संवर्तक ! नमोऽस्तु ते ।

नमो मन्दगते ! तुभ्यं निस्त्रिंशाय नमोऽस्तु ते ॥ ३३ ॥

तपसा दग्धदेहाय नित्यं योगरताय च । नमो नित्यं क्षुधार्ताय अतृप्ताय च वै नमः ॥

ज्ञानचक्षुर्नमस्तेऽस्तु कश्यपात्मजसूनवे ।

तुष्टो ददासि वै राज्यं रुष्टो हरसि तत्क्षणात् ॥ ३५ ॥

देवासुरमनुष्याश्च सिद्धविद्याधरोरगाः । त्वयाविलोकिताःसर्वे नाशं यान्ति समूलतः

प्रसादं कुरु मे देव वरार्होऽहमुपागतः । एवं स्तुतस्तदा सौरिर्ग्रहराजो महाबलः ॥३७॥
अब्रवीच्च पुनर्वाक्यं हृष्टरोमा तु भास्करिः ।
तुष्टोऽहं तव राजेन्द्र स्तवेनानेन सुव्रत । वरं ब्रूहि प्रदास्यामि स्वेच्छया रघुनन्दन ! ॥
दशरथ उवाच ।
अद्यप्रभृति ते सौरे पीडाकार्या न कस्यचित् । देवासुरमनुष्याणां पशुपक्षिसरीसृपाम्
शनिरुवाच ।
गृह्णन्तीति ग्रहाःसर्वेग्रहाःपीडाकराःस्मृताः । अदेयंयाचितं राजन्किंचिद्युक्तं वदाम्यहम्
त्वया प्रोक्तमिदं स्तोत्रं यः पठिष्यति मानवः ।
एककालं द्विकालं वा पीडामुक्तो भवेत्क्षणात् ॥ ४१ ॥
देवासुरमनुष्याणां सिद्धविद्याधरक्षसाम् । मृत्युं मृत्युगतो दद्यां जन्मन्यन्ते चतुर्थके
यः पुनः श्रद्धयायुक्तः शुचिर्भूत्वा समाहितः । शमीपत्रैःसमभ्यर्च्य प्रतिमां लोहजां मम
माषौदनतिलैर्मिश्रं दद्याल्लोहं च दक्षिणाम् ।
कृष्णां गां वृषभं वाऽपि यो वै दद्याद् द्विजातये ॥४४॥
मद्दिने तु विशेषेण स्तोत्रेणानेन पूजयेत् । पूजयित्वा जपेत्स्तोत्रं भूत्वाचैव कृताञ्जलिः
तस्य पीडां न चैवाहं करिष्यामि कदाचन । गोचरे जन्मलग्ने वा दशास्वन्तर्दशासु च
रक्षामि सततं तस्य पीडांचापि ग्रहस्य च । अनेनैव विधानेन पीडामुक्तं जगद्भवेत् ॥
एवं युक्त्या मया दत्तो वरस्ते रघुनन्दन । वरत्रयं तु संप्राप्य राजा दशरथस्तदा ॥४८॥
मेने कृतार्थमात्मानं नमस्कृत्य शनैश्चरम् ।
शनिना चाभ्यनुज्ञातो रथमारुह्य वेगवान् ॥ ४९ ॥
स्वस्थानं गतवान्राजा प्राप्तश्रेयोऽभवत्तदा । य इदं प्रातरुत्थाय शनिवारे स्तवं पठेत्
पठ्यमानमिदंस्तोत्रं श्रद्धयायः शृणोति च । नरः स मुच्यते पापात्स्वर्गलोके महीयते
राज्ञा दशरथेनोक्तं शनेःस्तोत्रं च शारदम् । परमायुष्करं बल्यं सर्वपीडाविनाशनम् ॥
कान्तिदं पुत्रदं चैव ग्रहशान्तिकरं परम् ।
ईदृशं नास्ति लोकेऽस्मिन्पावनं भुवि दुर्लभम् ॥५३॥

वृद्धाख्ये नगरे रम्ये तत्र तीर्थं ह्यनुत्तमम् । श्रावणेमासि गन्तव्यं तस्मिंस्तीर्थे ह्यनुत्तमे
वसन्ति ब्राह्मणा यत्र वृद्धाख्यं च पुरं महत् । शनेः सरोवरं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम्
तत्र गत्वा नरश्रेष्ठ स्नानंचैव समाचरेत् । ग्रहपीडा विनश्यन्ति इत्येवं ब्रह्मणो वचः ॥
चतुरशीतिसहस्राणि तीर्थानि तत्र वा ऋषे । नगरं वृद्धसंज्ञं तु कथितं ब्रह्मसूनवे ॥५७

महेशेनैव रचितं यत्र तीर्थं तु वर्तते ॥ ५८ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारद-संवादे दशरथकृत शनिस्तोत्रं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

माधवजाह्नवीसंवादे त्रिस्पृशैकादशीव्रतविधानम् ।

नारद उवाच ।

त्रिस्पृशाख्यं व्रतं ब्रूहि सर्वेश्वरविशेषतः । यच्छ्रुत्वामुच्यते लोकःकर्मबन्धनतः क्षणात्

महादेव उवाच ।

सर्वपापौघशमनं महादुःखविनाशनम् । शृणु कृष्णावतारं त्वं त्रिस्पृशाख्यं महाव्रतम् ॥

कामदं सस्पृहाणां तु निस्पृहाणां तु मोक्षदम् ।
त्रिस्पृशाख्यं व्रतं विप्र ! शृणुष्व गदतो मम ॥३॥

प्रत्यक्षमर्चितस्तेनकलिकाले च केशवः । त्रिस्पृशा कीर्तनं नित्यं यःकरोति महामुने ॥
न पुरश्चरणे चीर्णे सर्वपापक्षयो भवेत् । त्रिस्पृशानाममात्रेण क्षीयते नात्र संशयः ॥
नागमैर्न पुराणाद्यैर्न मखैस्तीर्थकोटिभिः । बहुभिर्व्रतसङ्घैश्च पूजितैस्त्रिदशैरपि ॥ ६ ॥

मोक्षो भवति विप्रेद्र ! त्रिस्पृशा न कृता यदि ।
मोक्षार्थे देवदेवेन दृष्ट्वा वै वैष्णवी तिथिः ॥ ७ ॥
द्विजानां दुर्विदं साङ्ख्यं कलिकाले विशेषतः ।

अनिग्रहश्चेन्द्रियाणां स्थिरत्वं मनसो न हि ॥८॥
विषयैर्विप्रयुक्तानां ध्यानधारणवर्जिनाम् । कामभोगप्रसक्तानांत्रिस्पृशा मोक्षदायिनी
मह्यं चैव पुरा प्रोक्ता चतुर्वक्त्रस्य सागरे । क्षीरोदे प्रणतानां तु मथ्यमाने तु चक्रिणा
त्रिस्पृशां ये करिष्यन्ति विषयैरपि संयुताः ।
तेषामपि मया दत्तो मोक्षःसाङ्ख्यविवर्जिनाम् ॥ ११ ॥
कामभोगप्रसक्तानां त्रिस्पृशा मोक्षदायिनी । वहुभिर्मुनिसङ्घैश्च कृतेयं च महामुने ! ॥
कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु त्रिस्पृशा जायते यदि । सोमेन सोमजेनापिपापकोटिविनाशिनी
यस्या उपोषणकृतो हत्यायुक्तमहेशितुः । हस्ताद्ब्रह्मकपालं तु तत्क्षणात्पतितं भुवि
कलिकलमष कोट्योघैर्मुक्ता देवी त्रिमार्गगा । उपदेशान्माधवस्यत्रिस्पृशा समुपोषणात्
हत्याष्टो वाहुवीर्यस्य पूर्वजाता महामुने । गता भृगूपदेशेन त्रिस्पृशा समुपोषणात् ॥
शतायुधेन विप्रेन्द्र निहतो ब्राह्मणो वने । ब्रह्महत्याविनिर्मुक्तस्त्रिस्पृशासमुपोषणात् ॥
जीवोपदेशाच्छक्रस्य हत्या न मुनिसंभवा ।
विनष्टा मुनिमुख्येन्द्र त्रिस्पृशा समुपोषणात् ॥ १८ ॥
ब्रह्महत्यादि पापानि त्रिस्पृशा समुपोषणात् ।
विलयं यान्ति विप्रेन्द्र पापेष्वन्येषु का कथा ॥ १६ ॥
न प्रयागे न काश्यां तु गोमत्यां कृष्णसन्निधौ ।
मोक्षो भवति विप्रेन्द्र त्रिस्पृशा यदि नो कृता ॥ २० ॥
मरणाच्च प्रयागे तु गोमत्यां कृष्णसन्निधौ ।
स्नानमात्रेण गोमत्यां मुक्तिर्भवति शाश्वती ॥ २१ ॥
गृहेऽपि जायते मुक्तिस्त्रिस्पृशा समुपोषणात् । विषयेवर्त्तमानस्यकामभोगान्वितस्यचं
निवृत्तविषयस्यापि मुक्तिः साङ्ख्येन दुर्लभा ।
तस्मात्कुरुष्व विप्रेन्द्र त्रिस्पृशां मोक्षदायिनीम् ॥ २३ ॥

नारद उवाच ।

कीदृशं तत्सुरश्रेष्ठ त्रिस्पृशाख्यं महाव्रतम् । मुक्तिदंयद्द्विजातीनां त्वया प्रोक्तं ममाधुना

महादेव उवाच ।

जाह्नव्यै सा पुरा विप्र त्रिस्पृशा माधवेन तु । प्राचीसरस्वतीतीरे कथिता त्वनुकम्पया

जाह्नव्युवाच ।

कलिकल्मषकोट्योघैर्ब्रह्महत्यादिकैर्युताः । कलिकाले हृषीकेश स्नानं कुर्वन्ति मज्जले ॥

तेषां पापशतैर्दोषैर्देहो मे कलुषीकृतः । कथं यास्यति मे देव पातकं गरुडध्वज ॥२७॥

प्राचीमाधव उवाच ।

कथयामि न संदेहः पुत्रि मारोदनं कुरु । श्यामो वटस्तु मे स्थानं प्राचीदेवी ममाग्रतः

वहते ब्रह्मतनया दृष्ट्वाऽग्रे च सुरेश्वरीम् ।

स्नानं कुरुष्व नित्यं त्वं त्वत्र पूता भविष्यसि ॥ २९ ॥

यत्र ब्रह्मसुता प्राची तत्राहं नात्र संशयः । तीर्थकोटिशतैर्युक्तः सुरैः सह वसाम्यहम् ॥

पवित्रं मत्प्रियं स्थानं हत्याकोटिविनाशनम् ।

संतुष्टेन मया दत्तं यस्मात्प्राणाधिकाऽसि मे ॥ ३१ ॥

तीर्थकोटिसहस्राणि नित्यं तिष्ठन्ति जाह्नवि । प्राचीसरस्वती तोये सर्वदैवममाज्ञया

ब्रह्मवधात्सुरापानाद्गोवधाद्वृषलीवधात् । ब्रह्मदेवस्वहरणान्माता पित्रोस्त्वपूजनात्

चक्रियानाद्गुरुद्रोहादभक्षस्य च भक्षणात् । सर्वपापस्य करणात्प्राची ब्रह्मसुता सुते

व्यपोहयति पापानि सकृत्स्नानेन मेऽग्रतः ।

कुरु स्नानं सरिच्छ्रेष्ठे विपापा त्वं भविष्यसि ॥ ३५ ॥

जाह्नव्युवाच ।

नाहं शक्नोमि देवेश आगन्तुं नित्यमेव हि । अतिदूरे च तत्तीर्थं तत्र गन्तुं न पार्यते ॥

कथं नश्यन्ति पापानि कथयस्वेह माधव ॥ ३६ ॥

प्राचीमाधव उवाच ।

न शक्नोषि यदा गन्तुं नित्यमेवहि जाह्नवि । तदान्यत्संप्रवक्ष्यामि यस्मान्मत्पादसंभवा

सरस्वत्यधिका या च तीर्थकोटिशताधिका ।

मखकोट्यधिका वाऽपि व्रतदानाधिका च या ॥ ३८ ॥

जपहोमाधिका या च चतुर्वर्गफलप्रदा ।
साङ्ख्ययोगाधिका या च त्रिस्पृशा क्रियतां शुभा ॥ ३९ ॥
यस्मिन्मासे समायाति सिता च यदि वासिता ।
कर्तव्या सा सरिच्छ्रेष्ठे कृते पापात्प्रमुच्यते ॥ ४० ॥

जाह्नव्युवाच ।

कीदृशी त्रिस्पृशा देव ममाख्याहि सुमाधव ।
ईदृशो महिमा यस्यास्त्वया प्रोक्तो ममाधुना ॥ ४१ ॥
दशम्येकादशी भद्रा दिनैकस्मिन्यदाभवेत् ।
त्रिस्पृशा सा भवेद्देव वान्यथा वद मे प्रभो ॥ ४२ ॥

कृष्ण उवाच ।

आसुरी त्रिस्पृशा देवी या त्वया परिकीर्तिता ।
वर्जनीया प्रयत्नेन वृत्तिहीनो यथा पतिः ॥ ४३ ॥

असुराणां तु सा प्रोक्ता आयुर्बलविनाशिनी । वर्जनीया प्रयत्नेन यथानारी रजस्वला
स्वजातिं चपरित्यज्यागतासाऽधमजातिषु। सेवत्याजं विशेषेण दशमीयुक्तं हि मद्दिनम्
यथा रजस्वलासङ्गाद्द दूष्यन्ते ज्ञानवर्जिताः । तथैव दशमीयुक्तं मद्दिनं दूषितं नृणाम्
हत्यायुतशतं हन्ति त्रिस्पृशा समुपोषिता । एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी

त्रिस्पृशा सा तु विज्ञेया दशमी सहिता न हि ।
कृत्वाऽपराधं मुच्येत प्रायश्चित्ते कृते नरः ॥ ४८ ॥

दशमीवेधजं दोषं न क्षमामि सुरापगे । भुक्तं हालाहलं तेन विषस्य भक्षणं कृतम् ॥
दशमीमिश्रीतं येन कृतमेकादशीव्रतम् । इति मत्वा न कर्त्तव्यं मद्दिनं दशमीयुतम् ॥
जन्मकोटिकृतं पुण्यसन्तानं याति संक्षयम् । पातयेत्स्वकुलं स्वर्गान्नयते रौरवादिकम्

स्वदेहं शोधयित्वा तु कर्त्तव्यो मम वासरः ।
वृद्धौ त्याज्या विना वेधाच्छ्रवणादिषु संयुता ॥ ५२ ॥

जन्मपुण्यं क्षयं याति एकादश्युपवासिनाम् । संवृद्धौ तु विशेषेण संदेहे समुपस्थिते

ममाज्ञया च कर्त्तव्या द्वादशी वल्लभा मम ॥ ५४ ॥

जाह्नव्युवाच ।

करिष्येऽहं जगन्नाथ त्रिस्पृशां वचनात्तव । सर्वपापविनिर्मुक्ता भविष्यामि तवाज्ञया ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

स्वस्थानं गच्छ भद्रं ते न भी कार्या कदाचन । तव देवि सरिच्छ्रेष्ठे न पापं संक्रमिष्यति

स्नात्वा सरस्वतीतोये येऽर्चयित्वा च माधवम् ।

प्रणमन्ति जगन्नाथं ते यान्ति परमां गतिम् ॥ ५७ ॥

जाह्नव्युवाच ।

विधानं ब्रूहि मे ब्रह्मन्सर्वस्वेन करोम्यहम् । प्रसादयामि देवेशं दामोदरमनामयम् ॥

प्राचीमाधव उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि त्रिस्पृशाया विधानकम् ।

यं श्रुत्वाऽपि सरिच्छ्रेष्ठे ! मुच्यते पातकैर्नरः ॥५९॥

पलेन चपलार्धेन तदर्द्धेनापि वापगे । प्रतिमा मम सौवर्णा कार्या विभवसारतः ॥६०

पात्रं ताम्रमयं कार्यं तिलैस्तु परिपूरितम् । सजलं तु घटं शुभ्रं पञ्चरत्नसमन्वितम् ॥

वेष्टितं पुष्पमालाभिःकर्पूरागुरुवासितम् । न्यसेद्दामोदरं पश्चात्स्नापयित्वा विलिप्य च

परिधानं ततः कार्यं वस्त्रयुग्मेन चान्वितम् । मन्त्रैस्तु पूजनं कार्यं पुराणैः समुदीरितै

पुष्पैः कालोद्भवैः शुभ्रैः कोमलैस्तुलसीदलैः ।

छत्रं तु विष्णवे दद्यात्पादुकाभ्यां सुसंयुतम् ॥ ६४ ॥

निवेद्यानि मनोज्ञानि फलानि सुबहून्यपि । उपवीतं तु दातव्यं सोत्तरीयं नवं दृढम्

वैणवं दापयेद्दण्डं सुरूपं सोन्नतं दृढम् । दामोदराय वै पादौ जानुनी माधवाय च ॥

गुह्यं कामप्रदायेति कटिं वामनमूर्तये । पद्मनाभाय नाभिं तु जठरं विश्वयोनये ॥ ६७ ॥

हृदयं ज्ञानगम्याय कण्ठं वैकुण्ठवासिने । सहस्रबाहवे बाहू चक्षुषी योगरूपिणे ॥

सहस्रशीर्षा शिरसि सर्वाङ्गं माधवाय च ॥ ६८ ॥

संपूज्य विधिवद्भक्त्या दद्यादर्घं विधानतः ॥६९॥

शुभ्रेण नालिकेरेण शङ्खोपरिस्थिते नहि । सूत्रैराष्ट्रिवेतेनैव हस्तयोरुभयोरपि ॥७०॥

स्मृतौ हरसि पापानि यदि नित्यं जनार्दन ।
दुःस्वप्नं दुर्निमित्तानि मनसा दुर्विचिन्तितम् ॥ ७१ ॥

नारकं तु भयं देव भयं दुर्गतिसम्भवम् । यन्ममस्यान्महादेव एहिकं पारलौकिकम् ॥

तेन देवेश मां रक्ष गृहाणार्घं नमोऽस्तु ते । कृपादृष्टिःसदैवास्तु दामोदर ममोपरि ॥

धूपंदीपं च नैवेद्यं कुर्यान्नीराजनं ततः । शीर्षोपरि सरिच्छेष्टे भ्रामयेद्वारिजं हरेः ॥७४

कृत्वा विधानमेतद्धि पूजयेत्स्वगुरुं ततः ।
दद्यात्सुवर्णं वस्त्राणि सोष्णीषं चैव कञ्चुकम् ॥ ७५ ॥
उपानहौ तु छत्रं च मुद्रिकां च कमण्डलुम् ।
भोजनं चैव ताम्बूलं सप्तधान्यं च दक्षिणाम् ॥७६॥

गुरुं संपूज्य देवेशं कुर्याज्जागरणं हरेः । गीत नृत्यसमायुक्तमुपचारसमन्वितम् ॥७७॥

निशान्ते चैव देवाय दत्त्वा चार्घं विधानतः ।
स्नानादिकां क्रियां कृत्वा भुञ्जीयाद्बाडवैःसह ॥ ७८ ॥

शिव उवाच ।

द्विजैतत्त्रिस्पृशाख्यानमद्भुतं रोमहर्षणम् । श्रुत्वा तु लभते पुण्यंगङ्गास्नान समुद्भवम्

अश्वमेध सहस्राणि वाजपेय शतानि च । तत्फलं समवाप्नोतित्रिस्पृशा समुपोषणात्

पितृपक्षो मातृपक्षस्तथा चैवात्मपक्षकः । तैःसर्वैः सहसंयुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥

तीर्थकोटिषु यत्पुण्यं क्षेत्रकोटिषु यत्फलम् ।
तत्फलं समवाप्नोति त्रिस्पृशासमुपोषणात् ॥ ८२ ॥
ब्राह्मणाये ऽपि कुर्वन्ति क्षत्त्रियाः कृष्णमानसाः ।
वैश्या वा शूद्रजन्मानो ये तथा चान्यजातयः ॥ ८३ ॥
ते सर्वे मुक्तिमायान्ति भुवं त्यक्त्वा द्विजोत्तम ! ।
मन्त्राणां मन्त्रराजोऽथ यथा स्याद् द्वादशाक्षरः ॥ ८४ ॥
व्रतानां च तथा चैषा येन वै त्रिस्पृशा कृता ।

ब्रह्मणा च कृता पूर्वं पश्चाद्राजर्षिभिः कृता ॥८५ ॥

अन्येषांकाकथावत्सत्रिस्पृशामुक्तिदायिनी। अनेन विधिना ब्रह्मंस्त्रिस्पृशासंभवंव्रतम्

यः करोति नरो भक्त्या शृणु वक्ष्यामि तत्फलम्।

गङ्गावगाहने ब्रह्मन्वाराणस्यां तु यत्फलम् ॥ ८७ ॥

मन्वन्तरसहस्रैस्तु त्रिस्पृशाकारको हि तत्।

प्राच्यां च यमुनास्नाने वर्षैर्यत्कोटिभिः फलम् ॥ ८८ ॥

तत्फलं समवाप्नोति त्रिस्पृशाव्रतकृन्नरः। यत्फलं तु कुरुक्षेत्रे सूर्यग्रहणकोटिभिः॥
हेमभारशतैर्दानैस्त्रिस्पृशाकरणेन तत्। पापकोटिसहस्राणि हत्याकोटिशतानि च ॥
एकेनैवोपवासेन क्रियते भस्मसाद्‌द्रुतम्। त्रिस्पृशाया व्रतं यत्तु अगतीनां गतिप्रदम्॥

गतिमिच्छन्ति विप्रर्षे महापापशतानि च।

स्वयं कृष्णेन कथितं पाराशर्यस्य चाग्रतः ॥ ९२ ॥

प्रकाशयति यश्चेदं लिखित्वा वैष्णवं द्विजे। पापौघैर्ग्रथितस्यापि तस्यमुक्तिर्भविष्यति
पुण्यैरवाप्यते विद्वन्मन्वन्तरशतैरपि। त्रिस्पृशा दुर्लभा लोके प्राप्यते नैव मानवैः ॥९४

कलौ ये त्रिस्पृशां लब्ध्वा न कुर्वन्ति नराधमाः।

तेषां जन्मफलं चैव जीवितं विफलं भवेत् ॥ ९५ ॥

प्रेतत्वं तैः समुत्तीर्णं विना श्राद्धैर्विनासुतैः।

कृता यैस्त्रिस्पृशा विद्वन्सकृत्प्राप्य कलौ युगे ॥ ९६ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे
उमापतिनारदसंवादे त्रिस्पृशाख्यानं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

———

षट्त्रिंशोऽध्यायः

उन्मीलन्येकादशीव्रतविधानम् ।

महादेव उवाच ।

अतस्त्वां संप्रवक्ष्यामिउन्मीलनीमनुत्तमाम् । यस्याः श्रवणमात्रेणजन्मसंसाबन्धनात्
पापात्मा मुच्यते पापैः स्वर्गलोके महीयते । देवताः पितरश्चैव तस्या गतिमवाप्नुयुः
विद्यार्थी लभते विद्यां सर्वकामानवाप्नुयात् । तस्या व्रतान्न संदेहः स्वर्गलोके महीयते
स्वस्थानं तत्र वै प्राप्तः शिवलोके महीयते ।
अतस्त्वं कुरु भोराजन्वैष्णवानां तु पूजनम् ॥ ४ ॥
वैष्णवानां तु ये राजन्सेवां कुर्वन्ति नित्यशः ।
तेषां दण्डं च कुरुषे नो वा तेषां नराधिप ! ॥ ५ ॥
भोजनानन्तरं तेषां भोजनं कुरुते नृप । तैरेव पूजितो विष्णुर्यैर्भक्त्या तु प्रपूजितः ॥ ६
शालग्रामशिलाभूतां दत्त्वामूर्द्धनि प्रत्यहम् । त्वं धारयसि भूपालकण्ठे नित्यंसुभक्तितः
धूपशेषं तु वै विष्णोर्भक्त्या भजसि भूपते । आरार्तिकं सदाकृत्वा भक्तानां वेदयेर्नृप !
शङ्खोदकं हरेर्मूर्ध्नि भ्रामयित्वा तु भक्तितः ।
नित्यं बिभर्षि शिरसि शेषं यच्छसि वैष्णवान् ॥ ६ ॥
नैवेद्यं प्रत्यहं कृत्वा सर्वोपस्करसंयुतम् । विष्वक्सेनाय दत्त्वा वै स्वयं भुनक्षिवाडव
विष्णोर्निवेदितं चान्नं वैष्णवैः सह भुज्यते ।
नित्यं नामसहस्रेण भक्त्या स्तौषि जनार्दनम् ॥ ११ ॥
दीपार्घदानं वै विष्णोःकुरुषे गीतनर्तनम् । श्यामाङ्कुरैः पूजयसे पूज्यन्ते नृपसत्तम !
श्यामाङ्कुरै सदा वत्सपूजनं चातिदुर्लभम् । पृथ्वीदानसमं पुण्यं दूर्वया पूजनेकृते ॥
अतो वै नास्ति लोकेऽस्मिन्दूर्वायाः सदृशं भुवि ।
तया वै पूजनं कार्यं विष्णु सायुज्यमिच्छता ॥ १४ ॥

अतस्त्वं कुरुषे नित्यं पूजनं दूर्वया सह। यवाक्षतैर्विशेषेण पूजनं कुरुषे न वा ॥१५॥
पक्षे पक्षे नृपश्रेष्ठ विधिवद्द्वादशीव्रतम्। यत्कृतं तु महाराज महापापप्रणाशनम् ॥१६
मोक्षदं सुखदं चैव तथाऽऽयुष्यप्रदं सदा। एतद्विष्णुव्रतं प्रोक्तं वैष्णवानां तु मोक्षदम्
गृहस्थानां तु सुखदं यतीनां मुक्तिदायकम्। सर्वरोगादिशमनं पवित्रं कायशोधनम् ॥
व्रतमेतच्च कुरुषे नोवाचैव नराधिप। दशमीवेधरहितं कुरुषे जागरान्वितम् ॥ १६ ॥
तुलसीपत्रनिकरैर्नित्यं पूजयसे हरिम्। गोपीचन्दनजं पुण्ड्रं भाले वा नृपसत्तम ! ॥
धारितं सर्वलोकानां पवित्रीकरणं नृप। अतस्त्वं च धारयसे गोपीचन्दनसंभवम् ॥

ब्रह्महा हेमहारी च मद्यपानी तथैव च।
अगम्यगो महापापी तथा ह्यनृतभाषितः ॥ २२ ॥
ते सर्वे मुक्तिमायान्ति तिलकधारणाद्रुताः।
बिभर्षि कण्ठे नित्यं त्वं धात्रीफलसमुद्भवाम् ॥ २३ ॥

मालां मुख्यायुतसमां तुलसीपत्रसंभवाम्। शालग्रामशिलायुक्तां द्वारकायां समुद्भवाम्
नित्यं पूजयसे भूप भुक्तिमुक्तिफलप्रदाम्। पद्मसंज्ञं पुराणं वै पठसे पुरतो हरेः ॥२५॥
चरितं दैत्यराजस्य प्रह्लादस्य च भूपतेः। वासरं वासुदेवस्य सवेधं कुर्वतोनरान् ॥
निवारयसि भूपालशास्त्रं दृष्ट्वा प्रयत्नतः। सवेधं वासरं विष्णोर्यस्मिन्राष्ट्रे प्रवर्तते
लिप्यते तेन पापेन राजा भवति नारकी। वेधं चतुर्विधं त्यक्त्वा समुपोष्य हरेर्दिनम्

कुलकोटिं समुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ॥ २८ ॥

भूमिपालेन सम्पृष्टो वसुनाथेन गौतमः। यथोवाच तु माहात्म्यं तन्मे निगदतः शृणु ॥

गौतम उवाच ।

शृणु भूपाल वक्ष्यामि वैष्णवाख्यं महाव्रतम्।
यं श्रुत्वा पापिनः सर्वे मुक्तिमायान्ति तत्क्षणात् ॥ ३० ॥
द्वादशीसंभवं पुण्यं मयाऽऽख्यातं न कस्यचित्।
वैष्णवोऽसि महाराज ! भक्तो भगवतो नृणाम् ॥ ३१ ॥

वैष्णवं तु महागुह्यं तद्व्रतं त्वं निशामय। उन्मीलनी नाम पुरा भक्त्या मे माधवेन तु

कथिता सुप्रसन्नेन तां ते भूप वदाम्यहम् । एकादशीअहोरात्रं प्रभाते घटिका भवेत् ॥
उन्मीलनी तु सा ज्ञेया विशेषेण हरिप्रिया ।
त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ॥ ३४ ॥
कोट्यंशेनैव तुल्यानि मखावेदास्तपांसि च ।
उन्मीलनीसमं किंचिन्न भूतं न भविष्यति ॥ ३५ ॥
प्रयागो न कुरुक्षेत्रं न काशी न च पुष्करः । शैलो हिमाचलो नैव न मेरुर्गन्धमादनः ॥
शैलो न नीलनिषधो न विन्ध्यो नैव नैमिषम् ।
गोदावरी न कावेरी चन्द्रभागा न वेदिका ॥ ३७ ॥
न तापी न पयोष्णी च न क्षिप्रा नैव चन्दना ।
चर्मण्वती च सरयूश्चन्द्रभागा न गण्डिका ॥ ३८ ॥
गोमती च विपाशा च शोणाख्यश्च महानदः । किमत्र बहुनोक्तेन भूयो भूयो नराधिप
उन्मीलनीसमं किंचिन्न देवः केशवात्परः । उन्मीलनीमनुप्राप्य यैः कृतंकेशवार्चनम् ॥
पापचक्रसमूहस्य राशयः पतिताः क्षणात् ।
यस्मिन्मासे महीपाल ! तिथिरुन्मीलनी भवेत् ॥ ४१ ॥
तन्मासनाम्ना गोविन्दः पूजनीयः प्रयत्नतः । जातरूपमयः कार्योमासनाम्ना तु माधवः
स्वशक्त्या विश्वरूपस्तु श्रद्धाभक्तिसमन्वितः । पवित्रोदकसंयुक्तं पञ्चरत्नसमन्वितम् ॥
गन्धपुष्पाक्षतैर्युक्तं कुम्भं स्रग्दामभूषितम् । पात्रं च सोदकं कार्यं गोधूमैश्चापि पूरितम्
नानारत्नैश्च संयुक्तं नानागन्धैः प्रपूजितम् । मल्लिकामोदसंयुक्तं जातीपुष्पैः प्रपूजितम्
श्वेताख्यैस्तण्डुलैश्चैव पूरणीयः प्रयत्नतः । प्रदद्याद्वस्त्रयुग्मं तु उपवीतं तु सोत्तरम् ॥
उपानहौ तु राजर्षे श्वेतं छत्रं च सुन्दरम् । भोजनं जलपात्रं च सप्तधान्यं तिलैःसह ॥
रूप्यं चैव तु कार्पासं पायसं मुद्रिका हरेः । धेनुर्वाऽत्र तु दातव्या वत्सालङ्कारसंयुता
सुवर्णशृङ्गीं रौप्यखुरीं ताम्रपृष्ठीं तथैव च । कांस्यदोहां रत्नपुच्छीं दद्याद्वै गुरवेतदा
शय्यां सोपस्करां दद्यात्साधवे भक्तिपूर्वकम् ।
धूपं दीपं तु नैवेद्यं फलपत्रं निवेदयेत् ॥ ५० ॥

पूजनीयो महाभक्तैर्मन्त्रैरेभिस्तु केशवः । तुलसीपत्रसंयुक्तैः पुष्पैः कालोद्भवैस्तथा ॥
मालनाम्नैव चरणौ जानुनी विष्णुरूपिणे । गुह्ये तु गुह्यपतये कटौ वै पीतवाससे ॥
ब्रह्ममूर्तिभृतेनाभावुदरे विश्वयोनये । हृदये ज्ञानगम्याय कण्ठे वैकुण्ठमूर्तये ॥ ५३ ॥
ऊर्ध्वगाय ललाटे तु बाहौ दक्षान्तकारिणे । उत्तमाङ्गे सुरेशाय सर्वाङ्गे सर्वमूर्तये ॥

स्वनाम्ना चायुधादीनि पूजनीयानि भक्तितः ।
अर्घदानं प्रकर्तव्यं नालिकेरादिभिः समम् ॥ ५५ ॥

शङ्खोपरिजलं कृत्वा गन्धपुष्पाक्षतान्वितम् । सूत्रेण वेष्टितं कृत्वा दद्यादर्घं विधानतः
देवदेव महादेव ! श्रीकेशव ! जनार्दन ! । सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु पुण्यराशिविवर्धन ॥
शोकमोहमहापापान्मामुद्धर भवार्णवात् । सुकृतं न कृतं किंचिज्जन्मकोटिशतैरपि ॥
तथापि मां महास्वामिन्समुद्धर भवार्णवात् । व्रतेनानेन देवेश ! ये चान्ये मम पूर्वजाः

वियोनिश्च गताश्चान्ये पापमृत्युवशं गताः ।
ये भविष्यन्ति येऽतीताः प्रेतलोकात्समुद्धर ॥ ६० ॥
आर्तस्य मम दीनस्य भक्तिरव्यभिचारिणी ।
दत्तमर्घं मया तुभ्यं भक्त्या गृहीष्व माधव ! ॥६१॥

दत्त्वार्घं धूपदीपाद्यैर्नैवेद्यैर्विष्णुसंभवैः । स्तोत्रैर्नीराजनैर्गीतैर्भृत्यैःसंतोषयेद्धरिम् ॥६२
वस्त्रैर्दानैश्च गोदानैर्भोजनैस्तोषयेद्गुरुम् । तथा तथा विधातव्यं गुरुर्वैप्रीतिमाप्नुयात्

लोकानां तारणार्थाय धात्रा सृष्टो गुरुर्यतः ।
अतो वै गुरुपूजा च कर्त्तव्या वै प्रयत्नतः ॥ ६४ ॥

अहितं यो नाशयति स्वहितं दर्शयेत्सदा । स गुरुः स च विज्ञेयः सर्वधर्मार्थकोविदः ॥
अकुर्वन्वित्तशाठ्यं तु गुरवे तं निवेदयेत् । गुरोर्निवेदिते भूप ! परिपूर्णं भवेद् व्रतम् ॥
कृत्वा दिवातनं कर्म भोजनं ब्राह्मणैः सह । कर्त्तव्यं नृपशार्दूल ! दिनं नेयं कथानकैः
अनेन विधिना यस्तु कुर्यादुन्मीलनीव्रतम् । कल्पकोटिसहस्राणि वसतेविष्णुसन्निधौ

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादे उन्मीलनीव्रतं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

पक्षवर्द्धिन्येकादशीव्रतविधानम् ।

नारद उवाच ।

कीदृशी स्यान्महादेव पक्षवर्धिनिसंज्ञिका । यया वै कृतया जन्तुर्महापापात्प्रमुच्यते ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

अमा वा यदि वा पूर्णा संपूणा जायते यदा । भूत्वा वै नाडिका षष्टिर्वर्तते प्रतिपद्दिने
अश्वमेधायुतैस्तुल्या सा भवेत्पक्षवर्द्धिनी ॥ २ ॥

नारद उवाच ।

पूजाविधिं तु पृच्छामि साम्प्रतं देवसत्तम ! । यत्कृते तु महादेव! महाफलमवाप्नुयात्

महादेव उवाच ।

पूजाविधिं प्रवक्ष्यामि साम्प्रतं द्विजनन्दन ! ।
पूजिते चार्चिते विष्णौ फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ४ ॥

येन पूजाविधानेन तुष्टिं प्राप्नोति माधवः । अव्रणं जलपूर्णं च कुम्भं चन्दनचर्चितम् ॥
पञ्चरत्नसमायुक्तं पुष्पमालाभिवेष्टितम् । स्थाप्यं ताम्रमयं पात्रं सगोधूमं घटोपरि ॥
सौवर्णं कारयेद्देवं माससंज्ञाभिनामकम् । पञ्चामृतेन विधिना स्नपनं सुमनोरमम् ॥
कारयेद्देवदेवेशं जगन्नाथं जगत्पतिम् । विलेपनं तु कर्त्तव्यं कुङ्कुमागरुचन्दनैः ॥ ८ ॥
वस्त्रयुग्मं च दातव्यं छत्रोपानहसंयुतम् । पूजयेद्देवताधीशं कुम्भपात्रोपरि स्थितम् ॥
पद्मनाभाय वै पादौ जानुनी विश्वमूर्त्तये । ऊरू वै ज्ञानगम्याय कटी ज्ञानप्रदाय च ॥

उदरं विश्वनाथाय हृदयं श्रीधराय च ।
कण्ठं कौस्तुभकण्ठाय बाहू क्षत्त्रान्तकारिणे ॥ ११ ॥
ललाटं व्योममूर्ध्ने तु शिरो वै सर्वरूपिणे ।
स्वनाम्ना चैव कमलं सर्वाङ्गी दिव्यरूपिणीम् ॥ १२ ॥

एवं विधिवत्संपूज्य ततोऽर्घं दापयेत्सुधीः। नालिकेरेण शुभ्रेण देवदेवस्य चक्रिणः
अनेनैवार्घदानेन संपूर्णं जायते व्रतम्। संसारार्णवमग्नं मां समुद्धर जगत्पते! ॥१४॥

त्वमीशः सर्वलोकानां त्वं साक्षाच्च जगत्पतिः।
गृहाणार्घं मया दत्तं पद्मनाभ नमोऽस्तु ते! ॥ १५ ॥

नैवेद्यानि सुहृद्यानि षड्रसानि विशेषतः। देयानि तु विशेषेण केशवाय सुभक्तितः ॥
नागपत्रं सकर्पूरं दद्याद्देवस्य भक्तितः। घृतेन दीपकं कुर्यात्तिलतैलेन वा पुनः ॥ १७ ॥

कृत्वा सम्यग्विधानेन गुरोः पूजां प्रकारयेत्।
वस्त्राणि चैव चोष्णीषं कञ्चुकं च प्रदापयेत् ॥ १८ ॥

दक्षिणां च यथाशक्त्या गुरवे संप्रदापयेत्। भोजनं चैव ताम्बूलंदत्त्वा चार्घं प्रदापयेत्
स्ववित्तस्यानुसारेण यथाशक्त्या तु निर्द्धनैः। कार्यासम्यक्प्रयत्नेनद्वादशीपक्षवर्द्धिनी

ततो जागरणं कुर्याद्गीतनृत्यसमन्वितम्।
पुराणपाठसहितं हास्याह्लादसमन्वितम् ॥ २१ ॥

स्तुवन्ति च प्रशंसन्ति जागरं चक्रधारिणः। नित्योत्सवोभवेत्तेषां गृहे वै दशजन्मसु

अतो धन्यतमा चेयं कर्त्तव्या पक्षवर्धिनी।
कृत्वा तु सकलं पुण्यं फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ २३ ॥
पक्षवर्धिनीमाहात्म्यं ये शृण्वन्ति मनीषिणः।
तैः कृतं सत्कृतं सर्वं यावदाभूतसंप्लवम् ॥ २४ ॥
पञ्चाग्निसाधने पुण्यं यच्च स्यात्तीर्थसाधने।
तत्पुण्यं समवाप्नोति विष्णोर्जागरकारणात् ॥ २५ ॥

पक्षवर्धिनिका पुण्या पवित्रा पापनाशिनी। उपवासकृतां विप्र हत्याकोटिविनाशिनी
वसिष्ठेन कृता पूर्वं भारद्वाजेन वै मुने। ध्रुवेण चाम्बरीषेणकृतेयं विष्णुवल्लभा ॥ २७॥
इयं काशी समापुण्या इयं वै द्वारका समा। उपोषिताच भक्तेन वाञ्छितञ्च ददात्यसौ
इयं धन्या धन्यतमा हत्यायुतविनाशिनी। कर्त्तव्या तु विशेषेण वैष्णवैर्ज्ञानतत्परैः ॥
अहो सर्वेश्वरो देवः संसेव्यो व्रततत्परैः। किमन्यद्बहुनोक्तेन कर्तव्यं व्रतमुत्तमम् ॥

यथा च वर्धते चन्द्रः सिते पक्षे विशेषतः । तथा वै वर्धते भक्तकारणात्पक्षवर्धिनी ॥
सूर्योदये यथा ध्वान्तं नश्यते तत्क्षणादपि । पक्षवर्धिन्यनुष्ठानात्तथाऽघं नाशमाप्नुयात्
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादे पक्षवर्द्धिन्येकादशीमाहात्म्यं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

एकादश्यां जागरणमाहात्म्यवर्णनम् ।

महादेव उवाच ।

शृणु नारद वक्ष्यामि माहात्म्यं जागरस्य च ।
यच्छ्रुत्वा मुक्तिमाप्नोति महापापी न संशयः ॥ १ ॥

नारद उवाच ।

अहो विश्वेश्वरो विष्णुः पवित्रीकरणः सदा ।
तस्योपवासमाहात्म्यं श्रुतं हि त्वन्मुखाच्छिव ॥ २ ॥
तथाऽपि श्रोतुमिच्छामि माहात्म्यं जागरस्य तु ।
कीदृग्जागरमाहात्म्यं रात्रौ भक्तिस्तु कीदृशी ॥ ३ ॥
प्रहरेषु च या पूजा वद विश्वेश्वर प्रभो । त्वं लोकेषु सदा पूज्यस्त्वं हि देवो जनार्दनः
त्वं हि विश्वेश्वरो देवो यतो भक्तिर्जनार्दने । सर्वेषां चैवभक्तानां त्वंच श्रेष्ठ उमापतिः
लोकेऽस्मिन्सर्वदा भक्त्या तवाख्या वर्तते सदा ।
अतो येन प्रकारेण लोकानां मुक्तिरेव च । विश्वेश्वर वद त्वं तु माहात्म्यं जागरस्यतु

महादेव उवाच ।

एकादश्यां जनो विष्णुं रात्रौ संपूज्य भक्तितः ।
कुर्याज्जागरणं विष्णोः पुरतो वैष्णवैः सह ॥ ७ ॥

गीतं वाद्यं तथा नृत्यं पुराणपठनं तथा। धूपं दीपं च नैवेद्यं पुष्पं गन्धानुलेपनम् ॥८॥
फलमर्घं तथा श्रद्धा दानमिन्द्रियसंयमम्। सत्यान्वितंच विप्रेन्द्र वचोयुक्तंक्रियान्वितम्
विनिद्रं च मुदा युक्तो यः करोति नरः सदा। सर्वपापविनिर्मुक्तो जायते विष्णुवल्लभः

रात्रौ जागरणे प्राप्ते निद्रां कुर्वन्ति वैष्णवाः।
हारितं चोपवासन्तैर्व्रतं वै विष्णुसंज्ञकम् ॥ ११ ॥

ये कुर्वन्ति नराः प्राज्ञ जागरे विष्णुसंज्ञके। जागरं कृष्णभावेन न स्वपन्ति कदाचन
कृष्णस्य नाम मनसा वदन्तिच पुनः पुनः। तेतु धन्यतमा ज्ञेया अस्यांरात्रौ विशेषतः
क्षणेक्षणे तु गोदानं घस्यां चैव चतुर्गुणम्। प्रहरे कोटिगुणितंचतुर्थामेष्वसङ्ख्यकम्

जागरे निमिषार्धे तु केशवाग्रे विशेषतः।
तत्फलं कोटिगुणितं तस्य सङ्ख्या न विद्यते ॥ १५ ॥

नर्तनं कुरुते यस्तु केशवाग्रे नरोत्तमः। न फलं हीयते तस्य आजन्ममरणान्तिकम् ॥
साश्चर्यं चैव सोत्साहं पापालापादिवर्जितम्। प्रदक्षिणसमायुक्तं नमस्कारपुरःसरम् ॥
नीराजनसमायुक्तमनिर्विण्णेन चेतसा। यामे यामे महाभाग कुर्यादारार्तिकं हरेः ॥१८
षड्विंशगुणसंयुक्तमेकादश्यां च जागरम्। यः करोति नरो भक्त्या न पुनर्जायते भुवि
य एवं कुरुते भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः। जागरं वासरे विष्णोर्लीयते परमात्मनि
धनवान्वित्तशाठ्येन यः करोति प्रजागरम्। तेनात्मा हारितो नूनं कितवेन दुरात्मना
विष्णुजागरणे प्राप्त उपहासं करोति यः। षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥
वेदविद्ब्राह्मणो यस्तु नर्त्तनेन विशेषतः। उपहासपरः प्राप्तः स वै चाण्डाल उच्यते ॥

निमिषं निमिषार्धं वा यः करोति प्रजागरम्।
धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्नोति पदमव्ययम् ॥ २४ ॥

वेदशास्त्ररतो नित्यं नित्यं वै यज्ञयाजकः। रात्रौ जागरणेप्राप्ते निन्दां कुर्वन्व्रजत्यधः
मम पूजां प्रकुर्वाणो विष्णुनिन्दासु तत्परः। एकविंशत्कुलेनैव नरकं प्रतिपद्यते ॥२६॥

विष्णुः शिवः शिवो विष्णुरेकमूर्तिर्द्विधा स्थितः।
तस्मात्सर्वप्रकारेण नैव निन्दां प्रकारयेत् ॥ २७ ॥

दष्टाः कलिभुजङ्गेन स्वपन्ति मधुहाहनि । कुर्वन्ति जागरं नैव मायया ते च मोहिताः
प्राप्ता ह्येकादशी येषां कलौ जागरणं विना । ते विनष्टा नसंदेहो यस्माज्जीवितमध्रुवम्
उद्धृतं नेत्रयुग्मं तु दत्त्वा वै वैष्णवं पदम् । कृतं ये नैव पश्यन्ति पापिनो हरिजागरम्
अभावे वाचकस्याथ गीतं नृत्यं तु कारयेत् । वाचके सति देवर्षे पुराणं प्रथमं पठेत्
अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयायुतस्य च । पुण्यं कोटिगुणं वत्स विष्णोर्जागरणे कृते ॥
पितृपक्षे मातृपक्षे भार्यापक्षे तु वाडव । कुलान्युद्धरते चैतान्कृत्वा जागरणं हरेः ॥३३
उपोषणदिने विद्धे जागरं पूजनं हरेः । वृथा दानादिकं सर्वं कृतघ्नेषु कृतं यथा ॥३४॥

उपोषणदिने विद्धे प्रारब्धे जागरे स्थितिम् ।
विहाय स्थानं तद्विष्णुः शापं दत्त्वा प्रगच्छति ॥ ३५ ॥

अविद्धे वासरे विष्णोर्ये कुर्वन्ति प्रजागरम् । तेषां मध्ये तु तुष्टः सन्नृत्यं तु कुरुतेहरिः
यावद्दिनानि कुरुते जागरं केशवाग्रतः । युगानि तानि तावन्ति विष्णुलोके महीयते ॥
यावद्दिनानि वसते विना जागरणं हरेः । तावद्वर्षसहस्राणि रौरवान्न निवर्तते ॥ ३८॥
एकादश्यां शयानस्तु विना जागरणं हरेः । मूकवत्तिष्ठते यो वै गानं पाठं न वाचरेत्
सप्तजन्मनि मूकत्वं जायते जागरे हरेः । यो न नृत्यति मूढात्मा पुरतो जागरे हरेः ॥

पङ्गुत्वं तस्य जानीयात्सप्तजन्मनि वाडव ।
यः पुनः कुरुते गीतं नृत्यं जागरणं हरेः ॥ ४१ ॥

ब्राह्मं पदं मदीयं च सत्यं वै तस्य वैष्णवम् । यः प्रबोधयते लोकान्विष्णोर्जागरणेरतः
वसेच्चिरं तु वैकुण्ठे पितृभिः सह वैष्णवः । मतिं प्रयच्छते यस्तु हरेर्जागरणं प्रति ॥
षष्टिवर्षसहस्राणि श्वेतद्वीपे वसेन्नरः । यत्किञ्चित्क्रियते पापं कोटिजन्मनि मानवैः॥
श्रीकृष्णजागरे सर्वं रात्रौ नश्यति वाडव । शालग्रामशिलाग्रे ये प्रकुर्वन्ति प्रजागरम् ॥

यामे यामे फलं प्रोक्तं कोट्यैन्दवसमुद्भवम् ।
संप्राप्ते वासरे विष्णोर्ये न कुर्वन्ति जागरम् ॥ ४६ ॥
वृथा स्यात्तत्कृतं तेषां वैष्णवानां च निन्दया ।
कामार्थौ संपदः पुत्राः कीर्तिर्लोकाश्च शाश्वताः ॥ ४७ ॥

यज्ञाश्रुतैर्न लभ्यन्ते द्वादशी जागरं विना। मतिर्न जायते यस्य द्वादश्यां जागरं प्रति ॥
न हि तस्याधिकारोऽस्ति पूजने केशवस्य हि। यावत्पदानि चलति केशवायतनं प्रति॥

अश्वमेधसमानि स्युर्जागरार्थं प्रगच्छतः।
पादयोः पतितं यावद्धरण्यां पांसुगच्छताम् ॥ ५० ॥

तावद्वर्षसहस्राणि जागरी वसते दिवि। तस्माद्गृहात्प्रगन्तव्यं जागरे केशवालये ॥
कलौ मलविनाशाय द्वादशीद्वादशीषु च। परापवादसंयुक्तं मनः प्रासादवर्जितम् ॥ ५२
शास्त्रहीनमगान्धर्वं तथा दीपविवर्जितम्। शक्त्योपचाररहितमुदासीनं स निन्दनम् ॥

कलियुक्तं विशेषेण जागरं नवधा मतम्।
सशास्त्रं जागरं यच्च नृत्यगान्धर्वसंयुतम् ॥ ५४ ॥

सवाद्यं तालसंयुक्तं सदीपं मधुभिर्युतम्। उच्चारैस्तु समायुक्तं यथोक्तैर्भक्तिभावितैः ॥
प्रसन्नं तुष्टिजननं संमूढं लोकरञ्जनम्। गुणैर्द्वादशभिर्युक्तं जागरं माधवप्रियम् ॥५३॥

कर्त्तव्यं तत्प्रयत्नेन पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः।
किंव्रतैर्बहुभिश्चीर्णैस्तीर्थवासेन तस्य किम् ॥ ५७ ॥

द्वादशीवासरे प्राप्ते न कुर्याज्जागरं हरेः। प्रवासेन त्यजेद्यस्तु पथि खिन्नोऽपिवाऽव
जागरं वासुदेवस्य द्वादश्यां तु समे प्रियः। मद्भक्तो न हरेः कुर्याज्जागरं पापमोहितः

व्यर्थं मत्पूजनं तस्य मत्पूज्यं यो न पूजयेत्।
न शैवो न च सौरोऽसौ न शाक्तो गणसेवकः ॥ ६० ॥
यो भुङ्क्ते वासरे विष्णोर्ज्ञेयः पश्वधिको हि सः।
विप्रियं च कृतं तेन दुष्टेनैव च पापिना ॥ ६१ ॥

मद्भक्तिबलमाश्रित्य यो भुङ्क्ते वै हरेर्दिने। स बाह्याभ्यन्तरं देहं वेष्टितं पापकोटिभिः
मुच्यन्ते वासरे विष्णोर्ये कुर्वन्ति प्रजागरम्। कूर्परं यमदूतानां दत्तं तेन यमस्य च ॥
कृत्वा जागरणं विष्णोरविद्धं द्वादशीव्रतम्। स्वर्गापेक्षा मुनिश्रेष्ठमुक्ता तेनैव संशयः ॥

वाञ्छितं नारकं सौख्यं विद्धं कृत्वा हरेर्दिनम्।
निहताः पितरस्तेन देवानां वै वधः कृतः ॥ ६५ ॥

दत्तं राज्यं तु दैत्यानां कृत्वा विद्धं हरेर्दिनम् ।
यो नृत्यति प्रहृष्टात्मा कृत्वा वै करताडनम् ॥ ६६ ॥
गीतंकुर्वन्मुखेनापि दर्शयन्कौतुकान्बहून् । पुरतो वासुदेवस्य रात्रौ जागरणे स्थितः ॥
पठन्कृष्णचरित्राणि रञ्जयन्वैष्णवान्गणान् ।
मुखेन कुरुते वाद्यं संप्रहृष्टतनूरुहः ॥ ६८ ॥
दर्शयन्विविधान्भृत्यान्स्वेच्छालापान्प्रकारयन् । भावैरेतैर्नरो यस्तु कुरुते जागरं हरेः ॥
निमिषेनिमिषे पुण्यं तीर्थकोटिफलं स्मृतम् । अनुद्विग्नमना यस्तु धूपं नीराजनं हरेः ॥
कुरुते जागरे रात्रौ सप्तद्वीपाधिपो भवेत् । यानि कानि च पापानिब्रह्महत्या समानिच
कृष्णाहजागरात्तानि विलयं यान्ति खण्डशः । एकतः क्रतवः सर्वे समाप्तवरदक्षिणाः
एकतो देवदेवस्य जागरः कृष्णवल्लभः । तत्र काशीपुष्करं च प्रयागं नैमिषं गया ॥
शालग्राममहाक्षेत्रमर्बुदारण्यमेव च । पौष्करं मथुरा तत्र सर्वतीर्थानि चैव हि ॥ ७४ ॥
यज्ञा वेदाश्च चत्वारो व्रजन्ति हरिजागरम् ।
गङ्गासरस्वती तापी यमुना च शतद्रुका ॥ ७५ ॥
चन्द्रभागा वितस्ता च नद्यः सर्वास्तु तत्र वै ।
सरांसि च ह्रदाः सर्वे समुद्राः सर्व एव हि ॥७६॥
एकादश्यां द्विजश्रेष्ठ गच्छन्ति कृष्णजागरम् । स्पृहणीयाहि देवानां ये नराःकृष्णजागरे
नृत्यन्ति गीतं कुर्वन्ति वीणावाद्यप्रहर्षिताः । एवंजागरणंकृत्वा संपूज्य च महाहरिम्
द्वादश्यां पारणं कार्यं स्वशक्त्या वैष्णवैः सह ।
शृणु ब्रह्मन्प्रवक्ष्यामि द्वादशीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥७९॥
द्वादशी तु सदा ज्ञेया पुत्रदामोक्षदायिनी । प्रातः स्नात्वाहरिं पूज्य उपवासं समर्पयेत्
अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव । प्रसीद सुमुखो भूत्वा ज्ञानदृष्टिप्रदो भव ॥८१॥
पारणं च ततः कुर्याद्यथासंभवमग्रतः । अत ऊर्ध्वं यथेष्टं तु कारयेच्च यथाविधि ॥
यदा तु द्वादशी स्वल्पा पारणे न भवेद् द्विज ! ।
तदा रात्रौ तु कर्त्तव्यं पारणं मुक्तिमिच्छता ॥ ८३ ॥

तदा न रात्रिदोषः स्यान्निषिद्धं न भवेत्कचित् ।
यदुक्तं निशि न स्नायान्महानिशि न भोजयेत् ॥ ८४ ॥
तत्पूर्वपरयामाभ्यां दिनवत्कर्म कारयेत् । यदा भवति स्वल्पा तु द्वादशी पारणेदिने ॥
उषः काले द्वयं कुर्यात्प्रातर्माध्याह्निकं तथा । द्वादशी साधिता येन नरेण भुवि सर्वदा
तस्या पुण्यमहं वक्तुं न समर्थो विशेषतः ।
साधयित्वाऽखिलान्कामान्प्राप्नुयुश्च महाजनाः ॥ ८७ ॥
अम्बरीषादयः सर्वे ये भक्ता भुवि विश्रुताः। द्वादशीं साधयित्वा तु तेगता विष्णुसद्मनि
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं यदुक्तं तु मया तव ।
नास्ति विष्णुसमो देवो न तिथिर्द्वादशी समा ॥ ८६ ॥
अत्र दत्तं च भुक्तं च तथा पूजादिकं च यत् ।
तत्सर्वं पूर्णतां याति पूजिते माधवे सति ॥ ६० ॥
किंपुनर्बहुनोक्तेन भक्तानां वल्लभो हरिः । प्रददात्यखिलान्कामान्याघदाभूतसंप्लवम् ॥
द्वादश्यां चैव यद्दत्तं तत्सर्वं सफलं भवेत् ।
कुरुक्षेत्रेषु यद्दत्तं निष्फलं नैव जायते । तद्वच्च द्वादशीदत्तं भवेद्देवर्षिसत्तम ! ॥ ६२॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे द्वादश्येकादशीजागरणमहिमा नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥

ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः

जयाविजयाजयन्त्येकादशोमाहात्म्यवर्णनम् ।

महादेव उवाच ।

एकस्मिन्समये पुत्र ! गतोऽहं विष्णुसन्निधौ ।
तत्र पृष्टं मयापूर्वंमाहात्म्यं द्वादशीभवम् । यच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वेभुक्त्वाभोगान्दिवंययुः

नारद उवाच ।

कीदृशी स्यान्महादेव महाद्वादशिका परा । तस्या व्रते फलं कीदृग्वद सर्वेश्वर प्रभो

शिव उवाच ।

इयमेकादशी ब्रह्मन्महापुण्यफलप्रदा । ऋक्षयोगश्च संयुक्ता कर्त्तव्या मुनिसत्तमैः ॥ ३ ॥

जया च विजया चैव जयन्तीपापनाशिनी । सर्वपापहराश्चैताःकर्त्तव्याःफलकाङ्क्षिभिः

एकादश्यां यदा ऋक्षं शुक्लपक्षे पुनर्वसुः ।
नाम्ना सा च जयाऽऽख्याता तिथीनामुत्तमा तिथिः ॥ ५ ॥

तामुपोष्य नरः पापान्मुच्यतेनात्रसंशयः । यदा च शुक्लद्वादश्यां नक्षत्रंश्रवणं भवेत् ॥

विजया सा समाख्याता तिथीनामुत्तमा तिथिः ।
सहस्रगुणितं दानं यस्यां वै विप्रभोजनम् ॥ ७ ॥

होमस्तथोपवासश्च सहस्राधिफलप्रदः । यदा च शुक्लद्वादश्यां प्राजापत्यं हि जायते ॥

जयन्ती नाम सा प्रोक्तासर्वपापहरा तिथिः । सप्तजन्मकृतं पापं स्वल्पं वा यदि वाबहु

प्रक्षालयति गोविन्दस्तस्यामभ्यर्चितो ध्रुवम् ।
यदा वै शुक्लद्वादश्यां पुष्यं भवति कर्हिचित् ॥ १० ॥

तदा तु सा महापुण्या भविता पापनाशिनी । यो ददाति तिलप्रस्थं नित्यसंवत्सरं प्रति

उपवासं च यस्तस्यां करोत्येतत्समं स्मृतम् । तस्यां जगत्पतिर्देवस्तुष्टः सर्वेश्वरो हरिः

प्रत्यक्षतां प्रयात्येव तत्रानन्तफलं स्मृतम् ।
सगरेण ककुत्स्थेन नहुषेण च साधितः ॥ १३ ॥

तस्यामाराधितः कृष्णो दत्तवानखिलं भुवि ।
वाचिकान्मानसाद्वाऽपि कायजाच्च विशेषतः ॥ १४ ॥

सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ।
तामेकां समुपोष्याथ पुण्यनक्षत्रसंयुताम् ॥ १५ ॥

एकादशीसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः । स्नानंदानं जपो होमः स्वाध्यायोदेवतार्चनम्

यत्तस्यां क्रियतेकिंचित्तदक्षयफलंस्मृतम् । तस्मादेषाप्रकर्तव्यायत्नेन फलकाङ्क्षिभिः

पञ्चमेनाश्वमेधेन यदा स्नातो युधिष्ठिरः। पर्यपृच्छत धर्मात्मा कृष्णं यदुकुलोद्वहम् ॥

युधिष्ठिर उवाच।

उपवासस्य नक्तस्य त्वेकभुक्तस्य मे प्रभो। किं पुण्यं किं फलं तस्य ब्रूहि सर्वं जनार्दन

श्रीभगवानुवाच।

हेमन्ते चैव संप्राप्ते मासे मार्गे च शोभने। कृष्णपक्षे च या पार्थ द्वादशी तामुपोषयेत्

दशम्यां चैकभक्तश्च शुद्धचित्तो दृढव्रतः। नक्तं चैव तथा ज्ञात्वा दशम्यां नियतः सदा

दिवसस्याष्टमे भागे मन्दीभूते दिवाकरे। नक्तं च तद्विजानीयान्न नक्तं निशि भोजनम्

नक्षत्रदर्शनान्नक्तं गृहस्थस्य विधीयते। यतेर्दिनाष्टमे भागे रात्रौ तस्य निषेधनम् ॥

ततः प्रभातसमये कृत्वा च नियमं व्रती।
मध्याह्ने च तथा पार्थ! स्नानं शुचिः समाचरेत् ॥ २४ ॥
अधमं कूपके स्नानं वाप्यां स्नानं च मध्यमम्।
तडागे चोत्तमं स्नानं नद्यां स्नानं ततः परम् ॥ २५ ॥

पीड्यन्ते जन्तवो यत्र जलमध्ये व्यवस्थिते। तत्र स्नाने कृते पार्थ पापंपुण्यं समं भवेत्

गृहे चैवोत्तमं स्नानं जलं चैव विशोधयेत्।
तस्मात्तु पाण्डवश्रेष्ठ गृहे स्नानं समाचरेत् ॥ २७ ॥

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे। मृत्तिके हर मे पापं यन्मया पूर्वसंचितम्

क्रोधलोभौपरित्यज्य चैकचित्तोदृढव्रतः। नालपेतान्त्यजं चैव तथा पाखण्डिनो नरान्

मिथ्यावादरतांश्चैव तथा ब्राह्मणनिन्दकान्। अन्यांश्चैव दुराचारानगम्यागमनेरतान्

परद्रव्यापहारांश्च परदाराभिगामिनः। केशवं पूजयित्वा तु नैवेद्यं तत्र कारयेत् ॥३१॥

दीपं दद्याद्गृहेतत्र भक्तियुतेन चेतसा। तद्दिने वर्जयेत्पार्थ निद्रां चैव तु मैथुनम् ॥

धर्मशास्त्रविनोदेन दिनं सर्वं निवारयेत्। रात्रौ जागरणं कृत्वा भक्तियुक्तो नृपोत्तम

विप्रेभ्यो दक्षिणां दद्यात्प्रणिपत्य क्षमापयेत्।
यथा कृष्णा तथा शुक्ला विधिनैवं प्रकारयेत् ॥ ३४ ॥

एकादशीं द्विजः पार्थ विभेदं नैव कारयेत्। एवंहि कुरुते यस्तु शृणु तस्य हि यत्फलम्

शङ्खोद्धारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम् ।
एकादश्युपवासस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥ ३६ ॥
संक्रान्तिषु चतुर्लक्षं यो ददाति नृपोत्तम । एकादश्युपवासस्य कलां नार्हति षोडशीम्
प्रभासक्षेत्रे यत्पुण्यं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । तत्फलं जायते नूनमेकादश्युपवासिनः ॥
केदारे चोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते । तथाचैकादशी पार्थ गर्भवासक्षयङ्करी ॥३९
अश्वमेधस्य यज्ञस्य पृथिव्यां यत्फलं लभेत् । तस्माच्छतगुणं पुण्यमेकादश्युपवासिनः
तपस्विनो गृहे यस्य भुञ्जते च द्विजोत्तमाः । तत्फलं जायते नूनमेकादश्युपवासिनः ॥
गोसहस्रेण यत्पुण्यं दत्त्वा वेदान्तपारगे । तस्माच्छतगुणं पुण्यमेकादश्युपवासिनः ॥
येषां देहे त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । वसन्ति तेषां ते तुल्या एकादश्युपवासिनः ॥
ते नराः पुण्यकर्माणो ये भक्ता हरिपूजकाः । एकादशीव्रतस्यापि पुण्यसङ्ख्या न विद्यते
एतत्पुण्यं भवेत्तस्य यत्सुरैरपि दुर्लभम् । एतस्मादर्धपुण्यं तु प्राप्यते नक्तभोजनात् ॥
नक्तस्यार्धं भवेत्पुण्यमेकभक्तेन देहिनाम्
तावद्गर्जन्ति तीर्थानि दानानि नियमानि च ॥ ४६ ॥
यावन्नो पोषयेज्जन्तुर्वासरं विष्णुवल्लभम् । तस्मात्त्वं पाण्डवश्रेष्ठ ! व्रतमेतत्समाचर ॥
पुण्यसङ्ख्यां न जानामि यत्त्वं पृच्छसि पाण्डव । !
एतद्विकथितं पार्थ यद्गोप्यं व्रतमुत्तमम् । एकादशीसमं नास्ति क्रतं यज्ञसहस्रकम् ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

उत्पन्ना सा कथं देव पुण्या चैकादशी तिथिः ।
कथं पवित्रा विश्वेऽस्मिन्कथं वै देवता प्रिया ॥ ४९ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

पुरा कृतयुगे पार्थ मुरनामा तु दानवः । अत्यद्भुतो महारौद्रः सर्वदेवभयङ्करः ॥ ५० ॥
इन्द्रोऽपि निर्जितस्तेन सर्वदेवास्तथा नृप । ! महासुरेण तेनैव मृत्युना च दुरात्मना ॥
स्वार्गान्निराकृतास्तेन विचरन्ति महीतले । सशङ्काभयभीताश्च सर्वे गत्वा महेश्वरम्
इन्द्रेण कथितं सर्वमीश्वरस्यापि चाग्रतः । स्वर्गलोकपरिभ्रष्टा विचरन्ति महीतले ॥

मर्त्येषु संस्थिता देवा न शोभन्ते महेश्वर। उपायं ब्रूहि मे देवह्यमरायान्ति कां गतिम्

महादेव उवाच।

देवराज! सुरश्रेष्ठ! यत्रास्ते गरुडध्वजः। शरण्यश्च जगन्नाथःपरित्राता परायणः॥

तत्र गच्छ सुरश्रेष्ठ स वो रक्षां विधास्यति। ईश्वरस्य वचः श्रुत्वा देवराजोमहामतिः

त्रिदशैः सहितो यत्र गतस्तत्र युधिष्ठिर!।

जलमध्ये प्रसुप्तं तं दृष्ट्वा देवं गदाधरम्। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा इन्द्रः स्योत्रमुदैरयत्

इन्द्र उवाच।

ॐ नमो देवदेवेश! देवदानववन्दित!। दैत्यारे! पुण्डरीकाक्ष! त्राहि नो मधुसूदन

सुराः सर्वे समायाता भयभीताश्च दानवात्।

शरणं त्वां जगन्नाथ! त्राहि मां भक्तवत्सल!॥ ५६॥

त्राहि नो देवदेवेश त्राहि त्राहि जनार्दन। त्राहि वै पुण्डरीकाक्ष! दानवानां विनाशक

त्वत्समीपं गताः सर्वे त्वमेव शरणं प्रभो। शरणागतानां देवानां सहायं कुरु वै प्रभो

त्वं पतिस्त्वं मतिर्देव त्वं कर्त्ता त्वं च कारणम्।

त्वं माता सर्वलोकानां त्वमेव जगतः पिता॥ ६२॥

भगवन्देवदेवेश शरणागतवत्सल!। शरणं तव चायाता भयभीताश्च देवताः॥६३॥

देवता निर्जिताः सर्वाः स्वर्गभ्रष्टाः कृताःप्रभो!। अत्युग्रेणहिदैत्येनमुरनाम्ना महौजसा

महादेव उवाच।

इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा विष्णुर्वचनमब्रवीत्॥ ६५॥

श्रीभगवानुवाच।

कीदृशो दानवः शक्र! किं रूपं कीदृशं बलम्।

क्व स्थानं तस्य दुष्टस्य किं वीर्यं कः पराक्रमः॥

किं वरं तस्य दुष्टस्य ममाख्याहि महामते!॥ ६६॥

इन्द्र उवाच।

पूर्वं बभूव देवेश! ब्रह्मवंशसमुद्भवः। तालजङ्घस्तु नाम्ना च अत्युग्रोऽपि महासुरः॥६७॥

तस्य पुत्रो हि विख्यातो मुरनामेति दानवः । अत्युत्कटो महावीर्यो देवतानां भयङ्करः
पुरी चन्द्रावती नाम्ना तत्र स्थाने वसत्यसौ ।
निर्जिता देवताः सर्वाः स्वर्गात्तेन विवासिताः ॥ ६६ ॥
इन्द्रोऽन्यो रोपितस्तेन वातश्चैव हुताशनः । चन्द्रसूर्यौ कृतौ चान्यौ वायुर्वरुण एव च
सर्वमात्मकृतं तेन सत्यं सत्यं जनार्दन । देवलोकः कृतस्तेन सर्वस्थानविवर्जितः ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कोपमाप्तो जनार्दनः । हनिष्ये दानवं दुष्टं देवतानां भयङ्करम् ॥
त्रिदशैः सहितो देवो गतश्चन्द्रावतीं पुरीम् । दृष्टो देवैस्तु दैत्येन्द्रो गर्जमानः पुनः पुनः
तेन सर्वे जिता देवा गताश्चैव दिशोदश । हरिं निरीक्ष्य प्रोवाच तिष्ठतिष्ठेति दानवः ॥
भगवानब्रवीत्तं च क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ७४ ॥
श्रीभगवानुवाच ।
रे दानव दुराचार ! ममबाहुं निरीक्षय । ततस्ते सम्मुखाः सर्वे विष्णुना दुष्टदानवाः ॥
हता बाणैः पुनर्दिव्यै जाताश्च भयविह्वलाः। चक्रं मुक्तं च कृष्णेन दैत्यसैन्येषु पाण्डव !
तेन च्छिन्नास्तु शतशो वहवो निधनं गताः । एकोऽपिदानवस्तत्र युध्यमानोमुहुर्मुहुः
नष्टाः सर्वे सुरास्तेन निर्जितो मधुसूदनः । निर्जितं तेन दैत्येन बाहुयुद्धमजायत ॥
बाहुयुद्धं कृतं तेन दिव्यं वर्षसहस्रकम् । विष्णुश्चिन्तां प्रपन्नश्च नष्टाः सर्वाश्च देवताः
विष्णुश्च निर्जितस्तेन गतो वदरिकाश्रमम् । गुहा सिंहावती नाम तत्र सुप्तो जनार्दनः
योजनद्वादशवती एकद्वारा च पाण्डव ! । तस्यां विष्णुं प्रसुप्तं च दानवो हन्तुमुद्यतः
महायुद्धेन तेनैव श्रान्तोऽसौ योगमायया । दानवः पृष्ठतो लग्नः प्रविष्टः सतदागुहाम्
प्रसुप्तं तत्र तं दृष्ट्वा दानवो हर्षमागतः ।
इत्थं मां निर्जितं मत्वा प्रविष्टं शङ्कया हरिम् ॥ ८३ ॥
निःसंदेहं हनिष्यामि दानवानां भयङ्करम् । निर्गता कन्यका तत्र विष्णुदेहाद्युधिष्ठिर !॥
रूपवती सुसौभाग्या दिव्यप्रहरणायुधा । तस्य तेजोंऽशसंभूता महाबलपराक्रमा ॥८५
दृष्टा सा दानवेन्द्रेण मुरनाम्ना धनञ्जय ! । युद्धं समाहितं तेन स्त्रियाचैव प्रयाचितम्
कन्यका युध्यते तत्र सर्वयुद्धविशारदा । हुङ्कारैर्भस्मसाज्जातो मुरनामा महासुरः ॥

निहते दानवे तस्मिंस्तत्र देवस्त्वबुध्यत । पतितं दानवं दृष्ट्वा ततो विस्मयमागतः ॥

विष्णुरुवाच ।

केनायं च हतो रौद्रो ह्यत्युग्रो मम शात्रवः । अत्युग्रं च कृतं कर्म मम कारुण्यतःकृतम्

कन्योवाच ।

तेनदेवाश्च गन्धर्वास्सयक्षोरगराक्षसाः। इन्द्राद्याः सकलाजित्वा स्वर्गाच्चैव निराकृताः

हरिः सुप्तो मया दृष्टो मुरः पृष्ठे समागतः । संहरिष्यति त्रैलोक्यं सुप्ते चैव जनार्दने

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा विष्णुर्वचनमब्रवीत् ।

अहं च निर्जितो येन कथं सोऽपि त्वया जितः ॥ ९२ ॥

एकादश्युवाच ।

त्वत्प्रसादाच्च भोः स्वामिन्महादैत्यो मया हतः ॥ ९३ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

आनन्दं त्रिषु लोकेषु मुनयो देवता गताः । ब्रूहि भद्रेऽद्य मह्यं त्वं यत्ते मनसि रोचते ॥

ददामि च न संदेहो यत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥ ९४ ॥

एकादश्युवाच ।

यदि तुष्टोऽसि मे देव सत्यमुक्तं जनार्दन । वरमेकं तु वाञ्छामि हृदये च जगत्पते ! ॥

प्रार्थयामि च देवेश ईप्सितं च मयाप्रभो । यदि सत्यं जगन्नाथ तिस्रो वाचो ददासिमे

श्रीभगवानुवाच ।

सत्यं सत्यं मया प्रोक्तं अवश्यं तव सुव्रते । तिस्रो वाचो मयादत्ता नचावाक्यंभवेदिह

एकादश्युवाच ।

त्रिभुवनेषु च देवेश चतुर्युगेषु साम्प्रतम् । त्रिषु लोकेषु सर्वत्र तादृशं कुरु मे प्रभो ! ॥

सर्वतीर्थप्रधाना हि सर्वविघ्नविनाशिनी । सर्वसिद्धिकरी देवी त्वत्प्रसादाद्भवाम्यहम्

मामुपोष्यन्ति ये भक्त्या तव भक्त्या जनार्दन ! ।

सर्वसिद्धिर्भवेत्तेषां यदि तुष्टोऽसि मे प्रभो ! ॥ १०० ॥

उपवासं च नक्तं च एकभक्तं करोति च । तस्य वित्तं च धर्मं च मोक्षं वै देहि माधव

विष्णुरुवाच।

यत्त्वं वदसि कल्याणि ! तत्सर्वं च भविष्यति।
सर्वान्मनोरथान्भद्रे दास्यसि त्वं च नान्यथा ॥ १०२ ॥
मम भक्ताश्च ये लोकेये च भक्तास्तु कार्त्तिके। चतुर्युगेषु विख्यातास्त्रिषु लोकेषुवैतथा
त्वां च शक्तिमहं मन्य एकादशीव्रतस्थिताः।
मम पूजां करिष्यन्ति मोक्षगास्ते न संशयः ॥ १०४ ॥
तृतीया चाष्टमी चैव नवमी च चतुर्दशी। एकादशीविशेषेण तिथिरेषा हरिप्रिया ॥
सर्वतीर्थाधिकं पुण्यं सत्यं सत्यं न संशयः ॥ १०५ ॥

महादेव उवाच।

इदं दत्त्वा वरं तस्यै तिस्रो वाचो न संशयः। हृष्टा पुष्टा च संजाता एकादशीमहाव्रता
शत्रुं हंसि परां तस्य ददासि परमां गतिम्। त्वं हंसि सर्वविघ्नानि सर्वसिद्धिवरप्रदा
उभयोः पक्षयोःपार्थ तुल्यैवैकादशी शुभा। न शुक्ला नैवकृष्णा च विभेदं नैव कारयेत्
विभेदो नैव कर्त्तव्यः समस्तव्रतकारिभिः।
दिवा वा यदि वा रात्रौ शृणोति भक्तितत्परः ॥ १०६ ॥
तिथिरेका भवेत्सर्वा पक्षयोरुभयोरपि। उदयैकादशी स्वल्पा ह्यन्ते चैव त्रयोदशी ॥
मध्ये तु द्वादशी पूर्णा त्रिस्पृशासा हरिप्रिया। एकामुपोषयेत्तां वै सहस्रैकादशीफलम्
सहस्रगुणितं ह्येवं द्वादश्यां पारणे कृते। अष्टम्येकादशी षष्ठी तृतीया च चतुर्दशी ॥
पूर्वविद्धा न कर्त्तव्या परविद्धामुपोषयेत्। एकादशी ह्यहोरात्रं प्रभाते घटिका भवेत् ॥
सा तिथिः परिहर्तव्या उपोष्या द्वादशी युता। एवंविधा मया प्रोक्ता पक्षयोरुभयोरपि
एकादश्यां प्रकुर्वीत ह्युपवासं नरास्तु ये।
ते यन्ति वैष्णवं स्थानं यत्रास्ते गरुडध्वजः ॥ ११५ ॥
धन्यास्ते मानवा लोके विष्णुभक्तिपरायणाः।
एकादश्याश्च माहात्म्यं सर्वकालेषु यः पठेत् ॥ ११६ ॥
गोसहस्रफलं सोऽपि पुण्यं प्राप्नोति मानवः।

दिवा वा यदि वा रात्रौ ये वै शृण्वन्ति भक्तितः ॥ ११७ ॥
ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यन्ते नात्र संशयः । विष्णुधर्मसमं नास्ति गीतार्थं च नृपोत्तम
एकादशीसमं नास्ति व्रतं पापप्रणाशनम् ॥ ११८ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारद-संवादे एकादश्युत्पत्ति मुरवधो नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

मार्गशीर्षशुक्लपक्षमोक्षदैकादशीमाहात्म्यम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

वन्दे विष्णुं विभुं साक्षाल्लोकत्रयसुखावहम् । विश्वेशं विश्वकर्तारं पुराणं पुरुषोत्तमम्
पृच्छामि देवदेवेश संशयोऽस्ति महान्मम । लोकानांच हितार्थाय पापानां क्षयहेतवे
मार्गशीर्षेऽसिते पक्षे भवेदेकादशी तु या ।
किं नाम कोविधिस्तस्याः को देवस्तत्र पूज्यते ।
एतदाचक्ष्व मे स्वामिन्विस्तरेण यथातथम् ॥ ३ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

साधु पृष्टं त्वया राजन्साधु ते विमलं यशः । कथयिष्यामि राजेन्द्रहरिवासरमुत्तमम्
उत्पन्ना चासिते पक्षे द्वादशी मम वल्लभा । मार्गशीर्षोत्पत्तिरिति मम देहसमुद्भवा ॥
सुरासुरवधार्थाय ह्युत्पन्ना भरतर्षभ । कथिता च मया सा वै तवाग्रे राजसत्तम ! ॥
पूर्वा चैकादशी राजंस्त्रैलोक्ये सचराचरे । मार्गशीर्षेऽसिते पक्षे ह्युत्पत्तिरिति नामतः
अतः परं प्रवक्ष्यामि मार्गशीर्षे सिता तु या ।
यस्याः श्रवणमात्रेण वाजपेयफलं लभेत् ॥ ८ ॥
मोक्षानामेति सा प्रोक्ता सर्वपापहरा परा । देवं दामोदरं राजन्पूजयेच्च प्रयत्नतः ॥९

तुलस्यामञ्जरीभिश्च धूपैर्दीपैः प्रयत्नतः। पूर्वेण विधिना चैव दशम्येकदशी तथा ॥१०॥
मोक्षा चैकादशी नाम्ना महापातकनाशिनी । रात्रौ जागरणं कार्यं नृत्यगीतस्तवैर्नृप

श्रृणु राजन्प्रवक्ष्यामि दिव्यां पौरणिकीं कथाम् ।
यस्याः श्रवणमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ १२ ॥

अधोयोनिगताश्चैव पितरो यस्य पापतः । अस्याश्च पुण्यदानेन मोक्षं यान्ति नसंशयः
चम्पके नगरे रम्ये वैष्णवैश्च विभूषिते । वैखानसो नाम नृपः पुत्रवत्पालयेत्प्रजाः ॥१४
वसन्ति बहवो विप्रा वेदवेदाङ्गपारगाः । ऋद्धिमत्यः प्रजास्तस्य राज्ञो वैखानसस्य हि

एवं राज्यं प्रकुर्वाणो रात्रौ स्वप्नस्य मध्यतः ।
पितॄन्स्वकीयान्सोऽपश्यदधोयोनिगतान्नृप ! ॥ १६ ॥
एवं दृष्ट्वा च तान्सर्वान्विस्मयाविष्टमानसः ॥ १७ ॥

राजोवाच ।

मया स्वपितरो दृष्टा नरकोपगता द्विजाः । तारयेति तनूज ! त्वमस्मान्निरयसागरात्
एवं ब्रुवाणास्ते नूनं रोदमाना मुहुर्मुहुः । मया दृष्टा द्विजश्रेष्ठा एतस्माच्च न मे सुखम्

एतद्राज्यं मम महत्सुखदायि न विद्यते ।
अश्वा गजास्तथा सर्वे रोचन्ते मे न भोद्विजाः ! ॥ २० ॥

न दारा न सुता मह्यं रोचन्तेद्विजसत्तमाः । किं करोमि क्व गच्छामि हृदयं मेऽवरुध्यते

तद्व्रतं तं तपोयोगं यं नैव मम पूर्वजाः ।
मोक्षं प्रयान्ति सद्यो वै कथ्यतां च द्विजोत्तमाः ! ॥ २२ ॥

पुत्रे तु जीवितप्रायेवलीयसि महात्मनि । पिताऽस्ति नरके घोरेतस्य पुत्रस्य किं फलम्

ब्राह्मणा ऊचुः ।

पर्वतस्य मुने राजन्निकटे चाश्रमो महान् । गम्यतां राजशार्दूल भूतं भव्यं विजानतः

तेषां श्रुत्वा ततो वाक्यं राजा वैखानसो महान् ।
जगाम चाशु तत्रैव चाश्रमं पर्वतस्य च ॥ २५ ॥

ब्राह्मणैर्वेष्टितो राजाराजभिश्च समन्वितः । आश्रमं विपुलं तस्य संप्राप्तो राजसत्तमः

तत्रर्ग्वेदयजुर्वेदसामाध्ययनकोविदैः । वेष्टितं मुनिभिश्चैव द्वितीयमिव वेधसम् ॥२७॥
दृष्ट्वा तं मुनिशार्दूलं राजा वैखानसस्तथा । दण्डवत्प्रणतिं कृत्वा पस्पर्श चरणौ मुनेः

पप्रच्छ कुशलं तस्य सप्तस्वङ्गेष्वसौ मुनिः ।
राज्ये निष्कण्टकत्वं च राज्ञः सौख्यसमन्वितम् ॥ २६ ॥

राजोवाच ।

तव प्रसादाद्ब्रह्मोस्वामिन्कुशलं मेऽङ्गसप्तके । भक्ता ये विष्णुविप्रेषु कथं तेषां सविघ्नता

मया स्वपितरो दृष्टाः स्वप्ने च नरके स्थिताः ।
कस्य पुण्यस्य सामर्थ्यान्मोक्षं यान्ति द्विजोत्तम ! ॥ ३१ ॥

अयं मे संशयः स्वामिन्प्रष्टुं तं त्वामुपागतः । उपायः कश्चिदेवात्र कर्तव्यो मुनिसत्तम
एतद्वाक्यं ततः श्रुत्वा पर्वतो मुनिसत्तमः । ध्यानस्तिमितनेत्रोऽभूत्तपस्वी ब्रह्मसंनिभः
मुहूर्तमेकं ध्यानस्थो भूपतिं प्रत्युवाचह । ज्ञातं हि तव राजेन्द्र पितॄणां पूर्वचेष्टितम् ॥
पूर्वजन्मनि तातस्ते क्षत्रियो राज्यगर्वितः । सपत्न्याऋतुकाले तु राजधर्मप्रवर्तितः ॥

गतो ग्रामे तु तां त्यक्त्वा कार्यार्थी निजयोषितम् ।
तव पित्रा तु तस्याश्च न दत्तमृतुदानकम् ॥ ३६ ॥

तेन पापप्रभावेण नरके पितृभिः सह । पतितो राजशार्दूल ! तव तातः सुदारुणे ॥३७
ततः पुनरुवाचेदं राजा वैखानसो मुनिम् । केन व्रतप्रभावेण मोक्षस्तेषां भवेन्मुने ! ॥

मुनिरुवाच ।

मार्गशीर्षेऽसिते पक्षे मोक्षानामेतिनामतः । सर्वैश्चैतद्व्रतं कार्यं पित्रे पुण्यं प्रदीयताम्
तेन पुण्यप्रभावेण मोक्षस्तेषां भविष्यति । सत्यमेतन्महाभाग ब्रह्मणो वचनं यथा ॥
मुनेर्वाक्यं ततः श्रुत्वा स्वगृहं पुनरागतः । मार्गशीर्षस्तथा मासः प्राप्तः कष्टेन तेन वै

मुनेर्वाक्येन तत्कृत्वा व्रतं वैखानसो नृपः ।
अददात्पुण्यमखिलैः सार्धं पित्रे स भूमिपः ॥ ४२ ॥

दत्ते पुण्ये क्षणेनैव पुष्पवृष्टिरभूद्दिवः । वैखानसस्य तातो वै पितृभिर्मोक्षमाविशत् ॥

राजानं चान्तरिक्षे स गिरं पुण्यामुवाचह ।

स्वस्ति स्वस्तीति ते पुत्र ! प्रोच्य चैवं दिवं गतः ॥ ४४ ॥
एवं यः कुरुते राजन्मोक्षामेकादशीं शुभाम् ।
तस्य पापानि नश्यन्ति मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ४५ ॥
नातः परतरा काचिन्मोक्षदैकादशी भवेत् ।
पुण्यसङ्ख्यां न जानामि राजन्मे प्रियकृद् व्रतम् ॥ ४६ ॥
चिन्तामणिसमा ह्येषा नृणां मोक्षप्रदायिनी । पठनाच्छ्रवणादस्या वाजपेयफलं लभेत्
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादे मार्गशीर्षशुक्लमोक्षदैकादशी नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

पौषकृष्णपक्षसफलैकादशीमाहात्म्यवर्णनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

पौषस्य कृष्णपक्षेतु किंनामैकादशीभवेत् । किं नामकोविधिस्तस्या एतद्विस्तरतोवद
एतदाख्याहि भोस्वामिन्कोदेवस्तत्र पूज्यते ॥ १ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

कथयिष्यामि राजेन्द्र ! भवतः स्नेहबन्धनात् । तुष्टिर्मे न तथा राजन्यज्ञैर्बहुलदक्षिणैः
यथा मे तुष्टिरायाति ह्येकादशीव्रतेनवै । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्त्तव्यो हरिवासरः ॥३॥
सत्यमेतन्न वै मिथ्या धर्मिष्ठानां विशारद । पौषस्य कृष्णपक्षे या सफलानाम नामतः
तस्यां नारायणं देवं पूजयेच्च यथाविधि । पूर्वेणैव विधानेन कर्त्तव्यैकादशी शुभा ॥
नागानां च यथा शेषः पक्षिणां पन्नगाशनः ।
देवानां च यथा विष्णुर्द्विपदानां यथा द्विजः ॥ ६ ॥
व्रतानां च तथा राजञ्छ्रेष्ठा चैकादशी तिथिः ।

ते जनाश्चैव भोराजन्पूज्या वै सर्वदा मम ॥ ७ ॥

हरिवासरसंलीनाः कुर्वन्त्येकादशीव्रतम् । इहैव धनसंयुक्ता मृता मोक्षं लभन्ति ते ॥८

सफलायां फलै राजन्पूजयेन्नामतो हरिम् । नारिकेलफलैश्चैव क्रमुकैर्बीजपूरकैः ॥ ९ ॥

जम्बीरैर्दाडिमैश्चैव तथा धात्रीफलैः शुभैः । लवङ्गैर्बदरीभिश्च तथाऽऽम्रैश्च विशेषतः ॥

पूजयेद्देवदेवेशं धूपदीपैस्तथैव च । सफलायां विशेषेण दीपदानं तु कारयेत् ॥ ११ ॥

रात्रौ जागरणं चैव कर्त्तव्यं सह वैष्णवैः ।

यावन्निमेषो नेत्रस्य तावज्जागर्ति यो निशि ॥ १२ ॥

एकाग्रमनसो राजंस्तस्य पुण्यं शृणुष्व हि ।

तत्समो नास्ति यज्ञो वै तीर्थं वा तत्समं न हि ॥ १३ ॥

सर्वव्रतानि राजेन्द्र कलां नार्हन्ति षोडशीम् । एवं वर्षसहस्राणि तपसानैव यत्फलम्

तत्फलं समवाप्नोति यःकरोति हि जागरम् । श्रूयतां राजशार्दूल सफलायाः कथाशुभा

चम्पावतीति विख्याता पुरी माहिष्मतस्य च । बभुस्तस्य राजर्षेः पुत्राःपञ्चकुमारकाः

तेषां मध्ये तु ज्येष्ठो वै महापापरतःसदा ।

परदाराभिचारी च वेश्यासक्तश्च मद्यपः ॥ १७ ॥

पितुर्द्रव्यं तु तेनैव गमितं पापकर्मणा । असद्वृत्तिरतो नित्यं भूसुराणां तु निन्दकः

वैष्णवानाञ्च देवानां नित्यं निन्दां करोति सः ।

ईदृशं तु ततो दृष्ट्वा पुत्रं माहिष्मतो नृपः १९ ॥

नाम्ना तु लुम्पक इति राजपुत्रेषु चापठत् ।

राज्यान्निष्कासितस्तेन पित्रा चैव तु बन्धुभिः ॥ २०॥

स चैवं परिवारैस्तु त्यक्तश्च परिपन्थिवत् ।

लुम्पकोऽपि तथा त्यक्तश्चिन्तयामास वै तदा ॥ २१ ॥

त्यक्तोऽहं बान्धवैःपित्रा राज्यान्निष्कासितः किल ।

इति चिन्तयमानोऽसौ मतिं पापे तदाऽकरोत् ॥ २२ ॥

मया गन्तव्यमेवास्तु दारुणे गहने वने । तस्माच्चैव पुरं सर्वं लुम्पयिष्यामि वै पितुः

इत्येवं स मतिं कृत्वा लुम्पको दैवयोगतः । निर्जगाम पुरात्तस्माद्गतोऽसौ गहने वने ॥
जीवघातरतो नित्यं स्तेयद्यूतकलानिधिः । सर्वं च नगरं तेन मुषितं पापकर्मणा ॥

स्तेयाभिगामी नगरे गृहीतः स निशाचरैः ।
उवाच तान्सुतोऽहं वै राज्ञो माहिष्मतस्य च ॥ २६ ॥

स तैर्मुक्तःपापकर्मा चागतो विपिनं पुनः । आमिषाभिरतो नित्यं तरोर्वै फलभक्षणे ॥
आश्रमस्तस्य दुष्टस्य यत्राभूद्विपिनेघने । अश्वत्थो वर्त्तते तत्र जीर्णश्च बहुवार्षिकः ॥

देवत्वं तस्य वृक्षस्य विपिने वर्तते महत् ।
तत्रैव निवसंश्चैव लुम्पकः पापबुद्धिमान् ॥ २९ ॥

गते बहुतिथे काले कदाचित्पुण्यसंचयात । पौषस्य कृष्णपक्षे तु दशम्यांदिवसे तथा

फलानि भुक्त्वा वृक्षाणां रात्रौ शीतेन पीडितः
लुम्पको नाम पापिष्ठो वस्त्रहीनो गतेक्षणः ॥ ३१ ॥

पीड्यमानोऽतिशीतेन हरिवृक्षसमीपतः । न निद्रा न सुखं तस्य गतप्राण इवाभवत् ॥

आच्छाद्य दशनैरास्यमेवं नीता निशाऽखिला ।
भानूदयेऽपि पापिष्ठो न लेभे चेतनां तदा ॥ ३३ ॥

लुम्पको गतसंज्ञस्तु सफलायादिने तथा । रवौ मध्यं गतेचैव संज्ञां लेभे स लुम्पकः ॥

इतस्ततो विलोक्याथ व्यथितश्च तदासनात् ।
स्खलन्पद्भ्यां प्रचलितः खञ्जन्निव मुहुर्मुहुः ॥ ३५ ॥

वनमध्ये गतस्तत्र क्षुत्क्षामःपीडितोऽभवत् । न शक्तिर्जीवघाते तु लुम्पकस्य दुरात्मनः
फलानि च तदा राजन्नाजहार स लुम्पकः । यावत्समागतस्तत्र तावदस्तंगतो रविः ॥
किं भविष्यति तातेति स विलापं चकार ह । फलानि तत्र भूरीणि वृक्षमूलेन्यवेशयत्
इत्युवाच फलैरेभिःश्रीपतिस्तुष्यतां हरिः । इत्युक्त्वा लुम्पकश्चैवनिद्रांलेभे न वै निशि
रात्रौ जागरणं मेने विष्णुस्तस्य दुरात्मनः । फलैस्तु पूजनं मेने सफलायास्तथाऽनघ
अकस्माद्व्रतमेवैतत्कृतवान्वै स लुम्पकः । तेन पुण्यप्रभावेण प्राप्तं राज्यमकण्टकम्
सूर्यस्योदयनं यावत्तावद्विष्णुर्जगाम ह । दिवि तत्कालमुत्पन्ना वागुवाचाशरीरिणी

राज्यं प्राप्स्यसि पुत्र ! त्वं सफलायाः प्रसादतः ।
तथेत्युक्ते तु वचसि दिव्यरूपधरोऽभवत् ॥ ४३ ॥

मतिरासीत्ततस्तस्य परमावैष्णवी नृप । दिव्याभरणशोभाढ्यो लेभे राज्यमकण्टकम्
कृतं राज्यं तु तेनैवं वर्षाणि दशपञ्चच । मनोज्ञास्तस्य पुत्रास्तु दाराः कृष्णप्रसादतः

आशु राज्यं परित्यज्य पुत्रे चैव समर्प्य च ।
गतः कृष्णस्य सान्निध्यं यत्र गत्वा न शोचति ॥ ४६ ॥

एवं यःकुरुते राजन्सफलाव्रतमुत्तमम् । इहलोके सुखं प्राप्य मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥

धन्यास्ते मानवा लोके सफलायां च ये रताः ।
तेषां च सफलं जन्म नात्र कार्या विचारणा ॥ ४८॥

पठनाच्छ्रवणाच्चैव करणाच्च विशांपते ! । राजसूयस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति मानवः ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादे पौषकृष्णासफलैकादशी नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

पौषशुक्लपक्षपुत्रदैकादशीमाहात्म्यवर्णनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

कथिता वै त्वया कृष्ण सफलैकादशी शुभा । कथयस्वप्रसादेन शुक्लपक्षस्य या भवेत्

किन्नाम को विधिस्तस्याः को देवस्तत्र पूज्यते ।
कस्मै तुष्टो हृषीकेशस्त्वमेव पुरुषोत्तमः ॥ २ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि शुक्ला पौषस्य या भवेत् ।
कथयामि महाराज ! लोकानां हितकाम्यया ॥ ३ ॥

पूर्वेण विधिना राजन्कर्त्तव्यैषा प्रयत्नतः। पुत्रदा नाम नाम्ना सा सर्वपापहरापरा ॥४

नारायणोऽधिदेवोऽस्याः कामदः सिद्धिदायकः।
नातः परतरा काचित्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ५ ॥

विद्यावन्तं यशस्वन्तं करोति च नरं हरिः। शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कथां पापहरां पराम्

भद्रावत्यां पुरा ह्यासीत्पुर्यां राजा सुकेतुमान्।
तस्य राज्ञस्तथा राज्ञी चम्पका नाम वर्त्तते ॥ ७ ॥

पुत्रहीनेन राज्ञा च कालोनीतो मनोरथैः। नैवात्मजं नृपो लेभे वंशकर्त्तारमेव च ॥८॥

तेनैव राज्ञाधर्मेण चिन्तितं बहुकालतः। किं करोमि क्वगच्छामि सुतप्राप्तिः कथं भवेत्

न राष्ट्रे न पुरे सौख्यं लेभे राजा सुकेतुमान्।
साध्व्या स्वकान्तया सार्धं प्रत्यहं दुःखितोऽभवत् ॥ १० ॥

तावुभौ दम्पती नित्यं चिन्ताशोकपरायणौ। पितरोऽस्य जलं दत्तं कवोष्णमुपभुञ्जते

राज्ञःपश्चान्न पश्यामो योऽस्मान्संतर्पयिष्यति।
इत्येवं संस्मरन्तोऽस्य दुःखिताःपितरोऽभवन् ॥ १२ ॥

न बान्धवा न मित्राणि नामात्याःसुहृदस्तथा।
रोचयन्त्यस्य भूपस्य न गजाश्वाः पदातयः ॥ १३ ॥

नैराश्यं भूपतेस्तस्य नित्यं मनसिवर्त्तते! नरस्य पुत्रहीनस्य नास्ति वै जन्मनःफलम् ॥

अपुत्रस्य गृहं शून्यं हृदयं दुःखितं सदा। पितृदेवमनुष्याणां नानृणत्वं सुतं विना ॥१५

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सुतमुत्पादयेन्नरः। इहलोके यशस्तेषां परलोके शुभागतिः ॥१६॥

येषां तु पुण्यांकर्तॄणां पुत्रजन्म गृहे भवेत्। आयुरारोग्य संपत्तिस्तेषां गेहे प्रवर्तते ॥

पुत्रजन्म गृहे येषां लोकानां पुण्यकारिणाम्।
पुण्यं विना न च प्राप्तिर्विष्णुभक्तिं विना नृप ॥ १८ ॥

पुत्राश्च संपदो वापि निश्चयादिति मे मतिः। एवं चिन्तयमानोऽसौ न शर्म लभते नृपः

प्रत्यूषेऽचिन्तयद्राजा निशीथेऽचिन्तयत्ततः।
स्वयमात्मविनाशं च चिन्तयामास केतुमान् ॥ २० ॥

आत्मघाते दुर्गतिं च चिन्तयित्वा तदा नृपः । दृष्ट्वाऽऽत्मदेहं पतितमपुत्रत्वं तथैव च
पुनर्विचार्यात्मबुद्ध्या आत्मनो हितकारणम् । अश्वारूढस्ततो राजा जगाम गहनं वनम्
पुरोहितादयःसर्वे न जानन्ति गतं नृपम् । गम्भीरे विपिने राजा मृगपक्षिनिषेविते ॥
चिचचार तदा राजा वनवृक्षान्विलोकयन् । वटानश्वत्थबिल्वांश्च खर्जूरान्पनसांस्तथा
बकुलान्सप्तपर्णांश्च तिन्दुकांस्तिलकानपि । शालांस्तालांस्तमालांश्च ददर्श सरलान्नृपः
इङ्गुदी ककुभांश्चैव श्लेष्मातकनगांस्तथा । शल्लकान्करमर्दांश्च पाटलान्बदरानपि ॥२६
अशोकांश्च पलाशांश्च शृगालाञ्शशकानपि । वनमार्जारमहिषाञ्छल्लकांश्चमरानपि ॥
ददर्श भुजगान्राजा वल्मीकादर्धनिःसृतान् । तथा वनगजान्मत्तान्कलभैःसह संगतान्

यूथपांश्च चतुर्दन्तान्करिणीयूथमध्यगान् ।

तान्दृष्ट्वा चिन्तयामास आत्मनः स गजान्नृपः ॥ २६ ॥

तेषां स विचरन्मध्ये राजा शोभामवाप ह । महदाश्चर्यसंयुक्तं ददृशे विपिनं नृप ॥३०
मार्गे शिवारुताञ्छृण्वन्नुलूकविरुतं तथा । तांस्तान्वृक्षमृगान्पश्यन्बभ्राम वनमध्यतः ॥
एवं ददर्श गहनं नृपो मध्यगते रवौ । क्षुत्तृड्भ्यां पीडितो राजा इतश्चेतश्च धावति ॥
नृपतिश्चिन्तयामास संशुष्कगलकन्धरः । मया तु किं कृतं कर्म प्राप्तं दुःखं यदीदृशम्
मया वै तोषिता देवा यज्ञैःपूजाभिरेव च । तथैव ब्राह्मणादानैस्तोषिता मिष्टभोजनैः

प्रजाश्चैव सदाकालं पुत्रवत्पालिता भृशम् ।

कस्माद्दुःखं मया प्राप्तमीदृशं दारुणं महत् ॥ ३५ ॥

इति चिन्तापरो राजा जगामैवाग्रतो वनम् । सुकृतस्य प्रभावेण सरोदृष्टमनुत्तमम् ॥
मीनसंस्पृश्यमानं च पद्मैश्च परिशोभितम् । कारण्डैश्चक्रवाकैश्च राजहंसैश्च शोभितम्
मकरैर्बहुभिर्मत्स्यैरन्यैर्जलचरैर्युतम् । समीपे सरसस्तस्य मुनीनामाश्रमान्बहून् ॥३८॥
ददर्श राजा लक्ष्मीवाञ्छकुनैःशुभशंसिभिः । दक्षिणं प्रास्फुरन्नेत्रमथ सव्येतरःकरः ॥
प्रास्फुरन्नृपतेस्तस्य कथयञ्शोभनं फलम् । तस्यतीरे मुनीन्दृष्ट्वा कुर्वाणान्नैगमंजपम्
हर्षेण महताविष्टो बभूव नृपसत्तमः । अवतीर्य हयात्तस्मान्मुनीनामग्रतःस्थितः ॥४१
पृथक्पृथग्ववन्देऽसौ मुनींस्ताञ्शंसितव्रतान् । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा दण्डवच्च पुनःपुनः

प्रत्यूचुस्तेऽपि मुनयःप्रसन्ना नृपते ! वयम् ॥४२॥

राजोवाच ।

के भवन्तोऽत्र कथ्यन्तां का चाख्या भवतामपि । किमर्थं संगता यूयं सत्यं वदतमेऽग्रतः

मुनय ऊचुः ।

विश्वेदेवा वयं राजन्स्नानार्थमिह चागताः । माघो निकटमायात एतस्मात्पञ्चमेऽहनि

अद्य चैकादशी राजन्पुत्रदा नाम नामतः । पुत्रं ददात्यसौ तस्मात्पुत्रदाकारिणां नृणाम्

राजोवाच ।

एष वै संशयोगमह्यं पुत्रस्योत्पादने महान् । यदितुष्टा भवन्तो वै पुत्रो मे दीयतां तदा

मुनयः ऊचुः ।

अद्यैव दिवसे राजन्पुत्रदा नाम वर्तते । एकादशीति विख्यातं क्रियतां व्रतमुत्तमम् ॥

अभिषेकात्ततोऽस्माकं केशवस्य प्रसादतः । अवश्यं तव राजेन्द्र पुत्रप्राप्तिर्भविष्यति

इत्येवं वचनात्तेषां कृतं राज्ञा व्रतोत्तमम् । मुनीनामुपदेशेन पुत्रदाया विधानतः ॥४६॥

द्वादश्यां पारणंकृत्वा मुनीन्नत्वा पुनःपुनः । आजगाम गृहं राजा राज्ञीगर्भमथादधौ ॥

पुत्रोजातःसूतिकाले तेजस्वी पुण्यकर्मणा । पितरं तोषयामास प्रजापालो बभूव सः ॥

तस्माद्राजन्प्रकर्त्तव्यं पुत्रदाव्रतमुत्तमम् । लोकानां तु हितार्थाय तवाग्रे कथितं मया ॥

एकचित्तास्तु ये मर्त्याः कुर्वन्ति पुत्रदाव्रतम् ।
पुत्रान्प्राप्येहलोके तु मृतास्ते स्वर्गगामिनः ॥
पठनाच्छ्रवणाद्राजन्नग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ ५३ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-नारदसंवादे पौषशुक्लपुत्रदैकादशी नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

माघकृष्णपक्षषट्तिलैकादशीमाहात्म्यवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच ।

साधु कृष्ण जगन्नाथ आदिदेव जगत्पते । कथयस्व प्रसादेन कृपां कुरु ममोपरि ॥

माघस्य कृष्णपक्षे तु का वा चैकादशी भवेत् ।
किं नाम को विधिस्तस्या एतद्विस्तरतो वद ॥ २॥

श्रीभगवानुवाच ।

शृणु त्वं नृपशार्दूल ! कृष्णा माघस्य या भवेत् ।
षट्तिला नाम विख्याता सर्वपापप्रणाशिनी ॥ ३ ॥
षट्तिलायाः शृणुष्व त्वं कथां पापहरां शुभाम् ।
यां पुलस्त्यो मुनिश्रेष्ठो दाल्भ्यंप्रति समुक्तवान् ॥ ४ ॥

दाल्भ्य उवाच ।

मर्त्यलोकमनुप्राप्ताःपापं कुर्वन्ति जन्तवः । ब्रह्महत्यादिपापैश्च युक्ता ये गोवधादिभिः ॥
परद्रव्यापहाराश्च परव्यसनमोहिताः । कथं न यान्ति नरकं ब्रह्मंस्तद्ब्रूहि तत्त्वतः ॥६॥
अनायासेन भगवन्दानेनाल्पेन केनचित् । पापं प्रशमनं याति एतन्मे वक्तुमर्हसि ॥ ७ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

साधुसाधु महाभाग गुह्यमेतत्सुदुर्ल्लभम् । यन्न कस्यचिदाख्यातं विष्णुब्रह्मेन्द्रदैवतैः ॥
तदहं कथयिष्यामि त्वया पृष्टो द्विजोत्तम ! ।
माघमासे तु संप्राप्ते शुचिस्नातो जितेन्द्रियः ॥ ६ ॥
कामक्रोधाभिमानेर्ष्यालोभपैशुन्यवर्जितः । देवदेवं च संस्मृत्य पादौप्रक्षाल्यवारिभिः
भूमावपतितं गृह्यगोमयं तत्र मानवः । तिलान्प्रक्षिप्य कार्पासं पिण्डिकाश्चैव कारयेत्
अष्टोत्तरशतं चैव नात्रकार्या विचारणा । ततो माघे च संप्राप्ते ह्याषाढर्क्षं भवेद्यदि ॥

मूलं वा कृष्णपक्षस्यैकादशी नियमांस्ततः । गृह्णीयात्पुण्यकाले चविधानं तत्र मे शृणु
देवदेवं समभ्यर्च्य सुस्नातः प्रयतः शुचिः । कृष्णनामानि संकीर्त्य पुनः प्रस्खलितादिषु
रात्रौ जागरणं कुर्यादादौ होमं च कारयेत् । अर्चयेद्देवदेवेशं द्वितीयेऽह्नि पुनर्हरिम् ॥
चन्दनागुरुकर्पूरैर्नैवेद्यं कृसरं तथा । संस्मृत्य नाम्ना च ततः कृष्णाख्येन पुनः पुनः ॥
कूष्माण्डैर्नारिकेलैश्च ह्यथवा बीजपूरकैः। सर्वाभावेऽपि विप्रेन्द्र ! शस्त पूगफलैर्वृतम्
अर्घं दद्याद्विधानेन पूजयित्वा जनार्दनम् ॥ १७ ॥
कृष्णकृष्णकृपालुस्त्वमगतीनां गतिर्भव । संसारार्णवमग्नानां प्रसीद पुरुषोत्तम ! ॥
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन । सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु महापुरुषपूर्वज ॥
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं लक्ष्म्या सह जगत्पते ! ॥१९॥

इत्यर्घमन्त्रः ।

ततस्तु पूजयेद्विप्रमुदकुम्भं प्रदापयेत् । छत्रोपानहवस्त्रैश्च कृष्णा मे प्रीयतामिति ॥२०
कृष्णाधेनुः प्रदातव्या यथाशक्ति द्विजोत्तमे । तिलपात्रं द्विजश्रेष्ठ दद्यात्पात्रविचक्षणः
स्नाने प्राशनके शस्ता तथा कृष्णतिला मुने । तान्प्रदद्यात्प्रयत्नेन यथाशक्तिद्विजोत्तमे !
तिलप्ररोहजाःक्षत्त्रे यावत्सङ्ख्यास्तिला द्विज ! ।
तावद्वर्ष सहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ २३ ॥
तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलहोमी तिलोदकी ।
तिलदाता च भोक्ता च षट्तिलाः पापनाशनाः ॥ २४ ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

कृष्ण कृष्ण महाबाहो नमस्ते विश्वभावन ! ।
षट्तीलैकादशीभूतं कीदृशं फलमस्ति वै ॥
सोपाख्यानं मम ब्रूहि यदि तुष्टोऽसि यादव ! ॥ २५ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

शृणु राजन्यथावृत्तं दृष्टं तत्कथयामिते । मर्त्यलोके पुराह्यासीद्ब्राह्मण्येका च नारद !
व्रतचर्यारता नित्यं देवपूजारता सदा । मासोपवासनिरता ममभक्ता च सर्वदा ॥२७॥

कृष्णोपवाससंयुक्ता ममपूजापरायणा। शरीरंक्लेशितं चैव उपवासैर्द्विजोत्तम ! ॥२८

देवानां ब्राह्मणानां च कुमारीणां च भक्तितः।
गृहादिकं प्रयच्छन्ती सर्वकालं महासती ॥ २९ ॥

अतिकृच्छ्ररता सा तु सर्वकालं तु वैद्विज ! न दत्ताभिक्षुकेभिक्षा ब्राह्मणा न च तर्पिताः
ततःकालेन महता मया वै चिन्तितं द्विज !। शुद्धमस्या शरीरं हि व्रतैःकृच्छ्रैर्न संशयः

अर्चितो वैष्णवो लोकः कायक्लेशेन वै तया।
न दत्तमन्नदानं हि येन तृप्तिः परा भवेत् ॥ ३२ ॥
एवं ज्ञात्वा अहं पार्थ ! मर्त्यलोकमुपागतः।
कापालं रूपमास्थाय भिक्षापात्रे च याचिता ॥ ३३ ॥

कस्मात्त्वमागतो ब्रह्मन्क यासि वद मेऽग्रतः। पुनरेव मयाप्रोक्तं देहि भिक्षां च सुन्दरि
तया कोपेन महता मृत्पिण्डस्ताम्रभाजने। क्षिप्तो यावदहं ब्रह्मन्पुनःस्वर्गं गतस्ततः ॥
ततःकालेन महता तापसी सुमहाव्रता। सदेहा स्वर्गमायाता व्रतचर्याप्रभावतः ॥३६॥

मृत्पिण्डिकाप्रदानेन गृहं प्राप्तं मनोरमम्।
संजातं चैव राजर्षे ! धान्यराशिविवर्जितम् ॥३७॥

गृहं यावन्निरीक्षेत न किंचित्तत्र पश्यति। तावद्गृहाद्विनिष्क्रान्ता ममान्ते चागतानृप
क्रोधेन महताविष्टमिदं वचनमब्रवीत्। मया व्रतैश्च कृच्छ्रैश्च उपवासैरनेकशः ॥ ३९ ॥
पूजयाऽऽराधितोदेवःसर्वलोकस्य पालकः। न तत्र दृश्यते किंचिद्गृहे मम जनार्दन ॥
ततश्चोक्तं मया तस्यैगृहं गच्छ महाव्रते। आगमिष्यन्ति सुतरां कौतूहलसमन्विताः ॥

देवपत्न्यो हि द्रष्टुं त्वां विस्मयाभिसमन्विताः।
द्वारं नोद्धाटय विना षट्तिलापुण्यवाचनात् ॥ ४२ ॥

एवमुक्ता मया सा तु गता वै मानुषी तदा। अत्रान्तरे समायाता देवपत्न्यश्च पाण्डव
ताभिश्च कथितं तत्र त्वां द्रष्टुं हि समागताः। द्वारमुद्धाटयस्वाद्यत्वां प्रपश्यामशोभने

मानुष्युवाच।

यदि मद्दर्शनं कार्यं सत्यंवाच्यं विशेषतः। दत्तं मे षट्तिला पुण्यं द्वारोद्धाटनकारणात्

श्रीकृष्ण उवाच ।

एकापि नावदत्तत्र षट्तीलैकादशीव्रतम् । अन्यया कथितं तत्र . द्रष्टव्या मानुषी मया
ततो द्वारं समुद्घाट्य दृष्टाताभिश्च मानुषी । न देवी न च गन्धर्वी नासुरी न च पन्नगी
दृष्टा पूर्वं तथा नारी यादृशीयं नृपर्षभ । देवीनामुपदेशेन षट्तिलाया व्रतं कृतम् ॥४८
मानुष्या सत्यव्रतया भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् । रूपकान्ति समायुक्ता क्षणेनसमवाप सा ॥
धनं धान्यं च वस्त्रादि सुवर्ण रौप्यमेव च । भवनं सर्व सम्पन्नं षट्तिलायाःप्रभावतः

रूपकान्तिसमायुक्ता क्षणेन समपद्यत ।
अतितृष्णा न कर्त्तव्या वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ॥ ५१ ॥
आत्मवित्तानुसारेण तिलान्वस्त्राणि दापयेत् ।
लभते चैवमारोग्यं नरो जन्मनि जन्मनि ॥ ५२ ॥

न दारिद्र्यं न कष्टत्वं न च दौर्भाग्यमेव च । सम्भवेद्वै नृपश्रेष्ठ षट्तिला समुपोषणात्
अनेनविधिना भूप तिलदाता न संशयः । मुच्यते पातकैःसर्वैरनायासेन मानवः ॥५४॥
दानं च विधिवत्पात्रे सर्वपातकनाशनम् । नानर्थः कश्चिन्नायसःशरीरे नृपसत्तम ! ॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादे माघकृष्णाषट्तिलैकादशी माहात्म्यं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

माघशुक्लपक्षजयैकादशीमाहात्म्यवर्णनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

साधु कृष्ण त्वया प्रोक्तामादिदेवो भवान्प्रभो ।
स्वेदजा अण्डजाश्चैव उद्भिज्जाश्च जरायुजाः ॥ १ ॥
तेषां कर्त्ता विकर्त्ता त्वं पालकः क्षयकारकः ।

माघस्य कृष्णपक्षे तु षट्तिला कथिता त्वया ॥ २ ॥
शुक्ले च का भवेद्देव कथयस्व प्रसादतः । किं नाम कोविधिस्तस्यःकोदेवस्तत्र पूज्यते
श्रीकृष्ण उवाच ।
कथयिष्यामि राजेन्द्र शुक्ले माघस्य या भवेत् ।
जया नामेति विख्याता सर्वपाप हरापरा ॥ ४ ॥
पवित्रा पापहर्त्री च कामदा मोक्षदा नृणाम् ।
ब्रह्महत्यापहन्त्री च पिशाचत्व विनाशिनी ॥ ५ ॥
नैव तस्या व्रतेचीर्णे प्रेतत्वं जायते नृणाम् । नातःपरतरा काचित्पापघ्नी मोक्षदायिनी
एतस्मात्कारणाद्राजन्कर्त्तव्या सा प्रयत्नतः ।
श्रूयतां राजशार्दूल कथा पौराणिकी शुभा ॥ ७ ॥
पङ्कजे च पुराणेऽस्या महिमा कथितो मया । एकदानाकलोके वा इन्द्रोराज्यं चकारह
देवास्तत्र सुखेनैव निवसन्ति मनोरमे । पीयूषपाननिरता अप्सरोगण सेविताः ॥ ६ ॥
नन्दनं तु वनं तत्र पारिजातोपसेवितम् ।
रमयन्ति रमन्तेऽत्र अप्सरोभिर्दिवौकसः ॥ १० ॥
एकदा रममाणोऽसौ देवेन्द्रःस्वेच्छया नृप ! । नर्त्तयामास वै हर्षात्पञ्चाशत्कोटिनायकः
गन्धर्वास्तत्र गायन्ति गन्धर्वःपुष्पदन्तकः । चित्रसेनस्तु तत्रैव चित्रसेनसुता तथा ॥
मालिनीति च नाम्ना तु चित्रसेनस्य योषिता ।
मालिन्यास्तु समुत्पन्ना पुष्पवन्ती च नामतः ॥ १३ ॥
पुष्पदन्तस्य पुत्रोऽसौ माल्यवान्नाम नामतः । पुष्पवन्त्याश्च रूपेण माल्यवानतिमोहितः
तयाह्येवं कटाक्षैश्च माल्यवांश्च वशीकृतः । लावण्यरूपसंपन्नं तस्या रूपं निशामय ॥ १५
बाहू तस्याश्च कामेन कण्ठपाशौ कृताविव । कर्णायते तु नयने रक्तान्ते घूर्णिते तथा
कर्णौ तु शोभनौ तस्याः कुण्डलाभ्यां नृपोत्तम ! ।
कम्बुग्रीवायुता सैव दिव्याभरणभूषिता ॥ १७ ॥
पीवोन्नतौ कुचौ तस्यास्तौ हेमकलशाविव ।

मध्यं क्षामं च चार्वङ्ग्या मुष्टिग्राह्यमनुत्तमम् ॥ १८ ॥
नितम्बौ विस्तृतौ चास्या विस्तीर्णा जघनस्थली ।
चरणौ शोभमानौ च रक्तोत्पलसमद्युती ॥ १९ ॥
ईदृश्या पुष्पवन्त्या स माल्यवानतिमोहितः । शक्रस्य परितोषाय नृत्यार्थं तौसमागतौ
गायमानौ तु तौ तत्र अप्सरोगणसेवितौ ।
मदनाधिपरीताङ्गौ पुष्पवन्ती च माल्यवान् ॥ २१ ॥
परस्परानुरागेण व्यामोहवशमागतौ । न शुद्धगानं गायेतां चित्तभ्रमसमन्वितौ ॥२२
बद्धदृष्टी तथाऽन्योन्यं कामबाणवशंगतौ । ज्ञात्वा लेखर्षभस्तत्र संगतं मानसं तयोः ॥
तालक्रिया मानलोपात्तथा गीतविसर्जनात् । चिन्तयित्वा तु मघवा ह्यवमानं तथात्मनः
कुपितश्च तयोरर्थे शापं दास्यन्निदं जगौ । धिग्धिग्वां पतितौ मूढावाज्ञाभङ्गकृतौ मम
युवां पिचाशौ भवतां दम्पतीभावधारिणौ ।
मर्त्यलोकमनुप्राप्तौ भुञ्जानौ कर्मणःफलम् ॥ २६ ॥
एवं मघवता शप्तावुभौ दुःखितमानसौ । हिमवन्तं गिरिप्राप्ताविन्द्रशापाद्विमोहितौ ॥
उभौ पिशाचतां प्राप्तौ दारुणं दुःखमेव च । संतप्तमानसौ तत्र हिमकृच्छ्रगतावुभौ ॥
गन्धर्वत्वमप्सरस्त्वं न जानीतो विमोहितौ । पीड्यमानो निदाघेन देहपातकजेन च
न निशायां सुखं शान्ति लभेते कर्मपीडितौ । परस्परं वदमानौ चेरतुर्गिरिगह्वरे ॥३०
पीड्यमानौ तु शीतेन तुषारप्रभवेण तौ । दन्तघर्षं प्रकुर्वाणौ रोमाञ्चितवपुर्धरौ ॥३१॥
ऊचे पिशाचः स तदा तां पत्नीं स्वां पिशाचिकाम् ।
किमनल्पं कृतं पापं दारुणं रोमहर्षणम् ॥ ३२ ॥
येन प्राप्तं पिशाचत्वं स्वेन दुष्कृतकर्मणा । नरकं दारुणं मत्वा पिशाचत्वं च दुःखदम्
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पातकं न समाचरेत् । इति चिन्तापरौ तत्रतावास्तां दुःखकर्शितौ
दैवयोगात्तयोःप्राप्ता माघस्यैकादशी तिथिः ।
जयानामेति विख्याता तिथीनामुत्तमा तिथिः ॥ ३५ ॥
तस्मिन्दिने तु संप्राप्ते तावाहारविवर्जितौ । आसाते तत्र नृपते ! जलपानविवर्जितौ ॥

न कृतो जीवघातश्च न पत्रफलभक्षणम्। अश्वत्थस्य समीपे तौ सर्वदा दुःखसंयुतौ ॥
रविरस्तंगतो राजंस्तथैव स्थितयोस्तयोः। प्राप्ताचैव निशाघोरादारुणा प्राणहारिणी
वेपमानौ ततस्तौ तु ततःसुषुपतुःक्षितौ। परस्परेण संलग्नौ गात्रयोर्भुजयोरपि ॥३९॥

न निद्रां न रतं तत्र न तौ सौख्यमविंदताम्।
एवं तौ राजशार्दूल! शापेनेन्द्रस्य पीडितौ ॥४०॥

इत्थं तयोर्दुःखितयोर्निर्जगाम निशीथिनी। मार्तण्ड उदयं प्राप्तो द्वादशी दिवसागमे ॥

मया तु राजशार्दूल तयोर्मुक्तिर्धृता हृदि।
जयायाः सुव्रतं चीर्णं रात्रौ जागरणं कृतम् ॥ ४२ ॥

तस्माद्व्रतप्रभावाच्च यथाजातं तथा शृणु। द्वादशीदिवसे प्राप्ते तथाचीर्णे जयाव्रते
विष्णोःप्रभावान्नृपते पिशाचत्वं तयोर्गतम्। पुष्पवन्ती माल्यवन्तौ पूर्वरूपौ बभूवतुः
पुरातनस्नेहयुतौ पूर्वालङ्कारधारिणौ। विमानमधिरूढौ तौ गतौ नाके मनोरमे ॥४५॥

देवेन्द्रस्याग्रतो गत्वा प्रमाणं चक्रतुर्मुदा।
तथाविधौ तु तौ दृष्ट्वा मघवा विस्मितोऽब्रवीत् ॥४६॥

इन्द्र उवाच।

वदतं केन पुण्येन पिशाचत्वं हि वां गतम्। ममशापं च संप्राप्तौ केन देवेन मोचितौ

माल्यवानुवाच।

वासुदेवप्रसादेन जयायास्तु व्रतेन च। पिशाचत्वं गतं स्वामिंस्तवभक्ति प्रभावतः ॥
इति श्रुत्वा तु मघवा प्रत्युवाच पुनस्तथा। पवित्रौ पावनौजातौ वन्दनीयौ ममापिच
हरिवासरकर्तारौ विष्णुभक्तिपरायणौ। हरिवासरसँल्लीना ये च कृष्णपरायणाः ॥५०

अस्माकमपि मर्त्यास्ते पूज्याश्चैव न संशयः।
विहरस्व यथासौख्यं पुष्पवन्त्या सुरालये ॥५१॥

श्रीकृष्ण उवाच।

एतस्मात्कारणाद्राजन्कर्त्तव्यो हरिवासरः। जया तु राजशार्दूल ब्रह्महत्यापहारिणी
सर्वदानानि तेनैवं सर्वयज्ञा अशेषतः। दत्तानि कारिताश्चैव जयायास्तु व्रतं कृतम् ॥

कल्पकोटिर्भवेत्तावद्वैकुण्ठे मोदते ध्रुवम् । पठनाच्छ्रवणाद्राजन्नग्निष्टोमफलं लभेत् ॥५४
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादे माघशुक्लजयैकादशीमाहात्म्यं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

फाल्गुनकृष्णपक्षविजयामाहात्म्यवर्णनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

फाल्गुनस्यासितेपक्षे किं नामैकादशी भवेत् । कथयस्व प्रसादेन वासुदेव ममाग्रतः

श्रीकृष्ण उवाच ।

नारदःपरिपप्रच्छ ब्रह्माणं कमलासनम् । फाल्गुनस्यासितेपक्षे विजयानाम नामतः ॥
तस्याः पुण्यं द्विजश्रेष्ठ ! कथयस्व प्रसादतः ॥२॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणु नारद वक्ष्यामि कथां पापहरां पराम् । यन्नकस्यचिदाख्यातं मयैतद्विजयाव्रतम्
पुरातनं व्रतं ह्येतत्पवित्रं पापनाशनम् । जयं ददाति विजया नृपाणां वै न संशयः ॥४
पुरा रामो वनं यातो वर्षाण्येव चतुर्दश । न्यवसत्पञ्चवट्यां तु सहसीतः सलक्ष्मणः ॥
तत्रैव वसतस्तस्य रामस्य विजयात्मनः । रावणेनहृता लौल्याद्भार्यासीता यशस्विनी
तेन दुःखेन रामोऽपि मोहमभ्यागतस्तदा । भ्रमञ्जटायुषमथो ददर्श विगतायुषम् ॥७॥
कबन्धो निहतःपश्चाद्भ्रमताऽरण्यमध्यतः । सुग्रीवेण समं तस्य सखित्वं समपद्यत ॥
वानराणामनीकानि रामार्थं संगतानि च । ततो हनुमता दृष्टा लङ्कोद्याने तु जानकी
रामसंज्ञापनं तस्यै दत्तं कर्म महत्कृतम् ।
पुनः समेत्य रामेण सर्वं तत्र निवेदितम् ॥ १० ॥
अथ श्रुत्वा रामचन्द्रो वाक्यंचैव हनूमतः । सुग्रीवानुमतेनैव प्रस्थानं समरोचयत् ॥

सौमित्रे केन पुण्येन तीर्यते वरुणालयः। अगाधो नितरामेष यादोभिश्च समाकुलः।
उपायं नैव पश्यामि येनासौ सुतरो भवेत्॥ १२॥
लक्ष्मण उवाच।
आदिदेवस्त्वमेवासि पुराणपुरुषोत्तमः। बकदाल्भ्यो मुनिश्चात्र वर्तते द्वीपमध्यतः॥
अस्मात्स्थानाद्योजनार्धमाश्रमस्तस्य राघव!।
अन्ये च ब्राह्मणास्तत्र बहवो रघुनन्दन॥ १४॥
तं पृच्छ गत्वा राजेन्द्र पुराणमृषिपुङ्गवम्।
इति वाक्यं ततः श्रुत्वा लक्ष्मणस्यातिशोभनम्॥ १५॥
जगाम राघवो द्रष्टुं बकदाल्भ्यं महामुनिम्। प्रणनाम मुनिं मूर्ध्ना रामो विष्णुमिवामरः
ज्ञात्वा मुनिस्ततो रामं पुराणं पुरुषोत्तमम्। केनापि कारणेनैव प्रविष्टो मानुषीं तनुम्
उवाच स ऋषिस्तुष्टः कुतो राम तवागमः॥ १८॥
राम उवाच।
त्वत्प्रसादादहं विप्र तीरं नदनदीपतेः।
आगतोऽस्मि ससैन्योऽत्र लङ्कां जेतुं सराक्षसाम्॥ १९॥
भवतश्चानुकूलत्वात्तीर्यतेऽब्धिर्यथा मया। तमुपायं वद मुने प्रसादं कुरु साम्प्रतम्॥
एतस्मात्कारणादेव द्रष्टुं त्वाहमिहागतः। रामस्य वचनं श्रुत्वा बकदाल्भ्यो महामुनिः
उवाच सुप्रसन्नात्मा रामं राजीवलोचनम्। कर्तव्यमद्य ते राम व्रतानां व्रतमुत्तमम्॥
कृतेन येन सहसा विजयस्ते भविष्यति।
लङ्कां जित्वा राक्षसांश्च स्वच्छां कीर्तिमवाप्स्यसि॥ २३॥
एकाग्रमानसो भूत्वा व्रतमेतत्समाचर। फाल्गुनस्यासिते पक्षे विजयैकादशीभवेत्॥
तस्या व्रतेन हेराम विजयस्ते भविष्यति। निःसंशयं समुद्रं त्वं तरिष्यसि स वानरः
विधिस्तु श्रूयतां राजन्व्रतस्यास्य फलप्रदः। दशम्यान्दिवसे प्राप्तेकुम्भमेकं तु कारयेत्
हैमं वा राजतं वाऽपि ताम्रं वाप्यथ मृण्मयम्।
स्थापयेच्छोभितञ्चैव जलपूर्णं सपल्लवम्॥ २७॥

सप्तधान्यान्यधस्तस्य यवानुपरि विन्यसेत्। तस्योपरि न्यसेद्देवं हैमं नारायणं प्रभुम्
एकादशी दिने प्राप्ते प्रातःस्नानं समाचरेत्। निश्चलं स्थापयेत्कुम्भंकण्ठमाल्यानुलेपनैः
पूगीफलैर्नालिकेरैःपूजयेच्चविशेषतः। गन्धैर्धूपैश्च दीपैश्च नैवेद्यैर्विविधैरपि ॥ ३० ॥
कुंभाग्रे तद्दिनं राम नीयते सत्कथादिभिः। रात्रौ जागरणंचैव तस्याग्रे कारयेद्बुधः ॥
प्रकाशयेद् घृतदीपमखण्डव्रतहेतवे। द्वादशीदिवसे प्राप्ते मार्तण्डस्योदये सति ॥३२॥
नीत्वा कुम्भं जलोद्देशे नद्याःप्रस्रवणे तथा।
ताडगे स्थापयित्वा तं पूजयित्वा यथाविधि ॥ ३३ ॥
दद्यात्स देवं तं कुम्भं ब्राह्मणे वेदपारगे। कुम्भेन सह राजेन्द्र महादानानि दापयेत् ॥
अनेन विधिना राम यूथपैःसह संगतः। कुरु व्रतं प्रयत्नेन विजयस्ते भविष्यति ॥३५॥

ब्रह्मोवाच।

इति श्रुत्वा ततो रामो यथोक्तमकरोत्तदा। कृतेव्रते स विजयी बभूव रघुनन्दनः ॥३६॥
प्राप्तासीता जितालङ्का पौलस्त्यो निहतो रणे। अनेन विधिना पुत्र ये कुर्वन्तिनराव्रतम्
इहलोके जयप्राप्तिः परलोकस्तथाक्षयः। एतस्मात्कारणात्पुत्र कर्तव्यं विजयाव्रतम् ॥
विजयायाश्च माहात्म्यं सर्वकिल्बिषनाशनम्।
पठनाच्छ्रवणाच्चैव वाजपेयफलं लभेत् ॥ ३९ ॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादे फाल्गुनकृष्णविजयामाहात्म्यं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५।

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

फाल्गुनशुक्लपक्षामलक्येकादशीमाहात्म्यवर्णनम्।

युधिष्ठिर उवाच।

माहात्म्यंविजयायाश्च श्रुतं कृष्णमहाफलम्। फाल्गुनस्यार्जुनेपक्षेयन्नाम्नी तां वदाधुना

श्रीकृष्ण उवाच ।

धर्मपुत्र महाभाग श्रृणुवक्ष्यामि तेऽधुना । योक्ता पृष्टेन मान्धात्रा वसिष्ठेन महात्मना
फाल्गुनस्य विशेषेण विशेषःकथितो नृप । आमलकीव्रतं पुण्यं विष्णुलोकफलप्रदम् ॥

आमलक्यास्तले गत्वा जागरं तत्र कारयेत् ।
कृत्वा जागरणं रात्रो गोसहस्र फलंलभेत् ॥ ४ ॥

मान्धातोवाच ।

आमलकी कदाह्येषा उत्पन्ना द्विजसत्तम । एतत्सर्वं ममाचक्ष्व परं कौतूहलं हि मे ॥

कस्मादियं पवित्रा च कस्मात्पाप प्रणाशिनी ।
कस्माज्जागरणं कृत्वा गोसहस्र फलं लभेत् ॥ ६ ॥

वसिष्ठ उवाच ।

कथयामि महाभाग यथेयमभवत्क्षितौ । आमलकीमहावृक्षः सर्वपापप्रणाशनः ॥ ७ ॥
एकार्णवे पुरा जाते नष्टे स्थावरजङ्गमे । नष्टे देवासुरगणे प्रनष्टोरगराक्षसे ॥ ८ ॥
तत्र देवादि देवेशःपरमात्मा सनातनः । जगाम ब्रह्मपरममात्मनःपदमव्ययम् ॥ ६ ॥
ततोऽस्य जाग्रतो ब्रह्ममुखाच्छशिसमप्रभः । ष्ठीवनाद्बिन्दुरुत्पन्नः स भूमौनिपपात ह

तस्माद् बिन्दोः समुत्पन्नःस्वयं धात्री नगो महान् ।
शाखाप्रशाखाबहुलः फलभारेण नामितः ॥ ११ ॥

सर्वेषांचैव वृक्षाणामादिरोहःप्रकीर्तितः । ब्रह्मणाऽथ ततःपश्चात्संसृष्टाश्च इमा प्रजाः ॥
देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसपन्नगान् । असृजद्भगवान्देवो महर्षींश्च तथामलान् ॥ १३ ॥
आजग्मुस्तत्र देवास्ते यत्र धात्री हरिप्रिया । तां दृष्ट्वा ते महाभागपरं विस्मयमागताः

न जानीम इमं वृक्षं चिन्तयन्तोऽभिसंस्थिताः ।
एवं चिन्तयतां तेषां वागुवाचाशरीरिणी ॥ १५ ॥

आमलकी नगोह्येष प्रवरो वैष्णवोमतः । अस्य संस्मरणादेव लभेद्गोदानजं फलम् ॥

स्पर्शनाद् द्विगुणं पुण्यं त्रिगुणं भक्षणात्तथा ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सेव्या आमलकी सदा ॥ १७ ॥

सर्वपापहरा प्रोक्ता वैष्णवी पापनाशिनी ।

तस्या मूलेस्थितो विष्णुस्तदूर्ध्वे च पितामहः ॥ १८ ॥

स्कन्धे च भगवान्रुद्रःसंस्थितः परमेश्वरः । शाखासु मुनयःसर्वे प्रशाखासु च देवताः

पर्णेषु चासते देवाःपुष्पेषु मरुतस्तथा । प्रजानां पतयःसर्वे फलेष्वेव व्यस्थिताः ॥२०॥

सर्वदेवमयीह्येवा धात्री च कथिता मया । तस्मात्पूज्यतमाह्येषा विष्णुभक्तिपरायणैः

ऋषय ऊचुः ।

को भवान्नहि जानीमः कस्मात्कारणतां गतः ।

देवो वा यदि वा चान्यःकथयस्व यथातथम् ॥ २२ ॥

वागुवाच ।

यःकर्ता सर्वभूतानां भुवनानां च सर्वशः । विदुषामपि दुष्प्रेक्षस्सोऽहं विष्णुःसनातनः

तच्छ्रुत्वा देवदेवस्य भाषितं ब्रह्मणःसुताः । अनादिनिधनं देवं स्तोतुं तत्र प्रचक्रमुः ॥

नमो भूतात्मभूताय आत्मने परमात्मने । अच्युताय नमो नित्यमनन्ताय नमोनमः ॥

दामोदराय कवये यज्ञेशाय नमोनमः ॥ २६ ॥

एवं स्तुतस्तु ऋषिभिस्तुताष भगवान्हरिः । प्रत्युवाच महर्षींस्तानभीष्टं किं ददामिवः

ऋषय ऊचुः ।

यदि तुष्टोऽसि भगवन्नस्माकं हितकाम्यया ।

व्रतं किंचित्समाख्याहि स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ॥ २८ ॥

धनधान्यप्रदं पुण्यमात्मनस्तुष्टिकारकम् । अल्पायासं बहुफलं व्रतानामुत्तमंव्रतम् ॥

कृतेन येन देवेश ! विष्णुलोके महीयते ॥ २९ ॥

विष्णुरुवाच ।

फाल्गुने शुक्लपक्षे तु पुष्येण द्वादशी यदि । भवेत्सा च महापुण्या महापातकनाशिनी

विशेषस्तत्र कर्त्तव्यः शृणुध्वं द्विजसत्तमाः । आमलकी च संप्राप्य जागरं तत्र कारयेत्

सर्वपापविनिर्मुक्तो गोसहस्रफलं लभेत् । एतद्वःकथितं विप्रा व्रतानां व्रतमुत्तमम् ॥

अर्चयित्वाऽच्युतं तस्यां विष्णुलोकान्न मुच्यते ॥ ३२ ॥

ऋषय ऊचुः ।

व्रतस्यास्य विधिं ब्रूहि परिपूर्णं कथं भवेत् ।

के मन्त्राःके नमस्कारा देवता का प्रकीर्तिता ॥ ३३ ॥

कथं दानं कथं स्नानं कश्च पूजाविधिःस्मृतः। अर्घार्चनस्यमन्त्रंतु कथयस्वयथातथम्

विष्णुरुवाच ।

श्रूयतां यो विधिः सम्यग्व्रतस्यास्य द्विजर्षभाः ।

एकादश्यां निराहारः स्थित्वा चैव परेऽहनि ॥ ३५ ॥

भोक्ष्येऽहं पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ! ।

इति कृत्वा तु नियमं दन्तधावनपूर्वकम् ॥ ३६ ॥

नालपेत्पतितांश्चौरांस्तथापाषण्डिनोनरान् । दुर्वृत्तान्भिन्नमर्यादान्गुरुदारप्रधर्षकान् ॥

अपराह्णे ततःस्नानं विधिना कारयेद्बुधः । नद्यां तडागे कूपे वा गृहे वा नियतात्मवान्

मृत्तिकालम्भनं पूर्वं ततःस्नानं च कारयेत् । अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्तेवसुन्धरे

मृत्तिके ! हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥४०॥

इति मृत्तिकामन्त्रः ।

त्वमम्बु सर्वभूतानां जीवनं तनुरक्षकम् । स्वेदजोद्भिज्जजातीनां रसानां पतये नमः ॥

स्नातोऽहं सर्वतीर्थेषु ह्रदप्रस्रवणेषु च । नदीषु देवखातेषु इदं स्नानं तु मे भवेत् ॥४२

इति स्नानमन्त्रः ।

जामदग्न्यं मुनिंचैव कारयित्वा हिरण्मयम् । माषकस्य सुवर्णस्य तदर्धार्धेन वा पुनः

गृहमागत्य पूजायाः पूजाहोमं तु कारयेत् । ततश्चामलकीं गच्छेत्सर्वोपस्करसंयुतः ॥

आमलकीं ततो गत्वा परिशोध्य समन्ततः । स्थापयेत्सततं कुम्भमव्रणं मन्त्रपूर्वकम् ॥

पञ्चरत्नसमोपेतं दिव्यगन्धाधिवासितम् । छत्रोपानद्युगोपेतं सितचन्दनचर्चितम् ॥

स्रग्दामलम्बितग्रीवं सर्वधूपविधूपितम् । दीपमालाकुलं कुर्यात्सर्वतःसुमनोहरम् ॥४७

तस्योपरि न्यसेत्पात्रं दिव्यलाजैः प्रपूरितम् ।

पात्रोपरि न्यसेद्देवं जामदग्न्यं महाप्रभम् ॥ ४८ ॥

विशोकाय नमःपादौ जानुनी विश्वरूपिणे । उग्राय च ततोऽप्यूरूकटीदामोदराय च ॥
उदरं पद्मनाभायउरःश्रीवत्सधारिणे । चक्रिणे वामबाहुं च दक्षिणं गदिने नमः ॥ ५०॥
वैकुण्ठाय नमःकण्ठमास्यं यज्ञमुखाय वै । नासां विशोकनिधये वासुदेवाय चाक्षिणी
ललाटं वामनायेति रामायेति भ्रुवौ नमः । सर्वात्मने तु तच्छीर्षं नम इत्यभिपूजयेत्

इति पूजामन्त्रः

ततो देवाधिदेवाय अर्घंचैव प्रदापयेत् । फलेन चैव शुभ्रेण भक्ति युक्तेन चेतसा ॥५३॥
नमस्ते देवदेवेश जामदग्न्य नमोऽस्तु ते । गृहाणार्घ्यमिमं दत्तमामलक्यायुतो हरे ! ॥

अर्घ्य मन्त्रः

ततो जागरणं कुर्याद्भक्तियुक्तेन चेतसा । नृत्यैर्गीतैश्च वादित्रैर्धर्माख्यानैःस्तवैरपि ॥५५

वैष्णवैश्च तथाऽऽख्यानैः क्षपयेत्सर्वशर्वरीम् ।
प्रदक्षिणां ततः कुर्याद्भक्त्या वै विष्णुनामभिः ॥५६॥

अष्टाधिकं शतंचैव अष्टाविंशतिरेव वा । ततःप्रभाते समये कृत्वा नीराजनं हरेः ॥५७ ॥
ब्राह्मणं पूजयित्वा तु सर्वं तस्मै निवेदयेत् । जामदग्न्यघटं तत्र वस्त्रयुग्ममुपानहौ ॥

जामदग्न्यस्वरूपेण प्रीयतां मम केशवः ।
ततश्चामलकीं स्पृष्ट्वा कृत्वा चैव प्रदक्षिणाम् ॥ ५९ ॥

स्नानं कृत्वा विधानेन ब्राह्मणान्भोजतेत्ततः । ततश्च स्वयमश्नीयात्कुटुम्बेन समावृतः
एवं कृतेन यत्पुण्यं तत्सर्वं कथयामि ते । सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु यत्फलम् ॥
सर्वयज्ञाधिकं चैव लभते नात्र संशयः । एतद्वःसर्वमाख्यातं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥६२
एतावदुक्त्वा देवेशस्तत्रैवान्तरधीयत । ते चापि ऋषयःसर्वे चक्रुःसर्वमशेषतः ॥ ६३ ॥
तथा त्वमपि राजेन्द्र कर्तुमर्हसि सत्तम ! । व्रतमेतद्दुराधर्षं सर्वपापप्रमोचनम् ॥६४॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-नारदसंवादे फाल्गुनशुक्लामलक्येकादशी माहात्म्यं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

———

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

चैत्रकृष्णपक्षपापमोचन्येकादशीमाहात्म्यवर्णनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

फाल्गुनस्य सितेपक्षे श्रुताचामलकी तथा । चैत्रस्य कृष्णपक्षे तु किं नामैकादशीभवेत्

श्रीकृष्ण उवाच ।

शृणु राजेन्द्र ! वक्ष्यामि आख्यानं पापनाशनम् ।
यल्लोमशोऽब्रवीत्पृष्टो मान्धात्रा चक्रवर्तिना ॥ २ ॥

मान्धातोवाच ।

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि लोकानां हितकाम्यया । चैत्रस्य प्रथमे पक्षे का नामैकादशीभवेत्
को विधिः किं फलं तस्याः कथयस्व प्रसादतः ॥३॥

लोमश उवाच ।

चैत्रमास्यसिते पक्षे नाम्नावैपापमोचिनी । एकादशी समाख्याता पिशाचत्वविनाशिनी
शृणु तस्याः प्रवक्ष्यामि कामदां सिद्धिदां नृप ।
कथां विचित्रां शुभदां पापघ्नीं धर्मदायिनीम् ॥५॥

पुरा चैत्ररथोद्देशे ह्यप्सरोगणसेविते । वसन्तसमये प्राप्ते षट्पदाकुलिते वने ॥ ६ ॥
गन्धर्वकन्या वादित्रे रमन्ते सहकिन्नरैः । पाकशासनमुख्याश्च क्रीडन्ति त्रिदिवौकसः
नापरं सुखदं किंचिद्विना चैत्ररथाद्वनम् । तस्मिन्वने तु मुनयस्तपन्ति बहुलं तपः ॥८
मेधाविनामानमृषिं तत्रस्थं ब्रह्मचारिणम् । अप्सरास्तं मुनिवरं मोहनायोपचक्रमे ॥
मञ्जुघोषेति विख्याना भावं तस्य चितन्वती ।
क्रोशमात्रं स्थिता तस्य भयादाश्रम सन्निधौ ॥ १० ॥
गायन्ती मधुरं साधु पीडयन्ती विपञ्चिकाम् ।
गायन्तीं तामथालोक्य पुष्पचन्दनसेविताम् ॥ ११ ॥

कामोऽपि विजयाकाङ्क्षी शिवभक्तान्मुनीश्वरान् ।
तस्याः शरीरे संवासमकरोन्मनसः सुतः ॥१२॥
कृत्वा भ्रुवौ धनुष्कोटिं गुणं कृत्वा कटाक्षकम् ।
मार्गणौ नयने कृत्वा पक्ष्मयुक्ते यथाक्रमम् ॥ १३ ॥

कुचौ कृत्वा पटकुटीं विजयायोपचक्रमे । मञ्जुघोषा भवत्तस्य कामस्यैव वरूथिनी ॥
मेधाविनं मुनिं दृष्ट्वासापि कामेनपीडिता । यौवनोद्भिन्नदेहोऽसौ मेधाव्यपिविराजते
सितोपवीतसहितो दृष्टःस्मर इवापरः। मेधावी वसते चासौ च्यवनस्याश्रमे शुभे ॥
मञ्जुघोषा स्थितं तत्र दृष्ट्वा सा मुनिपुङ्गवम् । मदनस्य वशंप्राप्ता मन्दम्मन्दमगायत
रणद्वलयसंयुक्तां शिञ्जन्नूपुरमेखलाम् । गायन्तीं तां तथाभूतां विलोक्य मुनिपुङ्गवः ॥
मदनेन ससैन्येन नीतो मोहवशं बलात् । मञ्जुघोषा समागम्य मुनिं दृष्ट्वा तथाविधम्

हावभावकटाक्षैस्तं मोहयामास चाङ्गना ।
अधः संस्थाप्य वीणां सा सस्वजे तं मुनीश्वरम् ॥ २० ॥

चलितेव लतावृक्षं वातवेगेन कम्पितम् । सोऽपि रेमे तया सार्धं मेधावी मुनिपुङ्गवः ॥
तस्मिन्नेव ततो दृष्ट्वा तस्यास्तं देहमुत्तमम् । शिवतत्त्वं गतं तस्य कामतत्त्ववशं गतः
न निशां न दिनं सोऽपि रमञ्जानाति कामुकः । बहुवर्षो गतःकालो मुनेराचार लोपतः
मञ्जुघोषा देवलोकगमनायोपचक्रमे । गच्छन्ती तं प्रत्युवाच रमन्तं मुनिसत्तमम् ॥

आदेशो दीयतां ब्रह्मन्स्वदेशगमनाय मे ॥ २४ ॥

मेधाव्युवाच ।

अद्यैव त्वं समायाता प्रदोषादौ वरानने । यावत्प्रभात सन्ध्यास्यात्तावत्तिष्ठ ममान्तिके
इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं भयभीता बभूव सा । पुनर्वै रमयामास तमृषिं नृपसत्तम ! ॥
मुनेः शापभयाद्भीता बहुलान्परिवत्सरान् । वर्षाणां पञ्चपञ्चाशन्नवमासान्दिनत्रयम् ॥

सा रेमे मुनिना तस्य निशार्धमिव चाभवत् ।
सा तं पुनरुवाचाथ तस्मिन्काले गते मुनिम् ॥
आदेशो दीयतां ब्रह्मन्गन्तव्यं स्वगृहे मया ॥ २८ ॥

मेधाव्युवाच ।

प्रभातमधुनाचास्ते श्रूयतां वचनं मम । सन्ध्यांयावच्च कुर्वेऽहं तावत्त्वं वै स्थिराभव

इति वाक्यं मुनेः श्रुत्वा जातानन्दसमाकुला ।

स्मितं कृत्वा तु सा किंचित्प्रत्युवाच शुचिस्मिता ॥ ३० ॥

अप्सरा उवाच ।

कियत्प्रमाणा विप्रेन्द्र ! तव सन्ध्या गताऽनघ ! ।

मयि प्रसादं कृत्वा तु गतःकालो विचार्यताम् ॥ ३१ ॥

इति तस्यावचः श्रुत्वा विस्मयोत्फुल्ललोचनः । गतकालस्य विप्रेन्द्रःप्रमाणमकरोत्तदा

समाश्च सप्तपञ्चाशद्गतास्तस्य तया सह । चुक्रोध स ततस्तस्यै ज्वालामाली बभूव ह

नेत्राभ्यां विस्फुलिङ्गान्स मुञ्चमानोऽतिकोपनः ।

कालरूपां तु तां दृष्ट्वा तपसः क्षयकारिणीम् ॥ ३४ ॥

दुःखार्जितं क्षयं नीतं तपोदृष्ट्वा तयासह । सकम्पोष्ठो मुनिस्तत्र प्रत्युवाचाकुलेन्द्रियः

तां शशापाथ मेधावी त्वं पिशाची भवेति च । धिक्त्वां पापे दुराचारे कुलटे पातकप्रिये

तस्य शापेन सा दग्धा विनयावनतास्थिता । उवाच वचनं सुभ्रू प्रसादं वाञ्छतीमुनिम्

प्रसादं कुरु विप्रेन्द्र शापस्यानुग्रहं कुरु । सतां संगो हि भवति वचोभिःसप्तभिःपदैः

त्वयासह मम ब्रह्मन्नीता वै बहुवत्सराः । एतस्मात्कारणात्स्वामिन्प्रसादं कुरु सुव्रत

मुनिरुवाच ।

शृणु मे वचनं भद्रे शापानुग्रहकारकम् । किं करोमि त्वया पापे क्षयंनीतं महत्तपः ॥

चैत्रस्य कृष्णपक्षे तु भवेदेकादशी शुभा । पापमोचिनिका नाम सर्वपापक्षयङ्करी ॥

तस्या व्रते कृते शुभ्रे पिशाचत्वं प्रयास्यति ।

इत्युक्त्वा सोऽपि मेधावी जगाम पितुराश्रमम् ॥ ४२ ॥

तमागतं समालोक्य च्यवनःप्रत्युवाचतम् । किमेतद्विहितं पुत्र ! त्वया पुण्यक्षयःकृतः

मेधाव्युवाच ।

पातकं वै कृतं तात रमिता चाप्सरा मया । प्रायश्चित्तं ब्रूहि तात येन पापक्षयो भवेत्

च्यवन उवाच ।

चैत्रस्य चासिते पक्षे नाम्ना वै पापमोचिनी ।

अस्या व्रते कृते पुत्र ! पापराशिः क्षयं व्रजेत् ॥ ४५ ॥

इतिश्रुत्वा पितुर्वाक्यं कृतं तेन व्रतोत्तमम् । गतं पापं क्षयं तस्य तपोयुक्तो बभूव सः
साप्येवंमञ्जुघोषा च कृत्वैतद्व्रतमुत्तमम् । पिशाचत्वाद्विनिर्मुक्तापापमोचिनिकाव्रतात्

दिव्यरूपधरा सा वै गता नाके वराप्सरा ॥ ४७ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

पापमोचिनिकां राजन्ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः ।

तेषां पापं च यत्किंचित्तत्सर्वं च क्षयं व्रजेत् ॥४८॥

पठनाच्छ्रवणाद्राजन्गोसहस्रफलं लभेत् । ब्रह्महा हेमहारी च सुरापो गुरुतल्पगः ॥४९
व्रतस्य चास्य करणात्पापमुक्ता भवन्ति ते । बहुपुण्यप्रदं ह्येतत्करणाद्व्रतमुत्तमम् ॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादे चैत्रकृष्णैकादशीपापमोचिनी नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

———

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

चैत्रशुक्लपक्षकामदैकादशीमाहात्म्यवर्णनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

वासुदेव नमस्तुभ्यं कथयस्व ममाग्रतः । चैत्रस्य शुक्लपक्षे तु किं नामैकादशी भवेत् ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

शृणुष्वैकमना राजन्कथां पुण्यां पुरातनीम् । वसिष्ठो यामकथयत्प्राग्दिलीपाय पृच्छते

दिलीप उवाच ।

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि कथयस्वप्रसादतः । चैत्रमासि सितेपक्षे किं नामैकादशीभवेत्

वसिष्ठ उवाच ।

साधु पृष्टं त्वया राजन्कथयामि तवाग्रतः । चैत्रस्य शुक्लपक्षे तु कामदा नाम नामतः ॥
एकादशी पुण्यतमा पापेन्धनदवानलः । शृणुराजन्कथामेतां पापघ्नीं पुण्यदायिनीम् ॥
पुरा नागपुरे रम्ये हेमरत्नविभूषते । पुण्डरीकमुखानागा निवसन्ति महोत्कटाः ॥६॥

तस्मिन्पुरे पुण्डरीको राजा राज्यं चकार सः ।
गन्धर्वैः किन्नरैश्चैव अप्सरोभिश्च सेव्यते ॥ ७ ॥

वराप्सरास्तु ललिता गन्धर्वो ललितस्तथा । उभौ रागेणसंरक्तौ दम्पतीकामपीडितौ
रेमाते स्वगृहे रम्ये धनधान्ययुते तदा । ललितायाश्च हृदये पतिर्वसति सर्वदा ॥ ९ ॥

हृदये तस्य ललिता नित्यं वसति भामिनी ।
एकदा पुण्डरीकोऽथ क्रीडते सदसि स्थितः ॥१०॥

गातं गानं प्रकुरुते ललितोदयितां विना । पदबन्धस्खलज्जिह्वो बभूव ललितां स्मरन्
मनोभावं विदित्वास्य कर्कटो नागसत्तमः । पदबन्धच्युतिं तस्य पुण्डरीके न्यवेदयत्
श्रुत्वा कर्कोटकवचःपुण्रीके भुजङ्गराट् । क्रोधसंरक्तनयनो बभूवातिभयङ्करः ॥ १३ ॥
शशाप ललितं तत्र गायन्तं मदनातुरम् । राक्षसो भव दुर्बुद्धे क्रव्यादः पुरुषादकः ॥१४
यतःपत्नीवशोपेतो गायमानो ममाग्रतः । वचनात्तस्य राजेन्द्र रक्षोरूपो बभूव सः ॥१५
रौद्राननो विरूपाक्षो दृष्टमात्रो भयङ्करः । बाहू योजनविस्तीर्णौ मुखं कन्दरसन्निभम्
चन्द्रसूर्यनिभे नेत्रे ग्रीवा पर्वतसन्निभा । नासारन्ध्रे तु विवरे अधरौ योजनायतौ ॥

शरीरं तस्य राजेन्द्र ! उत्थितं योजनाष्टकम् ।
ईदृशो राक्षसो भूत्वा भुञ्जानः कर्मणः फलम् ॥ १८ ॥

ललिता तु तथालोक्य स्वपतिं विकृताकृतिम् । चिन्तयामास मनसा दुःखेनमहतार्दिता

किं करोमि क्व गच्छामि पतिः शापेन पीडितः ।
इति संस्मृत्य संस्मृत्य मनसा शर्म नालभत् ॥ २० ॥

चचार पतिनासार्धं ललिता गहनेवने । बभ्राम विपिने दुर्गे कामरूपी स राक्षसः ॥२१
निर्घृणःपापनिरतो विरूपःपुरुषादकः । न सुखं लभते रात्रौ न दिवा पापपीडितः ॥

ललिता दुःखिताऽतीव पतिं दृष्ट्वा तथाविधम् । बभ्राम तेनसार्धं सा रुदती गहनेवने ॥

दृष्ट्वाऽऽश्रमपदं रम्यं मुनिं संशान्तविग्रहम् ।
शीघ्रं जगाम ललिता नमस्कृत्याग्रतः स्थिता ॥ २४ ॥
तां दृष्ट्वा स मुनिः प्राह दुःखितां हि दयापरः ।
का त्वं कस्मादिहायाता सत्यं वद ममाग्रतः ॥ २५ ॥

ललितोवाच ।

वीरधन्वेति गन्धर्वःसुतातस्य महात्मनः । ललितां नाम मांविद्धिपत्यर्थमिह चागताम्

भर्ता मे पापदोषेण राक्षसोऽभून्महामुने ।
रौद्ररूपो दुराचारस्तं दृष्ट्वा नास्ति मे सुखम् ॥ २७ ॥

साम्प्रतं शाधि मां ब्रह्मन्यत्कृत्यं तद्वद प्रभो । येन पुण्येन विप्रेन्द्र राक्षसत्वाद्विमुच्यते

ऋषिरुवाच ।

चैत्रमासस्य रम्भोरु शुक्लपक्षोऽस्ति साम्प्रतम् । कामदैकादशी नाम पापघ्नी ललितेपरा
कुरुष्व तद्व्रतं भद्रे विधिपूर्वं मयोदितम् । अस्य व्रतस्य यत्पुण्यं तत्स्वभर्त्रे प्रदीयताम्
दत्तेपुण्ये क्षणात्तस्य शापदोषःप्रयास्यति । इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यंललिता हर्षिताऽभवत्
उपोष्यैकादशीं राजन्द्वादशीदिवसे तथा । विप्रस्यैव समीपे तद्वासुदेवस्य चाग्रतः ॥

वाक्यमुवाच ललिता स्वपत्युस्तारणाय वै ।
मया तु तद्व्रतं चीर्णं कामदाया उपोषणम् ॥ ३३ ॥

तस्य पुण्यप्रभावेण गच्छत्वस्य पिशाचता । ललितावचनादेव वर्त्तमानोऽपि तत्क्षणे
गतपापःस ललितो दिव्यदेहो बभूव ह । राक्षसत्वं गतं तस्य प्राप्ता गन्धर्वता पुनः ॥
हेमरत्नसमाकीर्णो रेमे ललितया सह । विमानवरमारूढौ पूर्वरूपाधिकौ च तौ ॥३६
दम्पती अत्यशोभेतां कामदायाः प्रभावतः । इति ज्ञात्वा नृपश्रेष्ठ कर्तव्यैषा प्रयत्नतः ॥

लोकानां तु हितार्थाय तवाग्रे कथिता मया ॥ ३८ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

ब्रह्महत्यादि पापघ्नी पिशाचत्वविनाशिनी । नातः परतरा काचित्त्रैलोक्ये सचराचरे

पठनाच्छ्रवणाद्राजन्वाजपेयफलं लभेत् ॥ ३६ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारद-संवादे चैत्रशुक्लकामदामाहात्म्यं नामाष्टचत्वरिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

ऊनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

वैशाखकृष्णपक्षवरूथिन्येकादशीमाहात्म्यवर्णनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

वैशाखस्यासितेपक्षे किंनामैकादशी भवेत् । महिमानं कथय मे वासुदेव नमोऽस्तु ते

श्रीकृष्ण उवाच

सौभाग्यदायिनी राजन्निहलोके परत्र च । वैशाखकृष्णपक्षे तु नाम्ना चैव वरूथिनी

वरूथिन्या व्रतेनैव सौख्यं भवति सर्वदा । पापहानिश्च भवति सौभाग्यप्राप्तिरेव च

दुर्भगा या करोत्येनां सा स्त्री सौभाग्यमाप्नुयात् ।

लोकानां चैव सर्वेषां भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥ ४ ॥

सर्वपापहरा नृणां गर्भवासनिकृन्तनी । वरूथिन्या व्रतेनैव मान्धाता स्वर्गतिं गतः ॥

धुन्धुमारादयश्चान्ये राजानो बहवस्तथा । ब्रह्मकपालनिर्मुक्तो बभूव भगवान्भवः ॥

दशवर्षसहस्राणि तपस्तप्यति यो नरः । रविग्रहे कुरुक्षेत्रे स्वर्णभारं ददाति यः ॥७॥

तत्तुल्यं फलमाप्नोति वरूथिन्या व्रतं चरन् । श्रद्धावान्यस्तु कुरुते वरूथिन्या व्रतं नरः

वाञ्छितं लभते सोऽपि इहलोके परत्र च । पवित्रा पावनी ह्येषा महापातकनाशिनी]

भुक्तिमुक्तिप्रदा चैव कर्तॄणां नृपसत्तम । अश्वदानान्नृपश्रेष्ठ गजदानं विशिष्यते ॥१०॥

गजदानाद्‌ भूमिदानं तिलदानं ततोऽधिकम् ।

तस्माच्च स्वर्णदानं वा अन्नदानं ततोऽधिकम् ॥ ११ ॥

अन्नदानात्परंदानं न भूतं न भविष्यति । पितृदेवमनुष्याणां तृप्तिरन्नेन जायते ॥१२॥

तत्समं कविभिःप्रोक्तं कन्यादानं नृपोत्तम । धेनुदानं च तत्तुल्यमित्याह भगवान्स्वयम्
प्रोक्तेभ्यः सर्वदानेभ्यो विद्यादानं विशिष्यते ।
तत्फलं समवाप्नोति नरः कृत्वा वरूथिनीम् ॥ १४ ॥
कन्यावित्तेन जीवन्ति ये नराःपापमोहिताः । पुण्यक्षयात्ते गच्छन्तिनिरयं यातनात्मकम्
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन न ग्राह्यं कन्यकाधनम् ।
यश्च गृह्णाति लोभेन कन्यां क्रीत्वा च तद्धनम् ॥१६॥
सोऽन्यजन्मनि राजेन्द्र ! ओतुर्भवति निश्चितम् ।
कन्यां पुण्येन यो दद्याद्यथाशक्ति स्वलङ्कृताम् ॥ १७ ॥
तत्पुण्यसङ्ख्यां गदितुं चित्रगुप्तो न शक्नुयात् ।
तत्तुल्यं फलमाप्नोति नरः कृत्वा वरूथिनीम् ॥ १८ ॥
कांस्यं मांसं मसूरांश्च चणकान्कोद्रवांस्तथा । शाकं मधुपरान्नं च पुनर्भोजनमैथुने ॥
वैष्णवो व्रतकर्ता च दशम्यां दश वर्जयेत् । द्यूतं क्रीडां च निद्राञ्च ताम्बूलं दन्तधावनम्
परापवादं पैशुन्यं स्तेयं हिंसां तथा रतिम् । क्रोधं चैवानृतंवाक्यमेकादश्यां विवर्जयेत्
कांस्यं मांसं सुरां क्षौद्रं तैलं पतितभाषणम् ।
व्यायामं च प्रवासं च पुनर्भोजनमैथुनम् ॥ २२ ॥
वृषपृष्ठं मसूरान्नं द्वादश्यां परिवर्जयेत् । अनेन विधिना राजन्विहितायैर्वरूथिनी ॥२३
सर्वपापक्षयं कृत्वा दद्यात्प्रान्तेऽक्षयांगतिम् । रात्रौ जागरणं कृत्वा पूजितो मधुसूदनः
सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते यान्ति परमांगतिम् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्तव्या पापभीरुभिः
क्षपारितनयाद्भीतो नरःकुर्याद्वरूथिनीम् । पठनाच्छ्रवणाद्राजन्गोसहस्रफलं लभेत् ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥ २७ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-नारदसंवादे वैशाखकृष्णवरूथिन्येकादशीमाहात्म्यं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥

———

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

वैशाखशुक्लपक्षमोहिन्येकादशीमाहात्म्यवर्णनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

वैशाखशुक्लपक्षे तु किन्नामैकादशी भवेत् । किं फलं को विधिस्तत्र कथयस्व जनार्दन

श्रीकृष्ण उवाच ।

इदमेव पुरापृष्टं रामचन्द्रेण धीमता । वसिष्ठं प्रति राजेन्द्र यत्त्वं मामनुपृच्छसि ॥ २ ॥

राम उवाच ।

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि व्रतानामुत्तमंव्रतम् । सर्वपापक्षयकरं सर्वदुःखनिकृन्तनम् ॥३॥

मया दुःखानि भुक्तानि सीताविरहजानि तु ।
ततोऽहं भयभीतोऽस्मि पृच्छामि त्वां महामुने ! ॥ ४ ॥

वसिष्ठ उवाच ।

साधुपृष्टं त्वया राम तवैषा नैष्ठिकीमतिः । त्वन्नामग्रहणेनैव पूतो भवति मानवः ॥

तथाऽपि कथयिष्यामि लोकानां हितकाम्यया । पवित्रं पावनानांचव्रतानामुत्तमंव्रतम्

वैशाखस्य सिते पक्षे राम ! चैकादशी भवेत् ।
मोहिनी नाम सा प्रोक्ता सर्वपापहरा परा ॥ ७ ॥

मोहजालात्प्रमुच्यन्ते पातकानां समूहतः । अस्या व्रतप्रभावेण सत्यं सत्यं वदाम्यहम्

अतः कारणतो राम ! कर्तव्यैषा भवादृशैः ।
पातकानां क्षयकारी महादुःखविनाशनी ॥ ६ ॥

शृणुष्वैकमना राम कथां पापहारां पराम् । यस्याः श्रवणमात्रेण महापापं प्रणश्यति ॥

सरस्वत्यास्तटे रम्ये पुरी भद्रावती शुभा । द्युतिमान्नाम नृपतिस्तत्र राज्यं करोति वै ॥

चन्द्रवंशोद्भवो नाम्ना धृतिमान्सत्यसङ्गरः । तत्र वैश्यो निवसति धनधान्यसमृद्धिमान्

धनपाल इतिख्यातः पुण्यकर्मप्रवर्त्तकः । प्रपाकूपमठारामतडागगृहकारकः ॥ १३ ॥

विष्णुभक्तिरतः शान्तस्तस्यासन्पञ्चपुत्रकाः । सुमना द्युतिमांश्चैव मेधावी सुकृतस्तथा ॥
पञ्चमो धृष्टबुद्धिश्च महापापरतः सदा । परस्त्रीसङ्गनिरतो विटगोष्ठीविशारदः ॥ १५ ॥
द्यूतादि व्यसनासक्तः परस्त्रीरतिलालसः । न च देवार्चने बुद्धिर्नपितृन्नद्विजान्प्रति ॥
अन्यायवर्ती दुष्टात्मा पितुर्द्रव्यक्षयङ्करः । अभक्ष्यभक्षकः पापी सुरापानेरतःसदा ॥१७

वेश्याकण्ठे क्षिप्तबाहुर्भ्रमन्दुष्टश्चतुष्पथे ।
पित्रा निष्काशितो गेहात्परित्यक्तश्च बान्धवैः ॥ १८ ॥
स्वदेहभूषणान्येव क्षयं नीतानि तेन वै ।
गणिकाभिः परित्यक्तो निन्दतश्च धनक्षयात् ॥ १९ ॥

ततश्चिन्तापरो जातो वस्त्रहीनःक्षुधार्दितः । किं करोमि क्वगच्छामि केनोपायेन जीव्यते
तस्करत्वं समारब्धं तत्रैव नगरे पितुः । गृहीतो राजपुरुषैर्मुक्तश्च पितृगौरवात् ॥२१॥
पुनर्बद्धःपुनस्त्यक्तः पुनर्बद्धः स वै भटैः । धृष्टबुद्धिर्दुराचारो निबध्य निगडैर्दृढैः ॥२२॥

कशाघातैस्ताडितश्च पीडितश्च पुनः पुनः ।
न स्थातव्यं हि मन्दात्मंस्त्वया मद्देशगोचरे ॥ २३ ॥
एवमुक्त्वा ततो राज्ञा मोचितो दृढबन्धनात् ।
निर्जगाम भयात्तस्य गतोऽसौ गहनं वनम् ॥ २४ ॥

क्षुत्तृषा पीडितश्चायमितश्चेतश्च धावति । सिंहवन्निजघानासौ मृगशूकरचित्रलान् ॥
आमिषाहारनिरतो वने तिष्ठति सर्वदा । करे शरासनं कृत्वा निषङ्गं पृष्ठसंगतम् ॥२६॥

अरण्यचारिणो हन्ति पक्षिणश्च चतुष्पदान् ।
चकोरांश्च मयूरांश्च कङ्कतित्तिरिमूषकान् ॥ २७ ॥

एतानन्यान्हिनस्त्यन्धो धृष्टबुद्धिस्तु निर्घृणः । पूर्वजन्मकृतैः पातैर्निमग्नःपापकर्दमे ॥

दुःखशोकसमाविष्टः पीड्यमानो दिवानिशम् ।
कौण्डिन्यस्याश्रमपदं प्राप्तः पुण्यागमात्कचित् ॥२९॥
माधवे मासि जाह्नव्यां कृतस्नानं तपोधनम् ।
आससाद धृष्टबुद्धिः शोकभारेण पीडितः ॥३०॥

तद्वस्त्रबिन्दुस्पर्शेन गतपापो हताशुभः ।
कौण्डिन्यस्याग्रतः स्थित्वा प्रत्युवाच कृताञ्जलिः ॥३१॥

धृष्टबुद्धिरुवाच ।

भो भो महाद्विजश्रेष्ठ दयांकृत्वा ममोपरि । येन पुण्यप्रभावेण मुक्तिर्भवति तद्वद ॥३२॥

कौण्डिन्य उवाच ।

शृणुष्वैकमनाभूत्वा येन पापक्षयस्तव । वैशाखस्य सितेपक्षे मोहिनी नाम विश्रुता ॥
एकादशीव्रतं तस्याःकुरु मद्वाक्यनोदितः । मेरुतुल्यानि पापानि क्षयं नयति देहिनाम्
बहुजन्मार्जितान्येषा मोहिनी समुपोषिता । इतिवाक्यं मुनेःश्रुत्वाधृष्टबुद्धिः प्रसन्नधीः
व्रतं चकार विधिवत्कौण्डिन्यस्योपदेशतः ।
कृते व्रते नृपश्रेष्ठ ! गतपापो बभूव सः ॥३६॥
दिव्यदेहस्ततो भूत्वा गरुडोपरि संस्थितः । जगाम वैष्णवं लोकं सर्वोपद्रववर्जितम्
इतीदृशं रामचन्द्र ! उत्तमं मोहिनीव्रतम् । नातःपरतरं किंचित्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥३८

श्रीकृष्ण उवाच ।

यज्ञादि तीर्थदानानि कलां नार्हन्तिषोडशीम् । पठनाच्छ्रवणाद्राजन्गोसहस्रफलं लभेत्

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादे वैशाखशुक्ले मोहिन्येकादशी नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ज्येष्ठकृष्णपक्षापरानामैकादशीमाहात्म्यवर्णनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

ज्येष्ठस्य कृष्णपक्षे तु किं नामैकादशी भवेत् । श्रोतुमिच्छामिमाहात्म्यंतद्वदस्व जनार्दन

श्रीकृष्ण उवाच ।

साधु पृष्टं त्वया राजल्लोकानां हितकाम्यया । बहुपुण्यप्रदा ह्येषा महापातकनाशिनी
अपरा नाम राजेन्द्र अपरा पुत्रदायिनी । लोके प्रसिद्धतां याति अपरां यस्तु सेवते ॥
ब्रह्महत्याभिभूतोऽपि गोत्रहाभ्रूणहा तथा । परापवादवादी च परस्त्रीरसिकोऽपि च
अपरासेवनाद्राजन्विपाप्मा भवति ध्रुवम् । कूटसाक्ष्यं कूटमानं तुलाकूटं करोति यः
कूटवेदं पठेद्यस्तु कूटशास्त्रं तथैव च । ज्योतिषां गणकःकूटःकूटायुर्वैदिकोभिषक् ॥ ६
कूटसाक्ष्यसमायुक्तो विज्ञेया नरकौकसः । अपरासेवनाद्राजन्पापैर्मुक्ता भवन्ति ते ॥

क्षत्त्रियः क्षात्त्रधर्मं यस्त्यक्त्वा युद्धात्पलायते ।
स याति नरकं घोरं स्वीयधर्मबहिष्कृतः ॥ ८ ॥
अपरा सेवनात्सोऽपि पापं त्यक्त्वा दिवं व्रजेत् ।
विद्यावान्यःस्वयं शिष्यो गुरुनिन्दां करोति च ॥९॥
स महापातकैर्युक्तो निरयं याति दारुणम् ।
अपरासेवनात्सोऽपि सद्गतिं प्राप्नुयान्नरः ॥ १० ॥

महिमानमपरायाःश्रृणु राजन्वदाम्यहम् । मकरस्थे रवौ माघे प्रयागे यत्फलं नृणाम्
काश्यां यत्प्राप्यते पुण्यमुपरागे निमज्जनात् । गयायां पिण्डदानेनपितृणां तृप्तिदो यथा

सिंहस्थिते देवगुरौ गौतम्यां स्नातको नरः ।
कन्यागते गुरौ राजन्कृष्णवेणीनिमज्जनात् ॥ १३ ॥

यत्फलं समवाप्नोति कुम्भकेदारदर्शनात् । बदर्याश्रमयात्रायां तत्तीर्थसेवनादपि ॥१४
यत्फलं समवाप्नोति कुरुक्षेत्रे रविग्रहे । गजाश्वहेमदानेन यज्ञं कृत्वा सदक्षिणम् ॥
तादृशं फलमाप्नोति अपराव्रतसेवनात् । प्रसद्यःसूतां गां दत्त्वा सुवर्णं वसुधां तथा
नरो यत्फलमाप्नोति अपराया व्रतेन तत् । पापद्रुमकुठारीयं पापेन्धनदवानलः ॥१७
पापान्धकारतरणिः पापसारङ्गकेसरी । बुद्बुदा इव तोयेषु पुत्तिका इव जन्तुषु ॥१८॥
जायन्ते मरणायैव एकादश्याव्रतं विना । अपरां समुपोष्यैव पूजयित्वा त्रिविक्रमम् ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ।

लोकानां च हितार्थाय तवाग्रे कथितं मया । पठनाच्छ्रवणाद्राजन्गोसहस्रफलं लभेत्

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-नारदसंवादे ज्येष्ठकृष्णापरैकादशीनामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ज्येष्ठशुक्लनिर्जलैकादशीमाहात्म्यवर्णनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

अपरायाश्च माहात्म्यं श्रुतं सर्वं जनार्दन । ज्येष्ठस्य शुक्लपक्षे तु स्याद्या तां वद मानद

श्रीकृष्ण उवाच ।

एतां वक्ष्यति धर्मात्मा व्यासः सत्यवतीसुतः । सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो वेदवेदाङ्गपारगः

युधिष्ठिर उवाच ।

श्रुता मे मानवा धर्मा वासिष्ठाश्च श्रुता मया । द्वैपायन यथावत्त्वं वैष्णवान्वक्तुमर्हसि

श्रीवेदव्यास उवाच ।

श्रुतास्तु मानवा धर्मा वैदिकाश्च श्रुतास्त्वया । कलौ युगे नशक्यन्ते ते वै कर्तुं नराधिप

सुखोपायमल्पधनमल्पक्लेशं महाफलम् ।

पुराणानां च सर्वेषां सारभूतं महामते ! ॥ ५ ॥

एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि । द्वादश्यां तु शुचिर्भूत्वा पुष्पैः संपूज्य केशवम्

अन्नं भुञ्जीत सत्कृत्य पश्चाद्विप्रपुरःसरम् । सूतकेऽपि न भोक्तव्यं नाशौचे च जनाधिप

यावज्जीवं व्रतमिदं कर्तव्यं पुरुषर्षभ । स्वर्गतिं प्राप्तुमिच्छद्भिरत्र नैवास्ति संशयः ॥

अपि पापा दुराचाराः पापिष्ठा धर्मवर्जिताः ।

एकादश्यां न भुञ्जाना न ते यान्ति यमान्तिकम् ॥ ६ ॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा कम्पितोऽश्वत्थपत्रवत् । भीमसेनो महाबाहुर्नत्वोवाच गुरुम्प्रति ॥

भीमसेन उवाच।

पितामह महाबुद्धे शृणु मे परमं वचः। युधिष्ठिरश्च कुन्ती च तथा द्रुपदनन्दिनी ॥१२॥

अर्जुनो नकुलश्चैव सहदेवस्तथैव च। एकादश्यां न भुञ्जन्ति कदाचिदपि सुव्रताः ॥

ते मां ब्रुवन्ति वै नित्यं मा भुङ्क्ष्व त्वं वृकोदर!।

अहं तानब्रवं तात बुभुक्षा दुःसहा मम ॥ १३ ॥

दानं दास्यामि विधिवत्पूजयिष्यामि केशवम्।

भीमसेनवचः श्रुत्वा व्यासो वचनमब्रवीत् ॥ १४ ॥

व्यास उवाच।

यदि स्वर्गमभीष्टं तेन नरकं दुष्टमेव च। एकादश्यां न भोक्तव्यं पक्षयोरुभयोरपि ॥१५

भीमसेन उवाच।

पितामह! महाबुद्धे! कथयामि तवाग्रतः। एकभक्ते न शक्नोमि उपवासे कुतः प्रभो ॥

वृको हि नाम यो वह्निःस सदा जठरे मम। अतिवेलं यदाऽश्नामि तदा समुपशाम्यति

नैकं शक्नोम्यहं कर्तुमुपवासं महामुने! ॥

येनैव प्राप्यतेस्वर्गस्तत्कर्त्तास्मि यथातथम्। तदेकंवदनिश्चित्ययेन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्

व्यास उवाच।

वृषस्थे मिथुनस्थे वा यदा चैकादशी भवेत्। ज्येष्ठमासे प्रयत्नेन सोपोष्योदकवर्जिता

गण्डूषाचमनं वारि वर्जयित्वोदकं बुधः। उपभुञ्जीत नैवेह व्रतभङ्गोऽन्यथा भवेत् ॥

उदयादुदयं यावद्वर्जयित्वोदकं नरः। श्रूयतां समवाप्नोति द्वादशद्वादशीफलम् ॥ २१॥

ततःप्रभातेविमले द्वादश्यांस्नानमाचरेत्। जलं सुवर्णं दत्त्वा च द्विजातिभ्यो यथाविधि

भुञ्जीत कृतकृत्यस्तु ब्राह्मणैः सहितो वशी। एवं कृते च यत्पुण्यंभीमसेन शृणुष्व तत्

संवत्सरे तु याश्चैव एकादश्यो भवन्ति हि।

तासां फलमवाप्नोति ह्यत्र मे नास्ति संशयः ॥ २४ ॥

इति मां केशवः प्राह शङ्खचक्रगदाधरः। सर्वान्परित्यज्य पुमान्मामेकं शरणं व्रजेत् ॥

एकादश्यां निराहारस्ततः पापात्प्रमुच्यते।

द्रव्यशुद्धिः कलौ नास्ति संस्कारः स्मार्त्त एव च ॥ २६ ॥
वैदिकस्तु कुलश्चापि प्राप्ते दुष्टे कलौ युगे। किन्तु ते बहुनोक्तेन वायुपुत्र! पुनः पुनः ॥
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि। एकादश्यां सिते पक्षे ज्येष्ठे मास्युदकं विना ॥
पुण्यं फलमवाप्नोति तच्छृणुष्व वृकोदर!।
संवत्सरे तु या प्रोक्ताः शुक्ला कृष्णा वृकोदर! ॥ २९ ॥
उपोसिता हि सर्वाः स्युरेकादश्यो न संशयः।
धनधान्यप्रदा पुण्या पुत्रारोग्यशुभप्रदा ॥ ३० ॥
उपोषिता नरव्याघ्र इति सत्यं ब्रवीमि ते। यमदूता महाकायाः करालाः कृष्णरूपिणः
दण्डपाशधरा रौद्रा नोपसर्पन्ति तं परम्। पीताम्बरधराः सौम्याश्चक्रहस्तामनोजवाः
अन्तकाले नयन्त्येते वैष्णवान्वैष्णवीं पुरीम्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन उपोष्योदकवर्जिता ॥ ३३ ॥
जलधेनुं तदा दत्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते। ततस्त्वमस्यां कौन्तेय सोपवासोऽर्चनं हरेः
कुरु सर्वप्रयत्नेन सर्वपापप्रशान्तये। स्वप्ने न मेऽपराधोऽस्ति दन्तरागतयाऽपिवा ॥
भोक्ष्येऽपरेऽह्निदेवेश ह्यशनं वासराद्धरेः। इत्युच्चार्य ततो मन्त्रमुपवासपरो भवेत् ॥३६॥
सर्वपापविनाशाय श्रद्धादमसमन्वितः। मेरुमन्दरमात्राघं स्त्रिया पुंसा च यत्कृतम् ॥
सर्वं तद्भस्मतां याति एकादश्याः प्रभावतः।
न शक्नुवन्ति ये दातुं जलधेनुं नराधिप! ॥ ३८ ॥
सकाञ्चनः प्रदातव्यो घटको वस्त्रसंयुतः।
तोयस्य नियमं योऽस्यां कुरुते वै स पुण्यभाक् ॥ ३९ ॥
फलं कोटिसुवर्णस्य यामे यामे श्रुतं फलम्। स्नानं दानं जपं होमं यदस्यां कुरुते नरः
तत्सर्वं चाक्षयं प्राप्तमेतत्कृष्णप्रभाषितम्। किं वापरेण धर्मेण निर्जलैकादशीं विना ॥
उपोष्य सम्यग्विधिवद्वैष्णवं पदमाप्नुयात्। सुवर्णमन्नं वासो वा यदस्यां सम्प्रदीयते
तदस्य कुरुशार्दूल! सर्वं चाप्यक्षयं भवेत्।
एकादश्यां दिने योऽन्नं भुङ्क्ते पापं भुनक्ति सः ॥ ४३ ॥

इह लोके स चाण्डालो मृतः प्राप्नोति दुर्गतिम् ।
ये च दास्यन्ति दानानि द्वादश्यां समुपोषिताः ॥ ४४ ॥
ज्येष्ठमासे सितेपक्षे प्राप्स्यन्ति परमं परम् । ब्रह्महा मद्यपः स्तेनो गुरुद्वेषी सदानृती ॥
मुच्यन्ते पातकैः सर्वैर्निर्जला यैरुपोषिता । विशेषं शृणु कौन्तेय निर्जलैकादशी दिने ॥
यत्कर्त्तव्यं नरैः स्त्रीभिर्दानं श्रद्धासमन्वितैः ।
जलशायी च संपूज्यो देया धेनुस्तथाम्मयी ॥ ४७ ॥
प्रत्यक्षा वा नृपश्रेष्ठ घृतधेनुरथापि वा । दक्षिणाभिः सुपुष्टाभिर्मिष्टान्नैश्च पृथग्विधैः
तोषणीयाः प्रयत्नेन द्विजा धर्मभृतांवर ! । तुष्टा भवन्ति वै विप्रास्तैस्तुष्टैर्मोक्षदो हरिः
आत्मद्रोहः कृतस्तैर्हि यैरेषा न ह्युपोषिता ।
पापात्मानो दुराचारा दुष्टास्ते नात्रसंशयः ॥ ५० ॥
कुलानां शतमागामि अतीतानां तथाशतम् । आत्मना सह तैर्नीतं वासुदेवस्य मन्दिरम्
शान्तैर्दान्तैर्दानपरैरर्चयद्भिस्तथाहरिम् । कुर्वद्भिर्जागरं रात्रौ यैरेषा समुपोषिता ॥५२॥
अन्नं वस्त्रं तथा गावो जलं शय्यासनं शुभम् ।
कमण्डलुस्तथा छत्रं दातव्यं निर्जलादिने ॥ ५३ ॥
उपानहौ यो ददाति पात्रभूते द्विजोत्तमे । ससौवर्णेन यानेन स्वर्गलोके महीयते ॥५४॥
यश्चेमां शृणुयाद्भक्त्या यश्चापि परिकीर्तयेत् ।
तावुभावाप्नुतः स्वर्गं नात्र कार्या विचारणा ॥ ५५ ॥
यत्फलं सन्निहत्यायां राहुग्रस्ते दिवाकरे । कृत्वा श्राद्धं लभेन्मर्त्यस्तदस्या श्रवणादपि
नियमश्च प्रकर्त्तव्यो दन्तधावनपूर्वकम् । एकादश्यां निराहारो वर्जयिष्यामि वै जलम्
केशवप्रीणनार्थाय अन्यदाचमनादृते । द्वादश्यां देवदेवेशः पूजनीयस्त्रिविक्रमः ॥ ५८॥
गन्धैर्धूपैस्तथा पुष्पैर्वासोभिः प्रियदर्शनैः । पूजयित्वा विधानेन मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥
देवदेव ! हृषीकेश ! संसारार्णवतारक ! । उदकुम्भप्रदानेन नय मां परमां गतिम् ॥६०
ज्येष्ठे मासि तु वै भीम ! या शुक्लैकादशी शुभा ।
निर्जला समुपोष्यात्र जलकुम्भान्सशर्करान् ॥ ६१ ॥

प्रदाय विप्रमुखेभ्यो मोदते विष्णुसन्निधौ ।
ततः कुम्भाः प्रदातव्या ब्राह्मणानां च भक्तितः ॥ ६२ ॥
भोजयित्वा ततो विप्रान्स्वयं भुञ्जीत तत्परः ।
एवं यः कुरुते पूर्णां द्वादशीं पापनाशिनीम् ॥ ६३ ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः पदं गच्छत्यनामयम् । ततः प्रभृति भीमेन कृता ह्येकादशी शुभा ॥
पाण्डवद्वादशी नाम्ना लोके ख्याता बभूव ह ॥ ६४ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-नारदसंवादे ज्येष्ठशुक्लनिर्जलैकादशीमाहात्म्यं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

आषाढकृष्णपक्षयोगिन्येकादशीमाहात्म्यवर्णनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

आषाढकृष्णपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् । कथयस्व प्रसादेन वासुदेव ! ममाग्रतः ॥१

श्रीकृष्ण उवाच ।

व्रतानामुत्तमं राजन्कथयामि तवाग्रतः । सर्वपापक्षयकरं सर्वमुक्तिप्रदायकम् ॥ २ ॥
आषाढस्यासिते पक्षे योगिनी नाम नामतः । एकादशी नृपश्रेष्ठ महापातकनाशिनी ॥
संसारार्णवमग्नानां पोतभूता सनातनी । जगत्त्रये सारभूता योगिनी व्रतकारिणाम्
कथयामि तवाग्रेऽहं कथां पौराणिकीं शुभाम् ।
अलकायां राजराजः शिवभक्तिपरायणः ॥ ५ ॥
तस्यासीत्पुष्पबटुको हेममालीति नामतः । तस्य पत्नी सुरूपा च विशालाक्षीतिनामतः
स तस्यां चासक्तमनाः कामपाशवशंगतः । मानसात्पुष्पनिचयमानीय स्वगृहे स्थितः
पत्नी प्रेमरसासक्तो न कुबेरालयं गतः । कुबेरो देवसदने करोति शिवपूजनम् ॥ ८ ॥

मध्याह्नसमये राजन्पुष्पागमसमीक्षकः । हेममाली स्वभवने रमते कान्तया सह ॥ ९ ॥

यक्षराट् प्रत्युवाचाथ कालातिक्रमकोपितः ।

कस्मान्नायाति भोयक्षा ! हेममाली दुरात्मवान् ।

निश्चयः क्रियतामस्य इत्युवाच पुनः पुनः ॥ १० ॥

यक्षा ऊचुः ।

वनिताकामुको गेहे रमते स्वेच्छया नृप । तेषां वाक्यं समाकर्ण्य कुबेरः कोपपूरितः ॥

आह्वयामास तं तूर्णं वटुकं हेममालिनम् ।

ज्ञात्वा कालात्ययं सोऽपि भयव्याकुललोचनः ॥ १२ ॥

अस्नात एव आगत्य कुबेरस्याग्रतः स्थितः । तं दृष्ट्वा धनदः क्रुद्धः क्रोधसंरक्तलोचनः

प्रत्युवाच रुषाविष्टः कोपप्रस्फुरिताधरः ॥ १३ ॥

धनद उवाच ।

आः पाप दुष्टदुर्वृत्त कृतवान्देवहेलनम् । अष्टादशकुष्ठचितो वियुक्तः कान्तया तया ॥

अस्मात्स्थानादपध्वस्तो गच्छस्व प्रमथाधम ! ।

इत्युक्ते वचने तस्य तस्मात्स्थानात्पपात सः ॥ १५ ॥

महादुःखाभिभूतश्च कुष्ठैः पीडितविग्रहः । न सुखं दिवसे तस्य न निद्रां लभते निशि

छायायां पीडिततनुर्निदाघेऽत्यन्तपीडितः । शिवपूजाप्रभावेण स्मृतिस्तस्य न लुप्यते

पातकेनाभिभूतोऽपि पूर्वं कर्मस्मरत्यसौ । भ्रममाणस्ततो गच्छन्हिमाद्रिं पर्वतोत्तमम्

तत्रापश्यन्मुनिवरं मार्कण्डेयं तपोनिधिम् ।

यस्यायुर्विद्यते राजन्ब्रह्मणो वयसा समम् ॥ १६ ॥

ववन्दे चरणौ तस्य दूरतः पापकर्मकृत् । मार्कण्डेयो मुनिवरो दृष्ट्वा तं कम्पितं तथा

परोपकरणार्थाय समाहूयेदमब्रवीत् ॥ २१ ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

कस्मात्कुष्ठाभिभूतस्त्वं कुतो निन्द्यतरो ह्यसि ।

इत्युक्तः स प्रत्युवाच मार्कण्डेयं महामुनिम् ॥२२॥

हेममाल्युवाच ।

राजराजस्यानुचरो हेममालीति नामतः । मानसात्पद्मनिचयमानीय प्रत्यहं मुने ! ॥२३
शिवपूजनवेलायां कुवेराय समर्पये । एकस्मिन्दिवसे चैव कालश्चाविदितो मया ॥२४॥
पत्नी सौख्यप्रसक्तेन शोकव्याकुलचेतसा । ततः क्रुद्धेन शप्तोऽस्मि राजराजेन वै मुने
कुष्ठाभिभूतः संजातो वियुक्तः कान्तया तया ।
अधुना तव सान्निध्यं प्राप्तोऽस्मि शुभकर्मणा ॥ २६ ॥
सतांस्वभावतश्चित्तं परोपकरणेक्षमम् । इति ज्ञात्वा मुनिश्रेष्ठ मां प्रशाधि कृतागसम्

मार्कण्डेय उवाच ।

त्वया सत्यमिह प्रोक्तं नासत्यं भाषितं यतः । अतो व्रतोपदेशं ते कथयामि शुभप्रदम्
आषाढ़े कृष्णपक्षे तु योगिनीव्रतमाचर । अस्यव्रतस्य पुण्येन कुष्ठं यास्यति वैध्रुवम्
इति वाक्यमृषेः श्रुत्वा दण्डवत्पतितो भुवि । उत्थापितः स मुनिना बभूवातीवहर्षितः
मार्कण्डेयोपदेशेन व्रतं तेन कृतं यथा। अष्टादशैव कुष्ठानि गतानि तस्य सर्वशः ॥३१॥
मुनेर्वाचा ततः सम्यग्व्रते चोर्णेऽभत्सुखी । ईदृग्विधं नृपश्रेष्ठ कथितं योगिनीव्रतम् ॥
अष्टाशीति सहस्राणि द्विजान्भोजयते तु यः । तत्समं फलमाप्नोति योगिनीव्रतकृन्नरः
महापापप्रशमनं महापुण्यफलप्रदम् । पठनाच्छ्रवणान्मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३४॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादे आषाढ़कृष्णयोगिन्येकादशीमाहात्म्यं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

आषाढ़शुक्लपक्षशयन्येकादशीमाहात्म्यवर्णनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

आषाढस्य सितेपक्षे का चैवैकादशी भवेत् । किंनामकोविधिस्तस्याएतद्विस्तरतोवद

श्रीकृष्ण उवाच ।

कथयामि महापुण्यां स्वर्गमोक्षप्रदायिनीम् । शयनीं नाम नामेति सर्वपापहरां पराम् ॥
यस्याः श्रवणमात्रेण वाजपेयफलं लभेत् । सत्यं सत्यं मया प्रोक्तं नातःपरतरं नृणाम् ॥

पापिनां पापनाशाय सृष्टा धात्रा महोत्तमा ।
अतः परा न राजेन्द्र ! वर्त्तते मोक्षदायिनी ॥ ४ ॥

एतस्मात्कारणाद्राजञ्छ्रूयतां गतिरुत्तमा । भवेन्नराणां श्रोतॄणांकथायाः श्रवणादपि
ते सदा वैष्णवा राजन्ममभक्तिपरायणाः । आषाढे वामनश्चैव पूज्यते परमेश्वरः ॥६॥
वामनः पूजितो येन कमलैः कमलेक्षणः । आषाढस्य सितेपक्षे शयन्याश्च दिने तथा ॥
येनार्चितं जगत्सर्वं त्रयो देवाः सनातनाः । कृता चैकादशी येन हरिवासरमुत्तमम् ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

संशयोऽस्ति महान्मेऽत्र श्रूयतां पुरुषोत्तम । कथं सुप्तोऽसि देवेश कथं च बलिमाश्रितः
कथं च भूमौ संवेशः किं कुर्वन्ति जनाःपरे । एतद्वद महाप्राज्ञ संशयोऽस्ति महान्मम ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

श्रूयतां राजशार्दूल कथा पापहरा परा । यस्याःश्रवणमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत् ॥
बलिनामा पूर्वमासीद्दैत्यस्त्रेतायुगे नृप । पूजयंश्चैव मां नित्यं मद्भक्तो मत्परायणः ॥
यज्ञैस्तु विधिवद्दैत्यो यजते मां सनातनम् । भक्त्या च परया राजन्यज्ञकृत्व्रतकृत्तथा ॥
परं विचार्य बहुधा मघोना चैव सूक्तिभिः । गुरुणा दैवतैः सार्धं बहुधापूजितोऽप्यहम्
ततो वामनरूपेण अवतारे च पञ्चमे । अत्युग्ररूपेण तदा सर्वब्रह्माण्डरूपिणा ॥ १५ ॥

वाक्छलेन जिता दैत्याः सत्यमाश्रित्य संस्थितः ।
शुक्रस्तं वारयामास यन्नारायण इत्ययम् ॥१६॥

याचिता वसुधा राजन्सार्धत्रयपदी मया । संकल्पोदकमात्रेतु करे तेनैव चार्पिते ॥
रूपमीदृग्विधं राजंस्तदा शृणु मया कृतम् । भूलोके चरणौ न्यस्य भुवर्लोके तु जानुनी
स्वर्लोके च कटिं न्यस्य महर्लोके तथोदरम् । जनलोके चहृदयं तपोलोके तु कण्ठकम्
सत्यलोके मुखं स्थाप्य मस्तकं च तदूर्ध्वकम् । चन्द्रसूर्यग्रहाश्चैव नक्षत्राणि तथैव च

देवाः सेन्द्राश्च नागाश्च यक्षगन्धर्व किन्नराः ।
स्तुवन्तो वेदसंभूतैः सूक्तैश्च विविधैस्तथा ॥ २१ ॥

करे गृहित्वा च वलिं त्रिपदैः पूरितामही । अर्धं च तस्य पृष्ठे च पदंन्यस्तं मया तदा
गतो रसातलं राजन्दानवो मम पूजकः । क्षिप्तोऽधो दानवश्चैव किमकुर्वं ततः परम् ॥
विनयेनानतोऽसौ वै सुप्रसन्नो जनार्दनः । आषाढशुक्लपक्षे तु शयनी हरिवासरः ॥
तस्यामेका च मूर्तिर्मे बलिमाश्रित्य तिष्ठति । द्वितीया शेषपृष्ठे वै क्षीरसागरमध्यतः
स्वपित्येव महाराज यावदागामि कार्तिकीम् । तावद्भवेत्सुधर्मात्मासर्वधर्मोत्तमोत्तमः
व्रतं च कुरुते मर्त्यः सयाति परमांगतिम् । एतस्मात्कारणाद्राजन्कर्त्तव्या च प्रयत्नतः
नातःपरतरा काचित्पवित्रा पापनाशिनी । यस्यां स्वपिति देवेशः शङ्खचक्रगदाधरः ॥
तस्यां च पूजयेद्देवं शङ्खचक्रगदाधरम् । रात्रौ जागरणं कृत्वा भक्त्याचैव विशेषतः ॥

नास्याःपुण्यस्य सङ्ख्यानं कर्तुं शक्तश्चतुर्मुखः ।
एवं यःकुरुते राजन्नैकादश्या व्रतोत्तमम् ॥ ३० ॥

सर्वपापहरंचैव भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । स च लोके मम सदा श्वपचोऽपि प्रियङ्करः ॥
दीपदानेन पालाशपत्रे भुक्त्याव्रतेन च । चातुर्मास्यं नयन्तीह ते नरा मम वल्लभाः ॥३२
चातुर्मास्ये हरौ सुप्ते भूमिशायी भवेन्नरः । श्रावणे वर्जयेच्छाकं दधि भाद्रपदे तथा

दुग्धमाश्वयुजि त्याज्यं कार्त्तिके द्विदलं त्यजेत् ।
अथवा ब्रह्मचर्यस्थःस याति परमांगतिम् ॥ ३४ ॥

एकादश्याव्रतेनैव पुमान्पापैर्विमुच्यते । कर्तव्या सर्वदा राजन्विस्मर्तव्या न कर्हिचित्

शयनी बोधनी मध्ये या कृष्णैकादशी भवेत् ।
सैवोपोष्या गृहस्थस्य नान्याकृष्णा कदाचन ॥ ३६ ॥

श्रृणुयाच्चैव यो राजन्कथां पापहरां पराम् । अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादे देवशयन्येकादशीमाहात्म्यं नाम चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

———

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रावणकृष्णपक्षकामिकैकादशीमाहात्म्यवर्णनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

श्रावणस्यासितेपक्षे किं नामैकादशी भवेत् । तन्नः कथय गोविन्द वासुदेव नमोऽस्तु ते

श्रीकृष्ण उवाच ।

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि आख्यानं पापनाशनम् । यत्प्रोक्तं ब्रह्मणा पूर्वं पृच्छते नारदायवै

नारद उवाच ।

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि त्वत्तोऽहंकमलासन । श्रावणस्यासितेपक्षे किं नामैकादशीभवेत्

को देवःको विधिस्तस्याःकिं पुण्यं कथय प्रभो ।

इति तस्य वचःश्रुत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणु नारद ते वच्मि लोकानां हितकाम्यया ।

श्रावणैकादशी कृष्णा कामिका नाम नामतः ॥ ५ ॥

अस्याःश्रवणमात्रेण वाजपेयफलं लभेत् । अस्यां यजति देवेशं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥

श्रीधराख्यं हरिं विष्णुं माधवं मधुसूदनम् । पूजयेद्ध्यायते यो वै तस्य पुण्यफलं शृणु

न गङ्गायां न काश्यां च नैमिषे न च पुष्करे ।

तत्फलं समवाप्नोति यत्फलं कृष्णपूजनात् ॥ ८ ॥

गोदावर्यां गुरौ सिंहे व्यतीपाते च दण्डके ।

यत्फलं समवाप्नोति तत्फलं कृष्णपूजनात् ॥ ९ ॥

ससागरवनोपेतां यो ददाति वसुन्धराम् । कामिकाव्रतकारी च ह्युभौ समफलौस्मृतौ

प्रसूयमानां यो धेनुं दद्यात्सोपस्करां नरः । तत्फलं समवाप्नोति कामिकाव्रतकारकः

श्रावणे श्रीधरं देवं पूजयेद्यो नरोत्तमः । तेनैव पूजिता देवा गन्धर्वोरगपन्नगाः ॥१२॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कामिकादिवसे हरिः । पूजनीयो यथाशक्ति मानुषैःपापभिरुभिः ॥
ये संसारार्णवेमग्नाःपापपङ्कसमाकुले । तेषामुद्धरणार्थाय कमिकाव्रतमुत्तमम् ॥ १४ ॥
नातःपरतरा काचित्पवित्रा पापहारिणी । एवं नारद जानीहि स्वयमाहपरो हरिः ॥
अध्यात्मविद्या निरतैर्यत्फलं प्राप्यते नरैः । ततो बहुतरंविद्धि कामिकाव्रतसेविनाम्

रात्रौ जागरणं कृत्वा कामिकाव्रतकृन्नरः ।
न पश्यति यमं रौद्रं नैव गच्छति दुर्गतिम् ॥ १७ ॥
न पश्यति कुयोनिं च कामिकाव्रतसेवनात् ।
कामिकाया व्रतेचीर्णे कैवल्यं योगिनो गताः ॥ १८ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्तव्या नियतात्मभिः । तुलसीप्रभवैःपत्रैर्यो नरःपूजयेद्धरिम् ॥१६
न लिप्यते स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा । सुवर्णभारमेकं तु रजतं च चतुर्गुणम् ॥२०
तत्फलं समवाप्नोति तुलसीदल पूजनात् । रत्नमौक्तिकवैडूर्य प्रवालादिभिरर्चितः ॥२१
न तुष्यति तथा विष्णुस्तुलसीदलतो यथा । तुलसीमञ्जरीभिश्च पूजितो येन केशवः ॥

आजन्म पातकं तस्य निश्चयं याति संक्षयम् ॥ २२ ॥
या दृष्टा निखिलाघसङ्घशमनी स्पृष्टा वपुःपावनी
रोगाणामभिवन्दिता निरसिनी सिक्तान्तकत्रासिनी ।
प्रत्यासत्तिविधायिनी भगवतःकृष्णस्य संरोपिता
न्यस्ता तच्चरणे विमुक्तिफलदा तस्यै तुलस्यै नमः ॥२३॥
दीपं ददाति यो मर्त्यो दिवारात्रं हरेर्दिने ।
तस्य पुण्यस्य सङ्ख्यातुं चित्रगुप्तो न वेत्त्यलम् ॥ २४ ॥

कृष्णाग्रेदीपको यस्य ज्वलत्येकादशीदिने । पितरस्तस्य तृप्यन्ति अमृतेनदिविस्थिताः
घृतेन दीपं प्रज्वाल्य तिलतैलेन वा पुनः । प्रयाति सूर्यलोकं च दीपकोटि शतार्चितः ॥
अयं तवाग्रे कथितःकामिका महिमा मया । अतो नरैःप्रकर्त्तव्या सर्वपातकहारिणी ॥
ब्रह्महत्यापहरणी भ्रूणहत्याविनाशिनी । वैष्णवस्थानदात्री च महापुण्यफलप्रदा ॥२८

श्रुत्वा माहात्म्यमेतस्या नरः श्रद्धासमन्वितः ।

विष्णुलोकमवाप्नोति सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २६ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-नारदसंवादे श्रावणकृष्णैकादशीमाहात्म्यं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रावणशुक्लपुत्रदैकादशीमाहात्म्यवर्णनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

श्रावणस्य सितेपक्षे किं नामैकादशी भवेत् । कथयस्व प्रसादेन ममाग्रे मधुसूदन ॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

शृणुष्वावहितो राजन्कथां पापहरां पराम् । यस्याः श्रवणमात्रेण वाजपेयफलं भवेत्

द्वापरस्य युगस्यादौ पुरा माहिष्मती पुरे ।
राजा महीजिदाख्यातो राज्यं पालयति स्वकम् ॥ ३ ॥

पुत्रहीनस्य तस्यैव न तद्राज्यं सुखप्रदम् । अपुत्रस्य सुखं नास्ति इह लोके परत्र च ॥४

चिन्तमानस्य तस्यैवं कालो बहुतरो गतः ।
न प्राप्तश्च सुतो राज्ञा सर्वसौख्यप्रदो नृणाम् ॥ ५ ॥

दृष्ट्वात्मानं प्रवयसं राजाचिन्तापरोऽभवत् । सदोगतःप्रजामध्य इदं वचनमब्रवीत्

इह जन्मनि भोलोका न मया पातकं कृतम् ।
अन्यायोपार्जितं वित्तं क्षिप्तं कोशे मया न हि ॥ ७ ॥

ब्रह्मस्वं देवद्रविणं न गृहीतं मया क्वचित् । न्यासापहारो न कृतः परस्य बहु पापदः ॥

पुत्रवत्पालितो लोको धर्मेण विजिता मही । दुष्टेषु पातितो दण्डो बन्धुपुत्रोपमेष्वपि

शिष्टास्तु पूजिता नित्यं न द्वेष्याश्च मया जनाः ।
इत्येवं ब्रुवतो मार्गं धर्मयुक्तं द्विजोत्तमाः! ॥ १० ॥

कस्मान्मम गृहे पुत्रो न जातस्तद्विमृश्यताम् ।
इति वाक्यं द्विजाः श्रुत्वा सप्रजाः स पुरोहिताः ॥ ११ ॥
मन्त्रयित्वा नृपहितं जग्मुस्ते गहनं वनम् । इतस्ततश्च पश्यन्त आश्रमानृषिसेवितान्
नृपतेर्हितमिच्छन्तो ददृशुर्मुनिसत्तमम् । तप्यमानं तपो घोरं निरालम्बं निरामयम् ॥१३
निराहारं जितात्मानं जितक्रोधं सनातनम् ।
लोमशं धर्मतत्त्वज्ञं सर्वशास्त्रविशारदम् ॥ १४ ॥
दीर्घायुषं महात्मानं सकेशं ब्रह्मसंमितम् । कल्पे कल्पे गते तस्य एकं लोमविशीर्यते
अतो लोमश नामायं त्रिकालज्ञो महामुनिः ।
तं दृष्ट्वा हर्षिताः सर्वे आजग्मुस्तस्य सन्निधिम् ॥ १६ ॥
यथान्यायं यथार्हं ते नमश्चक्रुर्यथोदितम् । विनयावनताः सर्वे ऊचुस्ते च परस्परम् ॥१७
अस्मद्भाग्यवशादेव प्राप्तोऽयं मुनिसत्तमः । तांस्तथा सप्रजान्वीक्ष्य उवाच ऋषिसत्तमः

लोमश उवाच ।

किमर्थमिह संप्राप्ताः कथयध्वं सकारणम् । दर्शनाद्धृष्टमनसः स्तुवन्तश्चैव मां किमु
असंशयं करिष्यामि भवतां यद्धितं भवेत् । परोपकृतये जन्म मादृशानां न संशयः ॥

जना ऊचुः ।

श्रूयतामभिधास्यामो वयं स्वागमकारणम् । संशयच्छेदनार्थाय तव सान्निध्यमागताः
पद्मयोनेः परतरस्त्वत्तः श्रेष्ठोनविद्यते । अतः कार्यवशात्प्राप्ता समीपं भवतो वयम् ॥
महीजिन्नाम राजाऽसौपुत्रहीनोऽस्ति सांप्रतम् । वयं तस्य प्रजा ब्रह्मन्पुत्रवत्तेन पालिताः
तं पुत्ररहितं दृष्ट्वा तस्य दुःखेन दुःखिताः ।
तपः कर्तुमिहायाता मतिं कृत्वा तु नैष्ठिकीम् ॥ २४ ॥
तस्य भाग्येन दृष्टोऽसि ह्यस्माभिस्त्वं द्विजोत्तम ! ।
महतां दर्शनेनैव कार्यसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥ २५ ॥
उपदेशं वद मुने राज्ञः पुत्रो यथा भवेत् । इति तेषां वचः श्रुत्वा मुहूर्तं ध्यानमास्थितः
प्रत्युवाच मुनिर्ज्ञात्वा तस्य जन्म पुरातनम् ॥ २६ ॥

लोमश उवाच ।

पुरा जन्मनि वैश्योऽयंधनहीनो नृशोषकृत् । वाणिज्यकर्मनिरतो ग्रामाद्ग्रामान्तरंभ्रमन्
ज्येष्ठे मासि सितेपक्षे दशमी दिवसे तथा । मध्यगे द्युमणौप्राप्ते ग्रामसीम्नितृषाकुलः
रम्यं जलाशयं दृष्ट्वा जलपाने मनो दधे । सद्यस्ततः सवत्सा च धेनुस्तत्र समागता
तृष्णातुरा निदाघार्ता तस्यामम्बु पपौ तु सा ।
पीवन्तीं वारयित्वा तामसौ तोयं पपौ स्वयम् ॥ ३० ॥
कर्मणा तेन पापेन पुत्रहीनो नृपोऽभवत् ।
कस्यापि जन्मनः पुण्यात्प्राप्तं राज्यमकण्टकम् ॥ ३१ ॥

लोका ऊचुः ।

पुण्यात्पापं क्षयं याति पुराणे श्रूयते मुने । पुण्योपदेशं कथय येन पापक्षयो भवेत् ॥
यथा भवत्प्रसादेन पुत्रो भवति भूपतेः ॥ ३२ ॥

लोमश उवाच ।

श्रावणे शुक्लपक्षे तु पुत्रदा नाम विश्रुता । एकादशी वाञ्छितदा कुरुध्वं तद्व्रतं जनाः
इति श्रुत्वा नमस्कृत्य मुनिमेत्यपुरंव्रतम् । यथाविधि यथान्यायं कृतं तैर्जागरान्वितम्
तस्य पुण्यं सुविमलं दत्तं नृपतयेजनैः । दत्ते पुण्येऽथ सा राज्ञी गर्भमाधत्त शोभनम् ॥
प्राप्ते प्रसवकाले सा सुषुवे पुत्रमूर्जितम् । श्रावणस्य सिते पक्षे कर्कटस्थेदिवाकरे ॥
द्वादश्यां वासुदेवाय पवित्रारोपणं स्मृतम् ।
हेमरौप्यताम्रक्षौमैः सूत्रैः कौशेयपद्मजैः ॥ ३७ ॥
कुशैः काशैश्च कार्पासैर्ब्राह्मण्याकर्तितैः शुभैः ।
स्नात्वा त्रिगुणितं सूत्रं त्रिगुणीकृत्य शोधयेत् ॥ ३८ ॥
गोदोहान्तरिते काले पूर्वेद्युरधिवासनम् । ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य गुरुपादौ प्रणम्य च ॥
गीतमङ्गलनिर्घोषैः कुर्याज्जागरणं ततः । ब्राह्मणाः क्षत्त्रियावैश्या भिल्लाः शूद्रावस्तथैव
स्वधर्मावस्थिताः सर्वे भक्त्या कुर्युः पवित्रकम् ।
ततः पवित्रं गुरवे दद्याद्वै विधिपूर्वकम् ॥ ४१ ॥

ब्राह्मणान्वैष्णवांश्चैव ग धगुप्पादिनार्चयेत् ।
अतोदेवेति मन्त्रेण द्विजो विष्णौ निवेदयेत् ॥ ४२ ॥
शूद्रस्तु मूलमन्त्रेण यथा विष्णौ तथा शिवे । वर्षे वर्षे प्रकर्त्तव्यं पवित्रारोपणं नरैः ॥
भुक्तिं मुक्तिं च वाञ्छद्भिःसंसारे शोकसागरे । न करोति विधानेन पवित्रारोपणं तु यः
तस्य सांवत्सरी पूजा निष्फला वैष्णवस्य तु ।
श्रुत्वा माहात्म्यमेतस्या नरःपापात्प्रमुच्यते । इह पुत्रसुखं प्राप्य परत्र स्वर्गतिं लभेत्
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारद-संवादे श्रावणशुक्लपवित्रारोपणीपुत्रदैकादशी नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

————

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भाद्रकृष्णपक्षाजैकादशीमाहात्म्यवर्णनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

भाद्रस्य कृष्णपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् । एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कथयस्व जनार्दन

श्रीकृष्ण उवाच ।

शृणुष्वैकमना राजन्कथयिष्यामि विस्तरात् ।
अजेति नामतः प्रोक्ता सर्वपापप्रणाशिनी ॥ २ ॥
पूजयित्वा हृषीकेशं व्रतमस्यां करोति यः । पापानि तस्य नश्यन्ति व्रतस्य श्रवणादपि
नातः परतरा राजँल्लोकद्वयहितायवै । सत्यमुक्तं मया ह्येतन्नासत्यं मम भाषितम् ॥४॥
हरिश्चन्द्र इति ख्यातो बभूव नृपतिः पुरा चक्रवर्ती सत्यसन्धः समस्तायाभुवः पतिः
कस्यापि कर्मणः प्राप्तौ राज्यभ्रष्टो बभूव सः ।
विक्रीतौ वनितापुत्रौ स चकारात्मविक्रयम् ॥ ६ ॥
पुल्कसस्य च दासत्वं गतो राजा स पुण्यकृत् ।

सत्यमालम्ब्य राजेन्द्र ! मृतचैलापहारकः ॥७॥

सोऽभवन्नृपतिश्रेष्ठो न सत्याच्चलितस्तथा । एवं च तस्या नृपतेर्बहवो वत्सरागताः

ततश्चिन्तापरो राजा स बभूवातिदुःखितः ।

किं करोमि क्व गच्छामि निष्कृतिर्मे कथं भवेत् ॥६॥

इति चिन्तयतस्तस्य मग्नस्यवृजिनार्णवे । आजगाम मुनिः कश्चिज्ज्ञात्वा राजानमातुरम्

परोपकरणार्थाय निर्मिता ब्रह्मणा द्विजाः । स तं दृष्ट्वा द्विजवरं ननाम नृपसत्तमः ॥

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा गौतमस्याग्रतः स्थितः ।

कथयामास वृत्तान्तमात्मनो दुःखसंयुतम् ॥ १२ ॥

श्रुत्वा नृपतिवाक्यानि गौतमो विस्मयान्वितः । उपदेशं नृपतये व्रतस्यास्य ददौ मुनिः

मासि भाद्रपदे राजन्कृष्णपक्षेऽति शोभना । एकादशीसमायाताअजा नामेति पुण्यदा

अस्याः कुरु व्रतं राजन्पापस्यान्तो भविष्यति ।

तव भाग्यवशादेषा सप्तमेऽह्नि समागता ॥ १५ ॥

उपवासपरो भूत्वा रात्रौ जागरणं कुरु । एवमस्या व्रते चीर्णे तव पापक्षयो ध्रुवम् ॥

तव पुण्यप्रभावेण चागतोऽहं नृपोत्तम । इत्येवं कथयित्वा च मुनिरन्तरधीयत ॥१७॥

मुनिवाक्यं नृपः श्रुत्वा चकार व्रतमुत्तमम् ।

कृते तस्मिन्व्रते राज्ञा पापस्यान्तोऽभवत्क्षणात् ॥ १८ ॥

श्रूयतां राजशार्दूल प्रभावोऽस्य व्रतस्य च । यद्दुःखंबहुभिर्वर्षैर्भोक्तव्यं तत्क्षयोभवेत्

निस्तीर्णदुःखोराजासीद्व्रतस्यास्य प्रभावतः । पत्न्यासहसमायोगं पुत्रजीवनमाप सः

दिवि दुन्दुभयो नेदुःपुष्पवर्षमभूद्दिवः । एकादश्याः प्रभावेण प्राप्य राज्यमकण्टकम् ॥

स्वर्गं लेभे हरिश्चन्द्रः सपौरः सपरिच्छदः । ईदृग्विधं व्रतं राजन्येकुर्वन्ति च मानवाः

सर्वपापविनिर्मुक्तास्त्रिदिवं यान्ति ते नृप । पठनाच्छ्रवणाद्वापि अश्वमेधफलं लभेत्

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादे भाद्रपदकृष्णाजैकादशीमाहात्म्यं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भाद्रशुक्लपद्मैकादशीमाहात्म्यवर्णनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

नभस्यस्य सिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत् । कोदेवःकोविधिस्तस्यएतदाख्याहि केशव

श्रीकृष्ण उवाच ।

कथयामि महीपाल कथामाश्चर्यकारिणीम् । कथयामास यां ब्रह्मा नारदाय महात्मने

नारद उवाच ।

कथयस्व प्रसादेन चतुर्मुख ! नमोऽस्तु ते ।

नभस्य शुक्लपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् । एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विष्णोराराधनाय वै

ब्रह्मोवाच ।

वैष्णवोऽसि मुनिश्रेष्ठ साधुपृष्टं किलत्वया । नातः परतरा लोके पवित्रा हरिवासरात्

पद्मा नामेति विख्याता नभस्यैकादशी सिता ।

हृषीकेशः पूज्यतेऽस्यां कर्त्तव्यं व्रतमुत्तमम् ॥ ५ ॥

कथयामि तवाग्रेऽहं कथांपौराणिकीं शुभाम् । यस्याः श्रवणमात्रेणमहापापं प्रणश्यति

मान्धाता नाम राजर्षिर्विवस्वद्वंशसंभवः । बभूव चक्रवर्तीं स सत्यसन्धः प्रतापवान् ॥

धर्मतः पालयामास प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ।

न तस्य राज्ये दुर्भिक्षं नाधयो व्याधयस्तथा ॥ ८ ॥

निरातङ्काः प्रजास्तस्य धनधान्यसमेधिताः ।

न्यायेनोपार्जितं वित्तं तस्य कोशे महीपतेः ॥ ६ ॥

स्वस्वधर्मे प्रवर्त्तन्ते सर्वे वर्णाश्रमास्तथा । कामधेनुसमा भूमिस्तस्य राज्ये महीपतेः ॥

तस्यैवं कुर्वतो राज्यं बहुवर्षगणागताः । अथैकस्मिश्च संप्राप्ते विपाकः कर्मणः खलु

वर्षत्रयं तद्विषये न ववर्ष बलाहकः । तेन भग्नाः प्रजास्तस्य बभूवुः क्षुधयार्दिताः ॥१२॥

स्वाहास्वधावषट्कारवेदाध्ययनवर्जिताः ।
बभूव विषयस्तस्याभाग्येन दैवपीडितः । अथ प्रजाः समागम्य राजानमिदमब्रुवन् ॥

प्रजा ऊचुः ।

श्रोतव्यं नृपशार्दूल प्रजानां वचनं त्वया । आपो नारा इति प्रोक्ताः पुराणेषुमनीषिभिः
अयनं ता भगवतस्तस्मान्नारायणः स्मृतः । पर्जन्यरूपो भगवान्विष्णुःसर्वगतः स्थितः
स एवं कुरुते वृष्टिं वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ।
तदभावे नृपश्रेष्ठ क्षयं गच्छन्ति वै प्रजाः । तथा कुरु नृपश्रेष्ठ योगः क्षेमो यथा भवेत्

राजोवाच ।

सत्यमुक्तं भवद्भिश्च नमिथ्याऽभिहितंक्वचित् । अन्नं ब्रह्म यतः प्रोक्तमन्ने सर्वं प्रतिष्ठितम्
अन्नाद्भवन्ति भूतानि जगदन्नेन वर्तते । इत्येवं श्रूयते लोके पुराणे बहुविस्तरे ॥ १८ ॥
नृपाणामपचारेण प्रजानां पीडनं भवेत् । नाहं पश्याम्यात्मकृतमेवं बुद्ध्या विचारयन्
तथाऽपि प्रयतिष्येऽहं प्रजानां हितकाम्यया । इति कृत्वा मतिं राजा परिमेयपरिच्छदः
नमस्कृत्य विधातारं जगाम गहनं वनम् ।
चचार मुनिमुख्यैश्चाप्याश्रमांस्तापसैः श्रितान् ॥ २१ ॥
ददर्शाथ ब्रह्मसुतमृषिमाङ्गिरसं नृपः । तेजसा द्योतितदिशं द्वितीयमिव पद्मजम् ॥२२॥
तं दृष्ट्वा हर्षितो राजा अवतीर्य स्ववाहनात् । नमश्चक्रेऽस्य चरणौ कृताञ्जलिपुटो वशी
मुनिस्तमभिनन्द्याथस्वस्तिवाचनपूर्वकम् । पप्रच्छ कुशलं राज्ये सप्तस्वङ्गेषु भूपतेः ॥
निवेदयित्वा कुशलं पप्रच्छानामयं नृप । दत्तासनो गृहीतार्घ्य उपविष्टोऽस्य संनिधौ
प्रत्युवाच मुनिं राजा पृष्टो ह्यागमकारणम् ॥ २६ ॥

राजोवाच ।

भगवन्धर्मविधिना ममपालयतो महीम् । अनावृष्टिश्च संवृत्ता नाहं वेद्म्यत्रकारणम् ॥
संशयच्छेदनायात्र आगतोऽहं तवान्तिके । योगक्षेमविधानेन प्रजानां कुरु निर्वृतिम् ॥

ऋषिरुवाच ।

एतत्कृतयुगं राजन्युगानामुत्तमं मतम् । अत्र ब्रह्मपरा लोका धर्मश्चात्र चतुष्पदः ॥२९॥

अस्मिन्युगे तपोयुक्ता ब्राह्मणा नेतरे जनाः। विषये तव राजेन्द्र वृषलोऽयं तपस्यति
एतस्मात्कारणाच्चैव नवर्षति बलाहकः। कुरु तस्य वधे यत्नं येन दोषः प्रशाम्यति

राजोवाच।

नाहमेनं हनिष्यामि तपस्यन्तमनागसम्। धर्मोपदेशं कथय उपसर्गविनाशनम्॥ ३२॥

ऋषिरुवाच।

यद्येवं तर्हि नृपते कुरुष्वैकादशीव्रतम्। नभस्यस्यसिते पक्षे पद्मानामेति विश्रुता॥३३
तस्या व्रतप्रभावेण सुवृष्टिर्भविता ध्रुवम्। सर्वसिद्धिप्रदाह्येषा सर्वोपद्रवनाशिनी॥
अस्या व्रतं कुरु नृप सप्रजः सपरिच्छदः। इतिवाक्यमृषेः श्रुत्वा राजा स्वगृहमागतः

भाद्रमासे सिते पक्षे पद्माव्रतमथाकरोत्।
प्रजाभिः सह सर्वाभिश्चातुर्वर्ण्यसमन्वितः॥ ३६॥

एवं व्रते कृते राजन्प्रववर्ष बलाहकः। जलेन प्लाविता भूमिरभवत्सस्यशालिनी॥३७॥
ऋषीश्वरप्रभावेण लोकाः सौख्यं प्रपेदिरे। एतस्मात्कारणादेवं कर्त्तव्यं व्रतमुत्तमम्॥
दध्योदनयुतं तस्यां जलपूर्णं घटं द्विजे। वस्त्रसंवेष्टितं दत्त्वा छत्रोपानहमेव च॥३९॥
नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञक। अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव॥४०
भुक्तिमुक्तिप्रदश्चैव लोकानां सुखदायकः। पठनाच्छ्रवणाद्राजन्सर्वपापैः प्रमुच्यते।४१

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे भाद्रपदशुक्लपद्मैकादशी माहात्म्यं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५८॥

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

आश्विनकृष्णपक्षेन्दिरैकादशीमाहात्म्यवर्णनम्।

युधिष्ठिर उवाच।

कथयस्व प्रसादेन ममाग्रे मधुसूदन। इषस्य कृष्णपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत्॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

आश्विने कृष्णपक्षे तु इन्दिरा नामनामतः । तस्या व्रतप्रभावेण महापापं प्रणश्यति ॥
अधोयोनिगतानां च पितॄणां गतिदायिनी । शृणुष्वावहितो राजन्कथां पापहरां पराम्
यस्याः श्रवणमात्रेण वाजपेयफलं लभेत् । पुरा कृतयुगे राजन्बभूव नृपनन्दनः ॥ ४ ॥

इन्द्रसेन इति ख्यातः पुरा माहिष्मती पतिः ।
स राजा पालयामास धर्मेण यशसान्वितः ॥ ५ ॥

पुत्रपौत्रसमायुक्तो धनधान्यसमन्वितः । माहिष्मत्यधिपो राजा विष्णुभक्तिपरायणः
जपन्गोविन्दनामानि मुक्तिदानि नराधिपः । कालं नयति विधिवदध्यात्मध्यानचिन्तकः
एकस्मिन्दिवसे राज्ञिसुखासीने सदोगते । अवतीर्यागमत्तत्र ह्यम्बरान्नारदो मुनिः ॥
तमागतमभिप्रेक्ष्य प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः । पूजयित्वाऽथ विधिना चासने संन्यवेशयत्

सुखोपविष्टः स मुनिः प्रत्युवाच नृपोत्तमम् ॥ ६ ॥

मुनिरुवाच ।

कुशलं तव राजेन्द्र सप्तस्वङ्गेषु वर्तते ।

धर्मे मतिर्वर्तते ते विष्णुभक्तिरतिस्तथा । इति वाक्यं तु देवर्षेः श्रुत्वा राजा तमब्रवीत्

राजोवाच ।

त्वत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ सर्वं च कुशलं मम ।

अद्य क्रतुक्रियाः सर्वाः सफलास्तव दर्शनात् । प्रसादं कुरु देवर्षे ब्रह्मागमनकारणम् ॥

नारद उवाच ।

श्रूयतां नृपशार्दूल मद्वचो विस्मयप्रदम् । ब्रह्मलोकादहं प्राप्तो यमलोकं नृपोत्तम ॥१२
शमनेनार्चितो भक्त्या उपविष्टो वरासने । धर्मशीलाः सत्यवन्तो भास्करिं समुपासते
बहुपुण्यप्रकर्त्ता च व्रतवैकल्यदोषतः । सभायां श्राद्धदेवस्य मयादृष्टः पिता तव ॥१४॥

कथितस्तेन संदेशस्तं निबोध जनेश्वर ! ।
इन्द्रसेन इति ख्यातो राजा माहिष्मतीपतिः ॥ १५ ॥

तस्याग्रे कथय ब्रह्मन्स्थितं मां यमसंनिधौ । केनापि चान्तरायेण पूर्वजन्मोद्भवेन च ॥

स्वर्गं प्रेषय मां पुत्र इन्दिरापुण्यदानतः । इत्युक्तोऽहं समायातः समीपं तव पार्थिव ॥
पितुः स्वर्गकृते राजन्निन्दिराव्रतमाचर । तेन व्रतप्रभावेण स्वर्गं यास्यति ते पिता ॥

राजोवाच ।

कथयस्व प्रसादेन भगवन्निन्दिराव्रतम् । विधिना केन कर्त्तव्यं कस्मिन्पक्षे तिथौ तथा

नारद उवाच ।

शृणु राजेन्द्र ! ते वच्मि व्रतस्यास्य विधिं शुभम् ।
आश्विनस्यासिते पक्षे दशमी दिवसे शुभे ॥ २० ॥

प्रातःस्नानं प्रकुर्वीत श्रद्धायुक्तेन चेतसा । ततो मध्याह्नसमये स्नानं कृत्वा समाहितः ॥
पितॄणां प्रीतये श्राद्धं कुर्याच्छ्रद्धासमन्वितः । एकभक्तं ततः कृत्वा रात्रौ भूमौ शयीत च
प्रभाते विमले जाते प्राप्ते चैकादशीदिने । मुखप्रक्षालनं कुर्याद्दन्तधावनवर्जितम् ॥
उपवासस्य नियमं गृह्णीयाद्भक्तिभावतः । अद्य स्थित्वा निराहारः सर्वभोगविवर्जितः

श्वो भोक्ष्ये पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ।
इत्येवं नियमं कृत्वा मध्याह्नसमये तथा ॥ २५ ॥
शालग्रामशिलाग्रे तु स्नानं कुर्याद्यथाविधि ।
पूजयित्वा हृषीकेशं धूपगन्धादिभिस्तथा ॥ २६ ॥

रात्रौ जागरणं कुर्यात्केशवस्य समीपतः । ततः प्रभातसमये प्राप्ते वै द्वादशीदिने ॥

अर्चयित्वा हरिं भक्त्या श्राद्धं कुर्याद्यथाविधि ।
पितॄणां प्रीतये श्राद्धं कुर्याच्छ्रद्धासमन्वितः ॥ २८ ॥

गोधूमचूर्णैर्यच्छ्राद्धं कृतं मेध्यं कृतं भवेत् । यवैर्व्रीहितिलैर्माषैर्गोधूमैश्चणकैस्तथा ॥२९

ब्राह्मणान्भोजयेद्राजन्दक्षिणाभिः प्रपूजितान् ।
बन्धुदौहित्रपुत्राद्यैः स्वयं भुञ्जीतवाग्यतः ॥ ३० ॥

अनेन विधिना राजन्कुरुव्रतमतन्द्रितः । विष्णुलोकं प्रयास्यन्ति पितरस्तव भूपते ॥
इत्युक्त्वा नृपतिं राजन्मुनिरन्तरधीयत । यथोक्तविधिना राजा चकार व्रतमुत्तमम् ॥
अन्तःपुरेण सहितः पुत्रभृत्यसमन्वितः । कृते व्रते तु कौन्तेय पुष्पवृष्टिरभूद्दिवः ॥३३॥

तत्पिता गरुडारूढो जगाम हरिमन्दिरम्।
इन्द्रसेनोऽपि राजर्षिः कृत्वा राज्यमकण्टकम् ॥ ३४ ॥
राज्ये निवेश्य तनयं जगाम त्रिदिवं स्वयम्। इन्दिराव्रतमाहात्म्यं तवाग्रे कथितं मया
पठनाच्छ्रवणाद्राजन्सर्वपापैः प्रमुच्यते।
भुक्त्वेह निखिलान्भोगान्विष्णुलोके वसेच्चिरम् ॥ ३६ ॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-नारदसंवाद आश्विनकृष्णेन्दिरैकादशीमाहात्म्यं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

षष्टितमोध्यायः

आश्विनशुक्लपक्षपाशाङ्कुशैकादशीमाहात्म्यवणनम्।

युधिष्ठिर उवाच।

कथयस्व प्रसादेन ममाग्रे मधुसूदन। इषस्य शुक्लपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ॥ १ ॥

श्रीकृष्ण उवाच।

शृणु राजेन्द्र! वक्ष्यामि माहात्म्यं पापनाशनम्।
शुक्लपक्षे चाश्विनस्य भवेदेकादशी तु या ॥ २ ॥
पाशाङ्कुशेति विख्याता सर्वपापहरा परा। पद्मनाभाभिधानं मां पूजयेत्तत्र मानवः ॥
सर्वाभीष्टफलप्राप्त्यै स्वर्गमोक्षप्रदं नृणाम्। तपस्तप्त्वा पुनस्तीव्रं चिरं सुनियतेन्द्रियः
यत्फलं समवाप्नोति तन्नत्वा गरुडध्वजम्।
कृत्वाऽपि बहुशः पापं नरो मोहसमन्वितः ॥ ५ ॥
न याति नरकं नत्वा सर्वपापहरं हरिम्। पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च
तानि सर्वाण्यवाप्नोति विष्णोर्नामानुकीर्त्तनात्।
देवं शार्ङ्गधरं विष्णुं ये प्रपन्ना जनार्दनम् ॥ ७ ॥

न तेषां यमलोकस्य यातना जायते क्वचित्। उपोष्यैकादशीमेकां प्रसङ्गेनापि मानवः
न याति यातनां यामीं पापं कृत्वाऽपि दारुणम्।
वैष्णवः पुरुषो भूत्वा शिवनिन्दां करोति यः ॥ ९ ॥
न विन्देद्वैष्णवं लोकं स याति नरकं ध्रुवम्।
शैवः पाशुपतोभूत्वा विष्णुनिन्दां करोति चेत् ॥ १० ॥
रौरवे पच्यते घोरे यावदिन्द्राश्चतुर्दश। नेदृशं पावनं किंचित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥
यादृशं पद्मनाभस्य व्रतं पातकनाशनम्। तावत्पापानि देहेऽस्मिंस्तिष्ठन्ति मनुजाधिप
यावन्नोपवसेज्जन्तुः पद्मनाभदिनं शुभम्। अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च ॥१३
एकादश्युपवासस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्। एकादशीसमं किंचिद्व्रतंलोके न विद्यते
व्याजेनापि कृता यैश्च न ते यान्ति हि भास्करिम्।
स्वर्गमोक्षप्रदा ह्येषा शरीरारोग्यदायिनी ॥ १५ ॥
कलत्रसुतदा ह्येषा धनमित्रप्रदायिनी। न गङ्गा न गया राजन्न च काशी च पुष्करम्
न चापि कौरवं क्षेत्रं पुण्यं भूप हरेर्दिनात्। रात्रौ जागरणं कृत्वा समुपोष्य हरेर्दिनम्
अनायासेन भूपाल प्राप्यते वैष्णवं पदम्। दशैव मातृके पक्षे राजेन्द्र ! दशपैतृके ॥
प्रियायादशपक्षे तु पुरुषानुद्धरेन्नरः। चतुर्भुजा दिव्यरूपा नागारिकृतकेतनाः ॥ १९ ॥
स्रग्विणः पीतवस्त्राश्च प्रयान्ति हरिमन्दिरम्।
बालत्वे यौवने चैव वृद्धत्वे च नृपोत्तम ! ॥ २० ॥
उपोष्यैकादशीं नूनं नैव प्राप्नोति दुर्गतिम्। पाशाङ्कुशामुपोष्यैव आश्विनस्य सितेनरः
सर्वपापविनिर्मुक्तो हरिलोकं स गच्छति। दत्त्वा हेमतिलान्भूमिं गामन्नमुदकं तथा ॥
उपानच्छत्र वस्त्रादीन्न पश्यति यमं नरः।
यस्य पुण्यविहीनानि दिनान्यायान्ति यान्ति च ॥ २३ ॥
स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति। अवन्ध्यं दिवसं कुर्याद्दरिद्रोऽपिनृपोत्तम ॥
सदाचरन्यथाशक्ति स्नानदानादिकाःक्रियाः। होमस्नानजपध्यानसत्रादि पुण्यकर्मणाम्
कर्त्तारो नैव पश्यन्ति घोरां तां यमयातनाम्।

दीर्घायुषो धनाढ्याश्च कुलीना रोगवर्जिताः ॥ २६ ॥
दृश्यन्ते मानवालोके पुण्यकर्त्तार ईदृशाः । किमत्र बहुनोक्तेन यान्त्यधर्मेण दुर्गतिम् ॥
आरोहन्ति दिवं धर्मैर्नात्र कार्याविचारणा । इतिते कथितं राजन्यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ
पाशाङ्कुशाया माहात्म्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ २८ ॥
इति श्रीपाद्मेमहापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारद-संवादे आश्विनशुक्लपाशाङ्कुशैकादशीमाहात्म्यं नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥

—————

एकषष्टितमोऽध्यायः

कार्तिककृष्णपक्षरमैकादशीमाहात्म्यवर्णनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।
कथयस्व प्रसादेन मयि स्नेहाज्जनार्दन । कार्तिकस्यासिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत्
श्रीकृष्ण उवाच ।
श्रूयतां राजशार्दूल कथयामि तवाग्रतः । कार्त्तिके कृष्णपक्षे तु रमा नामसुशोभना ॥
एकादशी समाख्याता महापापहरापरा । अस्याः प्रसङ्गतो राजन्माहात्म्यं प्रवदामि ते
मुचुकुन्द इति ख्यातो बभूव नृपतिः पुरा । देवेन्द्रेण समं तस्य मित्रत्वमभवन्नृप ॥४॥
यमेन वरुणेनैव कुवेरेणापि सर्वथा । विभीषणेन यस्यैव सखित्वमभवन्नृप ॥ ५ ॥
विष्णुभक्तः सत्यसन्धो बभूव नृपतिः परः ।
तस्यैवं शासतो राजन्राज्यं निहतकण्टकम् ॥ ६ ॥
बभूव दुहिता गेहे चन्द्रभागा सरिद्वरा । शोभनाय च सा दत्ता चन्द्रसेनसुताय वै ॥
स कदाचित्समायातः श्वशुरस्य गृहे नृप । एकादशी व्रतदिनं समायातं सुपुण्यदम् ॥
समागते व्रतदिने चन्द्रभागा त्वचिन्तयत् । किंभविष्यति देवेश मम भर्त्ताऽतिदुर्वलः ॥
क्षुधां न क्षमते सोढुं पिता चैवोग्रशासनः ।

पटहस्ताड्यते यस्य संप्राप्ते दशमीदिने ॥ १० ॥
न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं हरेर्दिने ।
श्रुत्वा पटहनिर्घोषं शोभनस्त्वब्रवीत्प्रियाम् ॥ ११ ॥

किं कर्त्तव्यं मया कान्ते ब्रूह्युपायं सुशोभने । कृतेन येन मे सम्यग्जीवितं न विनश्यति

चन्द्रभागोवाच ।

मत्पितुर्वेश्मनि प्रभो ! भोक्तव्यं नाद्य केनचित् । गजैरश्वैश्च कलभैरन्यैः पशुभिरेव च
तृणमन्नं तथा वारि न भोक्तव्यं हरेर्दिने । मानवैश्च कुतः कान्त ! भुज्यते हरिवासरे ॥
यदि त्वं भोक्ष्यसे कान्त ततो गर्हां प्रयास्यसि । एवं विचार्य मनसा सुदृढं मानसंकुरु

शोभन उवाच ।

सत्यमेतत्प्रिये वाक्यं करिष्येऽहमुपोषणम् । दैवेन विहितं यद्धि तत्तथैव भविष्यति
इति दृढां मतिं कृत्वा चकार नियमं व्रते । क्षुधया पीडिततनुः स बभूवातिदुःखितः ॥

इति चिन्तयतस्तस्य आदित्योऽस्तमगाद्गिरिम् ।
वैष्णवानां नराणां सा निशा हर्षविवर्धनी ॥ १८

हरिपूजारतानां च जागरासक्तचेतसाम् । बभूव नृपशार्दूल ! शोभनस्यातिदुःखदा ॥
रवेरुदयवेलायां शोभनः पञ्चतां गतः । दाहयामास राजा तं राजयोग्यैश्च दारुभिः ॥
चन्द्रभागा नात्मदेहं ददाह पतिना सह । कृत्वौर्ध्वदैहिकं तस्य तस्थौ जनकवेश्मनि ॥
शोभनश्च नृपश्रेष्ठ ! रमाव्रतप्रभावतः । प्राप्तो देवपुरं रम्यंमन्दराचलसानुनि ॥ २२ ॥
अनुत्तममनाधृष्यमसङ्ख्येयगुणान्वितम् । हेमस्तम्भमयैः सौधै रत्नवैडूर्यमण्डितैः ॥
स्फाटिकैर्विविधाकारैर्विचित्रैरुपशोभितैः । सिंहासनसमारूढः सुश्वेतच्छत्रचामरः ॥
किरीटकुण्डलयुतो हारकेयूरभूषितः । स्तूयमानश्च गन्धर्वैरप्सरोगणसेवितः ॥ २५ ॥

शोभनः शोभते यत्र राजराजोऽपरो यथा ।
सोमशर्मेति विख्यातो मुचुकुन्दपुरेऽभवत् ॥ २६ ॥

तीर्थयात्राप्रसङ्गेन भ्रमन्विप्रो ददर्श तम् । नृपजामातरं ज्ञात्वा तत्समीपं जगाम सः ॥

शोभनोऽपि तदा ज्ञात्वा सोमशर्माणमागतम् ।

आसनादुत्थितः शीघ्रं नमश्चक्रे द्विजोत्तमम् ॥ २८ ॥

चकार कुशलप्रश्नं श्वशुरस्य नृपस्य च । कान्तायाश्चन्द्रभागायास्तथैव नगरस्य च ॥

सोमशर्मोवाच ।

कुशलं वर्त्तते राजञ्छ्वशुरस्य गृहे तव । चन्द्रभागा कुशलिनी सर्वतः कुशलं पुरे ॥३०

स्ववृत्तं कथ्यतां राजन्नाश्चर्यं विद्यतेऽद्भुतम् ।

पुरं विचित्रं रुचिरं न दृष्टं केनचित्क्वचित् । एतदाख्व नृपते कुतः ! प्राप्तमिदं त्वया ॥

शोभन उवाच ।

कार्त्तिकस्यासिते पक्षे या नामैकादशी रमा । तामुपोष्य मया प्राप्तं द्विजेन्द्रपुरमध्रुवम्

ध्रुवं भवति येनैव तत्कुरुष्व द्विजोत्तम ! ॥ ३२ ॥

द्विज उवाच ।

कथमध्रुवमेतद्धि कथं हि भवति ध्रुवम् । तत्त्वं कथय राजेन्द्र ! तत्करिष्यामि नान्यथा

शोभन उवाच ।

मयैतद्विहितं विप्र श्रद्धाहीनं व्रतोत्तमम् । तेनाहमध्रुवं मन्ये ध्रुवं भवति तच्छृणु ॥३४

मुचुकुन्दस्य दुहिता चन्द्रभागा सुशोभना । तस्यै कथय वृत्तान्तं ध्रुवमेतद्भविष्यति ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

स श्रुत्वा वचनं तस्य मुचुकुन्दपुरं गतः । उवाच सर्वं वृत्तान्तं चन्द्रभागाग्रतो द्विजः ॥

सोमशर्मोवाच ।

प्रत्यक्षं दयितः कान्तस्तवदृष्टो मया शुभे ! । स्वर्गतुल्यमनाधृष्यं दृष्टं तस्य पुरं मया ॥

अध्रुवं तेन तत्प्रोक्तं ध्रुवं भवति तत्कुरु ॥ ३७ ॥

चन्द्रभागोवाच ।

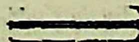
तत्र मां नय विप्रर्षे पतिदर्शनलालसाम् । आत्मनो व्रतपुण्येन करिष्यामि पुरं ध्रुवम् ॥

आवयोर्द्विज संयोगो यथा भवति तत्कुरु ।

प्राप्यते हि महत्पुण्यं कृत्वा योगं वियुक्तयोः ॥ ३९ ॥

इति श्रुत्वा सह तया सोमशर्मा जगाम ह । आश्रमं वामदेवस्य मन्दराचलसन्निधौ ॥

वामदेवोऽशृणोत्सर्वं वृत्तान्तं कथितं तयोः ।
अभ्यषिञ्चच्चन्द्रभागां वेदमन्त्रैरथोज्ज्वलाम् ॥ ४१ ॥
ऋषिमन्त्रप्रभावेण विष्णुवासरसेवनात् । दिव्यदेहा बभूवाऽसौ दिव्यां गतिमवापह ॥
पत्युःसमीपमगमत्प्रहर्षोत्फुल्ललोचना । जहर्ष शोभनोऽतीव दृष्ट्वा कान्तां समागताम्
समाहूय स्वके वामे पार्श्वे तांसंन्यवेशयत् । अथोवाचप्रियं हर्षाच्चन्द्रभागाप्रियं वचः
शृणु कान्त ! हितं वाक्यं यत्पुण्यं विद्यते मयि ।
अष्टवर्षाधिका जाता यदाऽहं पितृवेश्मनि ॥ ४५ ॥
ततः प्रभृति यच्चीर्णं मया चैकादशीव्रतम् । यथोक्तविधिसंयुक्तं श्रद्धायुक्तेन चेतसा
तेन पुण्यप्रभावेण भविष्यति पुरं ध्रुवम् । सर्वकामसमृद्धं च यावदाभूतसंप्लवम् ॥
एवं सा नृपशार्दूल रमते पतिना सह । दिव्यभोगा दिव्यरूपा दिव्याभरणभूषिता ॥
शोभनोऽपि तया सार्द्धं रमते दिव्यविग्रहः । रमाव्रतप्रभावेण मन्दराचलसानुनि ॥
चिन्तामणिसमा ह्येषा कामधेनुसमाथवा । रमाभिधाना नृपते तवाग्रे कथिता मया ॥
तस्या माहात्म्यमनघ ! श्रुतं सर्वं त्वया नृप ! ।
मया तवाग्रे कथितं माहात्म्यं पापनाशनम् ॥ ५१ ॥
एकादशीव्रतानां च पक्षयोरुभयोरपि । यथा कृष्णा तथा शुक्ला विभेदं नैव कारयेत्
सेवितैकादशी नृणां भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी । धेनुःश्वेतायथा कृष्णा उभयोः सदृशं पयः
तथैव तुल्यफलदं स्मृतमेकादशीद्वयम् ।
एकादशीव्रतानां यो माहात्म्यं शृणुते नरः । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादे कार्त्तिककृष्णरमैकादशी माहात्म्यं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥



द्विषष्टितमोऽध्यायः

कार्तिकशुक्लपक्षप्रबोधिन्येकादशीमाहात्म्यवर्णनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

श्रुतं रमाया महात्म्यं त्वत्तः कृष्ण यथातथम् । कार्त्तिकेशुक्लपक्षे या तां मे कथयमानद

श्रीकृष्ण उवाच

श्रृणुराजन्प्रवक्ष्यामि शुक्ले चोर्जदले तु या ।
सा यथा नारदायोक्ता ब्रह्मणा लोककारिणा ॥ २ ॥

नारद उवाच ।

प्रबोधिन्याश्च माहात्म्यं वद विस्तरतो मम । यस्यां जागर्ति गोविन्दो धर्मकर्मप्रवर्त्तकः

ब्रह्मोवाच ।

प्रबोधिन्याश्च माहात्म्यं पापघ्नं पुण्यवर्धनम् । मुक्तिप्रदं सुबुद्धीनां श्रृणुष्व मुनिसत्तम

तावद्गर्जन्ति तीर्थानि आसमुद्रसरांसि च ।
यावत्प्रबोधिनी विष्णोस्तिथिर्नायाति कार्तिके ॥ ५ ॥

तावद्गर्जन्ति विप्रेन्द्र गङ्गाभागीरथी क्षितौ । यावन्नायाति पापघ्नी कार्तिके हरिबोधिनी

अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च । एकेनैवोपवासेन प्रबोधिन्या लभेन्नरः ॥ ७ ॥

यद्दुर्लभं यदप्राप्यं त्रैलोक्यस्य न गोचरम् ।
तदप्यप्रार्थितं पुत्र ! ददाति हरिबोधिनी ॥ ८ ॥

ऐश्वर्यं संपदं प्रज्ञां राज्यं च सुखसंपदः । ददात्युपोषिता भक्त्या जनेभ्यो हरिबोधिनी

मेरुमन्दरमात्राणि पापान्युक्तानि यानि च । एकेनैवोपवासेन दहते पापनाशिनी ॥ १० ॥

पूर्वजन्मसहस्रेषु यत्पापं समुपार्जितम् । निशि जागरणं चास्यादहतेतूलराशिवत् ॥

उपवासंप्रबोधिन्यां यः करोतिस्वभावतः । विधिवन्मुनिशार्दूलयथोक्तंलभतेफलम् ॥

यथोक्तं कुरुतेयस्तु विधिवत्सुकृतं नरः । स्वल्पं मुनिवरश्रेष्ठ ! मेरुतुल्यं भवेत्फलम् ॥

विधिहीनं तु यः कुर्यात्सुकृतं मेरुमात्रकम्। अणुमात्रं तदाप्नोति फलं धर्मस्य नारद॥

ये ध्यायन्ति मनोवृत्त्या ये करिष्यन्ति बोधिनीम्।
वसन्ति पितरो हृष्टा विष्णुलोके च तस्य वै॥ १५॥

विमुक्ता नारकैर्दुःखैर्यान्ति विष्णोः परंपदम्। कृत्वा तु पातकंघोरं ब्रह्महत्यादिकंनरः

कृत्वातुजागरंविष्णोर्धौतपापोभवेन्नरः। दुष्प्राप्यं यत्फलं विप्र अश्वमेधादिकैर्मखैः॥

प्राप्यते तत्सुखेनैव प्रबोधिन्यास्तु जागरे।
आप्लुत्य सर्वतीर्थेषु प्रदाय काञ्चनं महीम्॥ १८॥

यत्फलं समवाप्नोति तत्कृत्वा जागरं हरेः। जातः स एवसुकृतीकुलंतेनैवपावितम्

कार्तिके मुनिशार्दूल कृतायेन प्रबोधिनी। यथाध्रुवंनृणांमृत्युर्धनंगात्रंतथाध्रुवम्॥२०

इति ज्ञात्वा मुनिश्रेष्ठ कर्त्तव्यं वैष्णवं दिनम्।
यानि कानि च तीर्थानि त्रैलोक्ये संभवन्ति च॥ २१॥
तानि तस्य गृहे सम्यग्यः करोति प्रबोधिनीम्।
किं तस्य बहुभिः पुण्यैः कृता येन प्रबोधिनी॥ २२॥
पुत्रपौत्रप्रदा ह्येषा कार्तिके हरिबोधिनी।
स ज्ञानी च स योगी च स तपस्वी जितेन्द्रियः॥ २३॥
भोगो मोक्षश्च तस्यास्ति य उपास्ते प्रबोधिनीम्।
विष्णोः प्रियतरा ह्येषा धर्मसारसहायिनी॥ २४॥

यः करोति नरो भक्त्या मुक्तिभाक्सभवेन्नरः। प्रबोधिनीमुपोषित्वा गर्भे न विशते नरः

सर्वधर्मान्परित्यज्य तस्मात्कुर्वीत नारद। कर्मणा मनसा वाचा पापंयत्समुपार्जितम्

तत्क्षालयति गोविन्दः प्रबोधिन्यां तु जागरे।
स्नानं दानं जपं पूजां समुद्दिश्य जनार्दनम्॥ २७॥

नरो यत्कुरुतेवत्सप्रबोधिन्यांतदक्षयम्। येऽर्चयन्ति नरास्तस्यांभक्त्या देवं च माधवम्

समुपोष्य प्रमुच्यन्ते पापैस्तैः शतजन्मजैः। महाव्रतमिदं पुत्र महापापौघनाशनम्॥

प्रबोधवासरं विष्णोर्विधिवत्समुपोषयेत्। व्रतेनानेन देवेशं परितोष्य जनार्दनम्॥

विराजयन्दिशः सर्वाः प्रयाति हरिमन्दिरम् । कर्त्तव्यैषा प्रयत्नेन नरैः कान्तिधनार्थिभिः
बाल्ये यत्संचितं पापं यौवने वार्द्धके तथा । शतजन्मकृतं पापं स्वल्पं वा यदि वा बहु
तत्क्षालयति गोविन्दश्चास्यामभ्यर्चितो नृणाम् ।
धनधान्यवहा पुण्या सर्वपापहरा परा ॥ ३३ ॥
तामुपोष्य हरेर्भक्त्या दुर्लभं न भवेत्क्वचित् । चन्द्रसूर्योपरागे च यत्फलं परिकीर्तितम्
तत्सहस्रगुणं प्रोक्तं प्रवोधिन्यां प्रजागरे ।
स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायोऽभ्यर्चनं हरेः ॥ ३५ ॥
तत्सर्वंकोटिगुणितं प्रवोधिन्यां कृतं तु यत् । जन्मप्रभृति यत्पुण्यं नरेणोपार्जितं भवेत्
वृथा भवति तत्सर्वमकृत्वा कार्तिके व्रतम् ।
अकृत्वा नियमं विष्णोः कार्तिकं यः क्षिपेन्नरः ॥ ३७ ॥
न जन्मार्जितपुण्यस्य फलं प्राप्नोति नारद । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन देवदेवं जनार्दनम् ॥
उपसेवेत विप्रेन्द्र सर्वकामफलप्रदम् । परान्नं वर्जयेद्यस्तु कार्तिके विष्णुतत्परः ॥३९॥
परान्नवर्जनाद्वत्स चान्द्रायणफलं लभेत् । नित्यं शास्त्रविनोदेन कार्त्तिकं यः क्षिपेन्नरः
स दहेत्सर्वपापानि यज्ञायुतफलं लभेत् । न तथा तुष्यते यज्ञैर्न दानै र्वा जपादिभिः ॥
यथाशास्त्रकथालापैः कार्त्तिके मधुसूदनः ।
ये कुर्वन्ति कथां विष्णोर्ये शृण्वन्ति शुभान्विताः ॥ ४२ ॥
श्लोकार्धं श्लोकपादं वा कार्त्तिके गोशतं फलम् ।
सर्वधर्मान्परित्यज्य कार्त्तिके केशवाग्रतः ॥ ४३ ॥
शास्त्रावधारणं कार्यं श्रोतव्यं च महामुने ! ।
श्रेयसा लोभवुद्ध्या च यः करोति हरेः कथाम् ॥ ४४ ॥
कार्त्तिके मुनिशार्दूल कुलानां तारयेच्छतम् । नियमेन नरो यस्तु शृणुते वैष्णवींकथाम्
कार्त्तिके तु विशेषेण गोसहस्रफलं लभेत् ।
प्रवोधवासरे विष्णोः शृणुते यो हरेः कथाम् ॥ ४६ ॥
सप्तद्वीपवतीदाने यत्फलं तल्लभेन्मुने ! ।

श्रुत्वा विष्णुकथां दिव्यां येऽर्चयन्ति कथाविदम् ॥ ४७ ॥
स्वशक्त्या मुनिशार्दूल तेषां लोकोऽक्षयः स्मृतः ।
गीतशास्त्रविनोदेन कार्त्तिकं यो नयेन्नरः ॥ ४८ ॥
न तस्य पुनरावृत्तिर्मया दृष्टा कलिप्रिय ! ।
गीतं नृत्यं च वाद्यं च भव्यां विष्णुकथां मुने ! ॥ ४९ ॥

यः करोति स पुण्यात्मा त्रैलोक्योपरि संस्थितः । बहुपुष्पैर्बहुफलैः कर्पूरागुरुकुङ्कुमैः
हरेः पूजा विधातव्या कार्त्तिके बोधवासरे । यस्मात्पुण्यमसङ्ख्यातं प्राप्यते मुनिसत्तम
फलैर्नानाविधैर्द्रव्यैः प्रबोधिन्यां तु जागरे । शङ्खे तोयं समादाय अर्घोदेयो जनार्दने ॥
यत्फलं सर्वतीर्थेषु सर्वदानेषु यत्फलम् । तत्फलं कोटिगुणितं दत्त्वाऽर्घं बोधवासरे ॥
गुरुपूजा ततः कार्या भोजनाच्छादनादिभिः । दक्षिणाभिश्च देवर्षे तुष्ट्यर्थं चक्रपाणिनः
भागवतं शृणुते यस्तु पुराणं च पठेन्नरः । प्रत्यक्षरं भवेत्तस्य कपिलादानजं फलम् ॥

कार्त्तिके मुनिशार्दूल स्वशक्त्या वैष्णवं व्रतम् ।
यः करोति यथोक्तं तु मुक्तिस्तस्य सुनिश्चला ॥ ५६ ॥

केतक्या एकपत्रेण पूजितो गरुडध्वजः । समाः सहस्रं सुप्रीतो भवति मधुसूदनः ॥
अगस्तिकुसुमैर्देवं पूजयेद्यो जनार्दनम् । दर्शनात्तस्य देवर्षे नरकाग्निः प्रणश्यति ॥५८॥
मुनिपुष्पार्चितो विष्णुः कार्त्तिके पुरुषोत्तमः । ददात्यभिमतान्कामाञ्छशिसूर्यग्रहे यथा
विहाय सर्वपुष्पाणि मुनिपुष्पेण केशवम् । कार्तिके योऽर्चयेद्भक्त्या वाजिमेधफलं लभेत्

तुलसीदलानि पुष्पाणि ये यच्छन्ति जनार्दने ।
कार्त्तिके सकलं पापं वत्सऽजन्मायुतं दहेत् ॥ ६१ ॥
दृष्टा स्पृष्टाथवा ध्याता कीर्तिता नामतः स्तुता ।
रोपिता सेचिता नित्यं पूजिता तुलसी शुभा ॥ ६२ ॥

नवधातुलसी भक्तिं ये कुर्वन्ति दिने दिने । युगकोटिसहस्राणि तन्वन्ति सुकृतं मुने ॥
यावच्छाखाप्रशाखाभिर्बीजपुष्पदलैर्मुने । रोपिता तुलसीपुम्भिर्वर्धते वसुधातले ॥६४॥
तेषां वंशे तु ये जाता ये भविष्यन्ति ये गताः । आकल्पवर्षसाहस्रं तेषां वासो हरेर्गृहे

यत्फलं सर्वपुष्पेषु सर्वपत्रेषु नारद । तुलसीदलेन चैकेन कार्त्तिके प्राप्यते तु तत् ॥
सम्प्राप्तं कार्त्तिकं दृष्ट्वा नियमेन जनार्दनः ।
पूजनीयो महाविष्णुः कोमलैस्तुलसीदलैः ॥ ६७ ॥
इष्ट्वा क्रतुशतैर्देवान्दत्त्वा दानान्यनेकशः । तुलसीदलैस्तु तत्पुण्यं कार्त्तिके केशवार्चने
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादे कार्त्तिकशुक्लैकादशीमाहात्म्यं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

पुरुषोत्तममासकृष्णपक्षकमलैकादशीमाहात्म्यवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच ।

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् । सर्वपापहरं विष्णोः फलदं व्रतिनां चयत्
पुरुषोत्तममासस्य कथां ब्रूहि जनार्दन । कोविधिः किं फलं तस्य को देवस्तत्र पूज्यते
अधिमासे च सम्प्राप्ते व्रतं ब्रूहि जनार्दन ।
कस्य दानस्य किं पुण्यं किं कर्त्तव्यं नृभिः प्रभो ! ॥ ३ ॥
कथं स्नानं च किं जाप्यं कथं पूजाविधिः स्मृतः ।
किंभोज्यमुत्तमं चान्नं मासेऽस्मिन्पुरुषोत्तमे ॥ ४ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

कथयिष्यामि राजेन्द्र ! भवतः स्नेहकारणात् ।
पुरुषोत्तममासस्य माहात्म्यं पापनाशनम् ॥ ५ ॥
अधिमासे तु संप्राप्ते भवेदेकादशी तु या ।
कमला नाम सा नाम्ना तिथीनामुत्तमा तिथिः ॥ ६ ॥
तस्या व्रतप्रभावेण कमलाभिमुखी भवेत् । ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय संस्मृत्य पुरुषोत्तमम्

स्नात्वा चैव विधानेन नियमं कारयेद्व्रती ।
गृहे त्वेकगुणं जाप्यं नद्यां तु द्विगुणं स्मृतम् ॥ ८ ॥
गवां गोष्ठे सहस्रोर्ध्वमग्न्यगारे शतान्वितम् । शिवक्षेत्रेषु तीर्थेषु देवतानां चसन्निधौ
लक्षं तुलस्याः सान्निध्ये ह्यनन्तं विष्णुसन्निधौ ।
अवन्त्यामभवत्कश्चिच्छिवशर्मा द्विजोत्तमः ॥ १० ॥
तस्यात्मजास्तु पञ्चासन्कनिष्ठो दोषवानभूत् ।
तदा पित्रा परित्यक्तस्त्यक्तः स्वजनबान्धवैः ॥ ११ ॥
कुकर्मणः प्रभावेण गतो दूरतरं वनम् । एकदा दैवयोगेन तीर्थराजं समागतः ॥१२॥
क्षुत्क्षामो दीनवदनस्त्रिवेण्यां स्नानमाचरत् ।
मुनीनामाश्रमांस्तत्र विचिन्वन्क्षुधयार्दितः ॥ १३ ॥
हरिमित्रमुनेस्तत्र ददर्शाश्रममुत्तमम् । पुरुषोत्तममासे वै जनानां च समागमे ॥ १४ ॥
तत्राश्रमे कथयतां कथां कल्मषनाशिनीम् । ब्राह्मणानां मुखात्तेन श्रद्धया कमलाश्रुता
एकादशी पुण्यतमा भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी । जयशर्मा विधानेन श्रुत्वेमां कमलातिथिम्
एकादशी पुण्यतमा भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ।
व्रतकृतं च तैः सार्द्धं स्थित्वा शून्यालये तदा ॥ १७ ॥
निशीथे समनुप्राप्ते लक्ष्मीस्तत्र समागता । वरं ददामि भोविप्र कमलायाःप्रभावतः

जयशर्मोवाच ।

का त्वं कस्यासि रम्भोरु प्रसन्नाच कथं मम । इन्द्राणी सुरनाथस्यभवानी शङ्करस्यवा
गन्धर्वी किन्नरी वाथ वधूर्वा चन्द्रसूर्ययोः ।
त्वत्सदृक्षा न दृष्टा च न श्रुता च शुभानने ! ॥ २० ॥

लक्ष्मीरुवाच ।

प्रसन्ना साम्प्रतं जाता वैकुण्ठादहमागता । प्रेरिता देवदेवेन कमलायाः प्रभावतः ॥२१
पुरुषोत्तममासस्य या पक्षे प्रथमे भवेत् । तस्या व्रतन्त्वया चीर्णं प्रयागे मुनिसंनिधौ
व्रतस्यास्य प्रभावेण वशगाऽहं न संशयः । तव वंशे भविष्यन्ति मानवा द्विजसत्तम ।

मत्प्रासादादवाप्स्यन्ति सत्यं ते व्याहृतं मया ॥ २३ ॥

ब्राह्मण उवाच ।

प्रसन्ना यदि मे पद्मे व्रतं विस्तरतो वद । यत्कथासु प्रवर्तन्ते साधवो ये जना द्विजाः

लक्ष्मीरुवाच ।

श्रोतॄणां परमं श्राव्यं पवित्राणामनुत्तमम् । दुःस्वप्ननाशनं पुण्यं श्रोतव्यं यत्नतस्ततः

उत्तमःश्रद्धयायुक्तःश्लोकं श्लोकार्धमेव वा । पठित्वा मुच्यतेसद्यो महापातककोटिभिः

मासानां परमो मासः पक्षिणां गरुडो यथा ।

नदीनां च यथा गङ्गा तिथीनां द्वादशीतिथिः ॥ २७ ॥

अद्यापि निर्जराःसर्वे भारते जन्मलिप्सवः । तमर्चयन्ति विविधा नारायणमनामयम् ॥

ये यजन्ति सदा भक्त्या देवं नारायणं प्रभुम् । तानर्चयन्ति सततं ब्रह्माद्या देवतागणाः

येऽपि नामपरा ये च हरिकीर्त्तनतत्पराः । हरिपूजापरा ये च ते कृतार्थाःकलौयुगे ॥

शुक्ले वा यदि वा कृष्णे भवेदेकादशी द्वयम् ।

गृहस्थानां भवेत्पूर्वा यतीनामुत्तरा स्मृता ॥ ३१ ॥

एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी । तत्र क्रतुशतंपुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणे ॥

एकादश्यां निराहारःस्थित्वाहमपरेऽहनि । भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत

अमुं मन्त्रं समुच्चार्य देवदेवस्य चक्रिणः । भक्तिभावेन तुष्टात्मा उपवासं समाचरेत्

कुर्याद्देवस्य पुरतो जागरं नियतो व्रती । गीतैर्वाद्यैश्च नृत्यैश्च पुराणपठनादिभिः ॥३५

ततः प्रातः समुत्थाय द्वादशी दिवसे व्रती ।

स्नात्वा विष्णुं समभ्यर्च्य विधिवत्प्रयतेन्द्रियः ॥ ३६ ॥

पञ्चामृतेन संस्नाप्य एकादश्यां जनार्दनम् । द्वादश्यां च पयःस्नानाद्धरेःसारूप्यमश्नुते

अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव । प्रसीद सुमुखो भूत्वा ज्ञानदृष्टिप्रदो भव ॥३८

एवं विज्ञाप्य देवेशं देवदेवं गदाधरम् । ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्यातेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम्

ततःस्वबन्धुभिःसार्धं नारायणपरायणः । कृत्वा पञ्चमहायज्ञान्स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥

एवं यःप्रयतःकुर्यात्पुण्यमेकादशी व्रतम् । स याति विष्णुभवनं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥

इत्युक्त्वा कमला तस्मै वरं दत्त्वा तिरोदधे ।
सोऽपि विप्रो धनी भूत्वा पितुर्गेहं समागतः ॥ ४२ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

एवं यः कुरुते राजन्कमलाव्रतमुत्तमम् । शृणुयाद्वासरे विष्णोःसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ४३
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-नारदसंवादे पुरुषोत्तममासस्य कृष्णाकमलैकादशीमाहात्म्यं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

पुरुषोत्तममासशुक्लपक्षकामदैकादशीमाहात्म्यवर्णनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

श्रुतानि बहुधर्माणि व्रतानि च जगत्प्रभो । एकादशी समं किंचिच्छ्रुतं नैव जनार्दन ॥
पुनस्त्वेकादशीं ब्रूहिपापघ्नीं पुण्यदायिनीम् । यां कृत्वामनुजोलोके प्राप्नुयात्परमंपदम्

श्रीकृष्ण उवाच ।

शुक्ले वा यदि वा कृष्णे यदा चैकादशी भवेत् ।
न त्याज्या जगतीपाल मोक्षसौख्यविवर्धनी ॥ ३ ॥
एकादशी कलौ राजन्भवबन्धविमोचिनी । कामदा सर्वकामानांपापानां पापहा भुवि
रविवारेऽथ माङ्गल्ये संक्रमे वा नृपोत्तम । एकादशी सदोपोष्या पुत्रपौत्रविवर्धनी ॥
एकादशी व्रतं क्वापि न त्याज्यं विष्णुवल्लभैः ।
आयुः कीर्तिप्रदं नित्यं सन्तानारोग्यवित्तदम् ॥ ६ ॥
मोक्षदं रूपदं राजन्नित्यमेकादशी व्रतम् । ये कुर्वन्ति महीपाल श्रद्धया परयायुताः ॥७
यथोक्तविधिना लोके ते नरा विष्णुरूपिणः ।
जीवन्मुक्तास्तु भूपाल दृश्यन्ते नात्र संशयः ॥ ८ ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

जीवन्मुक्ताःकथं कृष्ण विष्णुरूपाःकथं पुनः । पापरूपाश्च दृश्यन्ते परं कौतूहलं हि मे

श्रीकृष्ण उवाच ।

ये च राजन्कलौ भक्त्या निर्जलं व्रतमुत्तमम् । एकादश्याःप्रकुर्वन्ति विधिदृष्टेन कर्मणा
न कथं विष्णुरूपास्ते जीवन्मुक्ताःकथं न हि । सर्वपापहरं पुण्यं व्रतमेकादशी समम्
न किंचिद्विद्यते राजन्सर्वकामप्रदं नृणाम् । एकाशनं दशम्यां च नन्दायां निर्जलं व्रतम्

पारणं चैव भद्रायां कृत्वा विष्णुसमा नराः ।
श्रद्धावान्यस्तु कुरुते कामदाया व्रतं शुभम् ॥ १३ ॥

वाञ्छितं लभते सोऽपि इहलोके परत्र च । पवित्रा पावनी ह्येषा महापातकनाशिनी॥
भुक्तिमुक्तिप्रदा चैव कर्तॄणां नृपसत्तम । कामदायां विधानेन पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥१५
पुष्पधूपादिभिश्चैव नैवेद्यैर्विविधैस्तथा । कांस्यमांसमसूरांश्च चणकान्कोद्रवांस्तथा ॥
शाकं मधु परान्नं च पुनर्भोजनमैथुनम् । वैष्णवो व्रतकर्त्ता च दशम्यां दशवर्जयेत् ॥
द्यूतं क्रीडां तथा निद्रां ताम्बूलं दन्तधावनम् । परापवादं पैशुन्यंस्तेयं हिंसांतथारतिम्

क्रोधं च वितथं वाक्यमेकादश्यां विवर्जयेत् ।
कांस्यं मांसं मसूरांश्च तैलं वितथभाषणम् ॥ १६ ॥

व्यायामं च प्रवासं च पुनर्भोजनमैथुनम् । वृषपृष्ठं परान्नं च शाकं च द्वादशीदिने ॥२०
अनेन विधिना राजन्विहितायैश्च कामदा । रात्रौ जागरणं कृत्वा पूजितःपुरुषोत्तमः ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तास्तेयान्ति परमां गतिम् । पठनाच्छ्रवणाद्राजन्गोसहस्रफलं लभेत्

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादे पुरुषोत्तममासस्य शुक्लाकामदा नामैकादशीमाहात्म्यं नाम
चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

———

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

चातुर्मास्यव्रतविधिवर्णनम्

नारद उवाच ।

चातुर्मास्ये तु नियमा ये केचिद्भुवि विश्रुताः । तानहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व महेश्वर
चातुर्मास्ये हरौसुप्ते कर्तव्यं किं जनार्दने । षड्रसानां परित्यागे नखकेशविधारणे ॥
अन्यैश्च नियमैःस्वामिन्यत्फलं तद्वदाधुना ॥ २ ॥

सूत उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा त्वसौ देवःप्रहस्योत्फुल्ललोचनः । प्रोवाच तं द्विजवरं नारदं तपसांनिधिम्

महादेव उवाच ।

श्रृणु त्वमिह देवर्षे कथयामि सविस्तरम् । आषाढस्य सितेपक्षे एकादश्यामुपोषितः
चातुर्मास्यव्रतानीह गृह्णीयाद्भक्तिपूर्वकम् । भूमिशय्यासमारूढो योगनिद्रां गते हरौ ॥
नयेत चतुरोमासान्यावद्भवति कार्तिकी । प्रतिष्ठा न प्रवर्त्तन्ते तथा यज्ञादिकाः क्रियाः ॥
विवाहव्रतसम्बन्धा अन्यन्माङ्गल्यकर्म च ।
भूपयानं तथा यात्रा अन्याश्च विविधाः क्रियाः ॥ ७ ॥
प्रसुप्ते च जगन्नाथे त्वच्युते गरुडध्वजे । व्रतक्रियां चरेद्यस्तु तस्य व्रतफलं श्रृणु ॥
अश्वमेधसहस्रैस्तु यत्फलं प्राप्नुयान्नरः । चातुर्मास्य व्रतैश्चीर्णैस्तत्फलं समवाप्नुयात्
मिथुनस्थे सहस्रांशौ स्वापयेन्मधुसूदनम् । तुलाराशौ गतेसूर्ये पुनरुत्थापयेद्धरिम् ॥ १०
अधिमासे तु पतिते तदा चैष विधिक्रमः । स्थापयेत्प्रतिमां विष्णोःशङ्खचक्रगदाधराम्
पीताम्बरधरां सौम्यांपर्यङ्के स्थापयेच्छुचौ । श्वेतवस्त्रसमाच्छन्ने सोपधाने तु नारद ॥
इतिहासपुराणज्ञो विष्णुभक्तोऽथवा पुनः । स्नापयित्वा दधिक्षीरमधुलाजघृतैस्तथा ॥
समालभ्य शुभैर्गन्धैर्धूपैःपुष्पैर्मनोरमैः । पूजितां कुसुमैःशुभ्रैर्मन्त्रेणानेन वाडव ॥ १४ ॥
सुप्ते त्वयि जगन्नाथे जगत्सुप्तं भवेदिदम् ।

विबुद्धे त्वयि बुध्येत जगत्सर्वं चराचरम् ॥ १५ ॥
एवं तां प्रतिमां विष्णोः स्थापयित्वा तु नारद ।
तस्यैवाग्रे स्वयं वाचा गृह्णीयान्नियमं ततः ॥ १६ ॥
स्त्री वा नरो वा तद्भक्तो धर्माधर्मविभागतः ।
चतुरो वार्षिकान्मासान्देवस्योत्थापनावधि ॥ १७ ॥
गृह्णीयान्नियमानेतान्दन्तधावन पूर्वकम् । उपवासं ततःकृत्वा प्रभाते विमले सति ॥
नित्यं कर्म चरित्वा तु विष्णोरग्रे जितात्मवान् ।
तेषां फलानि वक्ष्यामि तत्कर्तॄणां पृथक्पृथक् ॥ १९ ॥
मधुरत्वं लभेद्विद्वान्पुरुषो गुडवर्जनात् । तथैव सन्तति दीर्घां तैलस्य वर्जनाद्यतः ॥२०
घृतस्य वर्जनाद्विप्र सुन्दराङ्ग प्रजायते । कटुतैलपरित्यागी शत्रुनाशमवाप्नुयात् ॥२१॥
सुगन्धतैलत्यागेन सौभाग्यमतुलं लभेत् । पुष्पभोगपरित्यागी स्वर्गे विद्याधरो भवेत् ॥
योगाभ्यासी नरो यस्तु स ब्रह्मपदमाप्नुयात् ।
कट्वम्लमधुरक्षारतीक्ष्णकाषायषड्रसान् ॥ २३ ॥
वर्जयेद्यस्तु वैरूप्यं दौर्गन्ध्यं नाप्नुयान्नरः । ताम्बूलवर्जनाद्भोगी रक्तकण्ठस्तु जायते ॥
घृतत्यागाच्च लावण्यं सदा स्निग्धतनुर्भवेत् । फलत्यागाच्च विप्रेन्द्र बहुपुत्रश्च जायते
पलाशपत्राशनकृद्रूपवान्भोगवान्भवेत् । दीप्तिमान्दीप्तिकरणः साक्षाद्द्रव्यपतिर्भवेत् ॥
दधिदुग्धपरित्यागी गोलोकं लभते नरः ।
मौनव्रती भवेद्यस्तु तस्याज्ञाऽस्खलिता भवेत् ॥ २७ ॥
इन्द्रासनमवाप्नोति स्थालीपाकस्य वर्जनात् । पञ्चमादिपरित्यागाद्धर्मस्थो धर्मनन्दनः
नमो नारायणायेति जप्त्वाशतगुणंफलम् । एक एव स वै स्वर्गे विद्याधरपतिर्भवेत् ॥
पुष्करः स्नानमात्रेण गङ्गायाःस्नानजं फलम् ।
भूमौ भुङ्क्ते सदा यस्तु स पृथिव्यधिपो भवेत् ॥ ३० ॥
विष्णोश्चैव गृहे कुर्यादुपलेपनमार्जनम् । कल्पस्थायी भवेद्विद्वन्वैकुण्ठे नात्र संशयः ॥
प्रदक्षिणं च यःकुर्याच्छतमष्टोत्तरं नरः । हंसयुक्तविमानेन दिव्येन सह गच्छति ॥३२॥

गीतवाद्यकरो विष्णोर्गान्धर्वं लोकमाप्नुयात् ।
पञ्चगव्याशनो विद्वंश्चान्द्रायणफलं लभेत् ॥ ३३ ॥
नित्यं शास्त्रविनोदेनलोकान्यस्तुप्रबोधयेत् । स व्यासरूपी विष्णवग्रेततोविष्णुपदंलभेत्
तुलसीदलपूजां तु कृत्वा विष्णुपुरं व्रजेत् ।
कृत्वा प्रोक्षणकं दिव्यं स्थानमप्सरसां लभेत् ॥ ३५ ॥
शीताम्बुना गृहे स्नानान्निर्मलं देहमाप्नुयात् ।
उष्णोदकं परित्यज्य स्नानं वै पौष्करं लभेत् ॥ ३६ ॥
पत्रेषु यो नरो भुङ्क्ते कुरुक्षेत्रफलं लभेत् ।
भुङ्क्ते शिलायां यो नित्यं तस्य पुण्यं प्रयागजम् ॥ ३७ ॥
दिनत्रयजलत्यागी न रोगैःपरिभूयते । ताम्रपात्रेषु भुञ्जानो नैमिषं फलमाप्नुयात् ॥३८
कांस्यपात्रं परित्यज्य शेषपात्रमुपाचरेत् । अलाभे सर्वपात्राणां मृण्मयं पात्रमुत्तमम्
स्वगृहीतैःकृतैर्वापि पात्रैःपालाशसंभवैः । यस्तु संवत्सरं पूर्णमग्निहोत्रं करोति वै ॥४०
पात्रैर्वा भोजनं विद्वान्सेवते तत्समं स्मृतम् । चान्द्रायणसमं प्रोक्तं ब्रह्मपात्रेषु भोजने ॥
एकैकं भोजनं विद्वन्ब्रह्मपत्रेषु भुञ्जतः । त्रिरात्रेणसमं प्रोक्तं महापातकनाशनम् ॥ ४२॥
एकादश्युपवासेन यत्पुण्यं परिकीर्तितम् । सर्वदानफलं चैव सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥४३
न चापि नरकं पश्येत्पद्मपत्रेषु भोजनात् ।
ब्राह्मणो याति वैकुण्ठेऽन्यो जनः स्वर्गमाप्नुयात् ॥४४॥
एष ब्रह्म महावृक्षःपापहा सर्वकामदः । मध्यमं वर्जितं पत्रं शूद्रजातेर्नृपोत्तम ॥ ४५ ॥
भुञ्जन्नरकमाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश । वर्जयेन्मध्यमं पत्रं शेषपत्रेषु भोजनम् ॥ ४६॥
मध्यपत्रे च यःशूद्रो भोजनं कुरुते द्विज । कपिलां ब्राह्मणे दत्त्वा शुद्धिर्भवति नान्यथा
कपिलां दोहयेद्यस्तु शूद्रो भुङ्क्ते निजेगृहे । दशवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥
कृमियोनिविनिर्मुक्तः पशुयोनिमवाप्नुयात् ।
कपिलां यो ह्यनड्वाहं शूद्रो भूत्वाऽत्र वाहयेत् ॥ ४६ ॥
यावन्ति तस्य रोमाणि तावद्वर्षाणि नारद । कुम्भीपाकेषु पच्येत स नरो नात्र संशयः

अजाचैव गृहे तस्य शूद्रस्य च विशेषतः । तस्या वै दुग्धपानेन शूद्रो यातीहरौरवम् ॥

ब्राह्मणैःसह व्यापारो यस्य शूद्रस्य दृश्यते ।
स विप्रो वेदबाह्यः स्याच्छूद्रः कौलिक उच्यते ॥ ५२ ॥

व्यापारे प्रेरितो विप्रःशूद्राज्ञां च करोति यः । यावत्पदानि चलते तावद्भवति नारकी
उदकार्थं तु यो विप्रः शूद्रेण प्रेषितो गृहे । तदुदकं मद्यतुल्यं पीत्वा वै नरकं व्रजेत् ॥
शूद्रेण सर्वदा नित्यं दानं देयं द्विजन्मने । तेषां चैव तु वै भक्तिःकर्त्तव्या च विशेषतः
इहलोके सुखंभुक्त्वा परलोकं च गच्छति । पाञ्चभौतिकमेतद्धि अनर्थकमुदाहृतम् ॥
अतोदेयं हि गुरवे यतोऽनन्तफलं लभेत्। अस्मिन्कलियुगे घोरे पापाचारे दुरात्मनः

निन्दां कुर्वन्ति विप्रेन्द्र जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
निन्दया लभते दुःखं यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ५८ ॥

नानाधर्माः प्रवर्त्तन्ते कलौचैव महामते । धर्मोऽयं दुर्लभो लोके धर्मकामार्थमोक्षदः ॥
भूमिशायी भवेद्यस्तु नरः कोऽपि महीतले । दशवर्षसहस्राणि न रोगैः परिपीड्यते ॥
बहुपुत्रो धनैर्युक्तो ह्यकुष्ठी जायते नरः । नक्तभोजी नरो यस्तु तीर्थयात्राफलं लभेत् ॥
अयाचितेन चाप्नोति वापीकूपक्रियाफलम् । वर्जयेद्यस्तु वै द्रोहं प्राणहिंसापराङ्मुखः
अहिंसा परमोधर्म इति वेदेषु गीयते। दानं दया दम इति सर्वत्र हि श्रुतं मया ॥६३॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्यं वै महतामपि । गुरवे ये प्रयच्छन्ति शरीरं पुत्रपौत्रकम् ॥

तत्र दानप्रभावेण विष्णोर्वल्लभतामियात् ।
शूद्रेण दीक्षितो यस्तु शूद्रः शूद्रेण दीक्षितः ॥ ६५ ॥

उभौ तौ पापिनौ प्रोक्तौ यावदाभूतसंप्लवम् । हिंसामति यदादत्ते शूद्रो वै पापसत्तमः
एकविंशतिकुलं तेन नरकंप्रति पात्यते । कलौ पाखण्डिनः शूद्रा दृश्यन्ते बहवोभुवि
तेषां संभाषणादेव नरको भवति द्विज ! । ब्रह्मज्ञानरता ये च गायत्रीजापिनो द्विज !
तेषां दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्या दिनेदिने । शङ्खचक्रधरा विप्रा विष्णुधर्मेषु संमताः ॥६८॥
वेदधर्मरता नित्यं पङ्क्तिपावनपावनाः । चातुर्मास्यमिदं कर्म कर्त्तव्यं तैः सदानरैः ॥
किमन्यद्बहुनोक्तेन भूयोभूयश्च वाडव । ते धन्याः पृथ्वी मध्ये नरा ये वैष्णवा भुवि ॥

तेषां कुलं धन्यतमं जातिर्धन्यतमा स्मृता । मधु भक्षयते यस्तु सुप्ते देवे जनार्दने ॥
महत्पापं भवेत्तस्य वर्जने यच्छृणुष्व तत् । सर्वयज्ञैश्च विविधैर्यत्फलं तदवाप्नुयात् ॥
दाडिमं मातुलिङ्गं च नालिकेरं च वर्जयेत् । देवो वैमानिकोभूत्वा ह्यन्तेविष्णुपदंव्रजेत्
धनवान्सुभगश्चैव कुले श्रीमति जायते । यः क्षिपेदेकभक्तेन नरोमासचतुष्टयम् ॥
यावन्ति च मुहूर्तानि उदितोदितभास्करे । तावद्वर्षसहस्राणि विष्णुलोके महीयते ॥
व्रीहींश्च यवगोधूमान्वर्जयेद्यस्तु मानवः । अश्वमेधादिके कृते विविधद्वै सदक्षिणे ॥
यत्फलं मुनिभिःप्रोक्तं तत्फलं लभते नरः । धनधान्यसमायुक्तो बहुपुत्रश्च जायते ॥
तुलसीतिलदर्भैश्च ये कुर्वन्ति च तर्पणम् । तत्फलं कोटिगुणितं चातुर्मास्ये विशेषतः॥

यदा सुप्ते हृषीकेशे कुर्याच्चैतत्त्रयान्वितम् ।
तेऽपि युगसहस्राणि मोदन्तेविष्णुसन्निधौ ॥ ८० ॥

पदं वा पदमर्धं वा ऋचांचार्धऋचां तथा । विष्णवग्रेये प्रगायन्तिमुक्तास्ते वै नसंशयः
मैथुनं वर्जयेद्यस्तु सुप्ते देवे जनार्दने । एकमन्वन्तरं सोऽपि विष्णुलोके महीयते ॥८२॥
दधि दुग्धं तथा तक्रं गुडं शाकं तथैवच । वर्जनादेव भो विप्र ! मुक्तिभागी न संशयः
स्नानमामलकेनैव ये कुर्वन्ति च मानवाः । दिने दिने महत्पुण्यं प्राप्नुवन्ति च ते मुने
धात्रीफलं पापहरं प्रवदन्ति मनीषिणः । त्रैलोक्यतारणार्थाय निर्मिता ब्रह्मणा पुरा ॥

सन्ध्या मौनं चरेद्यस्तु भुङ्क्ते मासचतुष्टयम् ।
मन्वन्तराणि चत्वारि वैकुण्ठे मोदते पुनः ॥ ८६ ॥

स्वयंपाकी नरो यस्तु भुङ्क्ते मासचतुष्टयम् । दशवर्षसहस्राणि इन्द्रलोके महीयते ॥
चतुरोवार्षिकान्मासान्मौनंचैव समाचरेत् । स च विष्णुपुरं गच्छेद्ब्राह्मं च तदनन्तरम्

मौनभोजी नरो यस्तु कदाचिन्नावसीदति ।
मौनेन भुञ्जमानास्तु राक्षसास्त्रिदिवं गताः ॥ ८९ ॥

कृमिकीटसमायुक्तं पक्वान्नमशुची भवेत् । गवां मांससमंज्ञेयमन्नं चापि द्विजोत्तम !॥
तदन्नमशुचि ज्ञेयं ग्रसते मानुषो यदि । एतद्वै भोजनं प्रोक्तं राक्षसानां प्रियं सदा ॥९१

तोषितो हि पुरा ब्रह्मा तेन दत्तं महात्मना ।

मौनेन भोजयित्वा तु स्वर्गं प्राप्ता न संशयः ॥ ९२ ॥
संजल्पन्भुङ्क्ते यस्तु तेनान्नमशुची भवेत् ।
पापं स केवलं भुङ्क्ते तस्मान्मौनं समाचरेत् ॥ ९३ ॥

उपवाससमं भोज्यं ज्ञेयं मौनेन नारद । पञ्चप्राणाहुतीर्यस्तु मौनभोजी नरोत्तमः ॥
पञ्चवै पातकान्यस्य नश्यन्ति नात्रसंशयः । न कुर्यात्संहितं वस्त्रं पितृकर्मणि वाडव !
अशुच्यङ्गे स्थितं चैव वस्त्रं तदशुची भवेत् । कटिपृष्ठस्थिते वस्त्रे पुरीषं कुरुते तु यः ॥
मूत्रं वा मैथुनं वापि तद्वस्त्रं परिवर्जयेत् । पितृकर्म विशेषेण वर्जनीयं च वाडव ॥
सर्वदा च मुने प्राज्ञैर्देवार्चा चक्रपाणिनः । कर्त्तव्या च विशेषेण शुचिभिर्विजितेन्द्रियैः
संप्रसुप्ते हृषीकेशे तृणशाककुसुम्भिकाः । संहितानि च वस्त्राणि वर्जितानि प्रयत्नतः
चातुर्मास्ये हरौ सुप्ते यस्तु एतानि वर्जयेत् । नरकं न तु संगच्छेद्यावदाभूतसंप्लवम् ॥
मद्यं मांसं न भक्षेत शाशकं सौकरं तथा । चातुर्मास्ये विशेषेण सुप्ते देवे जनार्दने ॥

सोऽपि देवत्वमाप्नोति अहिंसानिरतो नरः ।
मिथ्याक्रोधं तथा रौक्ष्यं तथा पर्वसु मैथुनम् ॥ १०२ ॥
वर्जितं येन विप्रेन्द्र ! सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।
ब्रह्मचर्ये प्रजावृद्धिरायुर्वृद्धिस्तथैव च ॥ १०३ ॥
पुष्पं पत्रं फलं शय्या अभ्यङ्गं च विलेपनम् ।
वृथाऽदुग्धानि मांसं च मद्यं च परिवर्जयेत् ॥ १०४ ॥

चातुर्मास्ये हरौ सुप्ते नियतं यद्विवर्जितम् । प्रथमं तत्तु दातव्यं ब्राह्मणाय न संशयः ॥
तद्धनं चाक्षयं विद्धन्प्रदत्तं यद्द्विजातये । कोटिकोटिगुणं विप्र ! लभते नात्र संशयः ॥
येन केनापि विप्रेन्द्र ! नियमेनार्चितोहरिः । ददाति विष्णुभवनं नात्रकार्याविचारणा ॥

चातुर्मास्ये हरौ सुप्ते नियमं यो न कारयेत् ।
सोऽपि नरकमाप्नोति तस्य जन्म वृथा गतम् ॥ १०८ ॥

यःपुमान्कारयेन्नित्यं द्विजोक्तं विधिमुत्तमम् । तथोक्तान्नियमांश्चैव स याति परमंपदम्
त्रिवर्गरहितं दानं दत्तं भवति निष्फलम् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन देवदेवं जनार्दनम् ॥ ११०

सोपवासैर्नियमैर्दानैर्यथाशक्त्या नरोत्तमः । अकृतस्नानदानं च ब्राह्मणानां च पूजनम् ॥

वृथा गतं तु तत्सर्वं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ११२ ॥

नारद उवाच ।

कीदृशं ब्रह्मचर्यं च वद विश्वेश्वर प्रभो ! । येन चीर्णेन गोविन्दः परितुष्टोभवेन्नृणाम्

महादेव उवाच ।

स्वदारनिरतश्चैवब्रह्मचारी स्मृतोबुधैः । चाण्डालादधिको विद्धन्यःस्वभार्यां परित्यजेत्

ऋतावभिगमं कृत्वा ब्रह्मचर्यंविधीयते । परित्यजति यो भार्यां भक्तां दोषविवर्जिताम्

पापकर्मा नरो लोके भ्रूणहत्यामवाप्नुयात् ।

स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायं देवतार्चनम् ॥ ११६ ॥

चातुर्मास्यकृतं यच्च सर्वं हि चाक्षयं भवेत् ।

एककालं द्विकालं वा पुराणं शृणुते तु यः ॥ ११७ ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति । हरौसुप्ते विशेषेण हरेर्नामपठञ्जपन् ॥

तत्फलं कोटिगुणितं लभते द्विजसत्तम ! ।

वैष्णवो ब्राह्मणो यस्तु विष्णुपूजां करोति हि ॥ ११६ ॥

स एव सर्वधर्मात्मा पूज्य एव न संशयः । चातुर्मास्यमिदं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम्

श्रुत्वा तु लभते पुण्यं गङ्गास्नानभवं मुने ! ॥ १२० ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-नारदसंवादे चातुर्मास्यमहिमानाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

———

षट्षष्टितमोऽध्यायः

चातुर्मास्यव्रतोद्यापनविधिवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

चातुर्मास्यव्रतानां च प्रब्रूह्युद्यापनं विभो । उद्यापने कृते सर्वं संपूर्णं भवति ध्रुवम् ॥

महादेव उवाच ।

व्रतं कृत्वा महाभाग ! यदि नोद्यापनं चरेत् ।
यस्तु कर्त्ता कर्मणां स न सम्यक्फलभाग्भवेत् ॥ २ ॥

व्रतवैकल्यमासाद्य कुष्ठी चान्धःप्रजायते । एतस्मात्कारणाच्चैव कुर्यादुद्यापनं द्विज ! ॥

गृहीत्वा नियमानेतान्पालयित्वा यथाविधि ।
सुप्तोत्थिते जगन्नाथे गत्वा ब्राह्मणसन्निधौ ॥ ४ ॥

क्षमापयेद्देवदेवं यथाविधि च विस्तरात् । तैलत्यागे घृतं दद्याद् घृतत्यागे पयःस्मृतम्
मौने पिण्डास्तिलाद्याःस हिरण्याः द्विजातये । भोजनेभोजनं दद्याद्दध्योदनसमन्वितम्
अन्नं दद्याद्विशेषेण हिरण्येन समन्वितम् । अन्नदानान्मुनिश्रेष्ठ विष्णुलोके महीयते ॥
पालाशपत्रे यो भुङ्क्ते नरो मासचतुष्टयम् । भाजनंघृतपूर्णं तु दद्यादुद्यापने द्विज ॥८॥
षड्रसं भोजनं दद्याद्ब्राह्मणे नक्तभोजने । अयाचिते ह्यनड्वाहं सहिरण्यं प्रदापयेत् ॥

माषं त्यजन्मुनिश्रेष्ठ ! गां च दद्यात्सवत्सिकाम् ।
धात्रीस्नाने नरो दद्यात्स्वर्णं माषिकमेव च ॥ १० ॥
फलानां नियमे चैव फलानि च प्रदापयेत् ।
धान्यानां नियमे धान्यमथवा शालयः स्मृताः ॥ ११ ॥

तद्वद्भूशयने शय्यां सतूलां गेन्दुकान्विताम् । ब्रह्मचर्यं कृतं येन चातुर्मास्ये द्विजोत्तम
दम्पत्योर्भोजनं देयमुभयोर्भक्तिपूर्वकम् । सभोगं दक्षिणोपेतं स शाकं लवणं तथा ॥
नित्यस्नाने नरो दद्यान्निस्नेहे सर्पिसक्तवः । नखकेशव्रतेचैव ह्यादर्शं परिकल्पयेत् ॥

उपानहौ प्रदातव्यावुपानहविवर्जनात् ।
आमिषस्य परित्यागात्सवत्सा कपिला स्मृता ॥ १५ ॥

नित्यं दीपप्रदो यस्तु सौवर्णं दीपमावहेत् । तं दीपं घृतसंयुक्तं दद्याच्चैव द्विजन्मने ॥
विष्णुभक्ताय विप्राय परिपूर्णव्रतेप्सया । शाकस्य नियमे शाकंमाषे सौवर्णमाषकम्
मैथुनानां तु नियमे रौप्यं दद्याद्द्विजातये । नागवल्ल्यास्तु नियमे कर्पूरं सहिरण्यकम्
कालेकाले द्विजश्रेष्ठ यत्कृतं नियमेन तु । तत्तद्देयं विशेषेण परलोकगतीप्सया ॥१६॥

आदौ स्नानादिकं कृत्वा विष्णोरग्रे प्रकारयेत् । अनादिनिधनोदेवःशङ्खचक्रगदाधरः ॥
तस्याग्रे के न कुर्वन्ति यतो विष्णुस्तु पापहा ॥ २० ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चापञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे चातुर्मास्योद्यापनं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

यमाराधनवैतरणीव्रतविधानवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

यमस्याराधनं ब्रूहि मद्धितार्थं सुरोत्तम ! । कथं न गम्यते देव नरेण नरकान्तरम् ॥१

श्रूयते यमलोके तु सदा वैतरणी नदी । अनाधृष्या त्वपारा च दुस्तरा बहुशोणिता ॥

दुस्तरा सर्वभूतानां सा कथं सुतरा भवेत् । भयमेतन्महादेव यमलोकंप्रति प्रभो ॥३॥

तस्य निर्मोचनार्थाय ब्रूहि कृत्यमशेषतः । भगवन्देवदेवेश कृपां कृत्वा ममोपरि ॥ ४॥

महादेव उवाच ।

द्वारवत्यां पुरा विप्र ! स्नातोऽहं लवणाम्भसि ।
दद्दशे मुनिमायान्तं मुद्गलं नाम वाडव ! ॥५॥
ज्वलन्तमिव चादित्यं तपसाद्योतिताङ्गकम् ।
मां प्रणम्य मुनिः प्राह मुद्गलो विस्मयान्वितः ॥६॥

मुद्गल उवाच ।

अकस्मान्मूर्च्छितो देव पतितोस्मि धरातले । प्रज्वलन्ति ममाङ्गानि गृहीतो यमकिङ्करैः

बलादाकृष्यमाणोऽहं पुरुषोऽङ्गुष्ठमात्रकः । बद्धो यमभटैर्गाढं नीतोऽस्मि शमनान्तिकम्

क्षणात्सभायां पश्यामि यमं पिङ्गललोचनम् ।
कृष्णमुखं महारौद्रं मृत्युव्याधिशतान्वितम् ॥ ९ ॥

वातपित्तश्लेष्मदोषैर्मूर्तमद्भिस्तु सेवितम् ।
कासशोषज्वरातङ्कस्फोटिकालूतकादिभिः ॥ १० ॥
ज्वालाङ्गमर्दशीर्षार्तिभगन्दरबलक्षयैः । कण्ठमालाक्षिरोगैश्च मूत्रकृच्छ्रज्वरव्रणैः ॥११॥
विमूर्च्छिकागलग्राहहृद्रोगैर्भूततस्करैः । इत्थं बहुविधै रौद्रैर्नानारूपैर्भयङ्करैः ॥ १२ ॥
कपालशिरोहस्तैश्च सङ्ग्रामे नरके तथा । राक्षसैर्दानवैर्घोरैरुपविष्टैःपुरःस्थितैः ॥१३॥
धर्माधिकारिभिश्चात्र चित्रगुप्तादि लेखकैः । व्याघ्रसिंहवराहैश्च शिवासर्पैःसुदुर्धरैः ॥
वृश्चिकै दंष्ट्रिभिर्भूतैःकीटकैर्मत्कुणादिभिः । वृकाचित्राादिशुनकैःकङ्कैर्गृध्रैश्च जम्बुकैः
तस्करैर्भूतदारिद्रैर्मारिभिर्डाकिनीग्रहैः । मुक्तकेशैःश्वासकासैर्भ्रुकुटीकुटिलाननैः ॥ १६ ॥
वृहत्प्रतापैर्नो भीतैःशासकैःपापकर्मणाम् । यमःसभायां शुशुभे सेव्यमानःपरिग्रहैः ॥१७
भीमाटविकजीवैश्च यथा व्यालाञ्जनोगिरिः । ततो विश्वेश्वरःप्राह स यमःकिङ्करान्प्रति
नामभ्रान्तैर्भवद्भिश्च समानीतः कथं मुनिः ।
भीमकस्यात्मजो ग्रामे कौण्डिन्ये मुद्गलाभिधः ॥ १६ ॥
क्षीणायुः क्षत्त्रियः सोऽस्ति आनेयो मुच्यतामसौ ।
श्रुत्वैतत्ते गतास्तस्मादायाताः पुनरेव ते ॥२०॥
धर्मराजं पुनःप्राहुःसर्वे ते यमकिङ्कराः । तत्रास्माभिर्गतैर्देही क्षीणायुर्नोपलक्षितः ॥
भानुसूनो ! न जानीमः कथंचिद् भ्रान्तचेतसः ॥ २१ ॥

यम उवाच ।

किङ्कराणामदृश्यास्ते प्रायेण भवतां नराः । सुकृता द्वादशी यैस्तु ख्याता वैतरणीति या
उज्जयिन्यां प्रयागे वा यमुनायां च ये मृताः ।
तिलहस्तिहिरण्यादि दत्तं यैस्तु गवादिकम् ॥ २३ ॥

ता ऊचुः ।

तद्व्रतं कीदृशं स्वामिन्ब्रूहि सर्वमशेषतः । किं तत्र देव कर्त्तव्यं पुरुषैस्तव तोषदम् ॥
येन कृता नरश्रेष्ठ ! द्वादशी कृष्णपक्षजा । उपवासे च तेनैव कथं पापात्प्रमुच्यते ॥२५
तद्व्रतं केन विधिना कर्तव्यं च यथा वद। सुप्रसन्नेन वक्तव्यं दयां कृत्वा दयानिधे !॥

श्रीमुद्गल उवाच ।

दूतानां वचनं श्रुत्वा उवाच मधुरं तदा । सर्वं वदामि भोदूता ! यथादृष्टं यथा श्रुतम्

यम उवाच ।

मार्गशीर्षादि मासे तु या इमाः कृष्णपक्षजाः ।

तासु सर्वासु विधिवद् दूता वैतरणीव्रतम् ॥ २८ ॥

प्रतिमासं च कर्त्तव्यं यावद्वर्षं भवेद्ध्रुवम् । यत्तु कृत्वा तु भो दूता मुच्यते नात्र संशयः

उपवासस्य नियमःकर्त्तव्यो विष्णुतुष्टिदः । अद्य मे देवदेवेश उपवासो भविष्यति ॥

द्वादश्यां पूज्य गोविन्दं भक्तिभावसमन्वितम् ।

स्वप्न इन्द्रियवैकल्याद्भोजनं यच्च मैथुनम् ॥ ३१ ॥

तत्सर्वं क्षम मे देव कृपां कृत्वा ममोपरि । एवं वै नियमं कृत्वा मध्याह्ने तीर्थमाव्रजेत्

मृद्गोमयतिलान्नीत्वा गन्तव्यं विधिपूर्वकम् । स्नानं तत्र प्रकर्तव्यं व्रतसम्पूर्त्तिहेतवे

अश्वक्रान्तेतिमन्त्रेण स्नानं कुर्याद्विशेषतः । अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे

मृत्तिके हर मे पापं यन्मया पूर्वसंचितम् । तया हतेन पापेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३५॥

काश्यपाश्चैव तु संभूतास्तिला वै विष्णुरूपिणः ।

तिलस्नानेन गोविन्दः सर्वपापं व्यपोहति ॥ ३६ ॥

विष्णुदेहोद्भवे देवि महापापापहारिणि । सर्वं पापं हरत्वं वै सर्वौषधि नमोऽस्तु ते ॥

तुलसीपत्रकं धृत्वा नामोच्चारणपूर्वकम् ।

स्नानं सुकृतिभिः प्रोक्तं कर्तव्यं विधिपूर्वकम् ॥ ३८ ॥

एवं स्नात्वा समुत्तीर्य परिधाय सुवाससी ।

तर्पयित्वा पितॄन्देवांस्ततो विष्णोस्तु पूजनम् ॥ ३९ ॥

संस्थाप्य चाव्रणं कुम्भं पञ्चपल्लवसंयुतम् । पञ्चरत्नसमोपेतं दिव्यस्रग्गन्धवासितम् ॥

सद्रव्यं जलपूर्णं च ताम्रपात्रसमन्वितम् । तत्रस्थं श्रीधरं देवं देवदेवं तपोनिधिम् ॥४१

पूर्णेन विधिना राजन्कुर्यात्पूजां गरीयसीम् ।

मृद्गोमयादि रचितं मण्डलं कारयेच्छुभम् ॥ ४२ ॥

तण्डुलैःशुक्लधौतैश्चाप्यम्बुपिष्टैश्च कारयेत् । धर्मराजःप्रकर्त्तव्यो हस्ताद्यवयवान्वितः ॥
नदीं वैतरणीं ताम्रां स्थापयित्वा तदग्रतः । पूजयेच्च पृथक्सम्यक्समावाहनपूर्वकम् ॥
आवाहयामि देवेशं यमं वै विश्वरूपिणम् । इहाभ्येहि महाभाग सान्निध्यं कुरु केशव ॥

इदं पाद्यं श्रियःकान्त ! सोपविष्टं हरे ! प्रभो ! ।
विश्वोद्यानरतो नित्यं कृपां कुरु ममोपरि ॥ ४६ ॥

भूतिदाय नमःपादावशोकाय च जानुनी । ऊरूनमःशिवायेति विश्वमूर्ते नमःकटिम् ॥
कन्दर्पाय नमो मेढ्रमादित्याय फलं तथा । दामोदराय जठरं वासुदेवाय वै स्तनौ ॥
श्रीधराय मुखं केशान्केशवायेति वै नमः । पृष्ठं शार्ङ्गधरायेति चरणौ वरदाय च ॥४९॥
स्वनाम्ना शङ्खचक्रासिगदापरशुपाणये । सर्वात्मने नमस्तुभ्यं शिर इत्यभिधीयते ॥५०

मत्स्यं कूर्मं च वाराहं नारसिंहं च वामनम् ।
रामं रामं च कृष्णं च बुद्धं कल्किं न ोऽस्तु ते ॥ ५१ ॥
सर्वपापौघनाशार्थं पूजयामि नमोनमः ।
एभिश्च सर्वशो मन्त्रैर्विष्णुं ध्यात्वा प्रपूजयेत् ॥ ५२ ॥

धर्मराज नमस्तेऽस्तु धर्मराज नमोऽस्तु ते । दक्षिणाशापते तुभ्यं नमो महिषवाहन ॥

चित्रगुप्त ! नमस्तुभ्यं विचित्राय नमोनमः ।
नरकार्तिप्रशान्त्यर्थं कामान्यच्छ ममेप्सितान् ॥ ५४ ॥

यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च । वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः । नीलाय चैव दध्नाय नित्यं कुर्यान्नमोनमः ॥
एवं द्वादशभिःपूज्यो नामभिर्धर्मराट् प्रभुः । वैतरणि सुदुष्पारे पापघ्नि सर्वकामदे ॥
इहाभ्येहि महाभागे गृहाणार्घं मया कृतम् । यमद्वारपथे घोरे ख्याता वैतरणीनदी ॥

तस्या उद्धरणार्थाय जन्ममृत्युजरातिगा ।
या दुस्तरा दुष्कृतिभिः सर्वप्राणिभयापहा ॥ ५९ ॥
यस्यां भयात्प्रमज्जन्ति प्राणिनो यातनापराः ।
तर्तुकामस्तु तां घोरां जयादेवि नमोनमः ॥ ६० ॥

तस्यां देव हि तिष्ठन्ति या सा वैतरणी नदी।
सा चापि पूजिता भक्त्या प्रीत्यर्थं केशवस्य च ॥ ६१ ॥
यस्यास्तटे प्रतिष्ठन्ति ऋषयःपितरस्तथा। सा चापि सिन्धुरूपेण पूजिता पापहारिका
तरीतुं तां प्रदास्यामि सर्वपापविमुक्तये। पुण्यार्थं संप्रवक्ष्यामि तुभ्यं वैरतणीनदीम्
मयासि पूजिताभक्त्या प्रीत्यर्थं केशवस्य च। कृष्णकृष्ण जगन्नाथ संसारादुद्धरस्व माम्
नामग्रहणमात्रेण सर्वं पापं हरस्व मे। यज्ञोपवीतं परमं कारितं नवतन्तुभिः ॥ ६५ ॥
प्रतिगृह्णीष्व देवेश ! प्रीतो यच्छ ममेप्सितम्।
इदं तव च ताम्बूलं यथा शक्त्या सुशोभनम् ॥ ६६ ॥
प्रतिगृह्णीष्व देवेश मामुद्धर भवार्णवात्। पञ्चवर्ती प्रदीपोऽयं देवेशारार्तिकं तव ॥
मोहान्धकारद्युमणे भक्तियुक्तो भवार्तिहृत्। परमान्नं सुपक्वान्नं समस्तरससंयुतम् ॥
निवेदितं मया भक्त्या भगवन्प्रतिगृह्यताम्। द्वादशाक्षरमन्त्रेण यथासङ्ख्यजपेन च ॥
प्रीयतां मे श्रियःकान्तः प्रीतो यच्छतु वाञ्छितम्।
पञ्चगावः समुत्पन्ना मथ्यमाने महोदधौ ॥ ७० ॥
तासां मध्ये तु या नन्दातस्यै धेन्वै नमोनमः।
गां संपूज्य विधानेन अर्घ्यं दद्यत्समाहितः ॥ ७१ ॥
सर्वकामदुघे देवि सर्वान्तकनिवारिणि। आरोग्यं सन्तर्ति दीर्घांदेहि नन्दिनि मे सदा
पूजिता च वसिष्ठेन विश्वामित्रेण धीमता। कपिले हर मे पापं यन्मया पूर्वसंचितम्
गावो ममाग्रतःसन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः। नाके मामुपतिष्ठन्तु हेमशृङ्ग्यःपयोमुचः
सुरभ्यःसौरभेयाश्च सरितःसागरा यथा। सर्वदेवमये देवि सुभद्रे भक्तवत्सले ॥७५॥
एवं संपूज्य विधिवद्द्याद्गोषु गवाह्निकम्।
सौरभेय्यः सर्वहिताः पवित्राः पापनाशनाः ॥ ७६ ॥
प्रतिगृह्णन्तु मे ग्रासं गावस्त्रैलोक्यमातरः। गं गदायै नमो भूत्यै सर्वपापप्रहाणये ॥
अनेनैव तु मन्त्रेण गदां वै धारयेद्बुधः। पं नमःपद्मनाभाय पद्मं वै धारयेत्सुधीः ॥
चं चक्ररूपिणे विष्णो धारणं चक्रजं स्मृतम्।

शं शङ्खरूपिणे तुभ्यं नमोऽस्तु सुखकारिणे ॥ ७९ ॥
मन्त्रेणानेन वै दूता धारणं शङ्खजं स्मृतम् ।
चतुर्णामायुधानां तु धारणं मुनिभिःस्मृतम् ॥ ८० ॥
अग्निहोत्रं यथा नित्यं वेदस्याध्ययनं तथा । ब्राह्मणस्य अथैवेदं तप्तमुद्रादि धारणम् ॥
चन्दनेन सुगन्धेन गोपिकाचन्दनेन तु । धारणं च विशेषेण ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥८२॥
चाण्डालोऽपि भवेच्छुद्धो धारणाच्च न संशयः ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रमृजुं सौम्यं सचिह्नं धारयेद्यदि ॥ ८३ ॥
स चाण्डालोऽपि शुद्धात्मा पूज्य एव सदा द्विजैः ।
चाण्डालानां गृहे दूतास्तुलसी यत्र दृश्यते ॥ ८४ ॥
तत्रत्या तुलसी ग्राह्या भक्तिभावेन चेतसा ॥ ८५ ॥

महेश्वर उवाच ।

इति श्रुतं धर्ममुखान्मुद्गलो द्विजसत्तमः । कथयित्वा ममाग्रे वै गतो याद्दच्छिको मुने
गोपिकाचन्दनं यत्र तिष्ठते वै द्विजोत्तम । तद्गृहं तीर्थरूपं च विष्णुना भाषितं किल
शोकमोहौ न तत्रस्तो न भवत्यशुभं क्वचित् ।
गोपिकाचन्दनं यस्य तिष्ठति द्विज ! सद्मनि ॥ ८८ ॥
सुखिनःपूर्वजास्तेषां सन्ततिर्वर्धते सदा । गोपिकाचन्दनं यस्य वर्ततेऽहर्निशं गृहे ॥८९
गोपीपुष्करजा मृत्स्ना पवित्रा कायशोधिनी । उद्वर्त्तनाद्विनश्यति व्याधयो ह्याधयश्चये
अतो देहे धृतं पुम्भिर्मुक्तिदं सर्वकामिकम् ।
तावद् गर्जन्ति तीर्थानि तावत्क्षेत्राणि सर्वदा ॥ ९१ ॥
गोपिकाचन्दनं यावन्न दृष्टं न श्रुतं द्विज । इदं ध्येयमिदं पूज्यं मलदोषविनाशनम् ॥
यस्य संस्पर्शनादेव पूतो भवति मानवः । अन्तकाले तु मर्त्यानां मुक्तिदं पावनं परम्
किं वदामि द्विजश्रेष्ठ मुक्तिदं गोपिचन्दनम् ।
विष्णोस्तु तुलसीकाष्ठं तथा वै मूलमृत्तिका ॥ ९४ ॥
गोपिकाचन्दनं चैव तथा वै हरिचन्दनम् । चत्वार्येतानि संमेल्य अङ्गमुद्वर्तयेत्सुधीः ॥

तेन तीर्थं कृतं सर्वं जम्बूद्वीपेषु सर्वदा। तिलकं कुरुते यस्तु गोपिकाचन्दनद्रवैः ॥६६॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परंपदम्।
पितुः श्राद्धादिकं तेन गयां गत्वा तु वै कृतम् ॥ ६७ ॥
येन वा पुरुषेणापि विधृतं गोपिचन्दनम्। मद्यपो ब्रह्महा चैव गोघ्नो वा बालहा तथा
मुच्यते तत्क्षणादेव गोपीचन्दनधारणात् ॥ ६८ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-नारदसंवादे गोपीचन्दनमाहात्म्ये सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

वैष्णवलक्षणमाहात्म्यवर्णनम्।

महेश्वर उवाच।

शृणु नारद वक्ष्यामि वैष्णवानां च लक्षणम्।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते लोको ब्रह्महत्यादि पातकात् ॥ १ ॥
तेषां वै लक्षणं यादृक्स्वरूपं यादृशं भवेत्। तादृशं मुनिशार्दूल शृणु त्वं वच्मिसांप्रतम्
विष्णोरयं यतो ह्यासीत्तस्माद्वैष्णव उच्यते। सर्वेषां चैव वर्णानां वैष्णवःश्रेष्ठ उच्यते
येषां पुण्यतमाहारास्तेषां वंशे तु वैष्णवः।
क्षमा दया तपःसत्यं येषां वै तिष्ठति द्विज ! ॥४॥
तेषां दर्शनमात्रेण पापं नश्यति तूलवत्।
हिंसाधर्माद्विनिर्मुक्ता यस्य विष्णौ स्थिता मतिः ॥ ५ ॥
शङ्ख चक्र गदा पद्मं नित्यं वै धारयेत्तु यः। तुलसीकाष्ठजां मालां कण्ठे वै धारयेद्यतः
तिलकानि द्वादशधा नित्यं वै धारयेद्बुधः। धर्माधर्मं तु जानाति यः सवैष्णवउच्यते
वेदशास्त्ररतो नित्यं नित्यं वै यज्ञयाजकः। उत्सवाश्च चतुर्विंशत्कुर्वन्ति च पुनःपुनः॥

तेषां कुलं धन्यतमं तेषां वै यश उच्यते । ते वै लोके धन्यतमा जाता भागवतानराः
एक एव कुले यस्य जातो भागवतो नरः । तत्कुलं तारितं तेन भूयो भूयश्च वाडव ! ॥
उद्भिज्जा अण्डजाश्चैव ये जरायुजयोनयः । ते तु सर्वेऽपि विज्ञेया शङ्खचक्रगदाधराः ॥
येषां दर्शनमात्रेण ब्रह्महा शुध्यते सदा । किंतु वक्ष्यामि देवर्षे तेभ्यो धन्यतमा भुवि

वैष्णवा ये तु दृश्यन्ते भुवनेऽस्मिन्महामुने ।
ते वै विष्णुसमाश्चैव ज्ञातव्यास्तत्त्वकोविदैः ॥ १३ ॥

कलौ धन्यतमा लोके श्रुतामे नात्र संशयः । विष्णोःपूजा कृता तेन सर्वेषां पूजनं कृतम्
महादानं कृतं तेन पूजिता येन वैष्णवाः। फलं तत्र तथा शाकमन्नं वा वस्त्रमेव च ॥

वैष्णवेभ्यः प्रयच्छन्ति ते धन्या भुवि सर्वदा ।
अर्चितो वैष्णवो यैस्तु सर्वेषां चैव पूजनम् ॥ १६ ॥

कृतं यैरर्चितो विष्णुस्ते वै धन्यतमा मताः । तेषां दर्शनमात्रेण शुध्यते पातकान्नरः
किमन्यद्बहुनोक्तेन भूयोभूयश्च वाडव । अतो वै दर्शनं तेषां स्पर्शने सुखदायकम् ॥

यथा विष्णुस्तथा चायं नान्तरं वर्तते क्वचित् ।
इति ज्ञात्वा तु भोवत्स ! सर्वदा पूजयेद् बुधः ॥१९॥

एक एव तु यैर्विप्रो वैष्णवो भुवि भोज्यते । सहस्रं भोजितं तेनद्विजानां नात्र संशयः
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादे वैष्णवमाहात्म्यं नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

ऊनसप्ततितमोऽध्यायः

श्रावणद्वादशीव्रतविधानकथनम् ।

नारद उवाच ।

उपवाससमर्थानां सदैवामरसत्तम । एका या द्वादशी पुण्यातां वदस्व ममानघ ॥ १ ॥

शिव उवाच ।

मासि भाद्रपदे शुक्ले द्वादशी श्रवणान्विता । सा वै सर्वदा पुण्या ह्युपवासे महाफला

संगमे सरितां स्नात्वा द्वादशीं तामुपोषितः ।

अयत्नात्समवाप्नोति द्वादशद्वादशीफलम् ॥ ३

बुधश्रवणसंयुक्ता या च वै द्वादशी भवेत् । अतीव महती तस्यां कृतं सर्वमथाक्षयम्

द्वादशी श्रवणोपेता यदा भवति नारद । संगमे सरितां स्नात्वा लभेद्गोदानजं फलम्

जलपूर्णं तदा कुम्भं स्थापयित्वा विचक्षणः ।

तस्योपरि न्यसेत्पात्रं स्थापयित्वा जनार्दनम् ॥ ६ ॥

ततस्तस्याग्रतो देयं नैवेद्यं घृतपाचितम् । नवकुम्भान्सोदकांश्च दद्याच्छक्त्या विचक्षणः

एवं संपूज्य गोविन्दं जागरं तत्र कारयेत् । प्रभाते विमले स्नात्वा संपूज्य गरुडध्वजम्

पुष्पधूपादि नैवेद्यैः फलैर्वस्त्रैः सुशोभनैः । पुष्पाञ्जलिं ततो दद्यान्मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥ ९॥

नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंयुत ! । अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव ॥

अन्नं तु ब्राह्मणे पूतं वेदवेदाङ्गपारगे । पुराणज्ञे विशेषेण विधिवत्संप्रदापयेत् ॥११॥

अनेन विधिना चैव नद्यास्तीरे नरोत्तमः । सर्वं निवर्त्तयेत्सम्यगेकचित्तरतोऽपि सन् ॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । महत्यरण्ये यद्वृत्तं भूमिदेव ! शृणुष्व तत् ॥

यं श्रुत्वा मानवो लोके महादुःखात्प्रमुच्यते । देशो दाशरको नाम तस्य भागे च पश्चिमे

तत्र विद्वन्मरुर्देशः सर्वसत्त्वभयङ्करः । सुतप्तसिकताभूमिर्यत्र दुष्टा महोरगाः ॥ १५ ॥

अल्पच्छाया द्रुमाकीर्णा मृतप्राणिसमाकुला । शमीखदिरपालाशकरीरैः पीलुभिः सह ॥

तत्र भीमा द्रुमगणाः कण्टकैराचिता दृढैः ।

दग्धप्राणजनाकीर्णा यत्र भूर्दृश्यते क्वचित् ॥ १७ ॥

तथापि जीवा जीवन्तिसर्वे कर्मनिबन्धनात् । नोदकं नोदकाधारा विद्वंस्तत्र बलाहकाः

पक्षान्तरगतैः कैश्चिच्छिशुभिस्तृषितैः समम् । उत्क्रान्तजीवनाविप्र दृश्यन्ते नु खगोत्तमाः

तस्मिंस्तथाविधे देशे कश्चिद्दैववशाद्वणिक् । निजसार्थपरिभ्रष्टः प्रविष्टो मरुजाङ्गले ॥

बभ्रामोद्भ्रान्तहृदयः क्षुत्तृड्भ्यां श्रमपीडितः । क्व ग्रामः क्व जलं क्वाहं यास्यामि नबुबोधहः

अथ प्रेतान्ददर्शासौ क्षुत्तृषाव्याकुलेन्द्रियान् ।
उत्कटान्खलिनो भीमान्निर्मांसान्रौद्रदर्शनान् ॥ २२ ॥
प्रेतस्कन्धसमारूढमेकं विकृतदर्शनम् । ददर्श बहुभिः प्रेतैःसमन्तात्परिवारितम् ॥२३॥
आगच्छमानमत्युग्रं प्रेतशब्दपुरःसरम् । प्रेतोऽपि दृष्ट्वा तां घोरामटवीमागतं नरम्
प्रेतस्कन्धान्महीं गत्वा तस्यान्तिकमुपागमत् । प्रणिपत्य वणिक्छ्रेष्ठमिदं वचनमब्रवीत्
अस्मिन्घोरतरे देशे प्रवेशो भवतःकथम् । तमुवाच वणिग्धीमान्सार्थभ्रष्टस्य मे वने ॥
प्रवेशो दैवयोगेन पूर्वकर्मकृतेन च । तृषा मे बाधतेऽत्यर्थं क्षुधाचैव भृशं तथा ॥ २७॥
प्राणान्तिकमनुप्राप्तं शरीरं भ्रमतीव मे । अत्रोपायं न पश्यामि जीवेयं येन केनचित् ॥
इत्येवमुक्ते प्रेतस्तं वणिजं वाक्यमब्रवीत् । फुल्लां शमीं समाश्रित्य प्रतीक्षस्व मुहूर्त्तकम्
कृतातिथ्यो मया पश्चाद्गमिष्यसि यथा सुखम् ।
एवमुक्तस्तथा चक्रे स वणिक्तृष्णयार्दितः ॥ ३० ॥
मध्याह्नसमये प्राप्तं प्रेतस्तं देशमागतः । फुल्लां सवृक्षां शीतोदां वारिधानीं मनोरमाम्
दध्योदनसमायुक्तां वर्धमानेन संयुताम् । अवतार्य ततःस्वन्नं प्रादादतिथये तदा ॥३२॥
स तत्राशनमात्रेण परांतृप्तिमुपागतः । वितृष्णो विज्वरश्चैव क्षणेन समपद्यत ॥ ३३ ॥
ततः प्रेताश्च संप्राप्ताः सोऽस्माद्भागं क्रमाद्ददौ ।
दध्योदनात्सपानीयात्प्रेतास्तृप्तिं परांगताः ॥ ३४ ॥
अतिथिं तर्पयित्वा तु प्रेतलोकं च सर्वतः । ततःस्वयं स बुभुजे भुक्तशेषं यथासुखम् ॥
तस्य भुक्तवतःस्वन्नं पानीयं च क्षयं ययौ । प्रेताधिपं ततस्तं वै वणिग्वचनमब्रवीत् ॥
आश्चर्यमेतत्परमं वनेऽस्मिन्प्रतिभाति मे । अन्नं पानं च परमं संप्राप्तं च कुतस्तव ॥
स्वल्पेनैव तथाऽन्नेन त्वमेतांस्तु बहूनपि । अतर्पयःकथं त्वेते निर्मांसा भिन्नकुक्षयः ॥
कथमस्यां सुघोरायामटव्यां च कृतालयाः ।
तदेतत्संशयं छिन्धि परं कौतूहलं मम ॥ ३९ ॥
एवमुक्तःस वणिजो प्रेतो वचनमब्रवीत् । वाणिज्यसक्तस्य पुरा जन्मातीतं ममानघ ॥
सकले नगरे नास्ति ममान्यो हि दुरात्मकः ।

धनलोभान्न कस्यापि दत्ता भिक्षा मया तदा ॥ ४१ ॥
सखा चैव ततश्चासीद्ब्राह्मणो गुणवान्मम । श्रवणद्वादशीयोगे मासि भाद्रपदे ततः ॥४२
स कदाचिन्मया सार्धं तापीं नाम नदीं ययौ ।
तस्याश्च सङ्गमः पुण्यो यत्रासीच्चन्द्रभागया ॥ ४३ ॥
चन्द्रभागा चन्द्रसुता तापी चैवार्कनन्दिनी । तयोः शीतोष्णसलिले प्रविवेश सहद्विजः
श्रवणद्वादशीयोगे नराश्च समुपोषिताः । चन्द्रभागासुतो येन वारिधानीं ददुर्द्विजे ॥४५
दध्योदनयुतां सार्धं संपूर्णैर्वर्धमानकैः । छत्रोपानद्युगं वस्त्रं प्रतिमां च तथा हरेः ॥४६॥
प्रददौ विप्रमुख्येभ्यो हरस्याग्रे महामते । वित्तसंरक्षणार्थाय तस्यास्तीरे व्रते मया ॥
सोपवासेन दत्तैका वारिधानी मनोरमा । तत्कृत्वाहं गृहं प्राप्तः ततः कालेन केनचित् ॥
पञ्चत्वमहमासाद्य नास्तिक्यात्प्रेततां गतः ।
अस्यामटव्यां घोरायां यथा ह्यहिकुलं तथा ॥ ४९ ॥
श्रवणद्वादशीयोगे वारिधान्यर्पिता मया । सेयं मध्याह्नसमये लभ्यते च दिने दिने ॥
ब्रह्मस्वहारिणः सर्वे पापाः प्रेतत्वमागताः । परदारगताः केचित्स्वामिद्रोहरताश्च ये ॥५१
भूतप्रेतजरूपेण ते जाता ह्यत्र मानवाः । देशे मरुस्थले त्वस्मिन्ममैते मित्रतां गताः ॥
अक्षयो भगवान्विष्णुः परमात्मा सनातनः । दीयते यत्समुद्दिश्य ह्यक्षयं तत्प्रकीर्तितम्
अक्षयेनापि चान्नेन तृप्ता एते पुनः पुनः । प्रेतस्वभावं दौर्बल्यं न विमुञ्चन्ति कर्हिचित्
पूजयित्वाऽहमन्नैस्त्वामतिथिं समुपस्थितम् ।
प्रेतभावाद्विनिर्मुक्तो यास्यामि परमां गतिम् ॥ ५५ ॥
मया विहीनाः किन्त्वेते वनेऽस्मिन्भृशदारुणे ।
पीडामनुभविष्यन्ति दारुणां कर्मयोनिजाम् ॥ ५६ ॥
एतेषां तु महाभाग ममानुग्रहकाम्यया । प्रत्येकं नाम गोत्राणि गृह्णीष्व लिखितानि च
अस्ति कक्षागता चैव तव सम्पुटिका शुभा ।
हिमवन्तमथासाद्य तत्र त्वं लप्स्यसे निधिम् ॥ ५८ ॥
गयाशीर्षं ततो गत्वा श्राद्धं कुरु महामते । इत्याज्ञाप्य सर्वं प्रेतो वणिजं च यथासुखम्

विसर्जयामास तदा स वै प्रायात्समुत्सुकः ।
समासाद्य गृहं तत्र पश्चात्प्रायाद्धिमालयम् ॥ ६० ॥
ततो दृष्टं निधिं तत्र गृहीत्वास समागतः । षष्ठांशं प्रतिगृह्याथगयाशीर्षं ततोऽभ्यगात् ।
तत्र गत्वा गयायां स श्राद्धं कृत्वा महामतिः ।
प्रेतानां तु यथोद्दिष्टं श्राद्धं सम्यग्विधानतः ॥ ६२ ॥
प्रत्येकं नाम गोत्राणि गृहीत्वा पिण्डमत्यजत् ।
यस्य यस्य भवेच्छ्राद्धं स करोति दिने वणिक् ॥ ६३ ॥
स स तस्य तदा स्वप्ने दर्शयत्यात्मनस्तनुम् । ब्रवीति च महाभाग प्रसादाद्भवतोऽनघः
प्रेतभावं मयात्यक्तं प्राप्तोऽस्मि परमांगतिम् । एवं कृत्वा विधानेनगयाशीर्षं महामनाः
पश्चाज्जगाम स्वगृहं विष्णुं ध्यायन्पुनःपुनः । मासि भाद्रपदे प्राप्ते शुक्लपक्षे तथासुधीः
श्रवणद्वादशीयोगे संगमे सरितां पुनः । जगाम स महाबुद्धिःसर्वोपस्करसंयुतः ॥६७
संगमे सरितां स्नात्वा द्वादशी तामुपोषितः ।
तत्र स्नात्वाऽपि दत्त्वा तु पूजयित्वा जनार्दनम् ॥ ६८ ॥
अनन्तरं ब्राह्मणस्य ह्युपहारांस्तदा ददौ । शास्त्रोक्तेनापि विधिना ह्येकचित्तरतोऽपिसः
निवर्त्तयामास तदा वणिजो बुद्धिमान्स वै । वर्षे वर्षे तु संप्राप्ते मासि भाद्रपदे तथा
श्रवणद्वादशीयोगे संगमे सरितां पुनः । एवं वै कृतवान्सर्वं विष्णुमुद्दिश्य सत्वरम् ॥
कालेन चातिमहता पञ्चत्वं समुपागतः । अवाप परमंस्थानं दुर्लभं सर्वमानवैः ॥ ७२॥
क्रीडतेऽद्यापि वैकुण्ठे विष्णुदूतैःस सेवितः । एवं कुरुत्वं भो ब्रह्मञ्छ्रवणद्वादशीव्रतम्
सर्वसौभाग्यदं चैव इहलोके परत्र च । सुबुद्धिजननं चैव सर्वपापहरं परम् ॥ ७४ ॥
श्रवणद्वादशीयोगे यःकुर्याद्व्रतमीदृशम् । व्रतस्यास्य प्रभावेण विष्णुलोकं सगच्छति
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादे श्रवणद्वादशीव्रतं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमोऽध्यायः

नदीत्रिरात्रव्रतमाहात्म्यवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

देवदेव ! जगन्नाथ ! भुक्तिमुक्तिप्रदायक । कथयस्व सुरश्रेष्ठ ! येन दुःखं न पश्यति ॥१

महेश उवाच ।

शृणु वाडव वक्ष्यामि त्रिरात्रं सरितःशुभम् । येन चीर्णेन नरको मानवानां न जायते
आयुरारोग्यमतुलं सौभाग्यं सुखसंपदम् । सन्तानं चाक्षयं प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ॥
आषाढमासि संप्राप्ते नदीपूरेण संयुता । सततं तोयसंस्थाने पुराणे सा च विश्रुता ॥
वर्षर्तौ घनसंपूर्णे कर्तव्या सा व्रतेन वा । तोयौघैः परिपूर्णा सा सकलैःस्यान्नदी यदा
व्रतं त्रिरात्रमुद्दिश्य तदा कार्यं प्रयत्नतः । कृतं प्रतिपदाच्छन्दो दर्शनं तु दिनत्रयम् ॥
यथा प्राप्तं नदीपूरं स्त्रीभिस्तीरजलस्य तु । अथवा तज्जलं कुम्भे कृष्णे कृत्वा गृहं नयेत्

प्रातःस्नायी तथा नद्यां गत्वा ह्यभ्यर्चयेत्सुधीः ।
त्रिरात्रस्योपवासस्य यथा शक्तो भवेद् द्विज ! ॥ ८ ॥

अशक्तश्चैकभक्तेन कुर्याच्चैवाप्युपोषणम् । दीपं दद्यादविच्छिन्नं प्रातः सायं च पूजनम्

महानदीं समुच्चार्य नाम्ना च वरुणं तथा ।
जलमूले तु संस्थाप्य केशवं जलशायिनम् ॥ १० ॥
नमो देव्यै च गङ्गेति गौतमीति नदीति च ।
सिन्धो चैव च कावेरि सरस्वति नमोऽस्तु ते ॥ ११ ॥

तापी पयोष्णी पूर्णेति महेन्द्रसुखदेति च । काश्यपी गण्डकी चैव सिन्धुनद्यै नमोनमः
वरुणाय नमस्तेऽस्तु जलवास हरिप्रियः। यादोनाथ रसेशान कल्याणं देहि मे सदा ॥

गृहाणार्घं मया दत्तं देहि मे वाञ्छितं फलम् ।
कूष्माण्डैर्नालिकेरैश्च फलैः कालोद्भवैः शुभैः ॥ १४ ॥

नैवेद्यं घृतपक्वं तु सरितः संप्रकल्पयेत् । नमस्ते केशवानन्त जलशायिन्नमोऽस्तु ते ॥
परिपालय मामीश गोविन्द वरदो भव । एवं पूजा प्रकर्तव्या यथाकालं क्रमेण तु ॥
प्रार्थनाचोपचारैस्तु त्रिरात्रनियमः शुचिः । पारणेन तु सम्पूज्य जलपात्रं समाचरेत् ॥
फलपुष्पैस्तथा विद्वन्स्त्रीभिर्बालैर्नरैरपि । गीतावादित्रसहितैर्नदीकुम्भपरिप्लुतैः ॥१८॥

जले जले समास्थाप्य फलपुष्पैः प्रपूजयेत् ।
धान्यैर्नानाविधैश्चैव जलप्रक्षेपणैरपि ॥ १९ ॥

हास्यैर्गीतैश्च नृत्यैश्च गृहमागत्य यत्नतः । सप्तधान्यैः पूरितानि वंशपात्राणि पूजयेत् ॥
सप्त वा पञ्च वा त्रीणि यथा शक्त्या प्रपूरयेत् । त्रिरात्रं च नदीतोयं न पिबेद्धितमुल्लसन्
पारणे तु हविष्यान्नंहुतं वाह्यन्यथाभवेत् । कृते स्नानार्चने चैव नोपयोज्यं नदीजलम्

शुच्यन्नानि च भोज्यानि दापयेत्त्रितयं तथा ।
सप्तैव वंशपात्राणि सप्त वै मणिकास्तथा ॥ २३ ॥

हविष्यान्नं च भुञ्जीत कट्वम्लमधुवर्जितम् । माषान्नं च शिलापिष्टंयत्नेन परिवर्जयेत्
एवं वर्षत्रयं कुर्याद् व्रतमेतद् द्विजोत्तम ! । वर्षत्रये समाप्यैवं तस्योद्यापनमाचरेत् ॥२५

कृष्णां गां कृष्णवस्त्रां च तिलान्दद्याच्च नारद ! ।
दम्पती परिदाप्यैवं सुवर्णं चापि शक्तितः ॥ २६ ॥

हैमं च वरुणं कुर्यान्नदीरूपेण नारद । मण्डलं वारुणं चैव सर्वतोभद्रमेव च ॥ २७ ॥
कुम्भं तत्रप्रतिष्ठाप्यसोपहारं प्रतिष्ठितम् । संपूज्य विधिवद्भक्त्या ततो विप्राय दापयेत्
ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या यथावित्तानुसारतः । गुरवेऽर्चितशीलाय सर्वशास्त्ररताय च
एवं कृते तदा विद्वन्परिपूर्णं व्रतं भवेत् । सौभाग्यसुखसंपत्तिः सन्ततिश्च यदा भवेत् ॥
न दुर्गतिमवाप्नोति चिरं स्वर्गे महीयते । देवपत्नीभिराचीर्णमृषिपत्नीभिरेव च ॥३१॥
नागसिद्धाङ्गनाभिश्च व्रतमेतत्पुराकृतम् । नदीत्रिरात्रमतुलं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥

सौभाग्यं सन्ततिं चैव निश्चयं प्राप्नुते सदा ॥ ३२ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति–
नारदसंवादे नदीत्रिरात्रव्रतं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमोऽध्यायः

भगवन्नाममाहात्म्यवर्णनम्।

ऋषय ऊचुः।

सूत जीव चिरं साधो त्वयातिकरुणात्मना। संवादो ह्यद्भुतःप्रोक्तो यश्चासीन्नारदेशयोः
भगवन्नाममहिमा नारदेनमहात्मना। कीदृक्छ्रुतः समाख्याहि श्रद्धया शृण्वतां गुरो॥

सूत उवाच।

शृणुध्वं मुनयः सर्वे पुरावृत्तं वदाम्यहम्। यस्मिञ्छ्रुते द्विजश्रेष्ठाःकृष्णे भक्तिर्विवर्धते
एकदा नारदोद्रष्टुं पितरं सुसमाहितः। जगाम मेरुशिखरं सिद्धचारणसेवितम्॥ ४॥
तत्र देवं समासीनं ब्रह्माणं जगतांपतिम्। नमस्कृत्याब्रवीद्विप्रा नारदो मुनिसत्तमः॥

नारद उवाच।

नाम्नोऽस्य यावती शक्तिर्वद विश्वेश्वर! प्रभो!।
कीदृक्तु नाममहिमा अव्ययस्य महात्मनः॥ ६॥

योऽयं विश्वेश्वरः साक्षादयं नारायणो हरिः। परमात्मा हृषीकेशःसर्वजीवेषु संगतः॥

मायाविमोहिताः सर्वे भगवन्तमधोक्षजम्।
नैव जानन्त्यसारेऽस्मिन्नरा मूढाः कलौ युगे॥ ८॥

ब्रह्मोवाच।

अस्मिन्कलौ विशेषेण नामोच्चारणपूर्वकम्।
भक्तिः कार्या यथा वत्स तथा त्वं श्रोतुमर्हसि॥ ९॥

दृष्टं परेषां पापानामनुक्तानां विशोधनम्। विष्णोर्जिष्णोः प्रयत्नेन स्मरणं पापनाशनम्
मिथ्या ज्ञात्वा ततः सर्वं हरेर्नाम रटञ्जपन्। सर्वपापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परंपदम्
ये वदन्ति नरा नित्यं हरिरित्यक्षरद्वयम्। तस्योच्चारणमात्रेण विमुक्तास्तेन संशयः

प्रायश्चित्तानि सर्वाणि तपःकर्मात्मकानि वै।

यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम् ॥ १३ ॥

प्रातर्निशि तथा सायं मध्याह्नादिषु संस्मरन् । नारायणमवाप्नोति सद्यः पापक्षयं नरः

विष्णुसंस्मरणादेव समस्तक्लेशसंक्षये ।

मुक्तिं प्रयाति स्वर्गाप्तिस्तस्य विष्णोस्तु कीर्त्तनात् ॥ १५ ॥

वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्चनादिषु । तदक्षयं विजानीयाद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥१६ ॥

क्व नाकपृष्ठगमनं पुनरावृत्तिलक्षणम् । क्व जपो वासुदेवस्य मुक्तिबीजमनुत्तमम् ॥१७॥

तन्मुखं परमंतीर्थं यत्रावर्त्तं वितन्वती ।

नमो नारायणायेति भाति प्राची सरस्वती ॥ १८ ॥

तस्मादहर्निशं विष्णुस्मरणात्पुरुषोत्तमः । न याति नरकं पुत्र ! संक्षीणकलिकल्मषः ॥

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं भाषितं मम सुव्रत । नामोच्चारणमात्रेण महापापात्प्रमुच्यते ।

रामरामेति रामेति रामेति च पुनर्जपन् ।

स चाण्डालोऽपि पूतात्मा जायते नात्र संशयः ॥ २१ ॥

कुरुक्षेत्रं तथा काशी गया वै द्वारिका तथा । सर्वं तीर्थं कृतं तेन नामोच्चारणमात्रतः

कृष्णकृष्णेतिकृष्णेति इति वा योजपन्पठन् । इहलोकं परित्यज्य मोदते विष्णुसंनिधौ

नृसिंहेति मुदा विप्र सततंप्र जपन्पठन् । महापापात्प्रमुच्येत कलौ भागवतो नरः॥२४

ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ।

यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥ २५ ॥

एतज्ज्ञात्वा निमग्नाश्च जगदात्मनि केशवे ।

सर्वपापपरिक्षीणा यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥ २६ ॥

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नृसिंहो वामनस्तथा ।

रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की ततः स्मृतः ॥ २७ ॥

एते दशावताराश्च पृथिव्यां परिकीर्तिताः । एतेषां नाममात्रेण ब्रह्महा शुध्यते सदा ॥

प्रातः पठञ्जपन्ध्यायन्विष्णोर्नाम यथा तथा ।

मुच्यते नात्र संदेहः स वै नारायणो भवेत् ॥ २९ ॥

सूत उवाच ।

श्रुत्वा वै नारदो ह्येतद्विस्मयं परमं गतः । उवाच पितरं तत्र किमुक्तं देवसत्तम ॥ ३०॥

देवाः सहस्रशः सन्ति रुद्राः सन्ति सहस्रशः ।
पितरः सन्ति शतशो यक्षाश्च किन्नरास्तथा ॥ ३१ ॥
भूताः प्रेताः पिशाचाश्च ये केचिद्देवयोनयः ।
तेषां नाम्नां च माहात्म्यं श्रुतं दृष्टं तथा न च ॥ ३२ ॥
श्रीविष्णोर्नाममाहात्म्यं यादृशं च श्रुतं मया ।
यस्य वै नाममात्रेण मुच्यते नात्र संशयः ॥ ३३ ॥

किं वै तीर्थकृते देव पृथिव्यामटने कृते । यस्य वै नाम महिमा श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात्
तन्मुखं तु महत्तीर्थं तन्मुखं क्षेत्रमेव च । यन्मुखे रामरामेति तन्मुखं सर्वकामिकम् ॥
कानि वै तस्य नामानि कीर्तनीयानि सुव्रत । तत्सर्वं च विशेषेण मम ब्रूहि पितामह

ब्रह्मोवाच ।

व्यापकोऽयं सदा विष्णुः परमात्मा सनातनः ।
अनादिनिधनः श्रीमान्भूतात्मा भूतभावनः ॥३७॥
यस्मादहं हि संजातः सोऽयं विष्णुः सदाऽवतु ।
सोऽयं कालस्य कालो वै सोऽयं मम तु पूर्वजः ॥ ३८ ॥

अक्षयः पुण्डरीकाक्षो मतिमानव्ययःपुमान् । शेषशायीसदाविष्णुः सहस्रशीर्षा महाप्रभुः
सर्वभूतमयः साक्षाद्विश्वरूपो जनार्दनः । कैटभारिरयं विष्णुर्धाता देवो जगत्पतिः ॥
तस्याहं नामगोत्रं च न वेद्मि पुरुषर्षभ । वेदवाद्यप्यहं तात नाहं ज्ञाता कदाचन ॥४१

अतस्त्वं गच्छ देवर्षे यत्रास्ति किल विश्वराट् ।
स च तत्त्वं मुनिश्रेष्ठ सर्वं ते कथयिष्यति ॥ ४२ ॥

स एव पुरुषः श्रीमान्कैलासाधिपतिः सदा । सर्वेषां विष्णुभक्तानामयं श्रेष्ठः परात्परः
पञ्चवक्त्रो ह्युमाकान्तः सर्वदुःखनिवर्हणः । विश्वेश्वरो विश्वनाथः सर्वदाभक्तवत्सलः
तत्र गच्छ सुरश्रेष्ठ तत्सर्वं कथयिष्यति । पितुर्वचनमाकर्ण्य तत्र गन्तुं प्रचक्रमे ॥४५॥

विज्ञातं नाम माहात्म्यं कैलासभवनं प्रति । यत्र विश्वेश्वरो देवोनित्यं तिष्ठति भूतिदः
ददर्श नारदस्तत्र देवं तं सुरपूजितम् । कैलासशिखरासीनं देवदेवं जगद्गुरुम् ॥ ४७ ॥

पञ्चवक्त्रं दशभुजं त्रिनेत्रं शूलपाणिनम् ।
कपालिनं सखट्वाङ्गं तीक्ष्णशूलासिधारिणम् ॥ ४८ ॥

पिनाकधारिणं भीमं वरदं वृषवाहनम् । भस्माङ्गं व्यालशोभाढ्यं शशाङ्ककृतशेखरम् ॥
नीलजीमूतसङ्काशं सूर्यकोटिसमप्रभम् । क्रीडन्तं तत्र देवेशं गणैश्च परिवारितम् ॥५०
तं ददर्श सुरश्रेष्ठं नारदश्चर्षिसत्तमः । नमश्चक्रे तदा तत्र साष्टाङ्गं दण्डवत्पुनः ॥ ५१ ॥
तं दृष्ट्वा तु महादेवो विस्मयोत्फुल्ललोचनः । वैष्णवानां परः श्रेष्ठःप्राह वाडवसत्तमम्

कस्मादिह समायातो वद देवर्षिसत्तम ! ॥५२॥

नारद उवाच ।

एकस्मिन्नेव काले तु गतोऽहं ब्रह्मणोऽन्तिकम् ।
श्रुतं तत्र मया देव विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ५३ ॥

ब्रह्मणा कथितं तत्र ममाग्रेदेवसत्तम । नाम्नोऽस्य यावतीशक्तिः सा श्रुता ब्रह्मणोमुखात्
तत्र पृष्टं मया पूर्वं विष्णोर्नामसहस्रकम् । तदाहं ब्रह्मणा चोक्तो नाहं जानामि नारद
जानात्ययं महारुद्रस्तरसर्वं कथयिष्यति । महाश्चर्यं तु संप्राप्य ह्यागतस्तव सन्निधौ
अस्मिन्कलियुगे घोरेऽल्पायुषश्चैव मानवाः । विधर्मेषु रता नित्यं नामनिष्ठा न वैपुनः
पाखण्डिनस्तथा विप्रा धर्मेषु विरताः सदा । सन्ध्याहीना व्रतभ्रष्टा दुष्टामलिनरूपिणः
यथाविप्रास्तथा क्षत्त्रा वैश्याश्चैव पुनः पुनः । एवं शूद्रास्तथान्येच नवै भागवतानराः

शूद्रा द्विजातिबाह्याश्च कलौ विश्वेश्वर प्रभो ।
धर्माधर्मौ न जानन्ति हितं वाऽहितमेव वा ॥ ६० ॥
एवं ज्ञात्वा ह्यहं स्वामिन्नागतः सन्निधौ तव ।
पुनश्च नाममाहात्म्यं श्रुतं वै ब्रह्मणोमुखात् ॥ ६१ ॥
त्वं देवः सर्वदेवानां त्वं नाथो मम सर्वदा ।
त्रिपुरारिश्च विश्वात्मा धाता त्वं च पुनः पुनः ॥ ६२ ॥

कथयस्व प्रसादेन विष्णोर्नामसहस्रकम्। सौभाग्यजननं पुंसां परं भक्तिकरं सदा ॥
ब्राह्मणानां ब्रह्मदं च क्षत्रियाणां जयप्रदम्। वैश्यानां धनदं नित्यं शूद्राणां सुखदायकम्
तदहं श्रोतुमिच्छामि त्वत्सकाशान्महेश्वर। त्वं समर्थोऽसि भक्तानां सर्वदा केशवं प्रति
कथयस्व प्रसादेन यदि गोप्यं न सुव्रत। इदं पवित्रं परमं सर्वतीर्थमयं सदा ॥ ६६ ॥

अतो वै श्रोतुमिच्छामि वद विश्वेश्वर! प्रभो!।
श्रुत्वा नारदवाक्यानि विस्मयोत्फुल्ललोचनः।
रोमाञ्चितस्ततो जातो विष्णोर्नामानि संस्मरन् ॥ ६७ ॥

ईश्वर उवाच।

एतद्गोप्यं परं ब्रह्मन्विष्णोर्नामसहस्रकम्। एतच्छ्रुत्वा नरो वत्स न लभेद्दुर्गतिं क्वचित्

कदाचिच्च गते काले पार्वती मामुवाच ह ॥ ६८ ॥

पार्वत्युवाच।

कैलासाधिपते मह्यं कथयस्व यथातथम्। त्वं किं जपसि देवेश परैश्वर्यसमन्वितः ॥

तदा त्वं भस्मलिप्ताङ्गः कृत्तिवासाः सदा कथम्।
जटाधरः कथं जातो वद विश्वेश्वर! प्रभो! ॥ ७० ॥
त्वं देवः सर्वदेवानां त्वं गुरुः सर्वकर्मणाम्।
त्वं पतिर्मम विश्वेश! विश्वनाथ! जगत्प्रभो! ॥ ७१ ॥

महादेव उवाच।

इति पृष्टं मम ब्रह्मन्पार्वत्या च पुनः पुनः। तदा सर्वं मयाऽऽख्यातं तस्याश्चाग्रे विशेषतः
शृणु नारद वक्ष्यामि यदुक्तं पार्वतीं प्रति। येन प्रसन्नो भगवान्मुक्तिदाता न संशयः
ममायं तु पिता साक्षाद्बन्धुश्चैव तु सर्वदा। तस्याहं सर्वदा भक्तो ह्ययं मम पतिः सदा

तदहं संप्रवक्ष्यामि शृणुष्व गदतो मम ॥ ७४ ॥

सूत उवाच।

एवमुक्त्वा नारदाय कथयामास तद्द्विजाः। उमायै यत्पुराप्रोक्तं विष्णोर्नामसहस्रकम्
महेशाच्चैव तत्प्राप्तं कैलासे नारदेन वै। कदाचिद्दैवयोगेन कैलासात्स समागतः ॥

नैमिषारण्यसंज्ञं तु तीर्थं वै परमाद्भुतम् । तत्रस्था ऋषयः सर्वे दृष्ट्वा तं ऋषिसत्तमम्

पूजां चक्रुर्विशेषेण नारदाय महात्मने ।

आगतं नारदं ज्ञात्वा विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥७८॥

पुष्पवृष्टिं प्रचक्रुस्ते वैष्णवा द्विजसत्तमाः । पाद्यमर्घ्यं ततः कृत्वा कृत्वाचारार्त्तिकं ततः

निवेद्य फलमूलानि दण्डवत्पतिना भुवि । ऊचुश्च कृतकृत्याः स्म देशेह्यस्मिन्महामुने

भवतो दर्शनं जातं पवित्रं पापनाशनम् । त्वत्प्रसादाच्च देवर्षे पुराणानि श्रुतानि च ॥

ब्रह्मन्केन प्रकारेण सर्वपापक्षयो भवेत् । विना दानेन तपसा विना तीर्थतपोमखैः ॥८२

विनादानैर्विना ध्यानैर्विना चेन्द्रियनिग्रहैः । विना शास्त्रसमूहैश्च कथं मुक्तिरवाप्यते ॥

नारद उवाच ।

कैलासशिखरासीनं देवदेवं जगद्गुरुम् । प्रणिपत्य महादेवं पर्यपृच्छदुमा प्रियम् ॥८४

पार्वत्युवाच ।

भगवंस्त्वं परो देवः सर्वज्ञः सर्वपूजितः । स त्वमभ्यर्च्यते देवैरिन्द्रसूर्यादिकैरपि ॥८५

लभन्तेऽभिमतां सिद्धिं सर्वेऽभ्यर्च्य वरप्रदम् ।

त्वं जन्ममृत्युरहितः स्वयम्भूः सर्वशक्तिमान् ॥ ८६ ॥

सदा ध्यायसि किं त्वामिन्दिवाला मदनान्तकः ।

तपश्चरसि कस्मात्त्वं जटिलो भस्मधूसरः ॥ ८७ ॥

किं वा जपसि देवेश परं कौतूहलं हि मे । अनुग्राह्यायदा तेऽस्मि तत्त्वं कथय सुव्रतम्

महादेव उवाच ।

नेदं कस्यापि कथितं गोपनीयमिदं मम ।

किं तु वक्ष्यामि ते भद्रे ! त्वं भक्ताऽसि प्रियाऽसि मे ॥ ८९ ॥

पुरा सत्ययुगे देवि विशुद्धमतयोऽखिलाः । यजन्ति विष्णुमेवैकं ज्ञात्वा सर्वेश्वरेश्वरम्

प्रयान्ति परमामृद्धिमैहिकामुष्मिकीं प्रिये ।

यां न प्राप्ताः सुराः सर्वे ऋषयः क्लेशसंयुताः ॥ ९१ ॥

ते तां गतिं प्रपद्यन्ते ये नामकृतनिश्चयाः । मन्मुखादपि संश्रुत्य देवा विष्णुबहिर्मुखाः ॥

वेदैः पुराणैः सिद्धान्तैर्भिन्नैर्विभ्रान्तचेतसः ।

निश्चयं नाधिगच्छन्ति किं तत्त्वं किं परं पदम् ॥ ९३ ॥

तुलापुरुषदानाद्यैरश्वमेधादिभिर्मखैः । वाराणसी प्रयागादितीर्थस्नानादिभिः प्रिये ॥ ९४

गयाश्राद्धादिभिः पित्र्यैर्वेदपाठादिभिर्जपैः । तपोभिरुग्रैर्नियमैर्यमैर्भूतदयादिभिः ॥ ९५॥

गुरुशुश्रूषणैः सेव्यैर्धर्मैर्वर्णाश्रमान्वितैः । ज्ञानध्यानादिभिः सम्यक्चरितैर्जन्मकोटिभिः

न यान्ति तत्परं श्रेयो विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् । सर्वभावैः समाश्रित्य पुराणपुरुषोत्तमम्

अनन्यगतयो मर्त्या भोगिनोऽपि परन्तपे । ज्ञानवैराग्यरहिता ब्रह्मचर्यादिवर्जिताः ॥

सर्वधर्मोज्झिता विष्णोर्नाममात्रैकजल्पिनः ।

सुखेन यां गतिं यान्ति न तां सर्वेऽपि धार्मिकाः ॥ ९९ ॥

स्मर्त्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्तव्यो न जातुचित् ।

सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतस्यैव विधिङ्कराः ॥ १०० ॥

किं तु ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च निरंहसः । निर्भयं विष्णुनाम्नैव यथेष्टं पदमागताः ॥

अलब्ध्वा चात्मनः पूजां सम्यगाराधितो हरिः ।

मयाऽस्मादपि च श्रेष्ठं वाञ्छिताऽहं कृतात्मना ॥ १०२ ॥

ततः साक्षाज्जगन्नाथः प्रसन्नो भक्तवत्सलः । अंशांशेनात्मनैवैतान्पूजयामास केशवः ॥

देवान्पितॄन्द्विजान्हव्यकव्याद्यैः करुणामयः । ततः प्रभृति पूज्यन्ते त्रैलोक्ये सचराचरे

ब्रह्मादयः सुराः सर्वे प्रसादाच्छार्ङ्गधन्वनः ।

मां चोवाच यथा मत्तः पूज्यः श्रेष्ठो भविष्यसि ॥ १०५ ॥

त्वामाराध्य तथा शम्भो ग्रहीष्यामि वरं सदा ।

द्वापरादौ युगे भूत्वा कलया मानुषादिषु ॥ १०६ ॥

स्वागमैः कल्पितैस्त्वं च जनान्मद्विमुखान्कुरु ।

मां च गोपय येन स्यात्सृष्टिरेषोत्तरोत्तरा ॥ १०७ ॥

एष मोहं सृजाम्याशु योजनान्मोहयिष्यति । त्वं च रुद्रमहाबाहो मोहशास्त्राणि कारय

अतथ्यानि वितथ्यानि दर्शयस्व महाभुज । प्रकाशं कुरु चात्मानमप्रकाशं च मां कुरु ॥

ततस्तं प्रणिपत्याहमवोचं परमेश्वरम् । ब्रह्महत्यासहस्रस्य पापं शाम्येत्कथंचन ॥११०
न पुनस्त्वदविज्ञानं कल्पकोटिशतैरपि । तस्मान्मया कृता स्पर्धा पवित्रः स्यां कथंहरे
तन्मे कथय गोविन्द प्रायश्चित्तं यदिच्छसि । ततः प्रसन्नो भगवानवोचत्तत्त्वमात्मनः
येनाहमधिकस्तस्मादभवं नगनन्दिनि । तमेव तपसा नित्यं भजामि स्तौमि चिन्तये
परमो विष्णुरेवैकस्तज्ज्ञानं मुक्तिसाधनम् । शास्त्राणां निर्णयस्त्वेष तदन्यन्मोहनायच

ज्ञानं विना च या मुक्तिः साम्यं च मम विष्णुना ।
तीर्थादि मात्रतो ज्ञानं ममाधिक्यं च विष्णुतः ॥ ११५ ॥
अभेदश्चास्मदादीनां मुक्तानां हरिणा तथा ।
इत्यादि सर्वं मोहाय कथ्यते सति नान्यथा ॥
तेनाद्वितीयमहिमो जगत्पूज्योऽस्मि पार्वति ! ॥११६॥

पार्वत्युवाच ।

तन्मे कथय देवेश यथाऽहमपि शङ्कर । सर्वेश्वरी निरुपमा तव स्यां सदृशी प्रभो ! ॥

महादेव उवाच ।

साधु साधु त्वया पृष्टं विष्णोर्भगवतः प्रिये ! ।
नाम्नां सहस्रं वक्ष्यामि मुख्यं त्रैलोक्यमुक्तिदम् ॥ ११८ ॥

अस्य श्रीविष्णोर्नामसहस्रस्तोत्रस्य श्रीमहादेवऋषिरनुष्टुप्छन्दः परमात्मा देवता ॥
ह्रीं बीजं श्रीं शक्तिः क्लीं कीलकं चतुर्वर्गधर्मकामार्थमोक्षार्थे जपे विनियोगः ॥
ॐ वासुदेवाय विद्महे महाहंसाय धीमहि ॥ तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ॥ अङ्गन्यास-करन्यासौ विधिपूर्वं यदा पठेत्। तत्फलं कोटिगुणितं भवत्येव न संशयः

श्री वासुदेवः परं ब्रह्म इति हृदये । मूलप्रकृतिरिति शिरसि । महावराह इति शिखायाम् । सूर्यवंशध्वज इति कवचम् । ब्रह्मादिकाम्यललितजगदाश्चर्यशैशव इति नेत्रयोः । यथार्थखण्डिताशेष इत्यस्त्रम् । नमोनारायणायेति-न्यासं सर्वत्रकारयेत् । ओं नमोनारायणाय पुरुषाय महात्मने । विशुद्धसत्त्वधिष्ण्याय महाहंसाय धीमहि । तन्नोदेवःप्रचोदयात । ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः । क्लीं कृष्णाय विद्महे ह्रीं रामाय धीमहि

तन्नो देवः प्रचोदयात्। क्ष्रौं नृसिंहाय विद्महे श्रींश्रीकण्ठाय धीमहि। तन्नो विष्णुः
प्रचोदयात्। ओं वासुदेवाय विद्महे देवकीसुताय धीमहि। तन्नः कृष्णः प्रचोदयात्।
ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः। क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय नमः स्वाहा।

इति मन्त्रं समुच्चार्य जपेद्वा विष्णुमव्ययम्।
श्रीनिवासं जगन्नाथं तस्य स्तोत्रं पठेत्सुधीः॥ १२०॥

ॐ वासुदेवः परं ब्रह्म परमात्मा परात्परः। परंधाम परंज्योतिः परं तत्त्वं परं पदम्॥
परःशिवः परो ध्येयः परं ज्ञानं परा गतिः। परमार्थः परंश्रेयः परानन्दः परोदयः॥१२२
परोऽव्यक्तात्परं व्योम परमर्द्धिः परेश्वरः। निरामयो निर्विकारो निर्विकल्पो निराश्रयः

निरञ्जनो निरातङ्को निर्लेपो निरवग्रहः।
निर्गुणो निष्कलोऽनन्तोऽभयो चिन्त्योऽचलोऽञ्चितः॥ १२४॥
अतीन्द्रियोऽमितोऽपारोऽनीशोऽनीहोऽव्ययोऽक्षयः।
सर्वज्ञः सर्वगः सर्वः सर्वदः सर्वभावनः॥ १२५॥
सर्वशास्ता सर्वसाक्षी पूज्यः सर्वस्य सर्वदृक्।
सर्वशक्तिः सर्वसारः सर्वात्मा सर्वतोमुखः॥ १२६॥

सर्वावासः सर्वरूपः सर्वादिः सर्वदुःखहा। सर्वार्थः सर्वतोभद्रः सर्वकारणकारणम्॥
सर्वातिशयितः सर्वाध्यक्षः सर्वसुरेश्वरः। षड्विंशको महाविष्णुर्महागुह्यो महाविभुः॥
नित्योदितो नित्ययुक्तो नित्यानन्दः सनातनः। मायापतिर्योगपतिः कैवल्यपतिरात्मभूः॥
जन्ममृत्युजरातीतःकालातीतो भवातिगः। पूर्णःसत्यः शुद्धबुद्धस्वरूपो नित्यचिन्मयः

योगप्रियो योगगम्यो भवबन्धैकमोचकः।
पुराणपुरुषः प्रत्यक्चैतन्यः पुरुषोत्तमः॥ १३१॥

वेदान्तवेद्यो दुर्ज्ञेयस्तापत्रयविवर्जितः। ब्रह्मविद्याश्रयो नाद्यः स्वप्रकाशः स्वयं प्रभुः॥
सर्वोपेय उदासीनः प्रणवः सर्वतः समः। सर्वानवद्यो दुष्प्राप्यस्तुरीयस्तमसः परः॥
कूटस्थः सर्वसंश्लिष्टो वाङ्मनोगोचरातिगः। सङ्कर्षणः सर्वहरः कालः सर्वभयङ्करः
अनुल्लङ्घ्यश्चित्रगतिर्महारुद्रो दुरासदः। मूलप्रकृतिरानन्दः प्रद्युम्नो विश्वमोहनः॥

महामायो विश्वबीजं परशक्तिः सुखैकभूः । सर्वकाम्योऽनन्तलीलः सर्वभूतवशङ्करः ॥

अनिरुद्धः सर्वजीवो हृषीकेशो मनःपतिः ।
निरुपाधिप्रियो हंसोऽक्षरः सर्वनियोजकः ॥ १३७ ॥

ब्रह्मप्राणेश्वरः सर्वभूतभृद्देहनायकः । क्षेत्रज्ञः प्रकृतिः स्वामी पुरुषो विश्वसूत्रधृत् ॥१३८

अन्तर्यामी त्रिधामान्तः साक्षी त्रिगुण ईश्वरः ।
योगिगम्यः पद्मनाभः शेषशायी श्रियः पतिः ॥ १३९ ॥
श्रीसदोपास्यपादाब्जो नित्यश्रीः श्रीनिकेतनः ।
नित्यं वक्षस्थलस्थश्रीः श्रीनिधिः श्रीधरो हरिः ॥ १४० ॥
वश्यश्रीर्निश्चलः श्रीदो विष्णु क्षीराब्धिमन्दिरः ।
कौस्तुभोद्भासितोरस्को माधवो जगदार्तिहा ॥ १४१ ॥
श्रीवत्सवक्षा निःसीमकल्याणगुणभाजनम् ।
पीताम्बरो जगन्नाथो जगत्त्राता जगत्पिता ॥ १४२ ॥

जगद्बन्धुर्जगत्स्रष्टा जगद्धाता जगन्निधिः । जगदेकस्फुरद्वीर्योऽनहंवादी जगन्मयः ॥
सर्वाश्चर्यमयः सर्वसिद्धार्थः सर्वरञ्जितः । सर्वामोघोद्यमो ब्रह्मरुद्राद्युत्कृष्टचेतनः ॥१४४॥
शम्भोः पितामहो ब्रह्मपिता शक्राद्यधीश्वरः । सर्वदेवप्रियः सर्वदेवमूर्तिरनुत्तमः ॥१४५॥
सर्वदेवैकशरणं सर्वदेवैकदैवतम् । यज्ञभुग्यज्ञफलदो यज्ञेशो यज्ञभावनः ॥ १४६ ॥
यज्ञत्राता यज्ञपुमान्वनमाली द्विजप्रियः । द्विजैकमानदो विप्रकुलदेवोऽसुरान्तकः ॥
सर्वदुष्टान्तकृत्सर्वसज्जनानन्यपालकः । सप्तलोकैकजठरः सप्तलोकैकमण्डनः ॥१४८॥

सृष्टिस्थित्यन्तकृच्चक्री शार्ङ्गधन्वा गदाधरः ।
शङ्खभृन्नन्दकी पद्मपाणिर्गरुडवाहनः ॥ १४९ ॥

अनिर्देश्यवपुः सर्वपूज्यस्त्रैलोक्यपावनः । अनन्तकीर्तिर्निःसीमपौरुषः सर्वमङ्गलः ॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशो यमकोटिदुरासदः । मयकोटिजगत्स्रष्टा वायुकोटिमहाबलः ॥१५१

कोटीन्दुजगदानन्दी शम्भुकोटि महेश्वरः ।
कन्दर्पकोटिलावण्यो दुर्गाकोट्यरिमर्दनः ॥ १५२ ॥

समुद्रकोटिगम्भीरस्तीर्थकोटिसमाह्वयः ।
कुबेरकोटिलक्ष्मीवाञ्छक्रकोटिविलासवान् ॥ १५३ ॥
हिमवत्कोटिनिष्कम्पः कोटिब्रह्माण्डविग्रहः । कोट्यश्वमेधपापघ्नो यज्ञकोटिसमार्चनः
सुधाकोटिस्वास्थ्यहेतुः कामधुक्कोटिकामदः ।
ब्रह्मविद्याकोटिरूपः शिपिविष्टः शुचिश्रवाः ॥ १५५
विश्वम्भरस्तीर्थपादः पुण्यश्रवणकीर्तनः । आदिदेवो जगज्जैत्रो मुकुन्दः कालनेमिहा ॥
वैकुण्ठोऽनन्तमाहात्म्यो महायोगेश्वरोत्सवः ।
नित्यतृप्तो लसद्भावो निःशङ्को नरकान्तकः ॥ १५७ ॥
दीनानाथैकशरणं विश्वैकव्यसनापहः । जगत्कृपाक्षमो नित्यं कृपालुः सज्जनाश्रयः ॥
योगेश्वरः सदोदीर्णो वृद्धिक्षयविवर्जितः । अधोक्षजो विश्वरेताः प्रजापतिशताधिपः ॥
शक्रब्रह्मार्चितपदः शम्भुब्रह्मोर्ध्वधामगः । सूर्यसोमेक्षणो विश्वभोक्ता सर्वस्य पारगः ॥
जगत्सेतुर्धर्मसेतुधरो विश्वधुरन्धरः ।
निर्ममोऽखिललोकेशो निःसङ्गोऽद्भुत भोगवान् ॥ १६१ ॥
वश्यमायो वश्यविश्वो विष्वक्सेनः सुरोत्तमः । सर्वश्रेयः पतिर्दिव्यानर्घ्यभूषणभूषितः
सर्वलक्षणलक्षण्यः सर्वदैत्येन्द्रदर्पहा । समस्तदेवसर्वस्वं सर्वदैवतनायकः ॥ १६३ ॥
समस्तदेवकवचं सर्वदेवशिरोमणिः । समस्तदेवतादुर्गः प्रपन्नाशनिपञ्जरः ॥ १६४ ॥
समस्तभयहन्नामा भगवान्विष्टरश्रवाः । विभुःसर्वहितोदर्को हतारिः स्वर्गतिप्रदः ॥
सर्वदैवतजीवेशो ब्राह्मणादि नियोजकः । ब्रह्मशम्भुपरार्धायुर्ब्रह्मज्येष्ठः शिशुःस्वराट् ॥
विराड् भक्तपराधीनः स्तुत्यः स्तोत्रार्थसाधकः ।
परार्थकर्त्ता कृत्यज्ञः स्वार्थकृत्यसदोज्झितः ॥ १६७ ॥
सदानन्दः सदाभद्रः सदाक्षान्तः सदाशिवः । सदाप्रियः सदातुष्टःसदापुष्टःसदार्चितः ॥
सदापूतः पावनाग्र्यो वेदगुह्यो वृषाकपिः । सहस्रनामा प्रियुगश्चतुर्मूर्तिश्चतुर्भुजः ॥१६९
नारायणो मुञ्जकेशः सर्वयोगविनिःसृतः ॥ १७० ॥
वेदसारो यज्ञसारः सामसारस्तपोनिधिः ।

साध्यः श्रेष्ठः पुराणर्षिर्निष्ठाशान्तिः परायणम् ॥ १७१ ॥
शिवत्रिशूलविध्वंसी श्रीकण्ठैकवरप्रदः । नरः कृष्णो हरिर्धर्मनन्दनो धर्मजीवनः ॥१७२
आदिकर्त्ता सर्वसत्यः सर्वस्त्रीरत्नदर्पहा । त्रिकालजितकन्दर्प उर्वशीसृण्मुनीश्वरः ॥
आद्यः कविर्हयग्रीवः सर्ववागीश्वरेश्वरः । सर्वदेवमयो ब्रह्मा गुरुर्वागीश्वरीपतिः ॥१७४
अनन्तविद्याप्रभवो मूलाविद्याविनाशकः । सर्वज्ञदो जगज्जाड्यनाशको मधुसूदनः ॥१७५
अनेकमन्त्रकोटिशः शब्दब्रह्मैकपारगः । आदिविद्वान्वेदकर्त्ता वेदात्मा श्रुतिसागरः ॥
ब्रह्मार्थवेदहरणः सर्वविज्ञानजन्मभूः । विद्याराजो ज्ञानमूर्तिर्ज्ञानसिन्धुरखण्डधीः ॥१७७
मत्स्यदेवो महाश्रृङ्गो जगद्बीजवहित्रदृक् । लीलाव्याप्ताखिलाम्भोधिश्चतुर्वेदप्रवर्त्तकः
आदिकूर्मोऽखिलाधारस्तृणीकृतजगद्भरः । अमरीकृतदेवौघः पीयूषोत्पत्तिकारणम् ॥
आत्माधारो धराधारो यज्ञाङ्गो धरणीधरः ।
हिरण्याक्षहरः पृथ्वीपतिः श्राद्धादिकल्पकः ॥ १८० ॥
समस्तपितृभीतिघ्नः समस्तपितृजीवनम् । हव्यकव्यैकभुग्घव्यकव्यैकफलदायकः ॥
रोमान्तर्लीनजलधिः क्षोभिताशेषसागरः । महावराहो यज्ञघ्नध्वंसको याज्ञिकाश्रयः॥
श्रीनृसिंहो दिव्यसिंहः सर्वानिष्टार्थदुःखहा । एकवीरोऽद्भुतबलो यन्त्रमन्त्रैक भञ्जनः ॥
ब्रह्मादिदुःसहज्योतिर्युगान्ताग्न्यतिभीषणः ।
कोटिवज्राधिकनखो जगद्दुष्प्रेक्ष्यमूर्तिधृत् ॥ १८४ ॥
मातृचक्रप्रमथनो महामातृगणेश्वरः । अचिन्त्यामोघवीर्याढ्यः समस्तासुरघस्मरः ॥
हिरण्यकशिपुच्छेदी कालः सङ्कर्षणीपतिः । कृतान्तवाहनस्सद्यस्समस्तभयनाशनः ॥
सर्वविघ्नान्तकः सर्वसिद्धिदः सर्वपूरुषः । समस्तपातकध्वंसी सिद्धमन्त्राधिकाह्वयः ॥
भैरवेशो हरार्तिघ्नः कालकोटिदुरासदः । दैत्यगर्भस्स्रविनामास्फुटद्ब्रह्माण्डगर्जितः ॥
स्मृतमात्राखिलत्राताऽद्भुतरूपो महाहरिः। ब्रह्मचर्यशिरः पिण्डी दिक्पालोऽर्धाङ्गभूषणः
द्वादशार्कशिरो दामा रुद्रशीर्षैकनूपुरः । योगिनीग्रस्तगिरिजात्राता भैरवतर्जकः ॥१९०
वीरचक्रेश्वरोऽत्युग्रो यमारिः कालशम्बरः ।
क्रोधेश्वरो रुद्रचण्डी परिवारादिदुष्टभुक् ॥ १९१ ॥

सर्वाक्षोभ्यो मृत्युमृत्युः कालमृत्युनिवर्त्तकः ।
असाध्यसर्वरोगघ्नः सर्वदुर्ग्रहसौम्यकृत् ॥ १९२ ॥
गणेशकोटिदर्पघ्नो दुःसहाशेषगोत्रहा । देवदानवदुर्दर्शो जगद्भयदभीषणः ॥ १९३ ॥
समस्तदुर्गतित्राता जगद्भक्षकभक्षकः । उग्रेशोऽम्बरमार्जारः कालमूषकभक्षकः ॥ १९४॥
अनन्तायुधदोर्दण्डी नृसिंहो वीरभद्रजित् । योगिनीचक्रगुह्येशः शक्रारिपशुमांसभुक् ॥
रुद्रो नारायणो मेषरूपशङ्करवाहनः । मेषरूपशिवत्राता दुष्टशक्तिसहस्रभुक् ॥ १९६ ॥
तुलसीवल्लभो वीरो वामाचारोऽखिलेष्टदः । महाशिवः शिवारूढो भैरवैककपालधृत् ॥
क्लि*ल्लीचक्रेश्वरः शक्रदिव्यमोहनरूपदः । गौरीसौभाग्यदो मायानिधिर्मायाभयापहः ॥
ब्रह्मतेजोमयोब्रह्म श्रीमयश्च त्रयीमयः । सुब्रह्मण्यो बलिध्वंसी वामनोऽदितिदुःखहा ॥
उपेन्द्रो नृपतिर्विष्णुः कश्यपान्वयमण्डनः ।
बलिस्वराज्यदः सर्वदेवविप्रान्नदोऽच्युतः ॥ २०० ॥
उरुक्रमस्तीर्थपादस्त्रिपदस्थस्त्रिविक्रमः । व्योमपादःस्वपादाम्भः पवित्रितजगत्त्रयः ॥
ब्रह्मेशाद्यभिवन्द्याङ्घ्रिर्द्रुतधर्माङ्घ्रिधावनः। अचिन्त्याद्भुतविस्तारो विश्ववृक्षोमहाबलः
राहुमूर्धापराङ्गच्छिद्भृगुपत्नीशिरोहरः । पापत्रस्तः सदापुण्यो दैत्याशानित्यखण्डनः
पूरिताखिलदेवाशो विश्वार्थैकावतारकृत् ।
स्वमायानित्यगुप्तात्मा भक्तचिन्तामणिः सदा ॥ २०४ ॥
वरदः कार्तवीर्यादिराजराज्यप्रदोऽनघः । विश्वश्लाघ्यामिताचारो दत्तात्रेयो मुनीश्वरः
पराशक्ति सदाश्लिष्टो योगानन्दः सदोन्मदः ।
समस्तेन्द्रारितेजोहृत्परमामृतपद्मपः ॥ २०६ ॥
अनसूयागर्भरत्नं भोगमोक्षसुखप्रदः । जमदग्निकुलादित्यो रेणुकाद्भुतशक्तिकृत् ॥२०७॥
मातृहत्यादिनिर्लेपः स्कन्दजिद्विप्रराज्यदः । सर्वक्षत्रान्तकृद्वीर दर्पहा कार्त्तवीर्यजित् ॥
सप्तद्वीपवतीदाता शिवार्चकयशःप्रदः । भीमः परशुरामश्च शिवाचार्यैकविश्वभुक् ॥
शिवाखिलज्ञानकोशो भीष्माचार्योऽग्निदैवतः। द्रोणाचार्यगुरुर्विश्वजैत्रधन्वाकृतान्तजित्

---

* 'हिल्ली चक्रेश्वरः' इत्यपि पाठः ।

अद्वितीयतपोमूर्त्तिर्ब्रह्मचर्यैकदक्षिणः । मनुः श्रेष्ठः सतांसेतुर्महीयान्वृषभो विराट् ॥
आदिराजः क्षितिपिता सर्वरत्नैकदोहकृत् । पृथुर्जन्माद्येकदक्षो गीःश्रीःकीर्तिस्वयं वृतः ॥
जगद्वृत्तिप्रदश्चक्रवर्त्तिश्रेष्ठोऽद्वयास्त्रधृत् । सनकादिमुनिप्राप्य भगवद्भक्तिवर्धनः ॥२१३॥
वर्णाश्रमादिधर्माणां कर्त्ता वक्ता प्रवर्त्तकः । सूर्यवंशध्वजो रामो राघवः सद्गुणार्णवः
काकुत्स्थो वीर*राड्राजा राजधर्मधुरन्धरः । नित्यस्वस्थाश्रयः सर्वभद्रग्राही शुभैकदृक्
नररत्नं रत्नगर्भो धर्माध्यक्षो महानिधिः । सर्वश्रेष्ठाश्रयः सर्वशास्त्रार्थग्रामवीर्यवान् ॥
जगद्वशो दाशरथिः सर्वरत्नाश्रयो नृपः । समस्तधमसूः सर्वधर्मद्रष्टाऽखिलाघहा ॥
अतीन्द्रो ज्ञानविज्ञानपारदश्च क्षमाम्बुधिः । सर्वप्रकृष्टशिष्टेष्टोहर्षशोकाद्यनाकुलः ॥२१८
पित्राज्ञात्यक्तसाम्राज्यः सम्पन्नोदयनिर्भयः । गुहादेशार्पितैश्वर्यः शिवस्पर्धाजटाधरः ॥
चित्रकूटाप्तरत्नाद्रिर्जगदीशो वनेचरः । यथेष्टामोघसर्वास्त्रो देवेन्द्रतनयाक्षिहा ॥ २२० ॥
ब्रह्मेन्द्रादिनतैषीको मारीचघ्नो विराधहा । ब्रह्मशापहताशेषदण्डकारण्यपावनः ॥२२१॥
चतुर्दशसहस्रोग्ररक्षोघ्नैकशरैकधृत् । खरारिस्त्रिशिरोहन्ता दूषणघ्नो जनार्दनः ॥२२२॥

जटायुषोऽग्निगतिदोऽगस्त्यसर्वस्वमन्त्रराट् ।
लीलाधनुः कोट्यपास्तदुन्दुभ्यस्थिमहाचयः ॥ २२३ ॥

सप्ततालव्यधाकृष्टध्वस्तपातालदानवः । सुग्रीवराज्यदो हीनमनसैवाऽभयप्रदः ॥२२४॥
हनुमद्रुद्रमुख्येश समस्तकपिदेहभृत् । सनागदैत्यबाणैकव्याकुलीकृतसागरः ॥ २२५ ॥
सम्लेच्छकोटिबाणैकशुष्कनिर्दग्धसागरः । समुद्राद्भुतपूर्वैकबद्धसेतुर्यशोनिधिः ॥२२६
असाध्यसाधको लङ्कासमूलोत्कर्षदक्षिणः । वरदृप्तजगच्छल्यपौलस्त्यकुलकृन्तनः ॥२२७
रावणिघ्नः प्रहस्तच्छित्कुम्भकर्णभिदुग्रहा । रावणैकशिरश्छेत्ता निःशङ्केन्द्रैकराज्यदः ॥
स्वर्गास्वर्गत्वविच्छेदी देवेन्द्रानिन्द्रताहरः । रक्षोदेवत्वहृद्धर्माधर्मत्वघ्नः पुरुष्टुतः ॥
नतिमात्रदशास्यारिर्दत्तराज्यविभीषणः । सुधावृष्टिमृताशेषस्वसैन्योज्जीवनैककृत् ॥२३०
देवब्राह्मणनामैकधाता सर्वामरार्चितः । ब्रह्मसूर्येन्द्ररुद्रादिवृन्दार्पितसतीप्रियः ॥ २३१ ॥
अयोध्याखिलराजाग्र्यः सर्वभूतमनोहरः । स्वामितुल्यकृपादण्डो हीनोत्कृष्टैकसत्प्रियः

---

* 'वीरराडार्य राजा' इत्यपि पाठः ।

स्वपक्षादिन्यायदर्शी हीनार्थाधिकसाधकः।
व्याधव्याजानुचितकृत्तारकोऽखिलतुल्यकृत् ॥ २३३ ॥
पार्वत्याधिक्यमुक्तात्मा प्रियात्यक्तः स्मरारिजित्।
साक्षात्कुशलवच्छन्नेन्द्रादितातोऽपराजितः ॥ २३४ ॥
कोशलेन्द्रो वीरबाहुः सत्यार्थत्यक्तसोदरः। शरसंधाननिर्धूतधरणीमण्डलोदयः ॥२३५
ब्रह्मादिकाम्यसांनिध्यसनाथीकृतदैवतः। ब्रह्मलोकाप्तचाण्डालाद्यशेषप्राणिसार्थकः ॥
स्वनीतगर्दभाश्वादिश्चिरायोध्यावनैककृत्। रामद्वितीयः सौमित्रिर्लक्ष्मणः प्रहतेन्द्रजित्
विष्णुभक्ताप्तरामाङ्घ्रिपादुकाराज्यनिर्वृतः। भरतोऽसह्यगन्धर्वकोटिघ्नो लवणान्तकः
शत्रुघ्नो वैद्यराजायुर्वेदगर्भौषधीपतिः। नित्यामृतकरो धन्वन्तरिर्यज्ञो जगद्धरः ॥२३९॥
सूर्यारिघ्नः सुराजीवो दक्षिणेशो द्विजप्रियः। छिन्नमूर्धापदेशार्कः शेषाङ्गस्थापितामरः
विश्वार्थाशेषकृद्राहुशिरश्छेत्ता क्षताकृतिः। वाजपेयादिनामाग्निर्वेदधर्मपरायणः ॥२४१
श्वेतद्वीपपतिः साङ्ख्यप्रणेता सर्वसिद्धिराट्। विश्वप्रकाशितज्ञानयोगमोहतमिस्रहा ॥
देवहूत्यात्मजः सिद्धः कपिलः कर्दमात्मजः।
योगस्वामी ध्यानभङ्गसगरात्मजभस्मकृत् ॥ २४३ ॥
धर्मो वृषेन्द्रः सुरभीपतिः शुद्धात्मभावितः। शम्भुस्त्रिपुरदाहैकस्थैर्यविश्वरथोद्वहः ॥
भक्तशम्भुजितो दैत्यामृतवापीसमस्तपः। महाप्रलयविश्वैकद्वितीयाखिलनागराट् ॥
शेषदेवः सहस्राक्षः सहस्रास्यशिरोभुजः। फणामणिकणाकारयोजिताब्ध्यम्बुदक्षितिः
कालाग्निरुद्रजनको मुसलास्त्रो हलायुधः। नीलाम्बरो वारुणीशो मनोवाक्कायदोषहा ॥
असन्तोषो दृष्टिमात्रपातितैकदशाननः। बलिसंयमनो घोरो रौहिणेयः प्रलम्बहा ॥२४८
मुष्टिकघ्नो द्विविदहा कालिन्दीकर्षणोबलः। रेवतीरमणः पूर्वभक्तिखेदाच्युताग्रजः ॥
देवकीवसुदेवाह्वकश्यपादितिनन्दनः। वार्ष्णेयः सात्वतां श्रेष्ठः शौरिर्यदुकुलोद्वहः ॥
नराकृतिः परंब्रह्म सव्यसाची वरप्रदः। ब्रह्मादिकाम्यलालित्यजगदाश्चर्यशैशवः ॥२५१
पूतनाघ्नः शकटभिद्यमलार्जुनभञ्जनः। वातासुरारिः केशिघ्नो धेनुकारिर्गवीश्वरः ॥२५२
दामोदरो गोपदेवो यशोदानन्ददायकः। कालीयमर्दनः सर्वगोपगोपीजनप्रियः ॥

लीलागोवर्धनधरो गोविन्दो गोकुलोत्सवः। अरिष्टमथनः कामोन्मत्तगोपीविमुक्तिदः
सद्यः कुवलयापीडघाती चाणूरमर्दनः। कंसारिरुग्रसेनादिराज्यव्यापारितापरः ॥२५५
सुधर्माङ्कितभूलोको जरासन्धबलान्तकः। त्यक्तभग्नजरासन्धो भीमसेनयशःप्रदः ॥

सान्दीपनमृतापत्यदाता कालान्तकादिजित्।
समस्तनारकित्राता सर्वभूपतिकोटिजित् ॥ २५७ ॥

रुक्मिणीरमणो रुक्मिशासनो नरकान्तकः। समस्तसुन्दरीकान्तो मुरारिर्गरुडध्वजः
एकाकी जितरुद्रार्कमरुदाद्यखिलेश्वरः। देवेन्द्रदर्पहा कल्पद्रुमालङ्कृतभूतलः ॥ २५९ ॥
बाणबाहुसहस्रच्छिन्नद्यादिगणकोटिजित्। लीलाजितमहादेवो महादेवैकपूजितः ॥
इन्द्रार्थार्जुर्ननिर्भङ्गजयदः पाण्डवैकधृत्। काशिराजशिरश्छेत्ता रुद्रशक्त्यैकमर्दनः ॥२६१
विश्वेश्वरप्रसादाक्षः काशीराजसुतार्दनः। शम्भुप्रतिज्ञाविध्वंसी काशीनिर्दग्धनायकः
काशीशगणकोटिघ्नो लोकशिक्षाद्विजार्चकः। शिवतीव्रतपोवश्यः पुरा शिववरप्रदः ॥
शङ्करैकप्रतिष्ठाधृत्स्वांशशङ्करपूजकः। शिवकन्याव्रतपतिः कृष्णरूपशिवारिहा ॥२६४॥
महालक्ष्मीवपुर्गौरीत्राता वैदलवृत्रहा। स्वधाममुचुकुन्दैकनिष्कालयवनेष्टकृत् ॥२६५
यमुनापतिरानीतपरिलीनद्विजात्मजः। श्रीदामरङ्कभक्तार्थभूम्यानीतेन्द्रवैभवः ॥२६६॥

दुर्वृत्तशिशुपालैकमुक्तिदो द्वारकेश्वरः।
आचाण्डालादिकप्राप्य द्वारकानिधिकोटिकृत् ॥ २६७ ॥

अक्रूरोद्धवमुख्यैकभक्तस्वच्छन्दमुक्तिदः। सबालस्त्रीजलक्रीडामृतवापीकृतार्णवः ॥२६८
ब्रह्मास्त्रदग्धगर्भस्थपरीक्षिज्जीवनैककृत्। परिलीनद्विजसुतानेताऽर्जुनमदापहः ॥२६९॥
गूढमुद्राकृतिग्रस्तभीष्माद्यखिलकौरवः। यथार्थखण्डिताशेषदिव्यास्त्रपार्थमोहहृत् ॥
गर्भशापच्छलध्वस्तयादवोर्वीभयापहः। जराव्याधारिगतिदः स्मृतिमात्राखिलेष्टदः ॥

कामदेवो रतिपतिर्मन्मथः शम्बरान्तकः।
अनङ्गो जितगौरीशो रतिकान्तः सदेप्सतः (सदेप्सितः) ॥ २७२ ॥

पुष्पेषुर्विश्वविजयीस्मरः कामेश्वरीप्रियः। उषापतिर्विश्वकेतुर्विश्वदृप्तोऽधिपूरुषः ॥२७३
चतुरात्मा चतुर्व्यूहश्चतुर्युगविधायकः। चतुर्वेदैकविश्वात्मा सर्वोत्कृष्टांशकोटिसूः ॥

आश्रमात्मा पुराणर्षिर्व्यासः शाखासहस्रकृत् । महाभारतनिर्माता कवीन्द्रो बादरायणः ॥
कृष्णद्वैपायनः सर्वपुरुषार्थैकबोधकः । वेदान्तकर्ता ब्रह्मैकव्यञ्जकः पुरुवंशकृत् ॥ २७६॥
बुद्धो ध्यानजिताशेषदेवदेवो जगत्प्रियः । निरायुधो जगज्जैत्रः श्रीधरो दुष्टमोहनः ॥
दैत्यवेदबहिष्कर्ता वेदार्थश्रुतिगोपकः । शौद्धोदनिर्दृष्टदिष्टः सुखदः सदसस्पतिः ॥२७८॥

यथायोग्याखिलकृपः सर्वशून्योऽखिलेष्टदः ।
चतुष्कोटि पृथक्तत्त्वं प्रज्ञापारमितेश्वरः ॥ २७९ ॥

पाखण्डवेदमार्गेशः पाखण्डश्रुतिगोपकः । कल्की विष्णुयशःपुत्र कलिकालविलोपकः
समस्तम्लेच्छदुष्टघ्नः सर्वशिष्टद्विजातिकृत् । सत्यप्रवर्तको देवद्विजदीर्घक्षुधापहः ॥२८१
अश्ववारादिरेवन्तः पृथ्वीदुर्गतिनाशनः । सद्यः क्ष्माऽनन्तलक्ष्मीकृन्नष्टनिःशेषधर्मधृत् ॥

अनन्तस्वर्णयोगैकहेमपूर्णाखिलद्विजः ।
असाध्यैकजगच्छास्ता विश्ववन्द्यो जयध्वजः ॥ २८३ ॥

आत्मतत्त्वाधिपः कर्तृश्रेष्ठो विधिरुमापतिः ।
भर्तृश्रेष्ठः प्रजेशाग्र्यो मरीचिर्जनकाग्रणीः ॥ २८४ ॥

कश्यपो देवराजेन्द्रः प्रह्लादो दैत्यराट्छशी । नक्षत्रेशो रविस्तेजः श्रेष्ठः शुक्रः कवीश्वरः

महर्षिराड् भृगुर्विष्णुरादित्येशो बलिः स्वराट् ।
वायुर्वह्निः शुचिः श्रेष्ठः शङ्करो रुद्रराड् गुरुः ॥ २८६ ॥

विद्वत्तमश्चित्ररथो गन्धर्वाग्र्योऽक्षरोत्तमः ।
वर्णादिरग्र्यस्त्री गौरीशक्त्यग्र्याश्रीश्चनारदः ॥ २८७ ॥

देवर्षिराट् पाण्डवाग्र्योऽर्जुनो वादः प्रवादराट् ।
पवनः पवनेशानो वरुणो यादसांपतिः ॥ २८८ ॥

गङ्गातीर्थोत्तमो द्यूतं छलकाग्र्यं वरौषधम् । अन्नं सुदर्शनोऽस्त्राग्र्यं वज्रं प्रहरणोत्तमम्
उच्चैःश्रवा वाजिराज ऐरावत इभेश्वरः । अरुन्धत्येकपत्नीशो ह्यश्वत्थोऽशेषवृक्षराट्

अध्यात्मविद्याविद्याग्र्यः प्रणवश्छन्दसां वरः ।
मेरुर्गिरिपतिर्मार्गो मासाग्र्यः कालसत्तमः ॥ २९१ ॥

दिनाद्यात्मा पूर्वसिद्धः कपिलः सामवेदराट् ।

तार्क्ष्यः खगेन्द्रश्चर्त्वग्र्या वसन्तः कल्पपादपः ॥ २९२ ॥

दातृश्रेष्ठः कामधेनुरार्तिघ्नाग्र्यः सुहृत्तमः । चिन्तामणिर्गुरुश्रेष्ठो माता हिततमः पिता

सिंहो मृगेन्द्रो नागेन्द्रो वासुकिर्नृवरो नृपः । वर्णेशो ब्राह्मणश्चेतःकरणाग्र्यं नमोनमः

इत्येतद्वासुदेवस्य विष्णोर्नामसहस्रकम् । सर्वापराधशमनं परं भक्तिविवर्धनम् ॥२९५

अक्षयं ब्रह्मलोकादिसर्वस्वर्गैकसाधनम् । विष्णुलोकैकसोपानं सर्वदुःखविनाशनम् ॥

समस्तसुखदं सद्यः परनिर्वाणदायकम् । कामक्रोधादिनिःशेषमनोमलविशोधनम् ॥

शान्तिदं पावनं नृणां महापातकिनामपि । सर्वेषां प्राणिनामाशु सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥

समस्तविघ्नशमनं सर्वारिष्टविनाशनम् । घोरदुःखप्रशमनं तीव्रदारिद्र्यनाशनम् ॥२९९

ऋणत्रयापहं गुह्यं धनधान्ययशस्करम् । सर्वैश्वर्यप्रदं सर्वसिद्धिदं सर्वधर्मदम् ॥ ३००॥

तीर्थयज्ञतपोदानव्रतकोटिफलप्रदम् । जगज्जाड्यप्रशमनं सर्वविद्याप्रवर्त्तकम् ॥ ३०१ ॥

राज्यदं भ्रष्टराज्यानां रोगिणां सर्वरोगहृत् ।

वन्ध्यानां सुतदं चायुःक्षीणानां जीवितप्रदम् ॥ ३०२ ॥

भूतग्रहविषध्वंसि ग्रहपीडाविनाशनम् ।

माङ्गल्यं पुण्यमायुष्यं श्रवणात्पठनाज्जपात् ॥ ३०३ ॥

सकृदस्याखिला वेदाः साङ्गा मन्त्राश्च कोटिशः ।

पुराणशास्त्रस्मृतयः श्रुताः स्युः पठितास्तथा ॥ ३०४ ॥

जप्त्वा चैकाक्षरं श्लोकं पादं वा पठति प्रिये ! ।

नित्यं सिध्यति सर्वेष्टमचिरात्किमुताखिलम् ॥ ३०५ ॥

नानेन सदृशं सद्यःप्रत्ययं सर्वकर्मसु । इदं भद्रे त्वया गोप्यं पाठ्यं स्वार्थैकसिद्धये ॥

नावैष्णवाय दातव्यं विकल्पोपहतात्मने । भक्तिश्रद्धाविहीनाय विष्णुसामान्यदर्शिने ॥

देयं पुत्राय शिष्याय सुहृदे हितकाम्यया । मत्प्रसादादृतेनेदं ग्रहीष्यन्त्यल्पमेधसः ॥

कलौ सद्यः फलं कल्पग्रामं नेष्यति नारदः ।

लोकानां भाग्यहीनानां येन दुःखं विनश्यति ॥ ३०६ ॥

छिन्नेषु वैष्णवेष्वेतदार्यावर्ते भविष्यति ।
नास्ति विष्णोः परं धाम नास्ति विष्णोः परं तपः ॥ ३१० ॥
नास्ति विष्णोः परो धर्मो नास्ति मन्त्रो ह्यवैष्णवः
नास्ति विष्णोः परं सत्यं नास्ति विष्णोः परो मखः ॥ ३११ ॥
नास्ति विष्णोः परं ध्यानं नास्ति विष्णोः परागतिः ।
किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः शास्त्रैर्वा बहुविस्तरैः ॥३१२॥
वाजपेयसहस्रैर्वा भक्तिर्यस्य जनार्दने । सर्वतीर्थमयो विष्णुः सर्वशास्त्रमयः प्रभुः ॥
सर्वक्रतुमयो विष्णुः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् । आब्रह्मसारसर्वस्वं सर्वमेतन्मयोदितम् ॥

पार्वत्युवाच ।

धन्याऽस्म्यनुगृहीताऽस्मि कृतार्थाऽस्मि जगत्पते ! ।
यन्मयेदं श्रुतं स्तोत्रं त्वद्रहस्यं सुदुर्लभम् ॥ ३१५ ॥
अहो बत महत्कष्टं समस्तदुःखहे हरौ । विद्यमानेऽपि देवेशे मूढाः क्लिश्यन्ति संसृतौ
यमुद्दिश्य सदानाथ महेशोऽपि दिगम्बरः ।
जटिलो भस्मलिप्ताङ्गो तपस्वी वीक्ष्यते जनैः ॥ ३१७ ॥
ततोऽधिकोऽस्ति देवः को लक्ष्मीकान्तान्मधुद्विषः ।
यत्तत्त्वं चिन्त्य ते नित्यं त्वया योगेश्वरेण हि ॥ ३१८ ॥
ततः परं किमधिकं पदं श्रीपुरुषोत्तमात् । तमविज्ञाय कं मूढा यजन्ते ज्ञानिमानिनः ॥
मुषिताऽस्मि त्वया नाथ चिरं यदयमीश्वरः ।
प्रकाशितो न मे यस्मात्त्वदाद्या दिव्यशक्तयः ॥ ३२० ॥
अहो सर्वेश्वरो विष्णुः सर्वदेवोत्तमोत्तमः । भवदादिगुरुर्मूढैः सामान्य इव वीक्ष्यते
महीयसां हि माहात्म्यं भजमानान्भजन्ति ते ।
द्विषतोऽपि वृथा पापानुपेक्षन्ते क्षमान्विताः ॥ ३२२ ॥
मयापि बाल्ये स्वपितुः प्रजा दृष्ट्वा बुभुक्षिताः ।
दुःखादशक्त्या पोष्टुं श्रियमाराध्य वै भृताः ॥ ३२३ ॥

तया संनिहिताभ्यश्च प्रजाभ्यो भवदादयः। विलसन्ति सशक्राद्याः ससुहृन्मित्रबान्धवाः

तया विना क्व देवत्वं क्वैश्वर्यं क्व परिग्रहः।

सर्वे भवन्ति जीवन्तो यातनास्वेव संस्थिताः ॥ ३२५ ॥

तामृतेनैव धर्मोऽर्थः कामो मोक्षोऽपि दूरतः। क्षुधितानांदुर्गतानां कुतोयोगसमाधयः

स च संसारसारैकः सर्वलोकैकनायकः। वशगा कमला यस्य त्यक्त्वात्वामपि शङ्कर

अनौद्धत्येन शौचेन रूपेणार्जवसंवदा।सर्वातिशयवीर्येण संपूर्णस्य महात्मनः॥३२८॥

कस्तेन तुल्यतामेति देवदेवेन विष्णुना। यस्यांशांशावतारेण विना सर्वं विलीयते॥

जगदेतत्तथाप्याहुर्दोषायैतद्विमोहिताः। नास्य जन्म न वा मृत्युर्नाप्राप्यं स्वार्थमेव च

कामाद्यासक्तचित्तत्वात्किंतु सर्वेश्वर प्रभो।

त्वन्मयत्वात्प्रमादाद्वा शक्नोमि पठितुं न चेत् ॥ ३३१ ॥

विष्णोः सहस्रनामैतत्प्रत्यहं वृषभध्वज। नाम्नैकेन तु येन स्यात्तत्फलं ब्रूहि मे प्रभो

महादेव उवाच।

रामरामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने! ॥३३३॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-नारदसंवादे विष्णोर्नामसहस्रनामैकसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७१ ॥

———

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

विष्णुसहस्रनाममहिमावर्णनम्

श्रीमहादेव उवाच।

ब्राह्मणा वा क्षत्रिया वावैश्या वा गिरिकन्यके। शूद्रा वाथ विशेषेण पठन्त्यनुदिनंयदि

धनधान्यसमायुक्ता यान्ति विष्णोः परं पदम्।

श्लोकं वा श्लोकमर्धं वा पादं पादार्धमेव वा ॥ २ ॥

पठनान्मोक्षमाप्नोति यावदाभूतसंप्लवम् । विन्यासेन युतं देवि विष्णोर्नामसहस्रकम्

ये पठन्ति नरश्रेष्ठास्ते यान्ति पदमव्ययम् ।

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं वाऽथ यः पठेत् ॥ ४ ॥

धनायुर्वर्धते तस्य यावदिन्द्राश्चतुर्दश । पुत्रपौत्रांस्तथा लक्ष्मीं संपदं विपुलां लभेत्

किमन्यद्बहुनोक्तेन भूयो भूयो वरानने । विष्णोर्नामसहस्रं तु परं निर्वाणदायकम् ॥

पूजनं प्रथमं तस्य कृतं येन नरेण तु । संपूर्णं पूजिते विष्णौ तस्य पूजा च वार्षिकी ॥

व्यग्रत्वं च न कर्त्तव्यं पठने तु विशेषतः । यदि चेत्क्रियते पाठे ह्यायुर्वित्तं च नश्यति ॥

यावन्ति भुवि तीर्थानि जम्बूद्वीपेषु सर्वदा ।

तानि तीर्थानि तत्रैव विष्णोर्नामसहस्रकम् ॥ ६ ॥

तत्रैव गङ्गा यमुना त्रिवेणी गोदावरी तत्र सरस्वती च ।

सर्वाणि तीर्थानि वसन्ति तत्र यत्र स्थितं नाम सहस्रकं तत् ॥ १० ॥

इदं पवित्रं परमं भक्तानां वल्लभं सदा । ध्येयं हि दासभावेन भक्तिभावेन चेतसा ॥११

परं सहस्रनामाख्यं ये पठन्ति मनीषिणः । सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते यान्ति हरिसंनिधौ ॥

अरुणोदयकाले तु ये पठन्ति जपन्ति च । आयुर्बलं च तेषां श्रीर्वर्धते च दिने दिने ॥

रात्रौ जागरणे प्राप्ते कलौ भागवतो नरः । पठनान्मुक्तिमाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश

एकैकेन तु नाम्ना वै हरौ तुलसिकारणात् । पूजा सा चैवविज्ञेया कोटियज्ञफलाधिका

मार्गे च गच्छमानास्तु ये पठन्ति द्विजातयः ।

न दोषा मार्गजास्तेषां भवन्ति किल पार्वति ! ॥ १६ ॥

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि महात्म्यं केशवस्य तु ।

ये शृण्वन्ति नरश्रेष्ठास्ते पुण्याः पुण्यरूपिणः ॥ १७ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-

नारदसंवादे सहस्रनाममहिमा नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीरामरक्षास्तोत्रम्

महादेव उवाच ।

ॐ रामरक्षास्तोत्रस्य श्रीमहर्षिर्विश्वामित्रऋषिः । श्रीरामो देवता । अनुष्टुप्छन्दः विष्णुप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

अतसीपुष्पसङ्काशं पीतवाससमच्युतम् ।
ध्यात्वा वै पुण्डरीकाक्षं श्रीरामं विष्णुमव्ययम् ॥ १ ॥

पातु मे हृदयं रामः श्रीकण्ठः कण्ठमेव च । नाभिं पातु मखत्राता कटिं मे विश्वरक्षकः
करौ पातु दाशरथिः पादौ मे विश्वरूपधृत् । चक्षुषी पातु वै देवस्सीतापतिरनुत्तमः ॥

शिखां मे पातु विश्वात्मा कर्णौ मे पातु कामदः ।
पार्श्वयोस्तु सुरत्राता कालकोटिदुरासदः ॥ ४ ॥

अनन्तः सर्वदा पातु शरीरं विश्वनायकः । जिह्वां मे पातु पापघ्नो लोकशिक्षाप्रवर्त्तकः
राघवः पातु मे दन्तान्केशान्रक्षतु केशवः । सक्थिनी पातु मे दत्तविजयो नाम विश्वसृक्
एतां रामबलोपेतां रक्षां यो वै पुमान्पठेत् । स चिरायुःसुखी विद्वान्लभते दिव्यसंपदम्
रक्षां करोति भूतेभ्यः सदा रक्षतु वैष्णवी । रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति यःस्मरेत्

विमुक्तः सनरः पापन्मुक्तिं प्राप्नोति शाश्वतीम् ।
वसिष्ठेन त्विदं प्रोक्तं गुरवे विष्णुरूपिणे ॥ ६ ॥

ततो मे ब्रह्मणः प्राप्तं मयोक्तं नारदं प्रति । नारदेन तु भूलोके प्रापितं सुजनेष्विह ॥
सुप्त्वा वाथ गृहे वापिमार्गे गच्छन्तएव वा । ये पठन्तिनरश्रेष्ठास्ते नराः पुण्यभागिनः

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारद संवादे रामरक्षास्तोत्रं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

———

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

धर्मप्रशंसापूर्वकदानधर्ममाहात्म्यवर्णनम्

महादेव उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि धर्ममाहात्म्यमुत्तमम् । यच्छ्रुत्वा न पुनर्जन्म जायते भुवि कर्हिचित्
धर्मादर्थं च कामं च मोक्षंचैव त्रयंलभेत् । तस्माद्धर्मंसमीहेतविद्वान्यःसबुधःस्मृतः ॥
तपसा चैव दानेन व्रतेन नियमेन च । तपसा प्राप्यते स्वर्गं सात्त्विकेन तथैव च ॥ ३॥

इहायातो लभेद्राज्यं क्रोधलोभविवर्जितः ।
जन्मान्तरेण मुक्तिः स्यात्पदं विन्दति वैष्णवम् ॥ ४ ॥

तपवा राजसेनेह राजसश्चैव जायते । तप्त्वा तामसभावेन क्रूरकर्मा हि निष्ठुरः ॥५

तपस्तद्रक्षसां चोक्तं भुक्तिदं तामसात्मनाम् ।
यत्तप्तं सात्त्विकं चैव तत्तपो भवति ध्रुवम् ॥ ६ ॥
रजस्तमोभ्यां नियतं तपस्यतां वने सतां वायुभुजां सुनिर्जने ।
तपस्विनां चैव धनादिवाञ्छतां वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणाम् ॥ ७ ॥
गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपस्त्वकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्त्तते ।
निवृत्तरागस्य तपोवनं गृहं गृहाश्रमोऽतो गदितः स्वधर्मः ॥ ॥ ८ ॥
सुदुस्तरः सत्त्वजितेन्द्रियाणां संहन्यते श्रेष्ठतमः शुभाश्रमः ।
गृहस्तु धर्मः प्रवदो मनीषिणा ब्रह्मादिभिश्चाभिहितो नगात्मजे ! ॥ ९ ॥
तप्त्वा तपस्वी विपिने क्षुधार्तो गृहं समायाति सदान्नदातुः ।
भक्त्या स चान्नं प्रददाति तस्मै तपोविभागं भजते हि तस्य ॥ १० ॥
गृहाश्रमं ज्येष्ठमिहाश्रमाणां सम्यक्च यः पालयते मनुष्यः ।
इहैव भुञ्जन्स मनुष्यभोगान्स्वर्गं प्रयातीति न संशयोऽत्र ।
गृहं सदा पालयतां नराणां पापं समायाति कथं हि देवि ! ॥ ११ ॥

गृहाश्रमः पुण्यतमः सर्वदा तीर्थवद्गृहम् । अस्मिन्गृहाश्रमे पुण्ये दानं देयं विशेषतः ॥
देवानां पूजनं यत्र अतिथीनां च भोजनम् । पथिकानां च शरणमतो धन्यतमो मतः
तद्गृहं तु समाश्रित्य येऽर्चयन्ति द्विजान्नराः ।
आयुर्लक्ष्मीस्तथा पुत्रा न हीयन्ते कदाचन ॥ १४ ॥
शृणु सुन्दरि वक्ष्यामि महापापविशोधनम् । सर्वसंपत्करं दानमिहामुत्रफलप्रदम् ॥ १५
शुभे काले समायाते समभ्यर्च्यस्वदैवतम् ।
नित्यं नैमित्तिकं कृत्वा दद्याद्दानं स्वशक्तितः ॥ १६ ॥
गृहीत्वा परद्रव्यं च द्विजदेवेभ्य एव हि । दद्यात्सनिरयं दृष्ट्वा पश्चाद्याति परांगतिम्
शतानीको यथादानात्सपुत्रश्चैव तारितः । दत्त्वान्ये चद्विजेभ्यश्च सगन्ताधर्मतोदिवम्
धर्मस्थानेषु यैर्दत्तं तेषां धर्ममुदाहृतम् । शृणु देविप्रवक्ष्यामि वित्तदानं समासतः ॥
देहशुद्धिकरं दानं न भूतं न भविष्यति । पापहीनो येन पुमाञ्जायते नात्र संशयः ॥२०
भोगान्भुक्त्वा ततश्चायं याति विष्णुं सनातनम् ।
पुरा वै ब्रह्मणा प्रोक्तं भार्गवाय महात्मने ॥ २१ ॥
पापयुक्ताय रामाय तुलावृषभमेव च । पापकर्मरतश्चैव वधबन्धक्रियो नृपः ॥ २२ ॥
अभक्ष्यभक्षणरतो भ्रूणहा गुरुतल्पगः । एतेऽप्यनृतवादी च प्रसूयन्ते वियोनिषु ॥२३॥
अयाज्ययाजनं कृत्वा याजयित्वा तु निन्दितान् । सदा कोपसमायुक्ताःसाधूनांपीडनेरताः
विश्वासोपहताश्चैषामसुभिर्धर्मनिन्दकाः । पापैरेभिःसमायुक्ता ज्ञात्वात्मानं गतायुषम्
इति ज्ञात्वा तु तैर्देवि दानंदेयं विशेषतः । बहवो धर्मकर्त्तारो वैष्णवा भुविविश्रुताः
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादे दानधर्मो नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

———

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

गण्डिकातीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

महादेव उवाच ।

गण्डिकायास्तु माहात्म्यं वक्ष्ये देवि ! विधानतः ।
यथा गङ्गा तथा सा च कथिता नगनन्दिनि ! ॥ १ ॥
शालग्रामशिला यत्र जायते बहुधा तथा । माहात्म्यं चैव तस्याश्च कथितं मुनिसत्तमैः
उद्भिज्जा अण्डजा यत्र स्वेदजाश्च जरायुजाः ।
यस्या दर्शनमात्रेण पुण्यरूपास्तु पार्वति ! ॥ ३ ॥
उत्तरे सा तु संभूता गण्डिका तु महानदी ।
संस्मृता संस्मृता नूनं पापं हन्त्यगनन्दिनि ॥ ४ ॥
यत्र नारायणो देवो नित्यं तिष्ठति भूतिदः । शङ्खचक्रधरास्तस्य समीपे निवसन्ति ये
ते मृत्युं समनुप्राप्य दिव्यरूपाश्चतुर्भुजाः । ऋषयस्तत्रतिष्ठन्ति देवाश्चैवं विशेषतः ॥
रुद्रा नागास्तथा यक्षा नात्र कार्या विचारणा ।
तस्याः समीपे ह्येकोऽयं स्थलो वै विष्णुरूपधृत् ॥ ७ ॥
स्थलेऽस्मिन्वर्तते मूर्तिर्बहुरूपा च मुक्तिदा । चतुर्विंशतिभूतानां जातयःसन्ति तत्र वै
एका वै मत्स्यरूपा च कूर्मरूपा तथैव च । वाराही नारसिंही च वामनी च शुभप्रदा
रामाख्या परशुरामा च कृष्णरूपातिमुक्तिदा ।
अन्या च या बुधैः प्रोक्ता स्थले वै विष्णुसंज्ञके ॥ १० ॥
कल्किनाम्नी तथा पुण्या कपिलाया मयोदिता ।
अन्यास्तु विविधाकारा दृश्यन्ते बहुधा अपि ॥ ११ ॥
तिष्ठन्ति मूर्त्तयःसर्वानानारूपा ह्यनेकशः । सा गङ्गा महती पुण्या धर्मकामार्थमुक्तिदा
यस्यां भूमौ हृषिकेशो नियमेन समन्वितः । वर्त्ततेऽद्यापि तत्रैव मयासह न संशयः ॥

भ्रूणहत्या बालहत्या गोहत्या च विशेषतः ।
यस्याः स्पर्शनमात्रेण मुच्यते सर्वकिल्बिषात् ॥ १४ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राश्चैवान्यजातयः ।
सर्वे ते वै विमुच्यन्ते दर्शनाद्गण्डिकाम्बुना ॥ १५ ॥
इयं वेणीसमा पुण्या पापिनां तु विशेषतः । मुच्यते ब्रह्महा यत्र इतरेषां तु का कथा ॥
सर्वदा सर्वकाले तु अहं गच्छामि पार्वति ।
तीर्थानां तीर्थराजोऽयं ब्रह्मणा भाषितःकिल ॥ १७ ॥
तत्र स्नानंच दानंच मुनिभिःपरिकल्पितम् । आषाढे पुण्यकाले तु तत्र गच्छामि सुन्दरि
मासैकं विधिना चैव स्नानं तत्र करोम्यहम् । तारकं तत्र विशदं जपामि तु निरन्तरम्
अतोऽहं वैष्णवो जातो विष्णुक्षेत्रे यतो गतः ।
विष्णुना निर्मितं पूर्वं क्षेत्रं तत्तु महत्तरम् ॥ २० ॥
वैष्णवानां च गतिदं पावनं परमं स्मृतम् । भवेऽस्मिन्मानुषेजन्म दुर्लभं देवि सर्वदा
दुर्लभं गण्डिकातीर्थं विष्णुक्षेत्रं तु दुर्लभम् ।
अतो ह्याषाढमासे तु गन्तव्यं द्विजसत्तमैः २२ ॥
तत्र गत्वा विशेषेण शङ्खचक्रादि धारणम् । कर्त्तव्यं तु द्विजश्रेष्ठैःपवित्रं परमं स्मृतम्
शङ्खतीर्थं तु वामे वै दक्षिणे चक्रचिन्हितम् । द्विजानां मुक्तिदं प्रोक्तं धारितव्यं प्रयत्नतः
ब्राह्मणैश्च विशेषेण शङ्खचक्रादि धारणे । कृतेसति महादेवि वैष्णवास्तेहि मानवाः
न गण्डिकासमं तीर्थं न व्रतं द्वादशी समम् । न देवःकेशवादन्यो भूयोभूयो वरानने ॥
गण्डिकायास्तु माहात्म्यं ये श्रृण्वन्ति नरोत्तमाः ।
इह लोके सुखं भुक्त्वा विष्णुलोकं हि यान्ति ते ॥ २७ ॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादे गण्डिकातीर्थमाहात्म्यं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

———

षट्सप्ततितमोध्यायः

आभ्युदयिकौर्ध्वदेहिकस्तोत्रवर्णनम्

महादेव उवाच ।

शृणु सुन्दरि वक्ष्यामि स्तोत्रं चाभ्युदयं ततः ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते पापी ब्रह्महा नात्र संशयः ॥ १ ॥

धाता वै नारदं प्राह तदहं तु ब्रवीमि ते । तमुवाच ततो देवः स्वयम्भूरमितद्युतिः ॥२॥
प्रगृह्य रुचिरं बाहुं स्मारयेच्चौर्ध्वदेहिकम् । भवान्नारायणःश्रीमान्देवश्चक्रायुधो हरिः
शार्ङ्गधारी हृषीकेशःपुराणपुरुषोत्तमः । अजितःखड्गभृज्जिष्णुःकृष्णश्चैव सनातनः ॥
एकशृङ्गो वराहस्त्वं भूतभव्यं भवात्मकः । अक्षरं ब्रह्मसत्यं तु आदौ चान्ते च राघव

लोकानां तु परोधर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः ।
सेनानी रक्षणस्त्वं च वैकुण्ठस्त्वं जगत्प्रभुः ॥ ६ ॥

प्रभावश्चाव्ययस्त्वं च उपेन्द्रो मधुसूदनः । पृश्निगर्भोधृतार्चिस्त्वं पद्मनाभो रणान्तकृत्
शरण्यं शरणं च त्वामाहुःसेन्द्र महर्षयः । ऋक्साम श्रेष्ठो वेदात्मा शतजिह्वो महर्षयः
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारः परन्तपः । शतधन्वा वसुःपूर्वं वसूनां त्वं प्रजापतिः
त्रयाणामपि लोकानामादिकर्ता स्वयं प्रभुः । रुद्राणामष्टमो रुद्रःसाध्यानामपि पञ्चमः

आश्विनौ चापि कर्णौते सूर्यचन्द्रौ च चक्षुषी ।
अन्ते चादौ च मध्ये च दृश्यसे त्वं परन्तपः ॥ ११ ॥

प्रभवो निधनं चास्य न विदुःको भवानिति । दृश्यसे सर्वलोकेषु गोषु च ब्राह्मणेषुच
दिक्षु सर्वासुगगने पर्वतेषु गुहासु च । सहस्रनयनःश्रीमाञ्छतशीर्षःसहस्रपात् ॥ १३॥

त्वं धारयसि भूतानि वसुधां च स पर्वताम् ।
अन्तः पृथिव्यां सलिले सर्वसत्त्व महोरगः ॥ १४ ॥

त्रीँ ल्लोकान्धारयन्नासे देवगन्धर्वदानवान् । अहं ते हृदयं राम जिह्वा देवी सरस्वती ॥

देवा रोमाणि गात्रेषु निर्मितास्ते स्वमायया ।
निमिषस्ते स्मृता रात्रिरुन्मेषो दिवसस्तथा ॥ १६ ॥
संस्कारस्ते भवेद्देहो न तदस्ति विना त्वया । जगत्सर्वं शरीरं तत्स्थैर्यं चवसुधातलम्
अग्निःकोपःप्रसादस्ते शेषःश्रीमांश्च लक्ष्मणः ।
त्वया लोकास्त्रयःक्रान्ताः पुराणैर्विक्रमैस्त्रिभिः ॥ १८ ॥
त्वयेन्द्रश्च कृतो राजा बलिर्बद्धो महासुरः ।
लोकान्संहृत्य कालस्त्वं निवेश्यात्मनि केवलम् ॥ १६ ॥
करोष्येकार्णवं घोरं दृश्यादृश्ये च नान्यथा । त्वया सिंहवपुःकृत्वा परमं दिव्यमुत्तमम्
भयदःसर्वभूतानां हिरण्यकशिपुर्हतः । त्वमश्ववदनो भूत्वा पातालतलमाश्रितः ॥ २१ ॥
संहृतं परमं हव्यं रहस्यं वै पुनःपुनः । यत्परं श्रूयते ज्योतिर्यत्परं श्रूयते परः ॥ २२ ॥
यत्परं परतश्चैव परमात्मेति कथ्यते । परोमन्त्रःपरंतेजस्त्वमेव हि निगद्यसे ॥ २३ ॥
हव्यं कव्यं पवित्रं च प्राप्तिःस्वर्गापवर्गयोः ।
स्थित्युत्पत्तिविनाशांस्ते त्वमाहुः प्रकृतेः परम् ॥ २४ ॥
यज्ञश्च यजमानश्च होताचाध्वर्युरेव च । भोक्ता यज्ञफलानां च त्वं वै वेदैश्च गीयसे ॥
सीता लक्ष्मीर्भवान्विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः ।
वधार्थं रावणस्य त्वं प्रविष्टो मानुषीं तनुम् ॥ २६ ॥
तदिदं च त्वया कार्यं कृतं धर्मभृतांवर । निहतो रावणो राम प्रहृष्टा देवताःकृताः ॥
अमोघं देववीर्यं ते न ते मोघःपराक्रमः । अमोघदर्शनं राम न च मोघस्तवस्तवः ॥२८॥
अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तो नरा भुवि ।
ये च त्वां देवसंभक्ताःपुराणं पुरुषोत्तमम् ॥ २६ ॥
इममार्षस्तवं पुण्यमितिहासं पुरातनम् । ये नराःकीर्तयिष्यन्ति नास्ति तेषां पराभवः
कथमिह हि पराभवं व्रजेयुः पुरुषवराःपुरुषोत्तमे हि भक्ताः ।
न हि जगति चतुर्भुजप्रियाणां त्रिदश इहास्ति वरप्रदो विशिष्टः ॥ ३१ ॥
स्तोत्राणां प्रवरं स्तोत्रं राघवस्य महात्मनः । त्रिकाले तु पठन्मुक्तो महापातकवानपि

सन्ध्याकाले द्विजश्रेष्ठैःश्राद्धकाले विशेषतः । पठनीयं प्रयत्नेन भक्तिभावेन चेतसा ॥
इदं गोप्यं हि परमं नाख्येयं कर्हिचित्क्वचित् ।
पठनान्मुक्तिमाप्नोति सात्त्वतः स भवेद् ध्रुवम् ॥ ३४ ॥
प्रथमं पिण्डपूजा ते ब्राह्मणैर्द्विजसत्तमैः । पठितव्यमिदं स्तोत्रं श्राद्धमक्षयमाप्नुयात् ॥
इदं पवित्रं परमं जनानां मुक्तिदायकम् । लिखित्वा वै गृहे यस्तु धारयेत्सुसमाधिना
आयुःश्रीश्च बलं तस्य वृद्धिं याति दिनेदिने ।
लिखित्वा ब्राह्मणे दद्याद्धीमान्यो वै कदाचन ॥ ३७ ॥
विमुक्ताःपूर्वजास्तस्य यान्ति विष्णोः परंपदम् ।
चतुर्णां चैव वेदानां पाठेचैव तु यत्फलम् ॥ ३८ ॥
समवाप्नोति जापेन नरःस्तोत्रं पठञ्जपन् । धृत्वा वै शङ्खचक्रादि ब्राह्मणैर्वेदतत्परैः ॥३९
श्राद्धकाले महादेवि अक्षयं तद्भवेद्ध्रुवम् । कण्ठे पद्माक्षमालां च शङ्खचक्रादिधारणम्
ततःश्राद्धं प्रकुर्वीत इदं स्तोत्रं पठञ्जपन् । विधिना भक्तिभावेन पूर्णं भवति नान्यथा
अतो भक्तिमता पुंसा पठनीयं प्रयत्नतः । पठनात्सर्वमाप्नोति स नरःसुखमेधते ॥ ४३ ॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादे आभ्युदयिकमौर्ध्वदैहिकस्तोत्रं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

ऋषिपञ्चमीव्रतविधानम् ।

महादेव उवाच ।

पप्रच्छाहं जगन्नाथ व्रतानामुत्तमंव्रतम् । पुत्रपौत्र विवृद्ध्यर्थं सुखसौभाग्यदायकम् ॥
तवाग्रे संप्रवक्ष्यामि श्रृणु सुन्दरि साम्प्रतम् । इदं कथानकं दिव्यमृषीणां व्रतमुत्तमम्
रजस्वला तु या नारी सहसा पापरूपिणी । कृतेन च व्रतेनैव महापापैःप्रमुच्यते ॥

पितॄणामक्षयं देयं धर्मकामार्थसाधनम् ॥ ३ ॥

श्रीविष्णुरुवाच ।

पूर्वमासीन्महाबाहुर्ब्राह्मणो वेदपारगः । सदाध्ययनशीलस्तु देवशर्मा इतिद्विजः ॥ ४ ॥
अग्निहोत्र क्रियायुक्तःषट्कर्मनिरतःसदा । सर्ववर्णेषु संपूज्यःसपुत्रपशुबान्धवः ॥५॥
तस्य ब्राह्मणमुख्यस्य भग्ना च गृहवाहिनी । प्राप्ते भाद्रपदे मासे शुक्लपक्षे तु पञ्चमी

पितुःक्षयाहं कुरुते यतात्मा च जितेन्द्रियः ।
रात्रौ निमन्त्रयेद्विप्रान्सुखसौभाग्यदायकान् ॥ ७ ॥

प्रभाते विमले प्राप्ते भाण्डान्यन्यानि कारयेत् । पाकं सर्वेषुपात्रेषु सकारयति जायया
अष्टादशरसोपेतं पितॄणां प्रीतिदायकम् । आकारणं ततो दत्त्वाविप्राणां च पृथक्पृथक्
सर्वे विप्रास्तु संप्राप्ता मध्याह्ने वेदपाठकाः । अर्घपाद्यादि विधिवत्कृतवान्द्विजसत्तमः
रजसा दूषिताःश्राद्धे प्रक्षाल्य विधिवत्तदा । गृहमध्ये गताःसर्वे आसने ते निरूपिताः
प्रदत्तं भोजनं तेन मिष्टान्नेन विशेषतः । विधिना च कृतं श्राद्धं पिण्डदानप्रपूर्वकम् ॥

ताम्बूलं दक्षिणां चैव वस्त्राणि विविधानि च ।
सर्वं ददौ द्विजेभ्यो वै पितृध्यानपरायणाः ॥ १३ ॥
विप्रा विसर्जिताःसर्वे आशीर्वादपरायणः ।
गोत्रिणां बान्धवानां च अन्येषां च बुभुक्षताम् ॥ १४ ॥

दत्तमन्नं तदा तेन भोजने विधिपूर्वकम् । निशायां तु कुटीद्वार उपविष्टो यदा तदा ॥
ब्राह्मण्यावारिसंगृह्य पादप्रक्षालनं कृतम् । तदा शुनी बलीवर्दौ परस्परमभाषताम् ॥१६
शृणुकान्तवचो मह्यं यादृक्कृतवती वधूः । तादृशं संप्रवक्ष्यामि नान्यथा प्रब्रवीम्यहम्
कदाचिद्दैवयोगेन गताहं पुत्रसद्मनि । तत्र स्थितं पयः पीतं वध्वा दृष्टं न तत्पुनः ॥१८

पीतं पयस्तु सर्पेण तद्दृष्टं तु यया पुनः ।
पश्चात्पीतं मया सम्यक्दृष्टं वध्वा तदा पुनः ॥ १९ ॥

तेन संपर्कदोषेण कटिर्भग्ना च मे सदा । तेन दुःखेन भोस्वामिञ्जाताहं दुःखभागिनी ॥

भग्ना कटिश्च संजाता ह्याहारो नैव रोचते ॥ २० ॥

बलीवर्द उवाच ।

श्रृणु त्वं शुनि ! वक्ष्यामि मम दुःखस्य कारणम् ।
अस्मिन्वै दिवसे प्राप्ते ब्राह्मणानां तु भोजनम् ॥ २१ ॥

कारितं मम पुत्रेण मम चिन्ता तु नो कृता । नोदकं न तृणं चैव न दत्तं केनचित्कचित्
अनाहारो ह्यहं पापी बद्धोऽस्मिन्पापभावितः । पूर्वपापविशेषेण जातं शुनि न संशयः
तद्वाक्यं तु तदा देवि श्रुतं पुत्रेण धीमता । ममायं तु पिता साक्षाज्जातो ममगृहेपशुः

इयं तु जननी साक्षान्मम चैव न संशयः ।
दैवयोगाच्छुनी जाता किं करोमि सुनिश्चयम् ॥ २४ ॥
एवं विचार्यासौ विप्रो नैव निद्रामवाप सः ।
रात्रौ चिन्तापरो भूत्वा स्मरन्विश्वेश्वरंपरम् ॥ २६ ॥

नानाधर्मपरोऽहं च ममैवं च कथं शुभम् । विचारयित्वा च ततो रात्रौ सुप्तस्तदापुनः
प्रभाते विमले प्राप्त ऋषीणां पुरतो गतः । तेषां मध्ये वसिष्ठेनतस्य सुस्वागतं कृतम्
ब्रूहि त्वं ब्राह्मणश्रेष्ठ तवागमनकारणम् । इति पृष्टस्तदा विप्रः प्रणाममकरोत्तदा ॥२९
अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफला क्रिया । अद्य मे पितरस्तृप्ता दुर्लभात्तव दर्शनात्

यथोक्तं च कृतं श्राद्धं द्विजाश्चैव सुभोजिताः ।
कुटुम्बिनां तु सर्वेषां भोजनं कारितं तथा ॥ ३१ ॥

भोजनानन्तरं प्राप्ता शुनी तत्र उवाचह । अस्माकं तु गृहे ह्येको बलीवर्दस्तु वर्त्तते ॥
तं पतिं प्रति वाक्यंयद्द्विजमत्तःश्रृणुष्व तत् । गृहेस्थितं दुग्धभाण्डमहिना दूषितं मया

दृष्टं मे महती चिन्ता तदा जाता न संशयः ॥ ३४ ॥

तदात्र सर्वे विप्राश्च म्रियन्ते भोजनात्ततः । एवं विचार्य तत्स्वामिन्दुग्धं पीतं तदामया

तदा दृष्टं तु बध्वा वै तया मे ताडनं कृतम् ।
चरामि तेन संभग्ना किं करोमि सुदुःखिता ॥ ३६ ॥
तस्या दुखं तु संस्मृत्य वृषःप्राह शुनीं प्रति ।
श्रृणु शुनि ! प्रवक्ष्यामि मम दुःखस्य कारणम् ॥ ३७ ॥

अस्याहं तु पिता साक्षात्पूर्वजन्मनि वै शुनि ! ।
अद्य वै भोजिता विप्रा दत्तमन्नं तु भूरिशः ॥ ३८ ॥
न तृणं नोदकं चैव ममाग्रे संनिवेदितम् । तेन दुःखेन मे दुखं जातं बहुतरं तदा ॥३९॥
एतत्कथानकं श्रुत्वा रात्रौ निद्रामवाप न । ममचिन्ता तु तत्रैव जाता वा ऋषिसत्तम
वेदाध्ययनशीलोऽहं कुशलो वेदकर्मणि । अनयोश्च महद्दुखं किं करोमीति चिन्तयन्
आगतस्त्वत्समीपे तु मम कष्टं निवारय ॥ ४१ ॥

ऋषिरुवाच ।

उग्रजन्मञ्छृणुष्व त्वं पूर्वजन्मनि यत्कृतम् । अयं वै तु द्विजश्रेष्ठःकुण्डिने नगरे शुभे ॥
मासे भाद्रपदेचैव पञ्चमी या समागता । तद्व्रतं तेन नाज्ञातं पितुःश्राद्धादि कारणात्
स्त्रीधर्मेण तु संप्राप्ता क्षयाहे तु तदानघ । तया चैव कृतं सर्वं ब्राह्मणानां च भोजनम्
न ज्ञातं च कृतं तेन पापिष्ठेन दुरात्मना । प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी
तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुध्यति । तेन पापेन सा जाता शुनी स्वगृहचारिणी
वलीवर्दस्त्वयं जातःकर्मणानेन सुव्रत ! ॥ ४६ ॥

उग्रजन्मोवाच ।

व्रतं दानं तथा यज्ञं तीर्थं वा मम सुव्रत । ब्रूहि येन विशेषेण मुक्तिःपित्रोर्भवेन्मम ॥

ऋषिरुवाच ।

मासे भाद्रपदे शुक्ले जायते ऋषिपञ्चमी । रजसा विकृतं पापं नश्यते करणाद्यतः ॥
पुत्रपौत्रप्रदात्री च पितॄणां मुक्तिदायिनी । नद्यां कूपे तडागे वा ब्राह्मणस्य गृहे तथा
गोमयं मण्डलं कुर्यात्कुम्भं तत्रैव विन्यसेत् ।
तस्योपरि न्यसेत्पात्रमृषिधान्येन पूरितम् ॥ ५० ॥
यज्ञोपवीतसूत्रं च सहिरण्यं फलं तथा । स्थाप्याश्च ऋषयःसप्त सुखसौभाग्यदायकाः ॥
आवाहयित्वा ते सर्वे पूजनीया व्रतस्थितैः ।
नैवेद्यमृषिधान्यं च ऋषिधान्यं तु भोजनम् ॥ ५२ ॥
एकभक्तेन कर्त्तव्यमृषीणामर्चनं तदा । पूजयेत्परया भक्त्या मन्त्रेण विधिपूर्वकम् ॥

निर्वापं सघृतं देयं दक्षिणा संयुतं तदा । देयं विप्राय विधिवदृषीणां प्रीयतामिति ॥

कथां श्रुत्वा विधानेन कृत्वा चैव प्रदक्षिणाम् ।
धूप दीपं च नैवेद्यमर्घ्यं दद्यात्पृथक्पृथक् ॥ ५५ ॥

ऋषयःसन्तु मे नित्यं व्रत संपूर्तिकारिणः । पूजां गृह्णन्तु मद्दत्तामृषिभ्योऽस्तु नमोनमः

पुलस्त्यःपुलहश्चैव क्रतुःप्राचेतसस्तथा । वशिष्ठ मारिचात्रेया अर्घं गृह्णन्तु वो नमः ॥

एवं पूजा प्रकर्त्तव्या धूपैर्दीपैर्मनोरमैः । पितॄणां जायते मुक्तिःकृतस्यास्य प्रभावतः ॥

पूर्वकर्म विपाकेन रजसा दोषभावतः । कृतं ह्येवं तु भोवत्स मुक्तिस्तस्य न संशयः

तद्व्रतं च कृतं तेन मुक्त्यर्थं पितृहेतवे । ते गता मुक्तिमार्गेण आशीर्वादपरायणाः ॥६०

ऋषीपञ्चमीव्रतं पुण्यं विप्राय परिकीर्तितम् ।
ये कुर्वन्ति नराः श्रेष्ठास्ते ज्ञेयाः पुण्यभागिनः ॥ ६१ ॥
ये कुर्वन्ति नरश्रेष्ठा ऋषिव्रतमनुत्तमम् ।
भुक्त्वाऽत्र भोगान्विपुलान्यान्ति विष्णोःपदं तु ते ॥ ६२ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादे ऋषिपञ्चमीव्रतं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

अपमार्जनस्तोत्रवर्णनम् ।

महादेव उवाच ।

अथातःसंप्रवक्ष्यामि अपामार्जनमुत्तमम् । पुलस्त्येन यथोक्तं तु दाल्भ्याय महात्मने ॥

सर्वेषां रोगदोषाणां नाशनं मङ्गलप्रदम् । तत्तेऽहं तु प्रवक्ष्यामि श्रृणुत्वं नगनन्दिनि ॥

श्रीदाल्भ्य उवाच ।

भगवन्प्राणिनःसर्वे विषरोगाद्युपद्रवैः । कुष्ठग्रहाभिभूताश्च सर्वकाले ह्युपद्रुताः ॥ ३ ॥

आभिचारिककृत्याद्या बहुरोगाश्च दारुणाः ।
न भवन्ति मुनिश्रेष्ठ ! तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि ॥४॥

पुलस्त्य उवाच ।

व्रतोपवासनियमैर्विष्णुर्वै तोषितस्तु यैः । ते नरा नैव रोगार्त्ता जायन्ते मुनिसत्तम
यैर्न कृतं व्रतं पुण्यं न दानं न तपस्तदा । न तीर्थं देवपूजा च नान्नं दत्तं तु भूरिशः ॥
ते वै लोकास्तथा ज्ञेया रोगदोषैःप्रपीडिताः । आरोग्यं परमामृद्धिं मनसा यद्यदिच्छति
तत्तदाप्नोत्यसन्दिग्धं विष्णोःसेवी विशेषतः ।
नाधिं प्राप्नोति न व्याधिं न विषग्रहबन्धनम् ॥ ८ ॥
कृत्यास्पर्शभयंनापि तोषिते मधुसूदने । समस्तदोषनाशश्च सर्वदा च शुभाग्रहाः ॥६॥
देवानामप्यधृष्योऽसौ तोषिते च जनार्दने । यःसर्वेषु च भूतेषु यथात्मनि तथापरे ॥
उपवासादिना तेन तोषितो मधुसूदनः । तोषिते तत्र जायन्ते नराःपूर्णमनोरथाः ॥११
अरोगाःसुखिनो भोगभोक्तारो मुनिसत्तम ! ।
तेषां च शत्रवो नैव न च रोगाभिचारिकम् !॥ १२ ॥
ग्रहरोगादिकंचैव पापकार्यं न जायते । अव्याहतानि कृष्णस्य चक्रादीन्यायुधानि वै ॥
रक्षन्ति सकलापद्भ्यो ये न विष्णुरुपासितः ॥ १३ ॥

श्रीदालभ्य उवाच ।

अनाराधितगोविन्दा ये नरा दुःखभागिनः ।
तेषां दुःखाभिभूतानां यत्कर्त्तव्यं दयालुभिः ॥ १४ ॥
पश्यद्भिःसर्वभूतस्थं वासुदेवं सनातनम् । समदृष्टिभिरप्यत्र तन्मे ब्रूहि विशेषतः ॥१५

श्रीपुलस्त्य उवाच ।

तद्वक्ष्यामि मुनिश्रेष्ठ समाहितमनाःश्रृणु । रोगदोषाशुभहरं विज्वरादि विनाशनम् ॥
शिखायां श्रीधरं न्यस्य शिखाधःश्रीकरं तथा । हृषीकेशंतु केशेषु मूर्ध्नि नारायणंपरम्
ऊर्ध्वश्रोत्रे न्यसेद्विष्णुं ललाटे जलशायिनम् ।
विष्णुं वै भ्रूयुगे न्यस्य भ्रूमध्ये हरिमेव च ॥ १८ ॥

नरसिंहं नासिकाग्रे कर्णयोर्कर्णवेशयम् । चक्षुषोःपुण्डरीकाक्षं तदधो भूधरं न्यसेत् ॥
कपोलयोःकल्किनाथं वामनं कर्णमूलयोः । शङ्खिनं शङ्खयोर्न्यस्य गोविन्दं वदने तथा

मुकुन्दं दन्तपङ्क्तौ तु जिह्वायां वाक्पतिं तथा ।
रामं हनौ तु विन्यस्य कण्ठे वैकुण्ठमेव च ॥ २१ ॥

बलघ्नं बाहुमूलाधश्चांसयोःकंसघातिनम् । अजं भुजद्वये न्यस्य शार्ङ्गपाणिं करद्वये ॥
सङ्कर्षणं कराङ्गुष्ठेगोपमङ्गुलिपङ्क्तिषु । वक्षस्यधोक्षजं न्यस्य श्रीवत्सं तस्य मध्यतः
स्तनयोस्त्वनिरुद्धं च दामोदरमथोदरे । पद्मनाभं तथा नाभौ नाभ्यधश्चापि केशवम् ॥
मेढ्रे धराधरं देवं गुदेचैव गदाग्रजम् । पीताम्बरधरं कट्यामूरुयुग्मे मधोर्द्विषम् ॥२५॥
मुरद्विषं पिण्डकयोर्जानुयुग्मे जनार्दनम् । फणीशं गुल्फयोर्न्यस्य क्रमयोश्च त्रिविक्रमम्
पादाङ्गुष्ठे श्रीपतिं च पादाधो धरणीधरम् । रोमकूपेषु सर्वेषु विष्वक्सेनं न्यसेद्बुधः

मत्स्यं मांसे तु विन्यस्य कूर्मं मेदसि विन्यसेत् ।
वाराहं तु वसामध्ये सर्वास्थिषु तथाच्युतम् ॥ २८ ॥

द्विजप्रियं तु मज्जायां शुक्रे श्वेतपतिन्तथा । सर्वाङ्गे यज्ञपुरुषं परमात्मानमात्मनि ॥२९

एवं न्यासविधिं कृत्वा साक्षान्नारायणो भवेत् ।
यावन्न व्याहरेत्किंचित्तावद्विष्णुमयःस्थितः ॥ ३० ॥
गृहीत्वा तु समूलाग्रान्कुशाञ्छुद्धान्समाहितः ।
मार्जयेत्सर्वगात्राणि कुशाग्रैरिह शान्तिकृत् ॥ ३१ ॥
विष्णुभक्तो विशेषेण रोगग्रहविषार्दिते ।
विषार्त्तानां रोगिणां च कुर्याच्छान्तिमिमां शुभाम् ॥ ३२ ॥

जायते तेन भो विप्र सर्वरोगप्रणाशनम् । ॐनमःश्रीपरमार्थाय पुरुषाय महात्मने ॥३३
अरूपबहुरूपाय व्यापिने परमात्मने । वाराहं नारसिंहं च वामनं च सुप्रखदम् ॥ ३४ ॥

ध्यात्वा कृत्वा नमो विष्णोर्नामान्यङ्गेषु विन्यसेत् ।
निष्कलमषाय शुद्धाय व्याधिपापहराय वै ॥ ३५ ॥

गोविन्द पद्मनाभाय वासुदेवाय भूभृते । नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिध्यतु मे वचः ॥

त्रिविक्रमाय रामाय वैकुण्ठाय नराय च । श्रीवाराहनृसिंहाय वामनाय महात्मने ॥३७
हयग्रीवाय शुभ्राय हृषीकेश हराशुभम् । परोपतापमहितं प्रयुक्तं चाभिचारिकम् ॥ ३८॥
गरस्पर्श महारोग प्रयोगं जरया जर । नमोऽस्तु वासुदेवाय नमःकृष्णाय खड्गिने ॥
नमःपुष्करनेत्राय केशवायादि चक्रिणे । नमःकिंजल्कवर्णाय पीतनिर्मलवाससे ॥४०॥
महादेववपुःस्कन्धधृतचक्राय चक्रिणे । दंष्ट्रोद्धृतक्षितितलत्रिमूर्तिपतये नमः ॥ ४१ ॥
महायज्ञवराहाय श्रीवल्लभ नमोऽस्तु ते । तप्तहाटककेशान्तज्वलत्पावकलोचन ॥ ४२ ॥
वज्राधिकनखस्पर्शदिव्यसिंह नमोऽस्तु ते ।
कश्यपायातिह्रस्वाय ऋग्यजुःसामलक्षण ॥ ४३ ॥
तुभ्यं वामनरूपाय क्रमते गां नमोनमः । वाराहाशेषदुःखानि सर्वपापफलानि च ॥४४॥
मर्दमर्द महादंष्ट्र मर्दमर्द च तत्फलम् । नरसिंह करालास्य दन्तप्रान्तनखोज्ज्वल ॥४५॥
भङ्क्ष्व भङ्क्ष्व निनादेन दुःखान्यस्यार्त्तिनाशन ।
ऋग्यजुःसामभिर्वाग्भिःकामरूपधरादिधृत् ॥ ४६ ॥
प्रशमं सर्वदुःखानि नयत्वस्य जनार्दन । ऐकाहिकं द्व्याहिकं च तथा त्रिदिवसज्वरम्
चातुर्थिकं तथात्युग्रं तथा वै सततज्वरम् । दोषोत्थं सन्निपातोत्थं तथैवागन्तुकज्वरम्
शमं नयतु गोविन्दो भित्त्वा च्छित्त्वाऽस्य वेदनाम् ।
नेत्रदुःखं शिरो दुःखं दुःखं तूदरसंभवम् ॥ ४६ ॥
अनुच्छ्वासं महाश्वासंपरितापं सवेपथुम् । गुदघ्राणांघ्रिरोगांश्च कुष्ठरोगं तथाक्षयम् ॥
कामलादींस्तथा रोगान्प्रमेहादींश्च दारुणान् ।
ये वातप्रभवा रोगा लूताविस्फोटकादयः ॥ ५१ ॥
ते सर्वे विलयं यान्तु वासुदेवापमार्जिताः । विलयं यान्तु ते सर्वे विष्णोरुच्चारणेनवा
क्षयं गच्छन्तु चाशेषास्ते चक्राभिहता हरेः ।
अच्युतानन्त गोविन्द नामोच्चारणभेषजात् ॥ ५३ ॥
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।
स्थावरं जङ्गमं यच्च कृत्रिमं चापि यद्विषम् ॥ ५४ ॥

दन्तोद्भवं नखोद्भूतमाकाशप्रभवं च यत्। भूतादि प्रभवं यच्च विषमत्यन्तदुःसहम् ॥
शमं नयतु तत्सर्वं कीर्तितोऽस्य जनार्दनः। ग्रहान्प्रेतग्रहांश्चैवतथान्याञ्छाकिनीग्रहान्
मुखमण्डलिकान्क्रूराञ्रेवतीं वृद्धिरेवतीम्। वृद्धिकाख्यान्ग्रहांश्चोग्रांस्तथामातृग्रहानपि

बालस्य विष्णोश्चरितं हन्तु बालग्रहानपि।
वृद्धानां ये ग्रहाः केचिद् बालानां चापि ये ग्रहाः ॥ ५८ ॥

नृसिंहदर्शनादेव नश्यन्ते तत्क्षणादपि। दंष्ट्राकरालवदनो नृसिंहो दैत्यभीषणः ॥ ५९॥
तं दृष्ट्वा ते ग्रहासर्वे दूरं यान्ति विशेषतः। श्रीनृसिंहमहासिंह ज्वालामालोज्ज्वलानन
ग्रहानशेषान्सर्वेश नुदस्वास्य विलोचन। ये रोगा ये महोत्पाता ये द्विषो ये महाग्रहाः
यानि च क्रूरभूतानि ग्रहपीडाश्च दारुणाः। शस्त्रक्षतेषु ये रोगा ज्वालगर्दभिकादयः ॥

विस्फोटकादयो ये च ग्रहा गात्रेषु संस्थिताः।
त्रैलोक्यरक्षाकर्त्तस्त्वं दुष्टदानवचारण ! ॥ ६३ ॥
सुदर्शन महातेजश्छिन्धि छिन्धी महाज्वरम्।
छिन्धि वातां च लूतां च च्छिन्धि घोरं महाविषम् ॥ ६४ ॥
उद्दण्डामरशूलं च विषज्वाला स गर्दभम्।
ओंह्रां ह्रां हूं हूं प्रधारेण कुठारेण जहि द्विषः ॥ ६५ ॥
ओं नमो भगवते सुदर्शनाय दुःखदारणविग्रह।
यानि चान्यानि दुष्टानि प्राणिपीडाकराणि वै ॥ ६६ ॥
तानि सर्वाणि सर्वात्मा परमात्मा जनार्दनः।
किंचिद्रूपं समास्थाय वासुदेव ! नमोऽस्तु ते ॥ ६७ ॥

क्षिप्त्वा सुदर्शनं चक्रं ज्वालामालाविभीषणम्। सर्वदुष्टोपशमनं कुरुदेव वराच्युत ॥
सुदर्शन महाचक्र गोविन्दस्य वरायुध। तीक्ष्णधार महावेग सूर्यकोटि समद्युते ॥६९॥

सुदर्शन महाज्वाल च्छिन्धि च्छिन्धि महारव।
सर्वदुःखानि रक्षांसि पापानि च विभीषण ॥ ७० ॥

दुरितं जहि चारोग्यं कुरुत्वं भो सुदर्शन। प्राच्यांचैव प्रतीच्यां च दक्षिणोत्तरतस्तथा

रक्षां करोति विश्वात्मानरसिंहःस्वगर्जितैः । भुव्यन्तरिक्षे च तथा पृष्ठतःपार्श्वतोऽग्रतः
रक्षांकरो तु भगवान्बहुरूपी जनार्दनः । यथा विष्णुमयं सर्वं सदेवासुर मानुषम् ॥७३
तेन सत्येन सकलं दुःखमस्य प्रणश्यतु । यथा योगेश्वरो विष्णुःसर्व देवेषुगीयते ॥७४
तेन सत्येन सकलं दुःखमस्य प्रणश्यतु । परमात्मा यथा विष्णुर्वेदाङ्गेषु च गीयते ॥

तेन सत्येन विश्वात्मा सुखदोऽस्त्वस्य केशवः ।
शान्तिरस्तु शिवं चास्तु प्रणाशं यातु चासुखम् ॥ ७६ ॥

वासुदेवशरीरोत्थैःकुशैःसंमार्जितं मया । अपामार्जित गोविन्द नमो नारायसूस्तथा ॥
तथापि सर्व दुःखानां प्रशमो वचनाद्धरेः । शान्ताःसमस्तदोषास्ते ग्रहाःसर्वे विषाणि च

भूतानि च प्रशाम्यन्ति संस्मृतेमधुसूदने ॥ ७८ ॥
एते कुशा विष्णुशरीरसंभवा जनार्दनोऽहं स्वयमेव चाग्रतः ।
हतं मया दुःखमशेषमस्य वै स्वस्थो भवत्वेष वचो यथा हरेः ॥ ७९ ॥
शान्तिरस्तु शिवं चास्तु प्रणश्यत्वसुखं च यत् ।
यदस्य दुरितं किंचित्क्षिप्तं तल्लवणाम्भसि ॥ ८० ॥
स्वास्थ्यमस्य सदैवास्तु हृषीकेशस्य कीर्तनात् ।
यद्यतोऽत्रागतं पापं तत्तु तत्र प्रगच्छतु ॥ ८१ ॥

एतद्रोगेषु पीडासु जन्तूनां हितमिच्छुभिः । विष्णुभक्तैश्च कर्त्तव्यमपामार्जनकं परम् ॥
अनेन सर्वदुःखानि विलयं यान्त्यशेषतः । सर्व पापविशुद्ध्यर्थं विष्णोश्चैवापमार्जनम्

आर्द्रं शुष्कं लघुस्थूलं ब्रह्महत्यादिकं तु यत् ।
तत्सर्वं नश्यते तूर्णं तमोवद्रविदर्शनात् ॥ ८४ ॥

नश्यन्ति रोगा दोषाश्च सिंहात्क्षुद्रमृगा यथा । ग्रहभूतपिशाचादि श्रवणादेव नश्यति ॥

द्रव्यार्थं लोभपरमैर्न कर्त्तव्यं कदाचन ।
कृतेऽपामार्जने किंचिन्न ग्राह्यं हितकाम्यया ॥ ८६ ॥

निरपेक्षैः प्रकर्तव्यमादिमध्यान्तबोधकैः । विष्णुभक्तैः सदाशान्तैरन्यथाऽसिद्धिदं भवेत्
अतुलेयं नृणां सिद्धिरियं रक्षापरा नृणाम् । भेषजं परमं ह्येतद्विष्णोर्यदप मार्जनम् ॥

महादेव उवाच ।

उक्तं हि ब्रह्मणा पूर्वं पुलस्त्याय सुताय वै । एतत्पुलस्त्यमुनिना दाल्भ्यायोदितं स्वयम्
सर्वभूतहितार्थाय दाल्भ्येन प्रकाशितम् । त्रैलोक्ये तदिदं विष्णोःसमाप्तं चापमार्जनम्
तवाग्रे कथितं देवि यतो भक्ताऽसि मे सदा ।
श्रुत्वा तु सर्वं भक्त्या च रोगान्दोषान्व्यपोहति ॥ ६१ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादेऽपामार्जनस्तोत्रं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

अपामार्जनस्तोत्रपाठविधिवर्णनं तत्फलमाहात्म्यवर्णनञ्च

महादेव उवाच ।

अपामार्जनकं दिव्यं परमाद्भुतमेव च । पठितव्यं विशेषेण पुत्रकामार्थसिद्धये ॥ १ ॥
एतत्स्तोत्रं पठेत्प्राज्ञः सर्वकामार्थसिद्धये । एककालं द्विकालं वा ये पठन्ति द्विजातयः
आयुश्च श्रीर्वलंतेषांवृद्धिं यान्तिदिने दिने । ब्राह्मणो लभते विद्यांक्षत्त्रियो राज्यमेववा
वैश्यो धनसमृद्धिं च शूद्रो भक्तिं च विन्दति ।
अन्यश्च लभते भक्तिं पठनाच्छ्रवणाज्जपात् ॥ ४ ॥
सामवेदफलं तस्य जायते नगनन्दिनि । अखिलं पापसङ्घातं तत्क्षणादेव नश्यति ॥५॥
इति ज्ञात्वा तु भोदेवि ! पठितव्यं समाहितैः ।
पुत्राश्चैव तथा लक्ष्मीः संपूर्णा भवति ध्रुवम् ॥ ६ ॥
लिखित्वा भूर्जपत्रे तु यो धारयति वैष्णवः ।
इह लोके सुखं भुक्त्वा याति विष्णोः परं पदम् ॥ ७ ॥
पठित्वा श्लोकमेकं तु तुलसीं यः समर्पयेत् । सर्वं तीर्थं कृतं तेन तुलस्याः पूजने कृते

एतत्स्तोत्रं तु परमं वैष्णवं मुक्तिदायकम्। पृथ्वीदानसमं पाठाद्विष्णुलोकं तु गच्छति

जपेत्स्तोत्रं विशेषेण विष्णुलोकस्य वाञ्छया।

वालानां जीवनार्थाय पठितव्यं समाहितैः ॥ १० ॥

रोगग्रहाभिभूतानां वालानां शान्तिकारकम्। भूतग्रहविषंचैव पठनादेव नश्यति ॥११॥

कण्ठे तुलसिजां मालां धृत्वा विप्रो हि यः पठेत्।

स च वै वैष्णवो ज्ञेयो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ १२ ॥

कण्ठेमाला धृता येन शङ्खचक्रादि चिह्नितः। वैष्णवःप्रोच्यते विप्रःस्तोत्रं चैतत्पठन्सदा

इहलोकं परित्यज्यविष्णुलोकं सगच्छति। मोहमाया परित्यक्तोदम्भतृष्णाविवर्जितः

एतत्स्तोत्रं पठेद्दिव्यं परंनिर्वाणमाप्नुयात्।

ते धन्याःसन्ति भूलोके ये विप्रा वैष्णवाःस्मृताः ॥ १५ ॥

स्वात्मा वै तारितस्तैस्तु सकुलं नात्रसंशयः। ते वै धन्यतमालोके नारायणपरायणाः

तैर्भक्तिश्च सदा कार्या ते वै भागवता नराः ॥ १६ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति-
नारदसंवादेऽपामार्जनमहिमा नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

———

अशीतितमोऽध्यायः

विष्णुमाहात्म्यवर्णनम्।

श्रीपार्वत्युवाच।

अहो विष्णोश्च माहात्म्यंवद विश्वेश्वरप्रभो। यन्माहात्म्यंपुनःश्रुत्वानभवेजायतेक्वचित्

महादेव उवाच।

शृणु सुन्दरि वक्ष्यामि विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम्।

श्रुत्वा तु लभते पुण्यं ह्यन्ते मोक्षमवाप्नुयात् ॥ २ ॥

देवव्रतं महाप्राज्ञं ध्यानयोगपरायणम्। आश्रयं सर्वशास्त्राणां यतेन्द्रियमकल्मषम् ॥
अप्रधृष्यं महाभागं देवैरपि सवासवैः। सत्यसन्धं जितक्रोधं समत्वे परिनिष्ठितम् ॥
नारायणे जगन्नाथे शरण्ये भक्तवत्सले। परांनिष्ठामनुप्राप्तं वाङ्मनःकायकर्मभिः ॥५
गुणानामाश्रयं शान्तं भीष्मंकुरु पितामहम्। प्रणम्य शिरसाभूमौ पप्रच्छेदं युधिष्ठिरः

युधिष्ठिर उवाच।

केचिदाहुःपरं धर्मं केचिदाहुः परंधनम्। केचिद्दानं प्रशंसन्ति समुदायं तथापरे ॥ ७ ॥
साङ्ख्यं केचित्प्रशंसन्तियोगमन्ये तथापरम्। केचिज्ज्ञानं प्रशंसन्ति केचिदाहुःपरंश्रुतम्
सम्यग्ध्यानं परंकेचित्केचिद्वैराग्यमुत्तमम्। अग्निष्टोमादिकं कर्म तथा केचित्परंविदुः
आत्मज्ञानं परंकेचित्समलोष्टाश्म काञ्चनाः। यमांश्च नियमांश्चैव केचित्प्रोचुर्मनीषिणः
कारुण्यं च परंकेचिदहिंसां च तपस्विनः। शौचं केचित्परं प्राहुःकेचिद्देवार्चनं नराः ॥
व्यामोहं चात्र गच्छन्ति व्यामुग्धाःपापकर्मभिः। यदेतेषु परंकृत्यमनुष्ठेयं महात्मभिः
वक्तुमर्हसि धर्मज्ञ सर्वशास्त्रभृतांवर ! ॥ १२ ॥

महादेव उवाच।

भूलोके या कथा जाता भैष्मी यौधिष्ठिरी सति।
तामहं संप्रवक्ष्यामि लोकानां च हिताय वै।
एतान्प्रश्नांस्तदा श्रुत्वा प्राह भीष्मो युधिष्ठिरम् ॥ १३ ॥

भीष्म उवाच।

श्रूयतामिदमत्यन्तं गूढं संसारमोचनम्। श्रोतव्यं यत्त्वया सम्यग्ज्ञातव्यं धर्मनन्दन ! ॥
अत्रैवोदाहरन्तीमं पुण्यं चैव पुरातनम्। पुण्डरीकस्य संवादं महर्षेर्नारदस्य च ॥१५॥
ब्राह्मणःश्रुतिसंपन्नःपुण्डरीको महामतिः। आश्रमे प्रथमे तिष्ठन्गुरूणां वशगःसदा ॥१६
जितेन्द्रियो जितक्रोधःसन्ध्योपासनतत्परः। वेदवेदाङ्गनिपुणःशास्त्रेषु च विचक्षणः ॥
समिद्भिःसाधुहव्येन सायं प्रातर्हुतानलः।
ध्यात्वा जगत्पतिं विष्णुं सम्यगाराधयद्विभुम् ॥ १८ ॥
तपःस्वाध्यायनिरतःसाक्षाद्ब्रह्मसुतो यथा। उदकेन्धनपुष्पाद्यैरसकृत्पूजयन्गुरुम् ॥१९

मातापित्रोश्च शुश्रूषुर्भिक्षाहारी विमत्सरः । ब्रह्मविद्यामधीयानःप्राणायामपरायणः ॥
तस्य सर्वात्मभूतस्य संसारे निःस्पृहस्य च ।
महात्मनो बुद्धिरासीत्संसारार्णवतारिणी ॥ २१ ॥
मातरं पितरं चैवभ्रातॄनथसुहृज्जनान् । मित्राणि मातुलांश्चैवसखीन्सम्बन्धिबान्धवान्
धनधान्यसमृद्धं च ग्रहं वंशक्रमागतम् । क्षेत्राणि सुमहार्हाणि सर्वसस्योद्भवानि च ॥
परित्यज्य महासत्त्वस्तृणानीव महासुखी । विचचार महीं रम्यां शाकमूलफलाशनः
गङ्गाश्च यमुनाश्चैव गोमतीमथ गण्डिकाम् ।
शतद्रुं च पयोष्णीं च सरयूं च सरस्वतीम् ॥ २५ ॥
प्रयागं नर्मदांचैव शोणंचैव महानदम् । प्रभासं विन्ध्यतीर्थानि हिमवत्प्रभवाणि च
आश्रमेषु च यानिस्युर्नैमिषे पुष्करादिषु । कुरुक्षेत्रे च यानिस्युस्तथा गोवर्धनादिषु ॥
अन्यानि सुमहातेजास्तीर्थानि सुसमाहितः ।
विचचार महायोगी यथाकाले यथाविधि ॥ २८ ॥
कदाचिदात्मवान्धीरःशालग्रामं तपोधनः । पुण्डरीको महाभागःपूर्वकर्मवशानुगः ॥२६
संसेव्यमानं मुनिभिस्तत्त्वविद्भिस्तपोधनैः । मुनीनामास्पदंरम्यं पुराणेष्वपि विश्रुतम्
भूषितंचैव चक्राद्यैश्चक्राङ्कित शिलातलम् ।
रम्यं विविक्तविस्तीर्णं सदा विष्णुप्रसादकम् ॥ ३१ ॥
किं च चक्राङ्कितास्तत्प्राणिनःपुण्यदर्शनाः । विचन्ति यथाकामं पुण्यतीर्थप्रदर्शिनः ॥३२
तस्मिन्क्षेत्रे महापुण्ये शालग्रामे महामतिः । स्नात्वा देवह्रदे तीर्थे सरस्वत्यां च सुव्रतः
जातिस्मर्यां चक्रकुण्डे चक्रनद्याश्रितेषु च ।
तथाऽन्यान्यपि तीर्थानि तस्मिन्नेव चचार सः ॥ ३४ ॥
ततःक्षेत्रप्रभावेण तीर्थानां चैव तेजसा । मनःप्रसादमभजत्तस्मिन्देव महामनाः ॥३५ ॥
सोऽपि तीर्थविशुद्धात्मा पुण्डरीकस्तपोधनः । तत्रैव वसतिं चक्रे ध्यानयोगपरायणः ॥
तत्रैव सिद्धिमाकाङ्क्षन्नाराध्य गरुडध्वजम् ।
शास्त्रोक्तेन विधानेन भक्त्या परमया पुनः ॥ ३७ ॥

उवास चिरमेकाकी निर्द्वन्द्वःस जितेन्द्रियः। शाकमूलफलाहारःसंतुष्टःसमदर्शनः॥
यमैश्च नियमैश्चैव तथैवासन बन्धनैः। प्राणायामैश्च तीर्थैश्च प्रत्याहारैश्च सन्ततैः ॥३९

धारणाभिस्तथा ध्यानैःसमाधिभिरतन्द्रितः।
योगाभ्यासं सदा सम्यक्चक्रे विगतकिल्विषः ॥ ४० ॥

वैदकैश्चाह्निकैश्चैव तथा पौराणिकैरपि। आराधयति सर्वेशं ततःशुद्धिमवाप सः ॥४१
रागद्वेषविनिर्मुक्तः स्वधर्म इव रूपवान्। आराधयामास देवं तद्गतेनान्तरात्मना ॥४२॥

तुतोष भगवान्विष्णुः पुण्डरीकायतेक्षणः।
ततःकदाचित्तं देशं नारदः परमार्थवित् ॥ ४३ ॥

जगाम सुमहातेजाःसाक्षादादित्यसन्निभः। तं द्रष्टुकामो भगवान्पुण्डरीकं तपोनिधिम्

विष्णुभक्तिपरीतात्मा वैष्णवानां हितेरतः।
स दृष्ट्वा नारदं प्राप्तं तेजोमण्डलमण्डितम् ॥ ४५ ॥

महामतिर्महोदारःसर्ववेदैकभाजनम्। प्राञ्जलिःप्रणतो भूत्वा प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ४६
अर्घं दत्त्वा विधानेन प्रणाममकरोत्पुनः। कोऽयमत्यद्भुताकारस्तेजस्वी हृद्यवेषधृत् ॥

आतोद्यहस्तः सुमुखो जयमण्डलमण्डितः।
विवस्वानथवा वह्निरिन्द्रो वरुण एव वा ॥ ४८ ॥
इति संचिन्तयन्स्थित्वा जगाद परमद्युतिम् ॥ ४९ ॥

पुण्डरीक उवाच।

को भवानिह संप्राप्तःकुतो वा परमद्युतिः। त्वद्दर्शनं हि भगवन्प्रायेण भुविदुर्लभम् ॥
नैवदृष्टःपुमान्कोऽपि मया तव समःप्रभो। वक्तुमर्हस्यशेषेण यत्प्रदिष्टं मयानघ ! ॥५१

नारद उवाच।

नारदोऽहमनुप्राप्तस्त्वद्दर्शनकुतूहलात्। दुर्दर्शो भगवद्भक्तस्त्वादृशःसततं द्विज ॥ ५२ ॥

स्मृतः संतोषितो वापि पूजितो वा द्विजोत्तम।
पुनाति भगवद्भक्तश्चाण्डालोऽपि यद्दृच्छया ॥ ५३ ॥

दासोऽहं वासुदेवस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः। शङ्खचक्रगदापाणेस्त्रैलोक्यस्यैकचक्षुषः ॥

इत्युक्तो नारदेनासौ भक्तिपर्याकुलात्मना । प्रोवाच मधुरं विप्रं तद्दर्शनसुविस्मितः ॥

पुण्डरीक उवाच ।

धन्योऽहं देहिनां मध्ये सुपूज्योऽहं सुरैरपि ।
कृतार्थाः पितरो मेऽद्य सम्प्राप्तं जन्मनःफलम् ॥ ५६ ॥

अनुगृह्णीष्व देवर्षे त्वद्भक्तस्य विशेषतः । तं करिष्याम्यं चिद्वन्भ्राम्यमाणःस्वकर्मभिः ॥
कर्तव्यं परमं गुह्यमुपदेष्टुं त्वमर्हसि । त्वं गतिःसर्वभूतानां वैष्णवानां विशेषतः ॥५८॥

नारद उवाच ।

अनेकानीह शास्त्राणि कर्माणि च तथा द्विज । धर्मवृन्दं बहुविधं तथैव भुवि मानद ॥
वैलक्षण्यं च जगतस्तस्मादेव द्विजोत्तम । अन्यथा सर्वसत्त्वानां सुखं वा दुःखमेव च

विज्ञानमात्रं क्षणिकं निरात्मकमिदं जगत् ।
इति कैश्चित्परिज्ञातं वाह्यार्थनिरपेक्षकम् ॥ ६१ ॥

अव्यक्ताज्जायते नित्यं नित्यान्नित्यमिदं जगत् । इत्येवं प्राहुरपरे तत्रैव लयमेति च ॥

आत्मानो वहवः प्रोक्ता नित्याः सर्वगतास्तथा ।
अन्ये मतिमतां श्रेष्ठास्तत्त्वालोकनतत्पराः ॥ ६३ ॥

यावच्छरीरमात्मानं प्रतिपन्नास्तथापरे । हस्तिकीटादि देहेऽपि महान्तमण्डमेव च ॥
यथाऽद्यजगतोवृत्तिस्तथा कालान्तरेष्वपि । प्रवाहो नित्यमेवैष कःकर्त्तेति च केचन ॥
यद्यत्प्रत्यक्षविषयं तस्मादन्यन्न विद्यते । कुतः स्वर्गादयः सन्तीत्यन्ये विजितमानसाः
निरीश्वरमिदं प्राहुःसेश्वरं च तथापरे । अत्यन्तभिन्नमतयःपरमार्थ पराङ्मुखाः ॥६७॥

एवमन्येऽपि कुहका यथामति यथा श्रुतम् ।
वदन्ति विविधैर्भेदैः स्वयुक्तिस्थितिकारकाः ॥ ६८ ॥

तर्केष्ववहितो भूत्वा कथयामि तपोधन । परमार्थमिमं पुण्यं घोरं संसारनाशनम् ॥६९
तन्मूलमनुजानन्ति ततो देवादयो नराः । प्रमाणे नोपलभ्यन्ते न प्रमाणं विमोहितैः ॥
अनागतमतीतं च विप्रकृष्टमतीव यत् । न गृहीतं यथाशक्त्या वर्त्तमानार्थनिष्ठितम् ॥
आगमो मुनिभिःप्रोक्तःपूर्वरूपक्रमागतः । प्रमाणं स तु विज्ञेयःपरमार्थप्रसाधकः ॥७२

यदभ्यासबलाज्ज्ञानं रागद्वेषमलापहम्। उत्पद्यते द्विजश्रेष्ठ सोऽयमागमसंज्ञकः ॥७३

फलं कर्म च यत्तत्त्वं विज्ञानं दर्शनं विभुम्।
जात्यादि कल्पनाहीनं द्वितीयागमलक्षणम् ॥ ७४ ॥

आत्मसंवेद्यं नित्यं सनातनमतीन्द्रियम् । चिन्मात्रममृतं ज्ञेयमनन्तमजमव्ययम् ॥७५

व्यक्ताव्यक्तस्वरूपेण व्यक्तस्थितमनञ्जनम् ।
व्याप्ता विष्णुरितिख्यातं ख्यातभिन्नमवस्थितम् ॥ ७६ ॥

योगिध्येयमविज्ञेये परमार्थपराङ्मुखैः । लक्ष्यते बुद्धिभिर्भिन्नमपि भिन्नं न चात्मनि

शृणुष्वावहितस्तात कथयामि तवानघ ! । यत्प्रोक्तं ब्रह्मणा पूर्वं पृच्छतो मम सुव्रत !॥

कदाचिद्ब्रह्मलोकस्थं ब्रह्माणं च पितामहम् ।
प्रणिपत्य यथान्यायमपृच्छमजमव्ययम् ॥ ७९ ॥

किमुज्ञानं परंप्रोक्तं कश्च योगः परोमतः । एतन्मे तत्त्वतो ब्रह्मन्समाचक्ष्व पितामह ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणुष्वावहितस्तात ज्ञानयोगमनुत्तमम् । अल्पग्रन्थं प्रभूतार्थमदुःखोपासनक्रियम् ॥८१

यःपरम्परया प्रोक्तः पुरुषःपञ्चविंशकः । स एव सर्वभूतात्मा तेन इत्यभिधीयते ॥८२॥

नारायणो जगद्धाम परमात्मा सनातनः । जगतःसृष्टिसंहारपरिपालनतत्परः ॥ ८३ ॥

त्रयाणामात्मनां चैको देवदेवः सनातनः। आराध्यःसर्वदा ब्रह्मन्पुरुषेण हितैषिणा ॥

निस्स्पृहा नित्यसन्तुष्टा ज्ञानिनस्ते जितेन्द्रियाः ।
निर्ममा निरहङ्कारा रागद्वेषविवर्जिताः ॥ ८५ ॥

अक्षयं यान्ति ते शान्तास्सर्वसङ्गविवर्जिताः ।
ध्यानयोग पराब्रह्मंस्ते पश्यन्ति जगत्पतिम् ॥ ८६ ॥

यथा जगदवस्थानं यथा कालान्तरे पुनः । भूतं भव्यं भविष्यं च विप्रकृष्टं तथैव च ॥

स्थूलं सूक्ष्मं तथा चान्यत्पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा ।
तच्चित्तास्तद्गतप्राणा नारायणपरायणाः ॥ ८८ ॥

अन्यथा मन्दबुद्धीनां प्रतिभाति दुरात्मनाम् । कुतर्कज्ञानदुष्टानां विभक्तेन्द्रियवादिनाम्

नारद उवाच ।

श्रूयतामन्यदपि वै कथ्यमानं मयानघ । ब्रह्मणैव पुराप्रोक्तं जगतःकारणात्मना ॥ ९०॥
देवानामिन्द्रमुख्यानामृषीणां चैव सुव्रत । हितानि कथयामास पृच्छतां कमलासनः ॥

ब्रह्मोवाच ।

नारायणपरोधर्मस्तथालोकाश्च शाश्वताः ।
नारायणपरा यज्ञाःशास्त्राणि विविधानि च ॥ ९२ ॥
वेदाःसाङ्गास्तथा चान्ये विष्णुर्विश्वेश्वरो हरिः ।
पृथिव्यादीनि विबुधाःपञ्चभूतानि सोऽव्ययः ॥ ९३ ॥
सर्वं विष्णुमयं ज्ञेयं विबुधैः सकलं जगत् ।
तथापि मानुषाः पापा न जानन्ति विमोहिताः ॥ ९४ ॥

तस्यैव मायया व्याप्तं चराचरमिदंजगत् । तन्मनास्तद्गतप्राणो जानाति परमार्थवित्
ईश्वरः सर्वभूतानां विष्णुस्त्रैलोक्यपालकः । तस्मिन्नेतज्जगत्सर्वं तिष्ठति प्रभवत्यपि ॥
जगत्संहरतेरुद्रः पालने विष्णुरुच्यते । उत्पत्तौ चाहमेवाऽत्र तथान्ये लोकपालकाः ॥
सर्वाधारो निराधारः सकलो निष्कलस्तथा । अणुर्महांस्तथाप्यन्यत्तस्माच्चपरतःपरः

तमेव शरणं यात सर्वं संहारकारकम् ।
स पिताजनितास्माकं कीर्तितो मधुसूदन ! ॥ ९९ ॥

एवमुक्ताः सुरा सर्वे ब्रह्मणा पद्मयोनिना । प्रणेमुः सर्वलोकेशं देवं विष्णुं जनार्दनम् ॥
तस्मात्त्वमपि विप्रर्षे नारायणपरोभव । तदन्यः को महोदारः प्रार्थितं दातुमर्हति ॥
पितरं मातरं चैव तमेव पुरुषोत्तमम् । परिगृह्णीष्वलोकेशं देव देवं जगत्पतिम् ॥१०२॥
अग्निकार्येण भैक्षेण तपसा ध्ययनेन वै । तोषयेद्देवदेवेशं गुरुं नित्यमतन्द्रितः ॥१०३॥
स्वर्गेऽक्षयं तथाभोगमनुष्ठेयं तथैव च । परिगृह्णीष्वविप्रर्षे तमेव पुरुषोत्तमम् ॥१०४॥

किं तैस्तुमन्त्रैर्बहुभिः किं तैस्तु बहुभिर्व्रतैः ।
ओं नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थ साधकः ॥ १०५ ॥
चीरवासा जटी विप्र ! दण्डी मुण्डित एव वा ।

विभूषितो वा विप्रेन्द्र ! न लिङ्गं धर्मकारणम् ॥ १०६ ॥
ये नृशंसा दुरात्मानः पापाचारपराः सदा । तेऽपियान्ति परंस्थानं नारायणपरायणाः
लिप्यन्ते नचपापौघैर्वैष्णवा वीतकिल्विषाः । पुनन्तिसकलं लोकमहिंसाजितमानसाः
क्षत्रबन्धुरिति ख्यातो राजाप्राणिविहिंसकः । प्राप्तवान्परमं धाम वैष्णवंकेशवाश्रयात्
अम्बरीषो महाख्यो राजा परमतत्त्ववित् । हृषीकेशं समाराध्य वैष्णवं पदमाप्तवान्
अन्ये ब्रह्मर्षयः शान्ताः बहवः संशितव्रताः ।
ध्यात्वा च परमात्मानं संसिद्धिं परमां गताः ॥ १११ ॥
प्रह्लादः परमाह्लादः पुरा नारायणं हरिम् । सेविताऽभ्यर्चिता ध्याता तेनैव परिरक्षितः
भरतो नाम तेजस्वी राजा परमधार्मिकः । उपास्यैनं चिरं कालं परां मुक्तिमवाप्तवान्
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः।केशवाराधनं हित्वा नैव याति परांगतिम्
जन्मान्तरसहस्रेषु यस्यस्यान्मतिरीदृशी । दासोऽहं विष्णुभक्तानामिति सर्वार्थसाधकः
स याति विष्णुसालोक्यं पुरुषो नात्र संशयः । किंपुनस्तद्गतप्राणाःपुरुषाः संशितव्रताः
अनन्यमानसैर्नित्यं ध्यातव्यस्तत्त्वचिन्तकैः । नारायणो जगद्व्यापीपरमात्मासनातनः
भीष्म उवाच ।
इत्येवमुक्त्वा देवर्षिस्तत्रैवान्तरधीयत । परोपकारनिरतो नारदः परमार्थवित् ॥११८॥
पुण्डरीकोऽपि धर्मात्मा नारायणपरायणः। ॐ नमोनारायणायेति मन्त्रमष्टाक्षरं जपन्
प्रसीद मम विश्वात्मन्निति वाचं वदन्सदा ।
हृत्पुण्डरीके गोविन्दं प्रतिष्ठाप्यामृतात्मकम् ॥ १२० ॥
तपस्वी विमले सौम्ये शालग्रामे तपोधनः । उवास चिरमेकाकी निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः
स्वप्नेऽपि केशवान्नान्यत्पश्यतीतिमहामतिः । निद्रापिनैव तस्यासीत्पुरुषार्थविरोधिनी
तपसा ब्रह्मचर्येण शौचेन च विशेषतः । जन्मजन्मान्तरारूढे संस्कारे च यथा तथा ॥
प्रसादाद्देवदेवस्य सर्वलोकस्य साक्षिणः । अवाप परमां सिद्धिंवैष्णवीं वीतकिल्बिषः
शङ्खचक्रगदापाणिं पीतवाससमच्युतम् । श्यामलं पुण्डरीकाक्षं स ददर्श सदाकृतिम्
सिंहव्याघ्रास्तथा चान्ये मृगाः प्राणिविहिंसकाः ।

विरोधं सहजं हित्वा समेतास्तस्य संन्निधौ ॥ १२६ ॥
विचरन्ति यथाकामं प्रसन्नेन्द्रियवृत्तयः । परस्परहितं रम्यं सम्प्राप्तं पाण्डुनन्दन ॥१२७
तथा प्रसन्नं ललितं सरसां सरितामपि । ऋतवः सुप्रसन्नाश्च विमलेन्द्रियसंयुताः ॥
मारुताश्च सुखस्पर्शा वृक्षाः पुष्पफलान्विताः ।
आनुकूल्यं ययुः सर्वे पदार्थास्तस्य धीमतः ॥ १२९ ॥
प्रसन्नमभवत्तस्मै प्रसन्नं सचराचरम् । प्रसन्ने देवदेवेशे गोविन्दे भक्तवत्सले ॥१३०॥
ततः कदाचिद्भगवान्पुण्डरीकस्य धीमतः । आविरासीज्जगन्नाथः पुण्डरीकायतेक्षणः
शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासाः समुज्ज्वलः । पुण्डरीकविशालाक्षश्चन्द्रबिम्बनिभाननः
कङ्कणी कुण्डली हारी केयूरी कटिसूत्रवान् ।
श्रीवत्साङ्कः पीतवासा कौस्तुभेन विभूषितः ॥ १३३ ॥
वनमालापरीताङ्गः स्फुरन्मुकुटकुण्डलः । स्फुरता ब्रह्मसूत्रेण मुक्तादामविलम्बिना ॥
विराजमानो देवेशश्चामरव्यजनादिभिः । देवैः सिद्धैः सदेवेन्द्रैर्गन्धर्वैर्मुनिभिर्वरैः ॥१३५
यक्षैर्नागवरैश्चैव सेव्यमानोऽप्सरोगणैः । तं दृष्ट्वा देशदेवेशं पुण्डरीकोऽनघः स्वयम्
ततो बुद्ध्वामहात्मानं तुष्टाव च जनार्दनम् । प्राञ्जलिः प्रणतोभूत्वा प्रहृष्टेनान्तरात्मना

पुण्डरीक उवाच ।

नमोऽस्तु विष्णवे तुभ्यं सर्वलोकैकचक्षुषे । निरञ्जनाय नित्याय निर्गुणाय महात्मने
त्वमीशः सर्वभूतानां तथैव च निरीश्वरः ।
तथा भयार्तिनाशाय गोविन्द गरुड़ध्वज ॥ १३९ ॥
अनुग्रहेण भूतानामनेकाकारधारिणे । त्वयि सर्वमिदं प्राहुस्त्वन्मयं चैव केवलम् ॥
त्वमस्माज्जगतोऽभिन्नो निर्मितं च जगत्त्वया । नमोऽस्तुनाभिप्रसवनलिनाय नमोनमः
नमः समस्तवेदान्तविश्रुतात्मविभूतये । त्वमेव सर्वदेवेश ! कारणं कैटभार्दन ॥१४२॥
प्रसीद हृदयावास ! शङ्खचक्रगदाधर ! । नमःसमस्तभूतानामादिभूताय भूभृते ॥१४३॥
अनेकरूपरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे । यस्य ब्रह्मादयो देवा न विदन्ति सुरेश्वराः ॥
महिमानं तपोमेयं तस्मै तुभ्यं नमाम्यहम् । वाचामगोचरो यस्य महिमा तव नाप्यते ॥

जात्यादिभिरसंस्पृष्टः सदाध्येयोऽसि तत्त्वतः । तथा विभेदरूपेण भक्तानामनुकम्पया
मत्स्यकूर्मादिरूपेण दृश्यसे पुरुषोत्तम ॥ १४६ ॥

भीष्म उवाच ।

पुण्डरीको जगन्नाथं स्तुत्वैवं पुरुषोत्तमम् । तमेवालोकयद्वीर चिरप्रार्थितदर्शनम् ॥
तमाह भगवान्विष्णुः पद्मनाभस्त्रिविक्रमः । पुण्डरीकं महाभागं तथा गम्भीरया गिरा ॥

श्रीभगवानुवाच ।

प्रीतोऽस्मि वत्सभद्रं ते पुण्डरीकमहामते । वरं वृणीष्व दास्यामि यत्ते मनसि वर्त्तते
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं देवदेवस्य भाषितम् । एवं विज्ञापयामास पुण्डरीको महामतिः ॥

पुण्डरीक उवाच ।

काहमत्यन्तदुर्बुद्धिः क भवन्तो हितैषिणः । यद्धितं मम देवेश ! तदाज्ञापय माधव ! ॥
एवमुक्तः स भगवान्सुप्रीतश्च ततोऽब्रवीत् । पुण्डरीकं महाभागं कृताञ्जलिमुपस्थितम्
आगच्छ कुशलं तेऽस्तु मयैव सह सुव्रत । उपकारी च नित्यात्मामयात्वं सर्वदा सह

भीष्म उवाच ।

एवमुक्तवतिप्रीत्या श्रीधरे भक्तवत्सले । दिवि दुन्दुभयो नेदुः पुष्पवर्षं पपात ह ॥१५४

ब्रह्मादयस्तथा देवाः साधुसाध्विति चाब्रुवन् ।
जगुः सिद्धाश्च गन्धर्वाः किन्नराश्च विशेषतः ॥ १५५ ॥

तत्रैव तमुपादाय देवदेवो जगत्पतिः । जगाम गरुडारूढः सर्वलोकनमस्कृतः ॥१५६॥
तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र विष्णुभक्ति समन्वितः । तच्चित्तस्तद्गतप्राणस्तद्भक्तानां हितेरतः

अर्चयित्वा यथायोग्यं भजस्व पुरुषोत्तमम् ।
श्रृणुष्व तत्कथां पुण्यां सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ १५८ ॥
येनोपायेन राजेन्द्र विष्णुभक्तिसमन्वितः ।
प्रीतो भवति विश्वात्मा तत्कुरुष्व सुविस्तरम् ॥ १५९ ॥

अश्वमेधशतैरिष्ट्वा वाजपेयशतैरपि । प्राप्नुवन्ति नरा नैव नारायणपराङ्मुखाः ॥
सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् । बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥१६१॥

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥ १६२ ॥

य इदं शृणुयान्नित्यं पठेद्वापि समाहितः । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति

ईश्वर उवाच ।

एतद्वै नाममाहात्म्यं श्रुत्वा वै नगनन्दिनि । धर्मार्थकाममोक्षास्तु भवन्ति च न संशयः

शुक्ले कुलेऽवतीर्णो यो ब्राह्मणो वेदतत्परः ।
वैष्णवो विष्णुरूपोऽसौ नान्यो विप्रस्तु कर्हिचित् ॥ १६५ ॥
मुखे नामोच्चरन्विष्णोर्हृदये ध्यानतत्परः ।
शङ्खचक्रधरो विद्वान्मालां तुलसिजां दधत् ॥ १६६ ॥
जीवन्मुक्तः स विज्ञेयो भुक्त्वा भोगांस्त्वनेकशः ।
एकविंशतिकुलैः सार्धं विष्णुलोके स मोदते ॥ १६७ ॥
पुण्डरीको यथाशक्त्या मुक्तो ह्यत्र न संशयः ।
भक्तिभावेन गोविन्दस्तुष्टिं प्राप्नोति शाश्वतीम् ॥ १६८ ॥

कलौ वै हरिगीतं तु स्वगृहे वा विशेषतः । सामगानसमं प्रोक्तं देवार्चनसमाधिषु ॥

इति श्रीपाद्मेमहापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमामहेश्वर-संवादे विष्णुमहिमा नामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

एकाशीतितमोऽध्यायः

गङ्गामाहात्म्यवर्णनम्

पार्वत्युवाच ।

गङ्गायाश्चैव माहात्म्यं पुनर्वद महामते ! । यच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे वीतरागाः पुनः पुनः ॥
माहात्म्यं कीदृशं चैव तस्याः सर्वेश्वर ! प्रभो ! ॥ १ ॥

उत्पत्तिश्च श्रुता पूर्वं महिमा न श्रुतो मया ।।
त्वमाद्यः सर्वभूतानां त्वं देवश्च सनातनः ।। २ ।।

महादेव उवाच ।

बृहस्पतिसमं बुद्ध्या शक्रतुल्य पराक्रमम् । शरतल्पगतं भीष्ममृषयो द्रष्टुमाययुः ।।३
अत्रिर्वशिष्ठश्च भृगुः पुलःस्त्यः पुलहक्रतुः ।
अङ्गिरा गौतमोऽगस्त्यः सुमतिस्त्वायुरात्मवान् ।।४।।
विश्वामित्रः स्थूलशिराः सर्वज्ञः प्रमथाधिपः ।
रैभ्यो बृहस्पतिर्व्यासः पावनः कश्यपो ध्रुवः ।। ५ ।।
दुर्वासा जमदग्निश्च मार्कण्डेयोऽथ गालवः । उशनाश्च भरद्वाजः क्रतुरास्तीक एव च
स्थूलाक्षः सर्वलोकाक्षः कण्वो मेधातिथिः कुशः ।
नारदः पर्वतश्चैव सुधन्वा च्यवनो द्विजः ।। ७ ।।
मतिभूर्भुवनो धौम्यः शतानन्दोऽकृतव्रणः । जामदग्न्योऽथ रामश्च ऋचीकश्चैवमादयः
तान्प्रणम्य यथान्यायं धर्मपुत्रः सहानुजः । पूजयामास विधिज्ञगत्पूज्यान्सुतेजसः ।।
ते पूजिता महात्मानः सुखसीनास्तपोधनाः ।
भीष्माश्रिताः कथाश्चक्रुर्दिव्यधर्माश्रितास्तथा ।। १० ।।
कथान्ते तु ततस्तेषामृषीणां भावितात्मनाम् ।
प्रणम्य शिरसा भीष्मं पप्रच्छेदं युधिष्ठिरः ।। ११ ।।

युधिष्ठिर उवाच ।

के देशास्तु महापुण्याः के शैलाः केऽपि चाश्रमाः ।
सेव्या धर्मार्थिभिर्नित्यं तन्मे ब्रूहि पितामहः ! ।। १२ ।।

भीष्म उवाच ।

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं नरोत्तमम् ! । शिलोञ्छवृत्तेः संवादं सिद्धस्य च युधिष्ठिर
कश्चित्सिद्धः परिक्रम्य समस्तां पृथिवीमिमाम् ।
उञ्छवृत्तेः शिवे राजन्गृहं प्राप्तो महात्मनः ।। १४ ।।

आत्मविद्यासुतत्त्वज्ञः सर्वदा सजितेन्द्रियः । रागद्वेषपरित्यक्तः कुशलो ज्ञानकर्मसु ॥
वैष्णवेषु सदाश्रेष्ठो विष्णुधर्मपरायणः । अनिन्दको वैष्णवानां सदाधर्मपरायणः ॥
योगाभ्यासरतो नित्यं शङ्खचक्रविधारकः । त्रिकालपूजातत्त्वज्ञः श्रीकण्ठेऽनुरतः सदा
वेदविद्यासु निपुणो धर्माधर्मविचारकः । वेदपाठव्रतो नित्यं नित्यं चातिथिपूजकः ॥

सतीर्थमतियुक्तस्तु शिलोञ्छेषु स्थितः सदा ।
चतुर्वेदेषु यद्धयानं गीतं यद्यत्स्वयम्भुवा ॥ १६ ॥
तत्सर्वं स च जानाति द्विजो विष्णुस्वरूपधृत् ।
नानाधर्मार्थविशदो ह्यव्ययेष्टमतिः सदा ॥ २० ॥
एकस्मिन्नेव काले तु गतोऽसौ वै शिवेर्गृहम् ।
तं दृष्ट्वा विधिवच्चैव कृत्वाऽऽतिथ्यं महामनाः ॥ २१ ॥
शिविः पप्रच्छ तं सिद्धं देशानां हितकारणम् ॥ २२ ॥

उञ्छवृत्तिरुवाच ।

के देशाः के जनपदाःकेशैलाः केऽपि चाश्रमाः । पुण्या द्विजवरप्रीत्या मह्यं निर्देष्टुमर्हसि

सिद्ध उवाच ।

ते देशास्ते जनपदास्ते शैलास्तेऽपि चाश्रमाः ।
पुण्यास्त्रिपथगा येषां मध्ये नित्यं सरिद्वरा ॥ २४ ॥

तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैस्त्यागेन वा पुनः । गतिं तां न लभेज्जन्तुर्गङ्गांसंसेव्य यां लभेत्
स्नातानां तत्र पयसि गाङ्गे ये नियतात्मनाम् । तुष्टिर्भवति या पुंसां न सा क्रतुशतैरपि

अपहृत्य तमस्तीव्रं यथा भात्युदये रविः ।
तथाऽपहृत्य पाप्मानं भाति गङ्गाजलाप्लुतः ॥ २७ ॥

अग्निप्राप्य यथा विप्र तूलराशिर्विनश्यति । तथा गङ्गावगाहश्च सर्वं पापं व्यपोहति ॥
यस्तु सूर्यांशु संतप्तं गाङ्गेयं सलिलं पिवेत् । सद्यो नीहारनिर्मुक्तःपावकाद्धि विशिष्यते

चान्द्रायणसहस्रं तु चरेद्यो नियतःपुमान् ।
संप्लुतश्चापि गङ्गायां यो नरःस विशिष्यते ॥ ३० ॥

लम्बेताधःशिरायस्तु वर्षाणामयुतं नरः। मासमेकं तु गङ्गाम्भःसेवते यो नरोत्तमः ॥३१

ब्रह्महत्या विनिर्मुक्तो याति विष्णोरनामयम्।

इयं वेणिसमा पुण्या पवित्रा पापनाशिनी ॥ ३२ ॥

यस्याःस्मरणमात्रेण बालहा मुच्यते क्षणात्।

स प्रयागस्तीर्थराजो वैष्णवानां हि दुर्लभः ॥ ३३ ॥

ज्ञात्वा यत्र नरश्रेष्ठ वैकुण्ठं सत्वरं व्रजेत्। प्रियाप्रिये न जानाति धर्माधर्मौ न विन्दति

स्नात्वा चैव तु गङ्गायां महापापात्प्रमुच्यते ॥ ३५ ॥

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि।

मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ३६ ॥

ब्रह्महा चैव गोघ्नो वा सुरापी बालघातकः।

मुच्यते सर्वपापेभ्यो दिवं याति च सत्वरम् ॥ ३७ ॥

दर्शनं माधवस्याथ वटस्य दर्शनं तथा। वेण्यां स्नानंप्र कुर्वाणो वैकुण्ठं प्रतिगच्छति

उदिते च यथा सूर्ये विलयं याति वै तमः। तथैव तस्यां पापानिनश्यन्ति स्नानमात्रतः

गङ्गाद्वारे कुशावर्ते ग*ल्लिके नीलपर्वते। स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते ॥

एवं ज्ञात्वा नरश्रेष्ठो गङ्गास्नायी पुनःपुनः।

स्नानमात्रेण भो राजन्मुच्यते किल्बिषादतः ॥ ४१ ॥

देवानां प्रवरो विष्णुर्यज्ञानां चाश्वमेधकः।

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां नदी भागीरथी सदा ॥ ४२ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमापति नारदसंवादे गङ्गामाहात्म्यं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

---

* बिल्वके इत्यपि पाठः

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

वैष्णवलक्षणवर्णनम् ।

पार्वत्युवाच ।

वैष्णावानां लक्षणं च कीदृशं प्रतिपादितम् । महिमा कीदृशश्चैव वद विश्वेश्वर प्रभो

महादेव उवाच ।

विष्णोरयं यतःप्रोक्तो ह्यतोवै वैष्णवोमतः । सर्वस्यादिस्तु विज्ञेयो ब्रह्मरूपधरस्ततः ॥
यतःसकाशात्संजाता ब्राह्मणा वेदपारगाः । ते वैष्णवास्तु विज्ञेया नैवान्ये तु कदाचन
शौचसत्यक्षान्तियुक्तो रागद्वेषविवर्जिता । वेदविद्याविचारज्ञो यः स वैष्णव उच्यते ॥
अग्निहोत्ररतो नित्यं नित्यं चातिथिपूजकः । पितृभक्तोमातृभक्तः स वै वैष्णव उच्यते
दयाधर्मेण संयुक्तास्तथा पापपराङ्मुखः । शङ्खचक्राङ्कितो वै स वै वैष्णव उच्यते ॥

कण्ठे मालाधरो यस्तु मुखे रामं सदोच्चरेत् ।
गानं कुर्यात्सदाभक्त्या स नरो वैष्णवः स्मृतः ॥ ७ ॥

पुराणेषुरता नित्यं यज्ञेषु च रताःसदा । ते नरा वैष्णवा ज्ञेयाःसर्वधर्मेषु संमताः ॥

तेषां निन्दां प्रकुर्वन्ति ये नराःपापकारिणः ।
ते मृतास्तु कुयोनिं वै गच्छन्ति च पुनःपुनः ॥ ९ ॥
गोपालनाम्नीं मूर्तिं च येऽर्चयन्ति द्विजाः सदा ।
धातुमात्रमयीं कृत्वा चतुर्हस्तां सुशोभिताम् ॥ १० ॥
पूजां कुर्वन्ति ये विप्रास्ते ज्ञेयाःपुण्यभागिनः ।
कृत्वा पाषाणजां मूर्तिं कृष्णाख्यां रूपसुन्दरीम् ॥ ११ ॥

पूजां कुर्वन्ति ये विप्रास्ते ज्ञेयाःपुण्यमूर्त्तयः । शालग्रामशिला यत्र यत्रद्वारावतीशिला
उभयोःसंगमो यत्र मुक्तिस्तत्र न संशयः । मूर्तिमन्त्रेण संस्थाप्य पूजनं क्रियते यदि

तद्दर्शनं कोटिगुणं धर्मकामार्थ मोक्षदम् । नवधा तत्र वै भक्तिःकर्तव्या च जनार्दने ॥
अतःपाषाणजामूर्तिस्तथा धातुमयी त्वया ।.तस्यां भक्तैःप्रकर्त्तव्यं ध्यानं पूजनमेव च ॥
राजोपचारिकीं पूजां मूर्तौ तत्र प्रकल्पयेत् ।
सर्वात्मानं स्मरेन्नित्यं भगवन्तमधोक्षजम् ॥ १६ ॥
दीनानाथैकशरणं लोकानां वृत्तिकारणम् । मूर्त्तौ तत्र स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम्
गोपालोऽयं तथा कृष्णो रामोऽयमिति च ब्रुवन् ।
पूजां करोति यः सम्यक्स वै भागवतोनरः ॥ १८ ॥
गोकुले तु यथारूपं धृतं वै केशवेन तु । तादृग्रूपं प्रकर्त्तव्यं वैष्णवैर्नरसत्तमैः ॥ १९ ॥
आत्मसंतोषणार्थाय स्वरूपं कारयेद्बुधः । यतो भक्तिस्तु बहुला जायते नात्रसंशयः
शङ्खचक्रगदादीनि विष्णोश्चैवायुधानि च ।
तस्यां मूर्तौ विशेषेण कर्त्तव्यानि प्रमाणतः ॥ २१ ॥
चतुर्भुजां द्विनेत्रां च शङ्खचक्रगदाधराम् ।
पीतवासः परीधानां शोभनानां गरीयसीम् ॥ २२ ॥
वनमालांदधानां तां लसद्वैडूर्यकुण्डलाम् । मुकुटेन समायुक्तां कौस्तुभोद्भासितां सदा
सौवर्णि चाथ रौप्यां वा ताम्रजां चाथ पैत्तलीम् ।
कारयेत्परया भक्त्या वैष्णवैर्द्विजसत्तमैः ॥ २४ ॥
आगमोक्तैर्वेदमन्त्रैःप्रतिष्ठाप्य विशेषतः । पश्चाद्वा अर्चनं कार्यं यथाशास्त्रानुसारतः ॥२५
षोडशोपचारैर्मन्त्रैःपूजनं विधिपूर्वकम् । विजिते तु जगन्नाथे सर्वे देवाश्च पूजिताः ॥
अतोऽनेन प्रकारेण पूजनीयो महाप्रभुः । अनादिनिधनो देवः शङ्खचक्रगदाधरः ॥
सर्वं ददाति सर्वेशो वैष्णवान्पुण्यरूपिणः ॥ २७ ॥

पार्वत्युवाच ।

के दासा वैष्णवाःके तु केभक्ता भुविकीर्तिताः । तेषां वै लक्षणं ब्रूहि यथार्थं वै महेश्वर

महादेव उवाच ।

शूद्रा भवन्ति वै दासा वैष्णवा नारदादयः । प्रह्लादश्चाम्बरीषाद्या भक्तास्ते नगनन्दिनि

ब्रह्मक्रियारतो नित्यं वेदवेदाङ्गपाठकः । शङ्खचक्राङ्कितो यस्तु स वै वैष्णव उच्यते ॥
द्विजसेवारतो नित्यं नित्यं विष्णुप्रपूजकः । शृणोति बहुधा चैव पुराणं वेदसम्मितम्
स शूद्रो हरिदासस्तु इत्युक्तो नगनन्दिनि । पञ्चवर्षत्वमाश्रित्य कृता भक्तिरनेकधा ॥
स वै भक्त इति प्रोक्तःसर्वं साधुषु संमतः । ध्रुवादयस्ते विज्ञेया अम्बरीषादयश्च ये ॥

भक्ताश्च मुनिभिः प्रोक्ताःसर्वकालेषु भामिनि ! ।
कलौ धन्यतमा शूद्रा विष्णुध्यानपरायणाः ॥ ३४ ॥
इहलोके सुखं भुक्त्वा यान्ति विष्णुं सनातनम् ।
शङ्खचक्राङ्कितो यस्तु विष्णुभक्तिप्रकारकः ॥ ३५ ।

चतुर्विधमहोत्साहकर्त्ता चैव विशेषतः । स शूद्रो विष्णुदासस्तु यथादृष्टं यथा श्रुतम्
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमामहे-
श्वरसंवादे दासवैष्णवानां महिमानाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

सर्वमासविधिवर्णनम् ।

पार्वत्युवाच ।

सर्वेषा चैव मासानां विधिं ब्रूहि महेश्वर । महोत्सवः प्रकर्त्तव्यःको विधिस्तत्र संमतः

को देवः पूजनं कस्य महिमा कीदृशो भवेत् ।
कस्यां तिथौ प्रकर्त्तव्यं तन्मे वद सुरेश्वर ! ॥ २ ॥

मासंप्रति किमुक्तं च वैष्णवान्पुण्यकर्मणः । धन्याहं कृतकृत्याहं शुभगाहं धरातले ॥
विष्णोःकथां शृणोमीति दर्शनात्स्पर्शनात्तव ॥ ३ ॥

शिव उवाच ।

उत्सवानां विधिं ब्रूमो मासं प्रति तवानघे । यानाकर्ण्य पुनर्देवि गीतवादित्रहर्षिता ॥

तत्रादौ च सितेपक्षे चैत्रमासे सुशोभने। एकादश्यां विशेषेण दोलारूढं प्रपूजयेत् ॥
कुर्याद्भक्त्या सदा देवि चोत्सवं विधिपूर्वकम्।
दोलारूढं प्रपश्यन्ति कृष्णं कलिमलापहम् ॥ ६ ॥
अपराधसहस्रैस्तु मुक्तास्ते नगनन्दिनि। तावत्तिष्ठन्ति पापानि कोटिजन्मकृतान्यपि ॥
यावन्नान्दोलयेद्देवं विश्वेशं विश्वनायकम्। कलौ वै ये प्रपश्यन्ति दोलारूढं जनार्दनम्
गोघ्नादिकाःप्रमुच्यन्ते का कथा त्वितरेष्वपि।
दोलोत्सवे प्रहृष्टास्तु रुद्रेण सहिताः सुराः ॥ ६ ॥
कुर्वन्ति प्राङ्गणे नृत्यं गीतवाद्यं च हर्षिताः। ऋषयोगणगन्धर्वारम्भाद्यप्सरसांगणाः
वासुकिप्रमुखानागास्तथा देवाः सुरेश्वराः।
दोलायां च समायान्ति विष्णुदर्शनलालसाः ॥ ११ ॥
दोलायात्रा निमित्तं तु दोलाहे मधुमाधवे। भूतानि सन्ति भूपृष्ठे ये केचिद्देवयोनयः
समायान्ति महादेवि कृष्णे दोलास्थिते ध्रुवम्।
विष्णुं दोलास्थितं दृष्ट्वा त्रैलोक्यस्योत्सवो भवेत् ॥ १३ ॥
तस्मात्कार्यशतं त्यक्त्वा दोलाहे चोत्सवं कुरु।
प्रह्लादस्तु समायाति विष्णुं दोलाधिरोहणम् ॥ १४ ॥
कुरुते च महादेवि वरदं तमनुस्मरन्। दोलास्थितस्य कृष्णस्य ये कुर्वन्ति प्रजागरम् ॥
सर्वपुण्यफलप्राप्तिर्निमेषैकेन जायते। दोलायां संस्थितं विष्णुं पश्यन्ति मधुमाधवे ॥
क्रीडन्ति विष्णुनासार्द्धं देवदेवेन वन्दिताः। दक्षिणाभिमुखं देवं दोलारूढं सुरेश्वरि ॥
सकृद् दृष्ट्वा तु गोविन्दं मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥ १७ ॥
ओं दोलारूढाय विद्महे माधवाय च धीमहि। तन्नो देवः प्रचोदयात् ॥१८॥
इदं गायत्र्या पूजनम्।
माधवाय गोविन्दाय श्रीकण्ठाय नमोनमः। पूजनं मन्त्रपूर्वं च कर्तव्यं विधिपूर्वकम्॥
गुरवे दक्षिणां दद्याद्यथाशक्त्या समाहितः।
गायन्विष्णोःसदाभक्त्या परिपूर्णं ततो भवेत् ॥ २० ॥

किमन्यद्बहुनोक्तन भूयो भूयो वरानने। दोलायां संस्थितो विष्णुःसर्वपापापहारकः
पूजितो यैर्नरैःसम्यक्सदा सर्वं ददाति च। यत्र देवाःसगन्धर्वाःकिन्नरा ऋषयस्तथा॥
आयान्ति बहुधा तत्र दोलारूढेन संशयः॥ २३॥
ओं नमो भगवते वासुदेवायेति मन्त्रेण पूजनं तत्र कारयेत्।
षोडशोपचारैःपूजा कर्तव्या विधिपूर्वकम्।
धर्मार्थमुख्या ये कामास्तान्सर्वान्प्राप्नुयुर्ध्रुवम्॥ २४॥
अङ्गन्यासं करन्यासं न्यासं शारीरकं च यत्। तत्सर्वं तु प्रकर्त्तव्यं मन्त्रेणानेन सुव्रत
आगमोक्तेन मन्त्रेण कर्त्तव्यो हि महोत्सवः।
श्रीलक्ष्म्या सहितं देवं दोलायां च प्रकल्पयेत्॥ २६॥
देवाग्रे वैष्णवाःस्थाप्य नारदाद्याःसुरर्षयः।
विष्वक्सेनादिका भक्ताः स्थाप्यास्ते ह्यग्रतःसदा॥ २७॥
पञ्चवादित्रनिर्घोषैःकुर्यादारार्तिकं बुधः। यामे यामे तथा देवि पूजनीयःप्रयत्नतः॥२८
नालिकेरैस्तथा शुभ्रैःकदलैर्वा तथा पुनः। अर्घ्यं दद्यात्ततो देवि पूजयीयःप्रयत्नतः॥२९
देवदेव जगन्नाथः शङ्खचक्रगदाधर। अर्घं गृहाण मे देव कृपां कुरु ममोपरि॥ ३०॥
तच्छेषं वैष्णवानां तु दद्यात्प्रासादिकं पुनः। वादनं नर्त्तनं तत्र कर्त्तव्यं वैष्णवैर्नरैः॥
आन्दोलनं ततः सर्वैः कर्त्तव्यं च विशेषतः।
पृथिव्यां तानि तिर्थानि क्षेत्राणि च सुरेश्वरि॥ ३२॥
सर्वाण्येतानि वै तत्र द्रष्टुमायान्ति तद्दिने।
एवं ज्ञात्वा सदा देवि कर्तव्यः सोत्सवो महान्॥ ३३॥
ब्राह्मणाःक्षत्त्रिया वैश्याःशूद्रायाश्चान्यजातयः। शङ्खचक्रगदाधाराः ज्ञातव्यानगनन्दिनि
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशतसहस्र्यां षष्ठे उत्तरखण्डे उमामहेश्वरसंवादे
दोलामहोत्सवो नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः॥ ८३॥

———

चतुरशीतितमोऽध्यायः

चैत्रशुक्लद्वादश्यां मनकमहोत्सवविधिवर्णनम्

महादेव उवाच ।

अस्मिन्वै चैत्रमासे तु कार्यो दमनकोत्सवः ।
द्वादश्यां तु तथा सम्यग्विधिःकार्यो विशेषतः ॥ १ ॥

वैष्णवैःश्रद्धयापुण्यो जनतानन्दवर्धनः । देवानन्दसमुद्भूता दिव्या दमनमञ्जरी ॥ २ ॥
निवेद्या वैष्णवैर्भक्तैःसर्वपूजा फलेप्सुभिः । चैत्र तु शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां नगनन्दिनि ॥
कारयेत्परयाभक्त्या महोत्सवमनास्तथा । तत्रादौ च स्वयं गत्वा आरामंप्रति चानघे
कर्तव्यं रतियुक्तस्य कामदेवस्य पूजनम् । कामदेव नमस्तेऽस्तु विश्वमोहनकारक ॥
विष्णोरर्थे चिचेष्यामि कृपां कुरु ममोपरि । गीतवादित्रनिर्घोषैरानेतव्यो गृहंप्रति ॥
एकादश्यां सुरश्रेष्ठ ह्यधिवासन पूर्वकम् । कर्तव्यं पूजनं तत्र रात्रौ भक्त्या तु वैष्णवैः
कर्त्तव्यमग्रस्तस्तस्य सर्वतोभद्रमण्डलम् । स्थापयित्वा तु देवेशं रत्यायुक्तं च तत्र वै

आच्छाद्य श्वेतवस्त्रेण दमनं स्थापयेद्बुधः ।
तत्र वै पूजनं कार्यं वैष्णवैर्द्विजसत्तमैः ॥ ६ ॥
क्लीं कामदेवाय नमो ह्रीं रत्यै च तथा नमः ।
ऐन्द्र्यादि दिशि संस्थाप्य कन्दर्पं पूजयेद् बुधः ॥ १० ॥

गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपमारार्तिकं तथा । रात्रौ भक्त्या प्रकर्त्तव्यं विधिनात्र सुरेश्वरि

मदनाय नम इति प्राच्याम् । मन्मथाय नम इति आग्नेय्याम् । कन्दर्पाय नम इति याम्ये । अनङ्गाय नम इति रक्षोदिशि । भस्मशरीराय नम इति वारुण्याम् । स्मराय नम इति वायव्याम् । ईश्वराय नम इति कौबेर्याम् । पुष्पवाणाय नम इतीशान्याम् ॥

चतुर्दिक्षु च सर्वासु पूजनं तत्र कारयेत् । पूजिते केशवे चात्र सर्वे देवाःसुपूजिताः ॥

अक्षतगन्धधूपदीपैर्नैवेद्यैस्ताम्बूलैश्च दमनकं पूजयित्वा तु ।

"तत्पुरुषाय विद्महे कामदेवाय धीमहि। तन्नोऽनङ्गःप्रचोदयात्" ॥ १३ ॥

इति वै कामगायत्र्या अष्टोत्तरशतवारन्तं दमनकमभिमन्त्र्य नमस्कुर्यात्।

नमोऽस्तु पुष्पबाणाय जगदाह्लादकारिणे। मन्मथाय जगन्नेत्रे रतिप्रीतिकराय च ॥

देवदेव नमस्तेऽस्तु श्रीविश्वेश नमोऽस्तु ते।

रतिपते नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वमण्डन ! ॥ १५ ॥

नमस्तेऽस्तु जगन्नाथ सर्वबीज नमोऽस्तुते । एतैर्नानाविधैर्मन्त्रैरागमोक्तैर्विशेषतः ॥

पूजनीयःप्रयत्नेन रत्यासह जनार्दनः। ततो निवेद्य तत्कर्म जागरं कारयेद् बुधः ॥१७॥

देवदेव जगन्नाथ ! वाञ्छितार्थप्रदायक !।

हृत्स्थान्पूरय मे विष्णो कामान्कामेश्वरीप्रिय ! ॥ १८ ॥

इत्येतैर्बहुभिर्मन्त्रैःपूजनीयःप्रयत्नतः। श्रीनिवासो जगन्नाथो भक्तानां शुभकामुकः ॥

ततो दमनकमुष्टिं गृहीत्वा तत्र मूलमन्त्रेण। श्री श्री विष्णवादि देवेभ्योदमनकं निवेदयेत्। ततो गन्धादिभिर्महतीपूजा गीतवाद्यनृत्यैश्च महोत्सवःकार्यः। देवाग्रे स्थापितकलशोदकं देवस्य पादयोर्निक्षिप्य जलक्रीडा तस्मिन्दिने कर्त्तव्या। ततःस्वगुरुं वस्त्रालङ्कारद्रविणैःश्रद्धया प्रपूजयेत्। ततः स्वयं वैष्णवैर्बन्धुभिः सहाश्नीयात्। ततो दमनमञ्जर्या यो वै विष्णु प्रपूजयेत्।

पूजिते वै जगन्नाथे ह्ययं वै पूजितः सदा ॥ २० ॥

ब्रह्महा हेमहारी च मद्यपो मांसभक्षकः। मुच्यते पातकाद्देवि दृष्ट्वा दमनकोत्सवम् ॥

एवं दमनको देवि पूजितो यैःसुवैष्णवैः। सर्वं तीर्थं कृतं तैस्तु मञ्जर्या पूजनं कृतम् ॥

वेदाध्यायःकृतस्तेन शास्त्राध्ययनमेव च। अग्निहोत्रं कृतं तेन मञ्जर्या पूजितो हरिः ॥

तत्कुलं तु महज्ज्ञेयं ब्राह्मं वा चाथ क्षात्त्रियम्।

शौद्रं वैश्यं च यच्चान्यद्धन्यं धन्यतरं स्मृतम् ॥ २४ ॥

यस्मिन्कुलेऽवतीर्याथोत्सवो दमनकः कृतः।

स च धन्यस्तु धन्यो वै येन विष्णुः प्रपूजितः ॥ २५ ॥

दमनकेन तु तथा संप्राप्ते मधुमाधवे। संपूज्य गोसहस्रस्य देवि संलभते फलम् ॥२६

मल्लिकाकुसुमैर्देवं वसन्ते गरुडध्वजम् । योऽर्चयेत्परयाभक्त्या मुक्तिभागी भवेत्तु सः
मरुकोदमनश्चैव सद्यस्तुष्टिकरो हरेः । अतः पूजाप्रकर्त्तव्या वैष्णवैर्नरसत्तमैः ॥ २८ ॥
गोसहस्रं कृतं तेन कन्यादानं तथैव च । पृथ्वीदानं कृतं तेन विष्णोर्वै पूजनेकृते ॥२९॥
एकामेकां गृहीत्वा तु मञ्जरीं दमनस्य तु । यःपूजयति देवेशं संप्राप्ते मधुमाधवे ॥३०॥
पुण्यसङ्ख्यां न जाने वै तस्याहं नगनन्दिनि । स वै चतुर्भुजो भूत्वा इहलोके परत्र च ॥
धर्मानर्थांश्च कामांश्च प्रभुङ्क्ते वैष्णवं पदम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणेपञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे दमनकमहोत्सवो नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

वैशाखज्येष्ठाषाढेषु भगवतो जलशयनमहोत्सवर्णनम्

महादेव उवाच ।

वैशाख्यां पौर्णमास्यां वै जलस्थं जगदीश्वरम् ।
पूजयेद्वैष्णवो भक्त्या कृतोत्साहो मुदान्वितः ॥ १ ॥

गीतं वाद्यं तथा नृत्यं कृत्वा पुण्यं महोत्सवम् । एकादश्यां सुरश्रेष्ठं पश्येद्वाथ प्रहर्षितः
गीतं गायन्हरेर्भक्त्या कर्त्तव्यश्चोत्सवः शुभः । शयनं कुरु देवेश जलेऽस्मिन्वै सुरेश्वर
त्वयि सुप्ते जगत्सुप्तं भवत्येव न संशयः । घनागमे प्रकुर्वन्ति जलस्थं वै जनार्दनम् ॥
ये नरास्तु सुरश्रेष्ठे न दाहो नरके भवेत् । स्वर्णपात्रे तथा रौप्ये ताम्रे वा च सुरेश्वरि

मृण्मये वाथ कर्त्तव्यं शयनं विष्णुसंज्ञकम् ।
तत्र तोयं च संस्थाप्य शीतलं गन्धवासितम् ॥ ६ ॥
तस्मिंस्तोये ततो विष्णोःस्थापनं कारयेद्बुधः ।
गोपालनाम्नी मूर्त्तिश्च रामनाम्नी तथापि वा ॥ ७ ॥

शालग्रामशिलावापिस्थापनीया विशेषतः । प्रतिमां वा महाभागे तस्य पुण्यमनन्तकम्
यावद्धराधरालोका यावचन्द्र दिवाकरौ । तावत्तस्य कुले कश्चिन्न भवेद्देवि नारकी ॥
तस्माज्जेष्ठे महादेवि तोयस्थं पूजयेद्धरिम् । वीततापो नरस्तिष्ठेद्यावदाभूतसंप्लवम् ॥
सुशीतले तथा तोये तुलसीदलवासितम् । शुचिशुक्रगते काले पूजयेद्धरणीधरम् ॥११

शुचिशुक्रगते काले येऽर्चयिष्यन्ति केशवम् ।
जलस्थं विविधैः पुष्पैर्मुचयन्ते यमपीडनात् ॥ १२ ॥

जलप्रेष्ठो यतो विष्णुर्जलशायी जलप्रियः । तस्माद्ग्रीष्मे विषेशेण जलस्थं पूजयेद्धरिम्
नीरमध्ये स्थितं कृत्वा शालग्राम समुद्भवम् । येनार्चि महाभक्त्या स भवेत्कुलपावनः ॥
कर्कराशिगते सूर्ये मिथुनस्थे विशेषतः । येनार्चितो हरिर्भक्त्या जलमध्ये तु सुन्दरि ॥

द्वादश्यां तु विशेषेण जलस्थजलशायिनः ।
येनार्चनं कृतं तेन कोटियज्ञ शतं कृतम् ॥ १६ ॥
निक्षिप्य जलपात्रे तु मासे माधवसंज्ञके ।
माधवं येऽर्चयिष्यन्ति देवास्ते तु नरा भुवि ।। १७॥

पात्रेगन्धोदकं कृत्वा यःक्षिपेद्गरुडध्वजम् । द्वादश्यां पूजयेद्रात्रौ मुक्तिभागी भवेत्तु सः

अश्रद्दधानःपापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः ।
हेतुनिष्ठश्च पञ्चैते न पूजा फलभागिनः ॥ १६ ॥

तथा महादेवि प्रभुं जलस्थं जगदीश्वरम् । पूजयेद्यो नरो नित्यं महापापैःप्रमुच्यते ॥२०

'ॐह्रां ह्रीं रामाय नमः' इति मन्त्रेण देवेशि पूजनं तत्र वै स्मृतम् ,
'ॐक्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय नमः' ।
इति मन्त्रेण गिरिज उदकं चाभिमन्त्रयेत् ॥ २१ ॥
देवदेव महाभाग ! श्रीवत्सकृतलाञ्छन ! ।
महादेव ! नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वभावन ! ।
अर्घं गृहाण भो देव ! मुक्तिं मे देहि सर्वदा ! ॥ २२ ॥
नानाविधैः सुपुष्पैश्च पूजयेद्गरुडासनम् ।

सर्वबाधा विनिर्मुक्तो विष्णोःसायुज्यमाप्नुयात् ॥ २३ ॥
रात्रौ जागरणं तत्र द्वादश्यां सुसमाहितः । भक्तिपूर्वंभजेद्देवं विष्णुमव्ययमक्षयम् ॥२४
एवं वैशाखसंबन्धी भक्तिभावेन तत्परैः ।
उत्सवो विष्णुसंज्ञस्तु कर्त्तव्यो भक्तिमिच्छुभिः ॥ २५ ॥
आगमोक्तेन मन्त्रेण विधिं तत्र प्रकारयेत् । कृतेसति महादेवि कोटियज्ञसमं फलम् ॥
रागद्वेषविनिर्मुक्तो महामोहनिवर्त्तकः । इहलोके सुखं भुक्त्वा याति विष्णोः सनातनम्
ब्राह्मणो भक्तिभावेन यःकरोत्युत्सवं भुवि ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो वैकुण्ठं गच्छति ध्रुवम् ॥ २८ ॥
वेदाध्ययनहीनोऽपि शास्त्राध्ययनवर्जितः । हरिभक्तन्तु संप्राप्य लभते वैष्णवं पदम् ॥
आत्मारामःसदामुक्तो विजितात्मा भवेत्तु सः ।
स वै विष्णुपदं याति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ३० ॥
इति श्रीपाद्मेमहापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमामहेश्वर-संवादे शयनमहोत्सवो नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

षडशीतितमोऽध्यायः

पवित्रारोपणविधिवर्णनम् ।

महादेव उवाच ।

श्रावणेमासि संप्राप्तेपवित्रारोपणो विधिः । यस्मिन्कृते तु देवेशिदिव्यभक्तिःप्रजायते
पवित्रारोपणं विष्णोःकर्तव्यं श्रद्धया बुधैः ।
संपूर्णा जायते तस्य पूजा पार्वति! वार्षिकी ॥ २ ॥
पवित्रारोपणे विष्णोर्जायते सुखमात्मनः ।
संपूजिते सदा विष्णौ नानासुखमवाप्नुयात् ॥ ३ ॥

सूत्रग्रामं समानीय ब्राह्मण्याकर्तितं तथा। स्वेनैव कर्तितं सूत्रं तेनैव प्रकारयेत् ॥ ४ ॥

सच्छूद्रयाकर्तितं सूत्रं तद्ग्राह्यं वा तथैव च।

अन्यथा विक्रयेणापि ग्राह्यं चापि यथातथम् ॥ ५ ॥

क्षौमेनैव प्रकर्तव्यःपवित्रारोपणोविधिः। रौप्येण वा तथा कार्यं पवित्रं विष्णुदैवतम्

सौवर्णेनापि देवेशि कर्तव्यं विधिपूर्वकम्। अभावे सर्वधातूनांग्राह्यं सूत्रं तथा बुधैः ॥

कृत्वा तु त्रिवृतं सूत्रं प्रक्षाल्यमुदकेन तु। लिङ्गे लिङ्गिप्रमाणं च प्रतिमायां यथाविधि ॥

पादौ वै जानुपर्यन्तं तथा नाभिसमं स्मृतम्।

ज्येष्ठं मध्यं कनिष्ठं च पवित्रं कारयेद् बुधः ॥ ६ ॥

संवत्सरदिनैस्तद्वत्तदर्धार्धेन सङ्ख्यया। सूत्रेणैव प्रकर्त्तव्यं ग्रन्थिनाष्टोत्तरंशतम् ॥१०॥

तदर्धसङ्ख्यकेनापि युक्तं वा तत्र पार्वति। लिङ्गे वै लिङ्गसंज्ञं तु गङ्गानागैश्चसंयुतम्

प्रतिमायां तथा देवि पवित्रंवनमालकम्। यथा शोभा तथा कार्यं येन विष्णुःप्रसीदति

एकं वै सुपवित्रं तु गन्धाख्यं कारयेत्सदा। तन्तुनायच्च संयुक्तं कर्त्तव्यं वैष्णवैर्नरैः

देवानाञ्च तथा प्रोक्तं पवित्रंविष्णुदैवतम्। अम्बरीषाद्याभक्ताश्चअन्येऽपि च ध्रुवादयः

पवित्राणि ततःपश्चाद्दातव्यानीह पार्वति। प्रतिपद्धनदस्योक्ता पवित्रारोपणे तिथिः ॥

लक्ष्म्या देव्या द्वितीया तु तिथीनामुत्तमातिथिः।

तृतीया तु तव प्रोक्ता चतुर्थी गणपस्य च ॥ १६ ॥

पञ्चमी चन्द्रमसश्चैव षष्ठी वै कार्त्तिकस्य च।

सप्तमी च रवेः प्रोक्ता दुर्गायाश्चाष्टमी स्मृता ॥ १७ ॥

नवमीचैव मातृणां यमस्य दशमी तथा। एकादशी तु सर्वेषां द्वादशी माधवस्य च ॥

त्रयोदशी तु कामस्य शर्वस्योक्ता चतुर्दशी। तद्वत्पञ्चदशीख्याता धातुर्वै ह्यर्चने पुनः ॥

एता वै तिथयःप्रोक्ताःपवित्रारोपणोचिताः।

कनिष्ठे द्वादश प्रोक्ताः मध्यमे द्विगुणाःस्मृताः ॥ २० ॥

त्रिगुणाश्चोत्तमे चैव ग्रन्थयश्च पवित्रके। कर्पूरकेसराभ्यां वा चन्दनेन हरिद्रया ॥२१

रञ्जयित्वा तु तत्सर्वं संस्थाप्यं नवकरण्डके। देवस्य यजनं यत्र स्थाप्यानि देववत्तदा

आदौ देवार्चनं कृत्वा वासनंसपवित्रकम् । अधिवासितेपवित्रे तु ततो वै पूजनं स्मृतम्
पवित्रेषु च यद्देवास्तेषां निकटमाचरेत् । ब्रह्माविष्णुस्तथा रुद्रस्त्रयो वै सूत्रदेवताः ॥

क्रिया च पौरुषी वीरा चतुर्थी चापराजिता ।
जया च विजया चैव मुक्तिदा च सदाशिव ॥ २५ ॥

मनोन्मनी तु नवमी दशमी सर्वतोमुखि । ग्रन्थीनां देवताश्चैव सूत्रेषु विनिवेशयेत् ॥

आवाहनमुद्रया वै शास्त्रोक्तविधिना ततः ।
आवाह्य तत्र ताःसम्यक्संनिधीकरणं स्मृतम् ॥ २७ ॥

संनिधीकरणमुद्रया संनिधीकरणम् । रक्षामुद्रया संरक्ष्य धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य आनीय देवस्याग्रे कलशोदकं गृहीत्वा आगमोक्तेन मन्त्रेण प्रोक्षणं विधाय क्लीं कृष्णाय इति मन्त्रेण प्रोक्षणं गन्धधूपदीपनैवेद्यादिकं दत्त्वा ताम्बूलादिकं दत्त्वा षोडशोपचारादिना पवित्रदेवता अभ्यर्च्य गन्धपवित्रं धूपितं कृत्वा देवाभिमुखःसन्नमस्कारमुद्रया देवमभिमन्त्रयीत ।

आमन्त्रितो महादेव सार्द्धंदेव्या गणादिभिः । मन्त्रैर्वा लोकपालैश्च सहितःपरिचारिकैः
आगच्छ भगवन्विष्णो विधिसंपूर्णहेतवे । प्रातस्त्वत्पूजनं कुर्मः सान्निध्यं नियतं कुरु

तद्गन्धं च पवित्रं च देवस्य राघवस्य च श्रीविष्णोश्चरणे तन्निक्षिप्य प्रातःस्वक्रियां विधाय पुण्याहस्वस्तिवाचनजयजयशब्दैर्घण्टादिवादित्रनिर्घोषतुर्यादिशब्दैः पवित्रै पूजां कुर्यात् । ततःप्रथमं ज्येष्ठं ततो मध्यमं कनिष्ठं च । एभिःसर्वैर्यथाक्रमेण पूजां कुर्यात् ।

ॐ वासुदेवाय विद्महे विष्णुदेवाय धीमहि । तन्नो देवः प्रचोदयात् ॥ ३० ॥

इति पवित्रदानमथवा स्वमन्त्रैः । ततो वै महतीं पूजां विष्णोःकुर्यात्प्रसादिनीम् ।

यया वै कृतया देवि विष्णुरात्मा प्रसीदति ॥ ३१ ॥

समन्ताद्दीपमाला च कर्त्तव्या च विधानतः । चतुर्विधं तथा चान्नं नैवेद्यं कारयेद्बुधः
पवित्राणि ततो दद्यात्पूजितानि तु शोभने । भक्त्या चैवविशेषेण श्रीगुरुं पूजयेत्ततः ॥
वस्त्रालङ्कारविधिना पूजनीयो गुरुर्महान् । पूजयित्वा गुरुं तत्र पवित्रं धारयेत्ततः ॥

अथ ये वैष्णवाःसन्ति तेभ्यस्ताम्बूलादिकं दत्त्वा पूर्णाहुतिमग्नये दत्त्वा श्रीनिवा-साय श्रीकृष्णाय कर्मनिवेदयेत्।

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं तु केशव ! ।
यत्पूजितो मया सम्यक्सम्पूर्णं यातु मे ध्रुवम् ॥ ३५ ॥

तत उद्वास्य इष्टबन्धुभिस्तथा वैष्णवैर्विप्रैर्वा सहितःसन्मृष्टमन्नं स्वयं भुञ्जीत।

एतत्पूजनकं दिव्यं ये श्रृण्वन्ति द्विजोत्तमाः।
सर्वपापविनिर्मुक्ता यान्ति विष्णोः परम्पदम् ॥ ३६ ॥

यावत्तपति वै चन्द्रो यावत्तपति वै रविः। पवित्रारोपकस्तद्वत्तप्यते नात्र संशयः॥
पृथिव्यां यानि दानानि नियमाश्च तथा पुनः। सर्वे वैपूर्णतां यान्ति पवित्रारोपणेकृते

उत्सवानां च राजाऽयं पवित्रारोपणोविधिः।
ब्रह्महा शुध्यते तत्र नात्र कार्या विचारणा ॥ ३९ ॥

सत्यंसत्यं पुनःसत्यं यदुक्तं नगनन्दिनि। पवित्रारोपणे पुण्यं दर्शनेतु तथा स्मृतम्॥
शूद्रैर्वाथ महाभागे पवित्रारोपणाविधिः। कृतोयैर्भक्तिभावेन ते वै धन्यतमाःस्मृताः

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सौभाग्यो धरणीतले।
मया तु या कृता भक्तिर्वैष्णवी मुक्तिदायिनी ॥ ४२ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमामहेश्व-रसंवादे पवित्रारोपणं नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

चैत्रादिमासक्रमेण चम्पकादिपुष्पैः विष्णुपूजनवर्णनम्

पार्वत्युवाच।

कानि कानि च पुष्पाणि कस्मिन्मासे प्रकल्पयेत्।
तन्मे वद सुरेशत्वं विस्तराज्जगतः ! प्रभो ! ॥ १ ॥

महेश्वर उवाच ।

चैत्रे तु चम्पकेनैव जातीपुष्पेण वा पुनः । पूजनीयःप्रयत्नेन केशवःक्लेशनाशनः ॥२॥
दमनकैर्मरुवकैश्चैव बिल्वपुष्पैरथापि वा । पूजयेज्जगतामीशं विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् ॥३॥
शतपत्रैस्तथा दिव्यै रक्तैर्वा सुसमाहिताः । पूजयन्ति नरा विष्णुं चैत्रमासे सुरेश्वरि ॥
वैशाखे तु सदा देवि ह्यर्चनीयो महाप्रभुः । केतकीपत्रमादाय वृषस्थे च दिवाकरे ॥

येनार्चितो हरिर्भक्त्या प्रीतो मन्वन्तरंशतम् ।
ज्येष्ठेमासे तु संप्राप्ते नानापुष्पैःप्रपूजयेत् ॥ ६ ॥

पूजिते देवदेवेशे सर्वे देवाःसुपूजिताः । कृत्वा पापसहस्राणि महापाप शतानि च ॥

तेऽपि यास्यन्ति भो देवि यत्र विष्णुःश्रियासह ।
आषाढ़ेमासि संप्राप्ते पूजां कुर्याद्विशेषतः ॥ ८ ॥

करवीरैरक्तपुष्पैस्तथाब्जैर्वा सदा नराः । पूजांकुर्वन्ति ये विष्णोस्ते ज्ञेयाःपुण्यभागिनः
जातरूपनिभैर्विष्णुं कदम्बकुसुमैस्तथा । येऽर्चयिष्यन्ति गोविन्दं न तेषां सौरिजंभयम्
घनागमे घनश्यामःकदम्बकुसुमार्चितः । ददाति वाञ्छितान्कामान्यावदिन्द्राश्चतुर्दश

यथा पद्मालयां प्राप्य प्रीतो भवति माधवः ।
कदम्बकुसुमं लब्ध्वा प्रीतो भवति लोककृत् ॥ १२ ॥

तुलसी कृष्णतुलसी वञ्जुलैर्वा सुरेश्वरि । सर्वदा पूजितो विष्णुःकष्टं हरति नित्यशः ॥
श्रावणेमासि संप्राप्ते येऽर्चयन्ति जनार्दनम् । अतसीपुष्पमादाय तथा दूर्वादलेन तु ॥
नानापुष्पैर्विशेषेण पूजनीयःप्रयत्नतः । ददाति विपुलान्कामान्यावदाभूतसंप्लवम् ॥१५॥
भाद्रमासे तु संप्राप्ते शृणुत्वं नगनन्दिनि । चम्पकैर्वा श्वेतपुष्पै रक्तसिन्दूरकैस्तथा ॥
कह्लारैर्वा महादेवि सर्वकामफलंलभेत् । आश्विने वै शुभेमासे कर्त्तव्यं विष्णुपूजनम्
यूथिकानवजातीभिस्तथा नानाविधैःशुभैः । पूजनीयःप्रयत्नेन भक्तिपूर्वं सदाजनैः ॥१८
पद्मान्येव समानीय येऽर्चयन्ति जनार्दनम् । धर्मार्थकाममोक्षांस्ते लभन्ते मानवा भुवि
कार्तिकेमासिसंप्राप्ते पूजनीयो महेश्वरः । यावन्ति ऋतुपुष्पाणि देयानि माधवस्य च
तिलानि तिलपुष्पाणि तैर्वा ह्यर्चनकंचरेत् । पूजिते सति देवेशि अनन्तफलमश्नुते ॥२१

बकुलपुष्पैः पुन्नागैश्चम्पकैर्वा जनार्दनम् ।
कार्तिके पूजयिष्यन्ति ते देवा न हि मानवाः ॥२२॥
मार्गशीर्षे प्रयत्नेन पूजनीयः सदाप्रभुः । नानापुष्पैः सनैवेद्यैर्धूपैर्नीराजनैस्तथा ॥ २३ ॥
मार्गशीर्षे विशेषेण दिव्यैः पुष्पैः प्रपूजयेत् । पौषमासे महादेवि स्वर्चनं शुभदं स्मृतम्
नाना तुलसिपत्रैश्च मृगनाभिजलैस्तथा ।
माघमासे तु संप्राप्ते नानापुष्पैः प्रपूजयेत् ॥२५॥
पूजिते देवदेवेशे वाञ्छितं लभते ध्रुवम् । कर्पूरजा तथा पूजा नानानैवेद्य मोदकैः ॥२६
फाल्गुने चैव संप्राप्ते ह्यर्चनं माधवस्य च ।
कृत्वा वासन्तिकीं पूजां पुष्पाण्यादाय सर्वशः ॥२७ ॥
नवीनैर्वाऽथ देवेशि! सर्वैर्वा पूजयेत्ततः ।
पूजिते तु जगन्नाथे वैकुण्ठपदमव्ययम् । प्राप्नोति पुरूषो नित्यं श्रीविष्णोश्च प्रसादतः
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे उमामहेश्वर-संवादे मासिकपुष्पो नाम सप्ताशीतिमोऽध्यायः ॥८७॥

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

कार्तिकमाहात्म्यारम्भः

सूतउवाच

एकदा द्वारकामागादृषिः कृष्ण दिदृक्षया ।
पुष्पाण्यादाय दिव्यानि कल्पवृक्षोत्थितानि च ॥१॥
नारदं स्वागतेनासौ कृष्णः सत्कारमाचरत् । इदमर्घ्यमिदंपाद्यमित्युवाचासनं ददत् ॥
नारदस्तानि पुष्पाणि कृष्णायोपाजहार च ।
कृष्णः षोडशसाहस्रस्त्रीभ्यस्तानि व्यबीभजत् ॥ ३ ॥

विस्मृत्य सत्यभामां तु सर्वाभ्यस्तान्यदात्प्रभुः ।
सत्यभामा ततः क्रुधा क्रोधागारं समाविशत् ॥४॥
समाज्ञाय ततः कृष्णस्तत्र गत्वा समाहितः ।
सत्यभामां मानयित्वा गरुडं मनसाऽस्मरत् ॥५॥
स्मृतमात्रस्तु गरुडस्तदागत्याग्रतःस्थितः । आरुह्य वेगात्पत्रंतमित्युवाच प्रियां प्रभुः॥
सत्ये ! त्वं मा कृथाः क्रोधं त्वत्कृते दैवतैःसह ।
विरुध्य देवराजं च रोपयिष्ये तवाङ्गणे ॥८॥
कल्पद्रुमं महाभागेऽपराधं मे क्षमां कुरु । इति कृत्वा प्रतिज्ञां तु कृष्णःस सत्यभामया
देवलोकमगात्तूर्णं यत्र देवःस वृत्रहा । याचितःकल्पवृक्षार्थमुत्तरं दत्तवान् प्रभुम् ॥६॥
नायं देवद्रुमो भूम्यां नेतुं योग्यस्त्वया प्रभो ।
तदा क्रुधो महाबाहुर्वृक्षमुत्पाट्य मूलतः ॥१०॥
वाहमारोपयामास वेगेन बलवत्तरः । तदा वज्रधरो वेगाद्वज्रमुद्यम्य वीर्यवान् ॥ ११ ॥
गरुडं ताडयामास कल्पवृक्षं त्यजेरिति । तदा पत्ररथःपत्रं कुलिशस्यापि गौरवात् ॥
एकं विसर्जयामास त्वरया प्रजगाम च ।
तेन वज्रप्रहारेण त्रयोऽभूवन्पतत्रिणः ॥१३॥
मयूरो नकुलश्चाषःकृष्णो द्वारावतीमगात् ।
आगत्य सत्यभामाया गृहे चैनमारोपयत् । तदेव नारदोऽभ्यागात्सत्यया मानितोबहु

सत्यभामोवाच

ईदृशःकल्पवृक्षोऽयं पतिरेतादृशःप्रभुः । भवेभवे कथं प्राप्यस्तदाख्यातु भवान्मम ॥१५
इति पृष्टस्तदा प्राह नारदो मुनिसत्तमः । प्राप्यते सत्यभामेयं तुलापुरुषदानतः ॥१६॥
सत्यभामा तदा कृष्णं कल्पवृक्षसमन्वितम् ।
नारदायैव सा प्रादात्तोलयित्वा विधानतः । सर्वोपस्करमाकृष्य नारदस्त्रिदिवं ययौ

सूत उवाच

श्रियःपतिमथामन्त्र्य गते देवर्षिसत्तमे । हर्षोत्फुल्लानना सत्या वासुदेवमथाब्रवीत् ॥

सत्यभामोवाच ।

धन्याऽस्मि कृतकृत्याऽस्मि सफलं जीवितं च मे ।
मज्जन्मनि निदाने च धन्यौ तौ पितरौ मम ॥१९॥

यौ मां त्रैलोक्य सुभगां जनयामासतुर्ध्रुवम् । षोडशस्त्रीसहस्राणां वल्लभाहं यतस्तवः
यस्मानऽमयाऽदिपुरुषःकल्पवृक्षसमन्वितः । यथोक्तविधिनासम्यङ् नारदाय समर्पितः
यद्वार्तामपि जानन्ति भूमिसंस्थान जन्तवः । सोऽयं कल्पद्रुमो गेहेममतिष्ठतिसाम्प्रतम्
त्रैलोक्याधिपतेश्चाहं श्रीपतेरतिवल्लभा । अतोऽहं प्रष्टुमिच्छामि किंचित्वां मधुसूदन ॥

यदि त्वं मत्प्रियकरःकथयस्वात्र विस्तरात् ।
श्रुत्वा तच्च पुनश्चाहं करोमि हितमात्मनः ॥२४॥
यथा कल्पं त्वया देव वियुक्ता स्यां न कर्हिचित् ॥ २५ ॥

सूत उवाच ।

इति प्रियावचःश्रुत्वा स्मेरास्योऽयं गदाग्रजः ।
सत्याकरे करं कृत्वाऽगमत्कल्पतरोस्तलम् ॥ २६ ॥

निषिध्यानुचरं लोकंसविलासं प्रियान्वितः । प्रहस्य सत्यामामन्त्र्यप्रोवाच जगतांपतिः
तत्प्रीतिपरितोषार्थं लसत्पुलकिताङ्गजः ॥ २७ ॥

कृष्ण उवाच ।

न मे त्वत्तःप्रियतमाकाचिदन्यानितम्बिनी । षोडशस्त्रीसहस्राणांप्रिये प्राणसमाह्यसि ॥
त्वदर्थं देवराजेन विरोधो दैवतैःसह । त्वया यत्प्रार्थितं कान्ते शृणु यच्च महाद्भुतम् ॥
अदेयमथवा कार्यमकथ्यमपि यत्पुनः । त्वत्कृतं तु कथं प्रश्नं कथयामि न तु प्रिये ॥
पृच्छस्व सर्वं कथये यत्ते मनसि वर्तते ॥ ३० ॥

सत्योवाच ।

दानं व्रतं तपो वापि किं तु पूर्वं मयाकृतम् । येनाहं मर्त्यजोमर्त्यभावातीताऽभवं किल
तवाङ्गार्धहरा नित्यं गरुडोपरि गामिनी । इन्द्रादि देवतावासमगमं च त्वया सह ॥
अतस्त्वां प्रष्टुमिच्छामि किं कृतं तु मया शुभम् ।

जन्मान्तरे च किं शीला का चाहं कस्य कन्यका ॥ ३३ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

शृणुष्वैकमनाःकान्ते यत्त्वं वै पूर्वजन्मनि । पुण्यं व्रतं कृतवती तत्सर्वं कथयामिते ॥

आसीत्कृतयुगस्यान्ते मायापुर्यां द्विजोत्तमः । आत्रेयो देवशर्मेति वेदवेदाङ्गपारगः ॥

आतिथेयोऽग्निशुश्रूषुः सौरव्रतपरायणः । सूर्यमाराधयन्नित्यं साक्षात्सूर्यइवापरः ॥३६

तस्यातिवयसश्चासीन्नाम्ना गुणवती सुता ।

अपुत्रःस स्वशिष्याय चन्द्रनाम्ने ददौ सुताम् ॥ ३७ ॥

तमेव पुत्रवन्मेने स च तं पितृवद्वशी । तौ कदाचिद्वनं यातौ कुशेध्महरणार्थिनौ ॥३८॥

हिमाद्रिपादजवने चेरतुस्तौ यतस्ततः ।

तौ ततो राक्षसं घोरमायान्तं समपश्यताम् ॥ ३९ ॥

भयविह्वलसर्वाङ्गावसमर्थौ पलायितुम् । निहतौ रक्षसा तेन कृतान्तसमरूपिणा ॥४०॥

तौ तु क्षेत्रप्रभावेण धर्मशीलतया पुनः । वैकुण्ठं भवनं नीतौ मद्गणैर्मत्समीपगैः ॥४१

यावज्जीवं तु यत्ताभ्यां सूर्यपूजादिकं कृतम् ।

तेन वै कर्मणा ताभ्यां सुप्रीतोऽहं किलाभवम् ॥ ४२ ॥

शैवाःसौराश्च गाणेशा वैष्णवाःशक्तिपूजकाः । मामेव प्राप्नुवन्तीह वर्षापःसागरं यथा

एकोऽहं पञ्चधा जातः क्रीडयन्नामभिःकिल ।

देवदत्तो यथा कश्चित्पुत्राद्याह्वाननामभिः ॥ ४४ ॥

ततश्च तौ मद्भवनाधिवासिनौ विमानयानौ रविवर्चसावुभौ ।

मत्तुल्यरूपौ ममसन्निधानगौ दिव्याङ्गनाचन्दनभोगभोगिनौ ॥ ४५ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे त्तरखण्डे श्रीकृष्ण-

सत्यभामासंवादेऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

———

ऊननवतितमोऽध्यायः

गुणवत्याःकार्त्तिकसेवनात्सत्यात्वप्राप्तिवर्णनम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

ततो गुणवती श्रुत्वा रक्षसा निहतावुभौ । पितृभर्तृजदुःखार्ता करुणं पर्यदेवयत् ॥१॥

गुणवत्युवाच ।

हा नाथ हा पितस्त्यक्त्वा गच्छ त्वं क्व मयाविना ।
बालाहं किं करोम्यद्य ह्यनाथा भवता विना ॥ २ ॥
कोनुमामास्थितां गेहे भोजनाच्छादनादिभिः ।
अकिंचित्कुशलां स्नेहात्पालयिष्यति दुःखिताम् ॥ ३ ॥

हतभाग्या हतसुखा हतेशा हतजीविता । शरणं कं व्रजाम्यद्य त्वन्नाथा वत बालिशा ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

एवं बहुविलप्याथ कुररीव भृशातुरा । पपात भूमौ विकला रम्भा वातहता यथा ॥
चिरादाश्वस्य सा भूमौ विलप्य करुणं बहु । निमग्नादुःखजलधौ शोकार्ता समवर्तत॥

साग्रहोपस्करान्सर्वान्विक्रीय शुभकर्मकृत् ।
तयोश्चक्रे यथाशक्ति पारलौकिकसत्क्रियाम् ॥ ७ ॥
तस्मिन्नेव पुरे वासं चक्रे प्रभृतिजीवनी ।
विष्णुभक्तिपरा शान्ता सत्यशौचा जितेन्द्रिया ॥ ८ ॥

व्रतद्वयं तया सम्यगाजन्ममरणात्कृतम् । एकादशीव्रतं सम्यक्सेवनं कार्त्तिकस्य च ॥
एतद्व्रतद्वयं कान्ते ममातीव प्रियङ्करम् । भुक्तिमुक्तिकरं सम्यक्पुत्रसंपत्ति कारकम् ॥

कार्तिके मासि ये नित्यं तुलासंस्थे दिवाकरे ।
प्रातः स्नास्यन्ति ते मुक्ता महापातकिनोऽपि च ॥ ११ ॥

संमार्जनं गृहे विष्णोःस्वस्तिकादिनिवेदनम् । विष्णुपूजां प्रकुर्वन्तिजीवन्मुक्ताश्चते नराः

स्नानं जागरणं दीपं तुलसीवनसेचनम्। कार्त्तिके ये प्रकुर्वन्ति ते नरा विष्णुमूर्तयः॥
इत्थं दिनत्रयमपि कार्त्तिके ये प्रकुर्वते। देवानामपि ते वन्द्याःकिं यैराजन्मतःकृतम्॥
इत्थं गुणवती सम्यक्प्रत्यब्दं प्रति नीयते। नित्यं विष्णोःपरिकरे भक्तातत्परमानसा

कदाचिज्जरसा साथ कृशाङ्गी ज्वरपीडिता।
स्नातुं गङ्गागता कान्ते कथंचिच्छनकैस्तथा॥ १६॥

यावज्जलान्तरगता कम्पिताशीतपीडिता। तावत्सा विह्वलापश्यद्विमानं प्राप्तमम्बरात्
शङ्खचक्रगदापद्महस्तैरासन्नमम्बरात्। विष्णुरूपधरैः सम्यग्वैनतेयध्वजाङ्कितैः॥ १८॥
आरोहयन्विमानं तमप्सरोगणसेवितम्। चामरैर्वीज्यमानां तां वैकुण्ठमनयन्गणाः॥

अथ सा तद्विमानस्था ज्वलग्निशिखोपमा।
कार्त्तिकव्रतपुण्येन मत्सान्निध्यगताऽभवत्॥ २०॥
अथ ब्रह्मादि देवानां यथा प्रार्थनया भुवम्।
आगच्छता गणाःसर्वे यातास्तेऽपि मया सह॥ २१॥
एतेऽपि यादवाःसर्वे मद्गणा एव भामिनि!।
पिता ते देवशर्माभूत्सत्राजिदधिपो ह्ययम्॥ २२॥

यश्चन्द्रशर्मा सोऽक्रूरस्त्वं सा गुणवती शुभे। कार्त्तिकव्रतपुण्येन बहुमत्प्रीतिवर्धनी॥
ममद्वारे त्वया पूर्वं तुलसीवाटिका कृता। तस्मादयं कल्पवृक्षस्तवाङ्गणगतःशुभे॥२४॥

कार्त्तिके दीपदानं च यत्त्वया तु कृतं पुरा।
त्वद्देहगेहसंस्थेयं तस्माल्लक्ष्मीःस्थिराभवत्॥ २५॥

यच्च व्रतादिकं सर्वं विष्णवे भर्तृरूपिणे। निवेदितवती तस्मान्मम भार्यात्वमागता॥
आजन्ममरणात्पूर्वं कार्त्तिके यद्व्रतं कृतम्। कदाचिदपि तेनैव मद्वियोगं न पश्यसि॥

एवं ये कार्त्तिकेमासि नरा व्रतपरायणाः।
मत्सान्निध्यं गतास्तेऽपि प्रीतिदा त्वं यथा मम॥ २८॥

यज्ञदानव्रततपःकारिणो मानवाःखलु। कार्त्तिकव्रतपुण्यस्य नाप्नुवन्ति कलामपि॥२९

इत्थं निशम्य भुवनाधिपतेस्तदानीं प्राक्पुण्यजन्मभववैभव जातहर्षा।

विश्वेश्वरं त्रिभुवनैकनिदानभूतं कृष्णं प्रणम्य वचनं निजगाद सत्या ॥३०॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्त्तिक-
माहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे सत्यापूर्वजन्मवर्णनं
नामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

नवतितमोऽध्यायः

पृथुनारदसंवादे शङ्खासुराख्यानवर्णनम् ।

सत्योवाच ।

सर्वेऽपिकालोवयवास्तवकालस्वरूपिणः । समानास्तु कथंनाथमासानांकार्त्तिकोवरः
एकादशी तिथीनां च मासानां कार्तिकः प्रियः।
कथं ते देवदेवश ! कारणं किं च कथ्यताम् ॥ २ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

साधु पृष्टं त्वया सत्ये शृणुष्वैकाग्रमानसा । पृथोर्वैन्यस्य संवादं देवर्षेर्नारदस्य च ॥३॥
एवमेव पुरापृष्टो नारदःपृथुना प्रिये । उवाच कार्त्तिकाधिक्ये कारणं सर्वविन्मुनिः ॥४

नारद उवाच ।

शङ्ख नामाऽभवत्पूर्वमसुरःसागरात्मजः । त्रिलोकीमथनेशक्तो महाबलपराक्रमः ॥५॥
जित्वा देवान्निराकृत्य स्वर्गलोकान्महासुरः ।
इन्द्रादिलोकपालानामधिकारांस्तथाऽहरत् ॥ ६ ॥
तद्भयादथ ते देवाःसुवर्णाद्रिगुहां गताः । न्यवसन्बहुवर्षाणि सावरोधाःसवासवाः ॥
सुवर्णाद्रिगुहां दुर्गसंस्थितास्त्रिदशा यदा । तद्वश्या न बभूवुस्ते तदादैत्यो व्यचारयत्
हृताधिकारास्त्रिदशा मया यद्यपि निर्जिताः ।
भवन्ति बलयुक्तास्ते करणीयं ममात्र किम् ॥ ९ ॥

अथ ज्ञातं मया देवा वेदमन्त्रबलान्विताः । तान्हरिष्ये ततःसर्वे बलहीना भवन्ति हि ॥
इति मत्वा ततो दैत्यो विष्णुमालक्ष्य निद्रितम् ।
सत्यलोकाज्जहाराशु वेदानां च गणं प्रभुः ॥ ११ ॥
गीतास्तु ते न ते वेदास्तद्भयात्ते निराक्रमन् । तोये निविविशुस्तेऽत्र यज्ञमन्त्रसमन्विताः
तान्मार्गमाणःशङ्खोऽपि समुद्रान्तर्गतो भ्रमन् । न ददर्श ततो दैत्यः क्वचिदेकत्र संस्थितान्
अथ ब्रह्मासुरैःसार्धं विष्णुं शरणमन्वयात् । पूजोपकरणं गृह्य वैकुण्ठभवनं गतः ॥
तत्र तस्य प्रबोधाय गीतवाद्यादिकाःक्रियाः । चक्रुर्देवा गन्धपुष्पधूपदीपान्मुहुर्मुहुः ॥
अथ प्रबुद्धो भगवांस्तद्भक्तिः परितोषितः । ददृशे तैःसुरैस्तत्र सहस्रार्कसमद्युतिः ॥१६
उपचारैः षोडशभिः संपूज्य त्रिदशास्तदा ।
दण्डवत्पतिता भूमौ तानुवाचाथ केशवः ॥ १७ ॥
विष्णुरुवाच ।
वरदोऽहं सुरगणा गीतवाद्यादिमङ्गलैः । मनोऽभिलषितान्कामान्सर्वानेव ददामि वः ॥
इषस्य शुक्लैकादश्या यावदुद्बोधिनी भवेत् ।
निशातुर्यांशशेषेण गीतवाद्यादिमङ्गलैः ॥ १९ ॥
कुर्वन्ति मनुजा नित्यं भवद्भिर्यद्यथाकृतम् । ते मत्प्रियकरा नित्यं मत्सांनिध्यंव्रजन्तिहि
पाद्यार्घाचमनीयाद्यैर्भवद्भिर्यद्यथाकृतम् । तदद्भुतगुणं यस्माज्जातं वः सुखकारणम् ॥
वेदाः शङ्खहृताःसर्वे तिष्ठन्त्युदकसंस्थिताः ।
तानानयाम्यहं देवा हत्वा सागरनन्दनम् ॥ २२ ॥
अद्यप्रभृति वेदास्तु मन्त्रबीजमखान्विताः । प्राप्यब्दं कार्तिकेमासिविश्राम्यंत्वप्सुसर्वदा
अद्यप्रभृत्यहमपि भवामि जलमध्यगः । भवन्तोऽपि मयासार्द्धमायान्तु समुनीश्वराः
कालेऽस्मिन्नेव कुर्वन्ति प्रातःस्नानंद्विजोत्तमाः ।
ते सर्वयज्ञावभृथैः सुस्नाताःस्युर्न संशयः ॥ २५ ॥
ये कार्तिके व्रतंसम्यङ्नित्यं कुर्वन्ति मानवाः। ते देहान्ते त्वयाशक्रप्राप्यामद्भवनंसदा
विघ्नेभ्यो रक्षणं तेषां त्वयाकार्यं ममाज्ञया । देया त्वया च वरुण पुत्रपौत्रादिसंततिः

धनवृद्धिर्धनाध्यक्ष त्वयाकार्या ममाज्ञया । ममरूपधराः साक्षाज्जीवन्मुक्ताश्च ते नराः
आजन्ममरणाद्यैश्च कृतमेतद्व्रतोत्तमम् । यथोक्तविधिना सम्यक्ते मान्या भवतामपि ॥
एकादश्यां यतश्चाहं भवद्भिः प्रतिबोधितः । अतश्चैषातिथिर्मान्या सदैवप्रीतिदा मम ॥
व्रतद्वयं सम्यगिदं नरैः कृतं कृष्णस्य सान्निध्यदमस्ति नान्यत् ।
दानानि तीर्थानि तपांसि यज्ञाः स्वर्लोकदानेन सदा सुरोत्तमाः ॥ ३१ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिक-माहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे शङ्खासुरवधोद्यमो नाम नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

———

एकनवतितमोऽध्यायः

विष्णुना मत्स्यावतारं धृत्वा शङ्खासुरवधकरणम् ।

नारद उवाच ।

इत्युक्त्वाभगवाविष्णुःशफरीतुल्यरूपधृत् ।*स पपाताञ्जलौविन्ध्ये निवासकश्यपस्यच
सतं कमण्डलौ क्षिप्र कृपयाक्षिप्तवान्मुनिः । तावत्स न ममौ तत्र ततः कूपे न्यवेशयत्
तत्रापि न ममौ तावत्कासारे प्राक्षिपत्स ताम् ।
एवं स सागरे क्षिप्तस्तत्र सोऽप्यन्ववर्द्धत ॥ ३ ॥
ततोऽवधीत्स तं शङ्खं विष्णुर्वैर्मत्स्यरूपधृत् । अथ तं स्वकरे धृत्वा बद्रीवनमागतः ॥
तत्राहूय ऋषीन्सर्वानिदमाज्ञापयद्विभुः ॥ ५ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

जलान्तरे विशीर्णास्तुयूयंवेदान्प्रमार्जथ । आनयध्वं च त्वरिताः सरहस्यंजलान्तरात्
तावत्प्रयागे तिष्ठामि देवतागणसंयुतः ॥ ६ ॥

नारद उवाच ।

ततस्तैःसर्वमुनिभिस्तपोबलसमन्वितैः । उद्धारिताःषडङ्गास्ते वेदा यज्ञसमन्विताः ॥

तेषु यावन्मितं येन लब्धं तावन्मितस्य हि । स स एव ऋषिर्जातस्तदा प्रभृति पार्थिव

अथ सर्वेऽपि संगम्य प्रयागं मुनयो ययुः ।

विष्णवे सविधात्रे ते लब्धान्वेदान्न्यवेदयन् ॥ ९ ॥

लब्ध्वा वेदान्स यज्ञांस्तु ब्रह्मा हर्षसमन्वितः । अयजच्चाश्वमेधेन देवर्षिगणसंवृतः ॥१०

यज्ञा ते देवदेवेश सिद्धपन्नगगुह्यकाः । निपत्य दण्डवद् भूमौ विज्ञप्तिं तत्र चक्रिरे ॥

देवाऊचुः ।

देवदेव जगन्नाथ विज्ञप्तिं शृणुनः प्रभो । हर्षकालोऽयमस्माकं तस्मात्त्वं वरदो भव ॥

स्थानेऽस्मिन्नृषयो वेदान्नष्टान्प्रापुः पुनःस्वयम् ।

यज्ञभागान्वयं प्राप्तास्त्वत्प्रसादाद्रमापते ॥ १३ ॥

स्थानमेतदपि श्रेष्ठं पृथिव्यां पुण्यवर्द्धनम् । भुक्तिमुक्तिप्रदं चास्तु प्रसादाद्भवतःसदा ॥

कालोऽप्ययं महापुण्यो ब्रह्मघ्नादि विशुद्धिकृत् । दत्ताऽक्षयकरश्चास्तु वरमेतद्ददस्वनः ॥

श्रीविष्णुरुवाच ।

ममाप्येतन्मतं देवा यद्भवद्भिरुदाहृतम् । तत्तथास्तु लभत्वेतद्ब्रह्मक्षेत्रमिति प्रथाम् ॥

सूर्यवंशोद्भवो राजा गङ्गामत्रानयिष्यति ।

सा सूर्यकन्यया चात्र कालिन्द्या सङ्गमिष्यते ॥ १७ ॥

यूयं च सर्वे ब्रह्माद्या निवसध्वं मयासह । तीर्थराजेति विख्यातं तीर्थमेतद्भविष्यति ॥

दानं तपो व्रतं होमो जपपूजादिकाःक्रियाः । अनन्तफलदाःसन्तु मत्सान्निध्यप्रदाःसदा

ब्रह्महत्यादि पापानि बहुजन्मकृतान्यपि । दर्शनादस्य तीर्थस्य विनाशं यान्तुतत्क्षणात्

देहत्यागं तथा धीराःकुर्वन्ति मम सन्निधौ । मत्तनूं प्रविशन्त्येव पुनर्जन्मनि नो नराः

पितॄन्निर्दिश्य ये श्राद्धं कुर्वन्त्यत्र समागताः ।

तेषां पितृगणाः सर्वे यान्तु ते मत्सलोकताम् ॥ २२ ॥

कालोऽप्येष महापुण्य फलदोऽस्तु सदा नृणाम् ।

सूर्ये मकरगे प्रात स्नायिनां पापनाशनम् ॥ २३ ॥

मकरस्थरवौ माघे प्रातःस्नानं प्रकुर्वताम् । दर्शनादेव पापानि यान्ति सूर्याद्यथा तमः ॥

सलोकत्वं सरूपत्वं समीपत्वं त्रयं क्रमात् । नृणां ददाम्यहं स्नानान्माघे मकरगे रवौ
यूयं मुनीश्वराःसर्वेश्शृणुध्वं वरदोऽस्मि वः । बदरीवनमध्येऽहं सदा तिष्ठामि सर्वगः ॥
अन्यत्र दशभिर्वर्षैस्तपसाऽऽवाप्यते फलम् । तदत्र दिवसैकेन भवद्भिःप्राप्यते सदा ॥
स्थानस्य दर्शनं तस्य ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः । जीवन्मुक्तास्तदा तेषु पापं नैवावतिष्ठते

सूत उवाच ।

एवं देवान्देवदेवस्तदुक्त्वा तत्रैवान्तर्धानमागात्सवेधाः ।
देवाः सर्वेऽप्यंशकैस्तत्र तस्थुश्चान्तर्धानं प्रापुरिन्द्रादयस्ते ॥ २६ ॥
इमां च गाथां श्रृणुयान्नरोत्तमो यः श्रावयेद्वापि विशुद्धचित्तः ।
स तीर्थराजं बदरीवनं यत्कृत्वा फलं मां समवाप्नुयाच्च ॥ ३० ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिक–माहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे शङ्खासुरवधोवेदागमे प्रयागमाहात्म्यं नामैकनवतितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

————

द्विनवतितमोध्यायः

कार्तिकव्रतिनां नियमवर्णनम्

पृथुरुवाच ।

महाफलं त्वया प्रोक्तं मुने कार्तिकमाघयोः ।
तयोःस्नानविधिं सम्यङ् नियमानपि नारद । उद्यापनविधिं चैव यथावद्वक्तुमर्हसि ॥१

नारद उवाच ।

त्वं विष्णोरंशसंजातो नाज्ञातं विद्यते तव । तथापिवदतःसम्यङ् माहात्म्यंश्रृणु वेनज
आश्विनस्यतुमासस्ययाशुक्लैकादशी भवेत् । कार्त्तिकव्रतनियमं तस्यांकुर्यादतन्द्रितः
रात्र्यां तुर्यांशशेषायां मुदोत्तिष्ठेत्सदाव्रती । नैऋत्यांसंव्रजेद्ग्रामाद्बहिःसोदकभाजनः
दिवासन्ध्यासु कर्णस्थ ब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः। अन्तर्धाय तृणंभूमौ शिरःप्रावृत्य वाससा

वक्त्रं नियम्य यत्नेन ष्ठीवनश्वासवर्जितः । कुर्यान्मूत्रपुरीषे च रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ॥
गृहीतशिश्नश्चोत्थाय गृहीत्वा शुचि मृत्तिकाम् । गन्धलेपक्षयकरं शौचं कुर्यादतन्द्रितः
एका लिङ्गे गुदे पञ्च तथा वामकरे दश । उभयोः सप्त दातव्यास्तथा तिस्रस्तु पादयोः
एतद् द्वित्रिगुणं प्रोक्तं ब्रह्मचारिवनस्थयोः ।
यतेश्चतुर्गुणं रात्रौ तदर्धं शौचमाचरेत् ॥ ६ ॥
तदर्धमपि मार्गस्थस्त्रीशूद्राणां तदर्धकम् । शौचकर्मविहीनस्य सकला निष्फलाःक्रियाः
मुखशुद्धिविहीनस्य नो मन्त्राः फलदाः स्मृताः ।
दन्तजिह्वाविशुद्धिं च ततः कुर्यात्प्रयत्नतः ॥ ११ ॥
आयुर्बलं यशोवर्चः प्रजाः पशुवसूनि च । ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वन्नो देहि वनस्पते
इति मन्त्रं समुच्चार्य द्वदश ङ्गुलकं सदा । समिधाक्षीरवृक्षस्य क्षयाहोपोषणंविना
प्रतिपद्दर्शनवमी षष्ठीश्चार्कदिनं विना । चन्द्रसूर्योपरागे च न कुर्याद्दन्तधावनम् ॥१४॥
कण्टकीवृक्षकार्पासनिर्गुण्डीब्रह्मवृक्षजम् । बिल्वैरण्डविगन्धाढ्यं वर्जयेद्दन्तधावनम् ॥
ततो विष्णोः शिवस्यापि गृहं गच्छेत्प्रसन्नधीः ।
गन्धपुष्पसुताम्बूलान्गृहीत्वा भक्तितत्परः ॥ १६ ॥
तत्र देवस्य पाद्यार्घाद्युपचारान्पृथक्पृथक् ।
कृत्वा स्तुत्वा पुनर्नत्वा कुर्याद्गीतादिमङ्गलम् ॥ १७ ॥
तालवेणुमृदङ्गादि ध्वनियुक्तान्सनृत्तकान् । पुष्पैर्गन्धैःसताम्बूलैर्गायनानपि चार्चयेत्
देवालये गानपरा यतस्ते विष्णुमूर्त्तयः । तपांसि यज्ञदानानि कृतानि च जगद्गुरोः ॥
तुष्टिदानि कलौ नित्यं भक्त्या देवस्य सत्पतेः ।
क्व त्वं वससि देवेश ! मया पृष्टस्तु पार्थिव ! ॥ २० ॥
विष्णुरेवं तदा प्राह मद्भक्तिपरितोषितः ॥ २१ ॥

विष्णुरुवाच ।

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदयेन च । मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद !॥
सत्पुराणकथां श्रुत्वा मद्भक्तानां च गायनम् ।

नेच्छन्ति ये नरा मूढा मद्द्वेष्यास्ते भवन्ति हि ॥ २३ ॥
तेषां पूजादिकं गन्धपुष्पादिक्रियते नरैः । तेन प्रीतिं तथा यामि न तथा मत्प्रपूजनात्

नारद उवाच ।

शिरीषोन्मत्तगिरिजामल्लिकाशाल्मलीभवैः ।
अर्कजैः कर्णिकारैश्च विष्णुर्नार्च्यस्तथाऽक्षतैः ॥ २५ ॥
जपाकुन्दशिरीषैश्च यूथिकामालतीभवैः । केतकीभवपुष्पैश्च नैवार्च्यः शङ्करस्तथा ॥
गणेशं तुलसीपत्रैर्दुर्गां नैव च दूर्वया । मुनिपुष्पैस्तथा सूर्यं लक्ष्मीकामो न चार्चयेत्
सुगन्धीनि प्रशस्तानि पूजायां सर्वदैव तु । एवं पूजाविधिं कृत्वा देवदेवं क्षमापयेत्
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर ! । यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥२९
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा दण्डवत्प्रणिपत्य च । पुनः क्षमापयेद्देवं गायनाद्यं क्षमापयेत् ॥
विष्णोः शिवस्यापि च पूजनादिकं कुर्वन्ति सम्यङ् निशि कार्तिके ये ।
निर्धूतपापाः सह पूर्वजैस्ते प्रयान्ति विष्णोर्भवनं मनुष्याः ॥ ३१ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्त्तिक-माहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे नियमवर्णनं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥९२॥

त्रिनवतितमोऽध्यायः

कार्तिकस्नानार्घ्यादिवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

नाडीद्वयावशिष्टायां रात्रौ गच्छेज्जलाशयम् । तिलगन्धाक्षतैः पुष्पैर्दीपाद्यैः सहितः शुचिः
मानुषे देवखाते च नद्यां नद्योश्च संगमे । क्रमाद्दशगुणं स्नानं तीर्थेऽनन्तफलं स्मृतम् ॥
विष्णुं स्मृत्वा ततः कुर्यात्सङ्कल्पं सवनस्य तु ।
तीर्थादिदेवतादिभ्यः क्रमादर्घ्यादि दापयेत् ॥ ३ ॥

ओं नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने। नमस्तेऽस्तु हृषीकेश गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते
वैकुण्ठे च प्रयागे च तथा बदरिकाश्रमे। यतो विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा सं निदधे पदम् ॥ ५॥
अतो देवा मामवन्तु यतो विष्णुर्विचक्रमे। तैरेव सहितैः सर्वैर्मुनिदेवसमन्वितैः ॥ ६ ॥
कार्त्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातः स्नानं सुरोत्तम। प्रीत्यर्थं देवदेवेश दामोदर मया सह

ध्यात्वाऽहं त्वां च देवेश! जलेऽस्मिन्स्नातुमुद्यतः ।
तव प्रसादात्पापं मे दामोदर! विनश्यतु ॥ ८ ॥

अर्घ्यमन्त्रौ ।

नित्ये नैमित्तिके कृष्णे कार्तिके पापनाशने। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे
व्रतिनः कार्त्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे

स्मृत्वा भागीरथीं विष्णुं शिवं सूर्यं जले विशेत् ।
नाभिमात्रे जले तिष्ठन्व्रती स्नायाद्यथाविधि ॥ ११ ॥

तिलामलकचूर्णेन गृही स्नानं समाचरेत्। वनस्थानां यतीनां च तुलसीमूलमृत्तिका
सप्तमीदर्शनवमीद्वितीयादशमीषु च। त्रयोदश्यां च न स्नायाद्धात्रीफलतिलैः सह ॥
आदौ कुर्यान्मलस्नानं मन्त्रस्नानं ततः परम्। स्त्रीशूद्राणां न वेदोक्तैर्मन्त्रैस्तेषां पुराणजैः

स्नानमन्त्राः ।

त्रिधाभूद्देवकार्याय यः पुरा भक्तिभावतः। स विष्णुः सर्वपापघ्नः पुनातु कृपयात्र माम्
विष्णोराज्ञामनुप्राप्य कार्त्तिकव्रतकारणात्। रक्षन्तु देवास्ते सर्वे मां पुनन्तु सदैव ते ॥
वेदमन्त्राः सबीजास्तु सरहस्याः सवीर्यकाः। कश्यपाद्याश्च मुनयो मां पुनन्तु सदैव ते

गङ्गाद्याः सरितः सर्वास्तीर्थानि जलदा नदाः ।
ससप्तसागराः सर्वे मां पुनन्तु जलाशयाः ॥ १८ ॥
पतिव्रतास्त्वदित्याद्या यक्षाः सिद्धाः सपन्नगाः ।
ओषध्यः पर्वताश्चाशु मां पुनन्तु त्रिलोकजाः ॥ १९ ॥

एभिः स्नात्वा व्रती मन्त्रैर्हस्तन्यस्तपवित्रकः। देवर्षीन्मानवान्पितॄंस्तर्पयेच्च यथाविधि

यावन्तः कार्त्तिके मासि वर्तन्ते पितृतर्पणे ।

तिलास्तत्सङ्ख्यकाब्दानि पितरः स्वर्गवासिनः ॥ २१ ॥

ततो जलाद्विनिष्क्रम्य शुचिवस्त्रावृतो व्रती । प्रातःकालोदितं कर्म समाप्यार्चेद्धरिंपुनः
तीर्थादिदेवान्संस्मृत्य पुनरर्चां प्रदापयेत् । गन्धपुष्पफलैर्युक्तो भक्तितत्परमानसः ॥

अर्घ्यमन्त्रः ।

व्रतिनः कार्त्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं दनुजेन्द्रनिषूदन
ततश्च ब्राह्मणान्भक्त्या भोजयेद्वेदपारगान् । गन्धपुष्पैः सताम्बूलैः प्रणमेच्च पुनः पुनः

तीर्थानि दक्षिणे पादे वेदाश्च मुखमाश्रिताः ।
सर्वाङ्गे संस्थिता देवाः पूजिताः स्युर्द्विजार्चनात् ॥२६॥
अव्यक्तरूपिणो विष्णोः स्वरूपं ब्राह्मणा भुवि ।
नावमान्या नो विरोध्याः कदाचिच्छुभमिच्छता ॥ २७ ॥

तां वै हरिप्रियां देवि तुलसीमर्चयेद्व्रती । प्रयागस्नानयुक्तानां काश्यां प्राणविमोक्षणे
यत्फलं विहितं वेदैस्तुलसीपूजनेन तत् । युक्तो यदि सदा पापैः सुकृतं नार्जितं क्वचित्
तथापि गीयते मोक्षस्तुलसी पूजिता यदि । प्रदक्षिणांनमस्कारान्कुर्यादेकाग्रमानसः ॥
देवैस्त्वं निर्मिता पूर्वमर्चिताऽसि मुनीश्वरैः । नमो नमस्ते तुलसि !पापं हर हरिप्रिये !

ततो विष्णुकथां श्रुत्वा पौराणीं स्निग्धमानसः ।
तं ब्राह्मणं मुनिं विप्रं पूजयेद्भक्तिमान्व्रती ॥ ३२ ॥
एवं पूर्णविधिं सम्यक्पूर्वोक्तं भक्तिमान्नरः ।
करोति यः स लभते नारायणसलोकताम् ॥ ३३ ॥
रोगापहं पापविनाशकृत्परं सद्बुद्धिदं पुत्रधनादिसाधनम् ।
मुक्तेर्निदानं न हि कार्त्तिकव्रताद्विष्णुप्रियादन्यदिहास्ति भूतले ॥३४॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायांषष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिक-
माहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे स्नानविधिवर्णनंनामत्रिनवतितमोऽध्यायः

———

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

कार्त्तिकमास्यनुष्ठेयानां नियमानां वर्णनम् ।

नारद उवाच ।

कार्तिकव्रतिनां पुंसां नियमा ये प्रकीर्तिताः । तान्छृणुष्वमयाराजन्कथ्यमानान्समन्ततः
अन्नदानं गवां ग्रासो वैष्णवैः सह संकथा । बोधनात्परदीपस्य धर्ममाहुर्मनीषिणः ॥
परान्नं परशय्याञ्च परवादं पराङ्गनाम् । सदा च वर्जयेत्प्राज्ञो विशेषेण तु कार्त्तिके

सर्वामिषाणि मांसानि क्षौद्रं सौवीरकं तथा ।
राजमाषादिकं चापि नैवाद्यात्कार्त्तिकव्रती ॥४॥

द्विदलं तिलतैलंचतथान्नमश्रुदूषितम् । भावदुष्टं शब्ददुष्टं वर्जयेत्कार्तिकव्रती ॥ ५ ॥
परान्नञ्च परद्रोहं परदारागमं तथा । तीर्थे प्रतिग्रहं नापिगृह्णीयात्कार्तिकव्रती ॥ ६ ॥
देवदेवद्विजानां च गुरोश्च व्रतिनस्तथा । स्त्रीराजमहतां निन्दां वर्जयेत्कार्त्तिकव्रती ॥
प्राण्यङ्गमामिषं चूर्णं फले जम्बीरमामिषम् । धान्ये मसूरिकाप्रोक्ता चान्नंपर्युषितं तथा

अजागोमहिषीक्षीरादन्यदुग्धादिचामिषम् ।
द्विजक्रीता रसाः सर्वे लवणं भूमिजं तथा ॥ ९ ॥
ताम्रपात्रस्थितं गव्यं जलं पल्वलसंस्थितम् ।
आत्मार्थं पाचितं चान्नमामिषं तत्स्मृतं बुधैः ॥१०॥

ब्रह्मचर्यमधः सुप्तिः पत्रावल्यां च भोजनम् । चतुर्थकाले भुञ्जीत कुर्यादेवं सदाव्रती ॥
नरकस्य चतुर्दश्यां तैलाभ्यङ्गं च कारयेत् । अन्यत्र कार्त्तिकस्नायी तैलाभ्यङ्गंनकारयेत्
पलाण्डुं लशुनं शिग्रुं छत्राकं गृञ्जनं तथा । नालिकां मूलकं हिङ्गुंवर्जयेत्कार्त्तिकव्रती

अलाबुं चापि वृन्ताकं कूष्माण्डं वृहतीफलम् ।
श्लेष्मातकं कपित्थं च वर्जयेत्कार्त्तिकव्रती ॥ १४ ॥

रजस्वलान्त्यजम्लेच्छपतितव्रात्यकैः सह । द्विजातिवेदबाह्यैश्च न वदेत्कार्त्तिकव्रती ॥

श्वभिर्दुष्टं च काकैश्च सूतकान्नंचवर्जयेत् । द्विष्पाचितं च दग्धान्नंवर्जयेत्कार्त्तिकव्रती
तैलाभ्यङ्गं तथा शय्यां पराह्नं कांस्यभोजनम् । कार्तिकेवर्जयेद्यस्तु परिपूर्णव्रतीभवेत्
एतानिवर्जयेन्नित्यं व्रती सर्वव्रतेष्वपि । कृच्छ्राद्यं चापि कुर्वीत स्वशक्त्याविष्णुतुष्टये
क्रमात्कूष्माण्डवृन्ताकवृहतीमूलकं तथा । श्रीफलं च कलिङ्गं च फलं धात्रीभवंतथा ॥
नारिकेरं महालावुं पटोलं वदरीफलम् । चर्मवैकतकं चापि विसं वै कट्फलं तथा ॥
शाकान्येतानि वर्ज्यानि क्रमात्प्रतिपदादिषु । धात्रीफलं रवौ तद्वद्वर्जयेत्सर्वदा गृही

एभ्योऽपि वर्जयेत्किंचिद्यद्विष्णुप्रीतये नरः ।
तत्पुनर्ब्राह्मणे दत्त्वा भक्षयेत्सर्वदैव हि ॥ २२ ॥

एवमेव हि माघेऽपि कुर्याद्वै नियमान्व्रती । हरिजागरणं तत्र विधिप्रोक्तं च कारयेत् ॥

यथोक्तकारिणं दृष्ट्वा कार्त्तिकव्रतिनं नरम् ।
यमदूताः पलायन्ते गजाः सिंहार्दिता यथा ॥२४॥

वरं विष्णुव्रतं ह्येतदथ यज्ञशताधिकम् । यज्ञकृत्प्राप्नुयात्स्वर्गं वैकुण्ठं कार्त्तिकव्रती ॥
भुक्तिमुक्तिप्रदानीह यानि क्षेत्राणि भूतले । वसन्ति तानि तद्गेहे कार्त्तिकव्रतकारिणः

दुःस्वप्नं दुष्कृतं किंचिन्मनोवाकायकर्मजम् ।
कार्त्तिकव्रतिनं दृष्ट्वा विलयं यान्ति तत्क्षणात् ॥२७॥
कार्त्तिकव्रतिनः पुंसो विष्णुवाक्यप्रणोदिताः ।
रक्षां कुर्वन्ति शक्राद्या राज्ञो वै किङ्करा यथा ॥२८॥

विष्णुव्रतकरा नित्यं यत्र तिष्ठन्ति पूजिताः । ग्रहभूतपिशाचाद्या नैव तिष्ठन्ति तत्र वै॥
कार्त्तिकव्रतिनः पुण्यं यथोक्तव्रतकारिणः । न समर्थो भवेद्वक्तुं ब्रह्माऽपीह चतुर्मुखः

विष्णुप्रियं सकलकल्मषनाशनं च सर्वत्र पुत्रधनधान्यसमृद्धिकारि ।
ऊर्जे व्रतं सनियमं कुरुते मनुष्यः किं तस्य तीर्थपरिशीलनसेवाय च ॥३१॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्त्तिक-
माहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे नियमवर्णनं नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥९४॥

———

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

कार्त्तिकव्रतोद्यापनविधानवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

अथोर्जव्रतिनः सम्यगुद्यापनविधिं नृप । तच्छृणुष्व मयाख्यातं किंविधानं समासतः ॥
ऊर्जशुक्लचतुर्दश्यां कुर्यादुद्यापनं व्रती । व्रतसंपूर्णतार्थाय विष्णुप्रीत्यर्थमेव च ॥२॥

तुलस्या उपरिष्टात्तु कुर्यान्मण्डपिकां शुभाम् ।
सुतोरणां चतुर्द्वारां पुष्पचामरशोभिताम् ॥ ३ ॥

द्वारेषु द्वारपालांश्च पूजयेन्मृण्मयान्पृथक् । पुण्यशीलं सुशीलं च जयं विजयमेव च ॥
तुलसीमूलदेशे च सर्वतोभद्रमालिखेत् । चतुर्भिर्वर्णकैः सम्यक्छोभाढ्यं समलंकृतम्
तस्योपरिष्टात्सपिधानं पञ्चरत्नसमन्वितम । महाफलेन संयुक्तं कुम्भं तत्र निधाय च
पूजयेत्तत्र देवेशं शङ्खचक्रगदाधरम् । कौशेयपीतवसनं युक्तं जलधिकन्यया ॥ ७ ॥

इन्द्रादिलोकपालांश्च पूजयेन्मण्डले व्रती ।
द्वादश्यां प्रतिबुद्धः स त्रयोदश्यां यतः सुरैः ॥८॥
दृष्टोऽर्चितश्चतुर्दश्यां तस्मात्पूज्यस्तथाधिकम् ।
तस्यामुपवसेद्भक्त्या शान्तः प्रयतमानसः ॥९॥

पूजयेद्देवदेवेशं सौवर्णं गुर्वनुज्ञया । उपचारैः षोडशभिर्नानाभक्ष्यसमन्वितैः ॥ १० ॥

रात्रौ जागरणं कुर्याद् गीतवाद्यादिमङ्गलैः ।
गीतं कुर्वन्ति ये भक्त्या जागरे चक्रपाणिनः ॥११॥
जन्मान्तरशतोद्भूतैस्ते मुक्ताः पापसंचयैः ।
जागरे वासरे विष्णोर्गीतं नृत्यं च कुर्वताम ॥ १२ ॥

गोसहस्रं च ददतां तत्फलं समुदाहृतम् । गीतनृत्यादिकं कुर्वन्दर्शयेत्कौतुकानि च ॥
पुरतो वासुदेवस्य रात्रौ यो हरिजागरे । पठन्विष्णुचरित्राणि यो रञ्जयति वैष्णवान

मुखेन कुरुते वाद्यं स्वेच्छालापांश्चदर्शयन् । भावैरेतैर्नरो यस्तु कुरुते हरिजागरम् ॥ १५

दिने दिने तस्य पुण्यं तीर्थकोटिसमं स्मृतम् ।

ततस्तु पौर्णमास्यां वै सपत्नीकान्द्विजोत्तमान् ॥ १६ ॥

त्रिंशन्मितानथैकान्वा स्वशक्त्या वा निमन्त्रयेत् ।

वरान्दत्त्वा यतो विष्णु मत्स्यरूप्यभवत्तदा ॥ १७ ॥

तस्यां दत्तं हुतं जप्तं तदक्षयफलं स्मृतम् । अतस्तान्भोजयेद्विप्रान्पायसान्नादिना व्रती

अतो देवा इति द्वाभ्यां जुहुयात्तिलपायसम् । प्रीत्यर्थं देवदेवस्य देवानां च पृथक्पृथक्

दक्षिणां च यथाशक्ति प्रदद्यात्प्रणमेच्च तान् । पुनर्देवं समभ्यर्च्य देवांश्च तुलसीं तथा

ततो गां कपिलां तत्र पूजयेद्विधिवद्व्रती । गुरुं व्रतोपदेष्टारं वस्त्रालङ्कारणादिभिः ॥

सपत्नीकं समभ्यर्च्य गां च तस्मै प्रदापयेत् ।

युष्मत्प्रसादाद्देवेशः प्रसन्नो मे भवेत्तदा ॥ २२ ॥

व्रतादस्माच्च यत्पापं सप्तजन्मकृतं मया । तत्सर्वं नाशमायातु स्थिरा मे चास्तु सन्ततिः

मनोरथाश्च सफलाः सन्तु नित्यं ममार्चनात् ।

देहान्ते वैष्णवं स्थानं प्राप्नुयामतिदुर्लभम् ॥ २४ ॥

इति क्षमाप्य तान्विप्रान्प्रसाद्य च विसर्जयेत् । तामर्चां गुरवे दद्याद्रत्नयुक्तां तदाव्रती

तदा सुहृद्गुरुयुतः स्वयं भुञ्जीत भक्तिमान् ।

कार्त्तिके वाथ तपसि विधिरेवंविधःस्मृतः ॥ २६ ॥

एवं यः कुरुते सम्यक्कार्त्तिकस्य व्रतं नरः ।

विपाप्मा स विनिर्मुक्तो विष्णुसान्निध्यगो भवेत् ॥ २७ ॥

सर्वव्रतैःसर्वतीर्थैः सर्वदानैश्च यत्फलम् । तत्कोटिगुणितं ज्ञेयं सम्यगस्य विधानतः ॥

ते धन्यास्ते महापुण्यास्तेषां सर्वफलोदयः ।

विष्णुभक्तिरता ये स्युः कार्त्तिके व्रतकारिणः ॥ २९ ॥

देहस्थितानिपापानिवितर्कं यान्तितद्भयात् । क्व यास्यामो वदन्त्येवं यद्ययं व्रतकृन्नरः

इत्यूर्जव्रतनियमाञ्छृणोति भक्त्या यो वै तत्कथयति वैष्णवाग्रतो यः ।

तौ सम्यग्व्रतकरणात्फलं लभेतां दृष्ट्वा तौ कलुषविनाशनं लभन्ते ॥३१॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्त्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे उद्यापनवर्णनं नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

षण्णवतितमोऽध्यायः

तुलसीमाहात्म्यप्रसङ्गेन जालन्धरोत्पत्तिवर्णनम्।

पृथुरुवाच।

यत्त्वया कथितं ब्रह्मन्व्रतमूर्जस्य विस्तरात्।

तत्र या तुलसीमूले विष्णोः पूजा त्वयोदिता ॥ १ ॥

तेनाहं प्रष्टुमिच्छामि माहात्म्यं तुलसीभवम्।

कथं साऽतिप्रिया विष्णोर्देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥ २ ॥

कथमेषा समुत्पन्नाकस्मिन्स्थाने च नारद। एतद्ब्रूहि समासेनसर्वज्ञोऽसि मतो हि मे

नारद उवाच।

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं तुलसीभवम्। सेतिहासं पुरावृत्तं तत्सर्वं कथयामि ते

पुरा शक्रः शिवं द्रष्टुमगात्कैलासपर्वतम्। सर्वदेवैः परिवृतस्त्वप्सरोगणसेवितः ॥

यावद्गतः शिवगृहं तावत्तत्राशु दृष्टवान्। पुरुषं भीमकर्माणं दंष्ट्रानयनभीषणम् ॥ ६ ॥

सपृष्टस्तेन कस्त्वं भोः क्व गतो जगदीश्वरः। एवं पुनः पुनः पृष्टः स यदा नोचिवान्नृप

ततः क्रुद्धो वज्रपाणिस्तं निर्भर्त्स्य वचोऽब्रवीत् ॥ ८ ॥

शक्र उवाच।

रे मया पृच्छ्यमानोऽपि नोत्तरं दत्तवानसि।

अतस्त्वां हन्मि वज्रेण कस्ते त्राताऽस्ति दुर्मते! ॥ ९ ॥

इत्युदीर्य ततो वज्रीवज्रेणाहंश्च तं दृढम्। तेनास्यकण्ठोनीलत्वमगाद्वज्रं च भस्मताम्

ततो रुद्रः प्रजज्वाल तेजसा प्रदहन्निव ।
दृष्ट्वा वृहस्पतिस्तूर्णं कृताञ्जलिपुटोऽभवत् । इन्द्रश्च दण्डवद्भूमौ कृत्वा स्तोतुं प्रचक्रमे

वृहस्पतिरुवाच ।

नमो देवाधिदेवाय त्र्यम्बकाय कपर्दिने । त्रिपुरघ्नाय शर्वाय नमोऽन्धकनिषूदिने ॥१२॥
विरूपायातिरूपाय बहुरूपाय शम्भवे । यज्ञविध्वंसकर्त्रे च यज्ञानां फलदायिने ॥ १३ ॥
कालान्तकाय कालाय कालभोगधराय च । नमो ब्रह्मशिरो हन्त्रे ब्राह्मणाय नमोनमः

नारद उवाच ।

एवं स्तुतस्तदा शम्भुर्द्विजर्षभं जगाद ह । संहरन्नयनज्वालां त्रिलोकीदहनक्षमाम् ॥१५॥

ईश्वर उवाच ।

वरं वरय भोब्रह्मन्प्रीतः स्तुत्याऽनया तव । इन्द्रस्य जीवदानेन जीवेति त्वं प्रथां व्रज

वृहस्पतिरुवाच ।

यदि तुष्टोऽसि देव त्वं पाहीन्द्रं शरणागतम् । अग्निरेष शमं यातु भालनेत्रसमुद्भवः ॥

ईश्वर उवाच ।

पुनः प्रवेशमायाति भालनेत्रे कथं त्वयम् । एनं त्यक्ष्याम्यहं दूरे यथेन्द्रं नैव पीडयेत् ॥

नारद उवाच ।

इत्युक्त्वा तं करे धृत्वा प्राक्षिपल्लवणाम्भसि ।
सोऽपतत्सिन्धुगङ्गायाः सागरस्य च संगमे ॥ १९ ॥
तदा स बालरूपत्वमगात्तत्र रुरोद च । रुदतस्तस्य शब्देन प्राकम्पत मही मुहुः ॥२०॥
स्वर्गश्च सत्यलोकश्च तत्स्वनाद् बधिरीकृतौ ।
श्रुत्वा ब्रह्मा ययौ तत्र किमेतदिति विस्मितः ॥ २१ ॥
तावत्समुद्रस्योत्सङ्गे तं बालं सददर्श ह । दृष्ट्वा ब्रह्माणमायान्तंसमुद्रोऽपि कृताञ्जलिः
प्रणम्य शिरसा बालंतस्योत्सङ्गे न्यवेशयत् ।
ततो ब्रह्माऽब्रवीद्वाक्यंकस्यायं शिशुरद्भुतः ॥ २३ ॥
सरित्पते कुतो लब्धो बालो ह्येष महाबलः । यस्य नादेन संत्रस्ता देवासुरमहोरगाः ॥

नारद उवाच।

निशम्येति वचो धातुर्वाक्यं तु सागरोऽब्रवीत् ॥ २५ ॥

समुद्र उवाच।

भोब्रह्मन्सिन्धुगङ्गायांजातोऽयंमम पुत्रकः। जातकर्मादिसंस्कारान्कुरुष्वास्य जगद्गुरो

नारद उवाच।

इत्थं वदति पाथोधौ स बालःसागरात्मजः। ब्रह्माणमग्रहीत्कूर्चे विधुन्वंस्तं मुहुर्मुहुः

धुन्वतस्तस्य कूर्चंतु नेत्राभ्यामागमज्जलम्। कथंचिन्मुक्तकूर्चोऽथब्रह्मा प्रोवाच सागरम्

ब्रह्मोवाच।

नेत्राभ्यां विधृतंयस्मादनेनैतज्जलं मम। तस्माज्जलन्धर इति ख्यातो नाम्ना भवत्वसौ ॥

अधुनैवैष तरुणः सर्वशस्त्रास्त्रपारगः। अवध्यः सर्वभूतानां विना रुद्रं भविष्यति ॥

याति यत्र समुद्भूतस्तत्रेदानीं गमिष्यति ॥ ३० ॥

नारद उवाच।

इत्युक्त्वा शुक्रमाहूय राज्ये तं चाभ्यषेचयत्।

आमन्त्र्य सरितांनाथं ब्रह्माऽन्तर्धानमन्वगात् ॥ ३१ ॥

अथ तद्दर्शनोत्फुल्लनयनः सागरस्तदा।

कालनेमिसुतां वृन्दां तद्भार्यार्थमयाचत ॥ ३२ ॥

ते कालनेमिप्रमुखास्ततोऽसुरास्तस्मै सुतां तां प्रददुः प्रहर्षिताः।

स चापि तान्प्राप्य सुहृद्वरान्वशी शशास गां शुक्रसहायवान्बली ॥ ३३ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्त्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे जालन्धरोत्पत्तिवर्णनं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः ॥

सप्तनवतितमोऽध्यायः

जालन्धरदैत्यकृतदेवपराजयपूर्वकममरावतीविजयवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

ये देवैर्निर्जिताःपूर्वं दैत्याःपातालसंस्थिताः । तेहिभूमण्डले जाता निर्भयास्तमुपासितुम्
कदाचिच्छिन्नशिरसं राहुं दृष्ट्वा स दैत्यराट् । पप्रच्छ भार्गवं विप्रं केनेदं विहितं प्रभो
भार्गवस्तस्य शिरसश्छेदं राहोःशशंसह । अमृतार्थं समुद्रस्य मथने देवकारितम् ॥३॥
रत्नापहरणं चैव दैत्यानां च पराभवम् । तच्छ्रुत्वा क्रोधरक्ताक्षःस्वपितुर्मथनं तदा ॥४॥
स दूतं प्रषयामास घस्मरं शक्रसंनिधौ । दूतस्त्रिविष्टपं गत्वा सुधर्मां प्राप्य सत्वरम्
गर्वादखर्वमौलिस्तु देवेन्द्रं वाक्यमब्रवीत् ॥ ५ ॥

दूत उवाच ।

जलन्धरोऽब्धितनयःसर्वदैत्यजनेश्वरः । दूतोऽहं प्रेषितस्तेन स यदाह शृणुष्व तत् ॥
कस्मात्त्वया मम पिता मथितःसागरोऽद्रिणा । नीतानि सर्वरत्नानि तानिशीघ्रं प्रयच्छ मे

नारद उवाच ।

इति दूतवचःश्रुत्वा विस्मितस्त्रिदशाधिपः । उवाच घस्मरं घोरं भयरोषसमन्वितः ॥

इन्द्र उवाच ।

शृणु दूत मया पूर्वं मथितःसागरो यथा । अद्रयो मद्भयाद्भीताःस्वकुक्षिस्थास्तथाकृताः
अन्येऽपि मद्द्विषस्तेन रक्षिता दितिजास्तथा ।
तस्मात्तद्रत्नजातं तु मयाऽप्यपहृतं किल ॥ १० ॥
शङ्खोऽप्येवं पुरा देवानद्विषत्सागरात्मजः । ममानुजेन निहतःप्रविष्टःसागरोदरम् ॥
तद्. गच्छ कथयस्वास्य सर्वं मथनकारणम् ॥ १२ ॥

नारद उवाच ।

इत्थं विसर्जितो दूतस्तदेन्द्रेणागमद्गृहम् । तदिन्द्रवचनं दैत्यराजायाकथयत्तदा ॥

तन्निशम्य तदा दैत्यो रोषात्प्रस्फुरिताधरः । उद्योगमकरोत्तूर्णं सर्वदेवजिगीषया ॥ १४ ॥
तदोद्योगे सुरेन्द्रस्य दिग्भ्यःपातालतस्तथा । दितिजाःप्रत्यपद्यन्त शतशःकोटिशस्तथा
अथ शुम्भनिशुम्भाद्यैर्बलाधिपतिकोटिभिः ।
गत्वा त्रिविष्टपं दैत्यो युद्धायाधिष्ठितोऽभवत् ॥ १६ ॥
निर्ययुस्त्वमरावत्या देवा युद्धाय दंशिताः ।
पुरमावृत्य तिष्ठन्ति दृष्ट्वा दैत्यबलं महत् ॥ १७ ॥
ततः समभवद्युद्धं देवदानवसेनयोः । मुसलैःपरिघैर्बाणैर्गदापरशुशक्तिभिः ॥ १८ ॥
अन्योन्यं समधावेतां जघ्नतुश्च परस्परम् । क्षणेनाभवतां सेने रुधिरौघपरिप्लुते ॥ १९ ॥
पतितैःपात्यमानैश्च गजाश्वरथपत्तिभिः । व्यराजत रणे भूमिःसन्ध्याभ्रपटलैरिव ॥
तत्र युद्धे हतान्दैत्यान्भार्गवस्तूदतिष्ठिपत् ।
विद्यया मृतजीविन्या मन्त्रितैस्तोयबिन्दुभिः ॥ २१ ॥
देवानपि तथायुद्धे जीवयेदङ्गिरस्सुतः । दिव्यौषधीःसमानीय द्रोणदेश्याः पुनःपुनः ॥
दृष्ट्वा देवांस्तथा युद्धे पुनरेव समुत्थितान् । जलन्धरःक्रोधवशोभार्गवं वाक्यमब्रवीत्

जलन्धर उवाच ।

मया देवा हतायुद्धे उत्तिष्ठन्ति कथं पुनः । तत्र संजीवनीविद्या नैवान्यत्रेति विश्रुतम् ॥

भृगुरुवाच ।

दिव्यौषधीःसमानीय द्रोणाद्रेरङ्गिराःसुरान् । जीवयत्येष वै शीघ्रं द्रोणाद्रिं समपाहर

नारद उवाच ।

इत्युक्तःस तु दैत्येन्द्रो नीत्वाद्रोणाचलं तदा । प्राक्षिपत्सागरे तूर्णं पुनरागान्महाहवम्
अथ देवान्हतान्दृष्ट्वा द्रोणाद्रिमगमद्गुरुः । तावत्तत्र गिरीन्द्रं तं न ददर्श सुरार्चितः ॥
ज्ञात्वा दैत्यहृतं द्रोणं विषण्णो भयविह्वलः । अगत्य दूराद्व्याजह्रे श्वासाकुलितविग्रहः
पलायध्वं पलायध्वं नायं जेतुं हि शक्यते । रुद्रांशसंभवो ह्येष स्मरध्वं शक्रचेष्टितम् ॥

नारद उवाच ।

श्रुत्वा तद्वचनं देवा भयविह्वलितास्तदा । दैत्यैस्तैर्वध्यमानास्तेऽपलायन्त दिशोदश ॥

देवान्विदारितान्दृष्ट्वा दैत्यःसागरनन्दनः । शङ्खभेरीजयरवैःप्रविवेशामरावतीम् ॥३१॥
प्रविष्टे नगरं दैत्ये देवाःशक्रपुरोगमाः । सुवर्णाद्रिगुहां प्राप्य न्यवसन्दैत्यतापिताः ॥
ततश्च सर्वेष्वसुरोऽधिकारेष्विन्द्रादिकानां विनिवेशयंस्तदा ।
शुम्भादिकान्दैत्यवरान्पृथक्पृथक्स्वयं सुवर्णाद्रिगुहामगात्पुनः ॥ ३३ ॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्त्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादेऽमरावतीविजयो नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥

अष्टनवतितमोऽध्यायः

जालन्धरदैत्यभयत्रस्तदेवकृत संकष्टनाशनविष्णुस्तोत्रम् ।

नारद उवाच ।

पुनर्दैत्यं समायान्तं दृष्ट्वा देवाःसवासवाः । भयप्रकम्पिताःसर्वे विष्णुं स्तोतुं प्रचक्रमुः

देवा ऊचुः ।

नमो मत्स्यकूर्मादिनानास्वरूपैः सदा भक्तकार्योद्यतायार्तिहन्त्रे ।
विधात्रादि सर्गस्थितिध्वंसकर्त्रे गदाशङ्खपद्मारिहस्ताय तेऽस्तु ॥ २ ॥
रमावल्लभायासुराणां निहन्त्रे भुजङ्गारियानाय पीताम्बराय ।
मखादिक्रियापाककर्त्रे विकर्त्रे शरण्याय तस्मै नताः स्मो नताःस्मः ॥ ३ ॥
नमो दैत्यसंतापितामर्त्यदुःखाचलध्वंसदम्भोलये विष्णवे ते ।
भुजङ्गेशतल्पेशयायार्कचन्द्रद्विनेत्राय तस्मै नताः स्मो नताःस्म ॥ ४ ॥

नारद उवाच ।

सङ्कष्टनाशनं स्तोत्रं नित्यं यस्तु पठेन्नरः । स कदाचिन्न सङ्कष्टैःपीड्यते कृपया हरेः ॥
इति देवाः स्तुतिं यावत्कुर्वन्ति दनुजद्विषः । तावत्सुराणामापत्तिर्विज्ञाता विष्णुनातदा
सहसोत्थाय दैत्यारिः कृपया खिन्नमानसः । आरुह्य गरुडं वेगाल्लक्ष्मीं वचनमब्रवीत्

विष्णुरुवाच ।

जलन्धरेण ते भ्रात्रा देवानां कदनं कृतम् । तैराहूतो गमिष्यामि युद्धायाद्यत्वरान्वितः

लक्ष्मीरुवाच ।

अहं ते वल्लभा नाथ भक्ता च यदि सर्वदा । तत्कथं ते ममभ्राता युद्धे वध्यः कृपानिधे

श्रीभगवानुवाच ।

रुद्रांशसंभवत्वाच्च ब्रह्मणोवचनादपि । प्रीत्या च तव नैवायं मम वध्यो जलन्धरः ॥

नारद उवाच ।

इत्युक्त्वा गरुडारूढःशङ्खचक्रगदासिभृत् । विष्णुर्वेगाद्ययौ योद्धुं यत्रदेवाःस्तुवन्तिते

अथारुणानुजात्युग्रपक्षवातप्रपीडिताः । वात्याविवर्तिता दैत्या बभ्रमुःखे यथाघनाः ॥

ततो जलन्धरो दृष्ट्वा दैत्यान्वात्याप्रपीडितान् ।

नोवाच वचनं क्रोधात्ततो विष्णुं समभ्ययात् ॥१३॥

ततःसमभवद्युद्धं विष्णुदैत्येन्द्रयोर्महत् । आकाशं कुर्वतोर्बाणैरन्ते निरवकाशवत् ॥१४

विष्णुर्दैत्यस्य बाणौघैर्ध्वजं छत्रं धनुर्हयान् । चिच्छेद तं च हृदये बाणेनैकेनताडयत्

ततो दैत्यःसमुत्पत्य गदापाणिस्त्वरान्वितः ।

आहत्य गरुडं मूर्ध्नि पातयामास भूतले ॥१६॥

विष्णुर्गदां च खड्गेन चिच्छेद प्रहसन्निव । तावत्स हृदये विष्णुं जघान दृढमुष्टिना ॥

ततस्तौ बाहुयुद्धेन युयुधाते महाबलौ । बाहुभिर्मुष्टिभिश्चैव जानुभिर्नादयन्महीम् ॥

एवं सुरुचिरं युद्धं कृत्वा विष्णुःप्रतापवान् । उवाच दैत्यराजं तं मेघगम्भीरया गिरा

विष्णुरुवाच ।

वरं वरय दैत्येन्द्र प्रीतोऽस्मि तव विक्रमात् । अदेयमपि ते दास्ये यत्ते मनसि वर्तते

जलन्धर उवाच ।

यदि भावुक तुष्टोऽसि वरमेतं ददस्व मे । मद्भगिन्या सह तया मद्गृहे सगणो वस ॥

नारद उवाच ।

तथेत्युक्त्वा स भगवान्सर्वदेवगणैः सह । जलन्धरं नामपुरमगमद्रमया सह ॥ २२ ॥

जलन्धरश्च देवानामधिकारेषु दानवान् । स्थापयित्वा सहर्षः सन्पुनरागान्महीतले ॥
देवगन्धर्वसिद्धेषु यत्किंचिद्रत्नसंज्ञितम् । तदात्मवशगं कृत्वा तिष्ठत्सागरनन्दनः ॥
पातालभवने दैत्यं निशुम्भं च महाबलम् । स्थापयित्वा स शेषादीननयद्भूतलं बली ॥
देवगन्धर्वसिद्धौघान्यक्षराक्षसमानुषान् ।
स्वपुरे नागरान्कृत्वा शशास भुवनत्रयम् ॥ २६ ॥
एवं जलन्धरः कृत्वा देवाश्च वशवर्त्तिनः । धर्मेण पालयामास प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥
न कश्चिद्व्याधितो नैव दुःखितो न कृशस्तथा ।
न दीनो दृश्यते तस्मिन्धर्माद्राज्यं प्रशासति ॥२८॥
एवं महीं शासति दानवेन्द्रे धर्मेण सम्यक्च यदृच्छयाऽहम् ।
कदाचिदागामथ तस्य लक्ष्मीं विलोकितुं श्रीरमणं च सेवितुम् ॥२९॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्त्तिक-माहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे जलन्धरप्रवेशो नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥९८॥

नवनवतितमोऽध्यायः

जालन्धरेणनारदमुखात्पार्वत्याःसौन्दर्यातिशयं निशम्यशिवम्प्रति दूतप्रेषणम् ।

नारद उवाच

स मां संपूज्य विधिवद्दानवेन्द्रोऽतिभक्तितः । संप्रहस्य तदा वाक्यं जगादनृपसत्तम

जलन्धर उवाच

कुतस्त्वागम्यते ब्रह्मन्किं च दृष्टं त्वया क्वचित् । यदर्थमिह चायातस्तदाज्ञापय मां मुने

नारद उवाच ।

गतः कैलासशिखरं दैत्येन्द्राहं यदृच्छया । तत्रोमयासहासीनं दृष्टवानस्मि शङ्करम् ॥३॥
योजनायुतविस्तीर्णे कल्पद्रुममहावने । कामधेनुशताकीर्णे चिन्तामणिसुदीपिते ॥४॥

तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यं वितर्कोमेऽभवत्तदा । कापीदृशीभवेद्वृद्धिस्त्रिलोक्यां वा नवेतिच

यावत्तवापि दैत्येन्द्र ! समृद्धिःसम्भृता मया ।
तद्विलोकन कामोऽहं त्वत्साम्निध्यमिहागतः ॥ ६ ॥
त्वत्समृद्धिमिमां पश्यन्स्त्रीरत्नरहिता ध्रुवम् ।
तर्कयामि शिवादन्यस्त्रिलोक्यां न समृद्धिमान् ॥ ७ ॥
अप्सरो नागकान्याश्च यद्यपि त्वद्वशे स्थिताः ।
तथाऽपि ता न पार्वत्या रूपेण सदृशा ध्रुवम् ॥ ८ ॥

यस्या लावण्य जलधौ निमग्नश्चतुराननः । स्वधैर्यममुचत्पूर्वं तया कान्योपमीयते ॥
वीतरागोऽपि हि यया मदनारिःस्वलीलया ॥ विश्वतन्त्रोऽपितपसा सचात्मवशगःकृतः
सौन्दर्यगहने भ्राम्यञ्छबरीरूपया पुरा । निष्कामःकामयुक्तोऽपि स्ववशोऽपि वशःकृतः

यस्याःपुनःपुनःपश्यन्रूपधाता विसर्जने ।
ससर्जाप्सरसस्तास्तास्तत्समैकाऽपि नाभवत् ॥ १२ ॥

अतःस्त्रीरत्न संभोक्तुःसमृद्धिस्तस्य सा वरा । तथा न तव दैत्येन्द्र सर्वरत्नाधिपस्य च
एवमुक्त्वा तमामन्त्र्य गते मयि स दैत्यराट् । तद्रूपश्रवणादासीदनङ्गज्वरपीडितः ॥१४
अथ संप्रेषयामास दूतं च सिंहिकासुतम् । त्र्यम्बकाय तदाकिंचिद्विष्णुमायाविमोहितः
कैलासमगमद्राहुःसर्वशुक्लेन्दुवर्चसम् । कात्स्न्र्येन कृष्णपक्षेन्दुवर्चसं स्वाङ्गजेन तु ॥
निवेदितस्तदादेशान्नन्दिना च प्रवेशितः । त्र्यम्बकभ्रूलतासंज्ञाप्रेरितो वाक्यमब्रवीत् ॥

राहुरुवाच ।

देवपन्नगसेव्यस्य त्रैलोक्याधिपतेःप्रभोः । सर्वरत्नेश्वरस्य त्वमाज्ञां शृणु वृषध्वज ! ॥
श्मशानवासिनो नित्यं मुण्डमालाधरस्य च । दिगम्बरस्य ते भार्या कथं हैमवतीशुभा

अहं रत्नाधिनाथोऽस्मि सा च स्त्रीरत्नसंज्ञिका ।
तस्मान्ममैव सा योग्या नैव भिक्षाशिनस्तव ॥ २० ॥

नारद उवाच ।

वदत्येवं तदा राहौ भ्रूमध्याच्छूलपाणिनः । अभवत्पुरुषो रौद्रस्तीव्राशनिसमस्वनः ॥

सिंहास्यःप्रचलज्जिह्वःसज्वलन्नयनो महान् । ऊर्ध्वकेशःशुष्कतनुर्नृ सिंह इव चापरः ॥२२
स तं खादितुमारेभे दृष्ट्वाराहुर्भयातुरः । अथावदत्ति वेगेन बहिःस च दधार तम् ॥२३
स च राहुर्महाबाहुर्मेघगम्भीरयागिरा । उवाच देवदेवेशं पाहि मां शरणागतम् ॥२४॥
ब्राह्मणं मां महादेव खादितुं समुपागतः । एतस्माद्रक्ष देवेश शरणागतवत्सल ॥ २५॥
रक्षरक्ष महादेव त्वामहं शरणंगतः । महादेवो वचःश्रुत्वा ब्राह्मणस्य तदाऽब्रवीत् ॥२६
नैवासौ वध्यतामेति दूतोऽयं परवान्यतः । मुञ्चेति पुरुषः श्रुत्वा राहुं तत्याजसोऽम्बरे

राहुं त्यक्त्वा स पुरुषो महादेवं व्यजिज्ञपत् ॥ २७ ॥

पुरुष उवाच ।

क्षुधा मां बाधते स्वामिन्क्षुत्क्षामश्चास्मि सर्वथा ।
किं भक्ष्यं मम देवेश ! तदाज्ञापय मां प्रभो ॥ २८ ॥

ईश्वर उवाच ।

संभक्षयात्मनःशीघ्रं मांसं त्वं हस्तपादयोः ॥ २९ ॥

नारद उवाच ।

स शिवेनैवमाज्ञप्तश्चखाद पुरुषःस्वयम् । हस्तपादोद्भवं मांसं शिरःशेषो यदाऽभवत् ॥
दृष्ट्वा शिरोऽवशेषं तु सुप्रसन्नःसदाशिवः । पुरुषं भीमकर्माणं तमुवाच सविस्मयः

ईश्वर उवाच ।

त्वं कीर्तिमुखसंज्ञो हि भव मद्द्वारगःसदा । त्वदर्चां ये न कुर्वन्ति नैव ते मत्प्रियङ्कराः

नारद उवाच ।

तदा प्रभृति देवस्य द्वारे कीर्तिमुखःस्थितः । नार्चयन्तीह ये पूर्वं तेषामर्चा वृथा भवेत्
राहुर्विमुक्तो यस्तेन सोऽपतद्बर्बरस्थले । अतःस बर्बरोद्भूत इति भूमौ प्रथांगतः ॥३४

ततश्च राहुःपुनरेव जातमात्मानमस्मिन्निति मन्यमानः ।
समेत्य सर्वं कथयाम्बभूव जलन्धरायेशविचेष्टितं तत् ॥ ३५ ॥

इतिश्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्त्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे दूतसंवादो नामैकोनशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

———

शततमोऽध्यायः

शङ्करेण सर्वदेवतेजोभिः सुदर्शनचक्रनिर्माणम् ।

नारद उवाच ।

जलंधरस्तु तच्छ्रुत्वा कोपाकुलितविग्रहः । निर्जगामाशु दैत्यानां कोटिभिःपरिवारितः
गतस्तस्याग्रतःशुक्रो राहुर्दृष्टिस्थितोऽभवत् । मुकुटश्चापतद्भूमौ वेगात्प्रस्खलितस्तदा
दैत्यसैन्यावृतैस्तत्र विमानानांशतैस्तदा । व्यराजतनभःपूर्णं प्रावृषीव बलाहकैः ॥३॥
तस्योद्योगं तदा दृष्ट्वा देवाःशक्रपुरोगमाः । अलक्षितत्वराजग्मुःशूलिनं ते व्यजिज्ञपन्

देवा ऊचुः ।

न जानासि कथं स्वामिन्देवा विज्ञापयन्ति भोः ।
तदस्मद्रक्षणार्थाय जहि सागरनन्दनम् ॥ ५ ॥

नारद उवाच ।

इति देववचःश्रुत्वा प्रहस्य वृषभध्वजः । महाविष्णुं समाहूय वचनं चेदमब्रवीत् ॥६॥

ईश्वर उवाच ।

जलन्धरःकथं विष्णो न हतःसङ्गरे त्वया । तद्भयाच्चापयातोऽसि त्यक्त्वावैकुण्ठमात्मनः

श्रीभगवानुवाच ।

तवांशसंभवत्वाच्च भ्रातृत्वाच्च तथा श्रियः ।
न मया निहतः सङ्ख्ये त्वमेनं जहि दानवम् ॥ ८ ॥

ईश्वर उवाच ।

नायमेभिर्महातेजाःशस्त्रास्त्रैर्वध्यते मया । देवैःसर्वैःस्वतेजोंऽशःशस्त्रार्थे दीयतां मम ॥

नारद उवाच ।

अथ विष्णुमुखादेवाःस्वतेजांसि ददुस्तदा । तान्येकत्वं गतानीशो दृष्ट्वा तेजोमहत्तदा
तेनाकरोन्महादेवो महस्राशस्त्रमुत्तमम् । चक्रं सुदर्शनं नाम ज्वालामालातिभीषणम् ॥

तेजःशेषेण च तदा वज्रं च कृतवान्हरः । तावज्जलन्धरो दृष्टःकैलासतलभूमिषु ॥ १२ ॥
हस्त्यश्वरथपत्तीनां कोटीभिःपरिवारितः । तं दृष्ट्वा हर्षिताःसर्वे देवाजग्मुर्यथागतम्
गणाश्च समनह्यन्त युद्धायातित्वरान्विताः ।
नन्दीभवक्त्रसेनानीमुखाः सर्वे शिवाज्ञया ॥ १४ ॥
अवतेरुर्गणाःसर्वे कैलासाद्युद्धदुर्मदाः । ततःसमभवद्युद्धं कैलासोपत्यका भुवि ॥१५॥
प्रथमाधिपदैत्यानां घोरं शस्त्रास्त्रसङ्कुलम् । भेरीमृदङ्गशङ्खौघनिःस्वनैर्वीरहर्षणैः ॥१६॥
गजाश्वरथशब्दैश्च नादिता भूर्व्यकम्पत । शक्तितोमरबाणौघैर्मुशलप्रासपट्टिशैः ॥ १७ ॥
व्यराजत नभःपूर्णमुल्काभिरिव संवृतम् । निहतैरथनागाश्वैःसर्वाभूमिर्व्यराजत ॥१८
वज्राहताचलशिरःशकलैरिव संवृता । प्रमथाहतदैत्यौघैर्दैत्याहतगणैस्तथा ॥ १९ ॥
वसासृङ्मांसपङ्काद्यैर्भूरगम्याभवत्तदा । प्रमथाहतदैत्यौघान्भार्गवःसमजीवयत् ॥२०॥
युद्धे पुनःपुनश्चैव मृतसंजीवनीबलात् ।
तं दृष्ट्वा व्याकुली भूत्वा गणाःसर्वे भयार्दिताः ॥ २१ ॥
शशंसुर्देवदेवेशं तत्सर्वं शुक्रचेष्टितम् । अथ रुद्रमुखात्कृत्या बभूवाऽतीव भीषणा ॥२२
तालजङ्घा दरीवक्त्रास्तनापीडितभूरुहा । सा युद्धभूमिमासाद्य भक्षयन्ती महासुरान्
भार्गवं स्वभगे कृत्वा जगामान्तर्हिता नभः ।
विधूतं भार्गवं दृष्ट्वा दैत्यसैन्यं गणास्तदा ॥ २४ ॥
अम्लानवदना दर्पान्निजघ्नुर्युद्धदुर्मदाः । अथाभज्यत दैत्यानां सेना गणभयार्दिता ॥
वायुवेगहता यद्वत्प्रकीर्णा तृणसंहतिः । भग्नां गणभयात्सेनां दृष्ट्वा हर्षं गणा ययुः ॥
निशुम्भशुम्भसेनान्यौ कालनेमिश्च वीर्यवान् । त्रयस्ते वारयामासुर्गणसेनां महाबलाः
मुञ्चन्तःशरवर्षाणि प्रावृषीव बलाहकाः । ततो दैत्यशरौघास्ते शलभानामिव व्रजाः ॥
रुरुधुःखं दिशःसर्वा गणसेनामकम्पयन् । गणाःशरशतैर्भिन्ना रुधिराऽऽसारवर्षिणः ॥
वसन्ते किंशुकाभासा न प्राज्ञायत किंचन ।
पतिताः पात्यमानाश्चःछिन्ना भिन्नास्तदा गणाः ॥ ३० ॥
त्यक्त्वा सङ्ग्रामभूमिं ते सर्वेऽपि विमुखा भवन् ॥ ३१ ॥

ततःप्रभग्नं स्वबलं विलोक्य गजास्यनन्दीश्वरकार्तिकेयाः ।
चिरान्विता दैत्यवरान्प्रसह्य निवारयामासुरमर्षणास्ते ॥ ३२ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिक-माहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे दैत्यसेनावधो नाम शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

एकाधिकशततमोऽध्यायः

नन्द्यादीनां कालनेम्यादिभिः सह द्वन्द्वयुद्धवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

ते गणाधिपतीन्दृष्ट्वा नन्दीभमुखषण्मुखान् । अमर्षादभ्यधावन्त द्वन्द्वयुद्धाय दानवाः
नन्दिनं कालनेमिश्च शुम्भो लम्बोदरं तथा । निशुम्भःषण्मुखं वेगादभ्यधावत दंशितः
निशुम्भःकार्त्तिकेयस्य मयूरं पञ्चभिःशरैः । हृदि विव्याध वेगेन मूर्च्छितःस पपात च
ततःशक्तिधरःशक्तिं यावज्जग्राह रोषितः । तावन्निशुम्भो वेगेन स्वशक्त्या तमपातयत् ॥

ततो नन्दीश्वरो वाणैः कालनेमिमविध्यत ।
सप्तभिश्च हयान्केतुं त्रिभिःसारथिमच्छिनत् ॥ ५ ॥

कालनेमिस्तु संक्रुद्धो धनुश्चिच्छेद नन्दिनः । तदपास्य स शूलेन तं वक्षस्यहनद्दृढम्
स शूलभिन्नहृदयो हताश्वो हतसारथिः । अद्रेःशिखरमामुच्य शैलादिं सोऽप्यपातयत्
अथ शुम्भो गणेशश्च रथमूषकवाहनौ । युध्यमानौ शरव्रातैःपरस्परमविध्यताम् ॥ ८ ॥

अथ शुम्भं गणाध्यक्षो हृदि विव्याध पत्रिणा ।
सारथिं पञ्चभिर्वाणैःपातयामास भूतले ॥ ९ ॥
ततःशुम्भोऽतिक्रुद्धोऽपि बाणषष्ट्या गणाधिपम् ।
मूषकं च त्रिभिर्विद्ध्वा ननाद जलदस्वनः ॥ १० ॥

मूषकःशरभिन्नाङ्गश्चचाल कृतवेदनः । लम्बोदरःसमुत्तीर्य पदातिरभवन्नृप ॥ ११ ॥

ततो लम्बोदरःशुम्भं हत्वा परशुना हृदि। अपातयत्तदा भूमौ मूषकं चारुहत्पुनः ॥१२
कालनेमिर्निशुम्भश्च उभौ लम्बोदरं शरैः। युगपज्जघ्नतुःकोपात्तोत्त्रेणेव महाद्विपम् ॥
तं पीड्यमानमालोक्य वीरभद्रो महाबलः। अभ्यधावत वेगेन भूतकोटियुतस्तदा ॥

कुष्माण्डा भैरवाश्चापि वेताला योगिनीगणाः।
पिशाचा योगिनीसङ्घा गणाश्चापि तमन्वयुः ॥ १५ ॥

ततःकिलकिलाशब्दैःसिंहनादैःसघुर्घुरैः। विनादिता डमरुकैः पृथिवी समकम्पत ॥१६
ततो भूतान्यधावन्त भक्षयन्तिस्म दानवान्। उत्पतन्ति पतन्तिस्म ननृतुश्च रणाङ्गणे
नन्दी च कार्तिकेयश्च समायातौ त्वरान्वितौ। निजघ्नतू रणे दैत्यान्निरन्तरशरव्रजैः ॥

छिन्नभिन्नाहतैर्दैत्यैःपातितैर्भर्त्सितैस्तथा।
व्याकुला साऽभवत्सेना विषण्णवदनातदा ॥ १६ ॥

प्रविध्वस्तां ततःसेना दृष्ट्वा सागरनन्दनः। रथेनातिपताकेन गणानभिययौ बली ॥
हस्त्यश्वरथसंह्रादःशङ्खभेरीरवस्तदा। अभवत्सिंहनादश्च सेनयोरुभयोस्तदा ॥ २१ ॥
जलन्धरशरव्रातैर्नीहारपटलैरिव। द्यावापृथिव्योराच्छन्नमन्तरं समपद्यत ॥ २२ ॥
गणेशं पञ्चभिर्विद्ध्वा शैलाद्रिमपि पञ्चभिः। वीरभद्रं च विंशत्या ननाद जलदस्वनः

कर्तिकेयस्ततो दैत्यं शक्त्या विव्याध सत्वरः।
व्याघूर्णः शक्तिनिर्भिन्नःकिंचिद्व्याकुलमानसः ॥ २४ ॥

ततःक्रोधपरीताक्षःकार्तिकेयं जलन्धरः। गदया ताडयामास स च भूमितलेऽपतत् ॥२५
तथैव नन्दिनं वेगादपातयत भूतले। ततो गणेश्वरःक्रुद्धो गदां परशुनाच्छिनत् ॥ २६ ॥
वीरभद्रस्त्रिभिर्बाणैर्हृदि विव्याध दानवम्। सप्तभिश्च हयान्केतून्धनुश्छत्रं च चिच्छिदे

ततोऽतिक्रुद्धो दैत्येन्द्रः शक्तिमुद्यम्य दारुणाम्।
गणेशं पातयामास रथमन्यं समारुहत् ॥ २८ ॥

अभ्ययादथ वेगेन वीरभद्रं रुषान्वितः। ततस्तौ सूर्यसङ्काशौ युयुधाते परस्परम् ॥२६
वीरभद्रस्तस्य हयांस्तथा बाणैरपातयत्। धनुश्चिच्छेद दैत्येन्द्रो युयुधे परिघायुधः ॥

स वीरभद्रं त्वरयाऽभिगम्य जघान दैत्यःपरिघेण मूर्ध्नि।

स चापि दैत्यः प्रविभिन्नमूर्द्धा पपात भूमौ रुधिरं समुद्गिरन् ॥ ३१ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिक-
माहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे दैत्यसेनापराभावो
नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

शिवेनदैत्यपराभवकरणम् ।

नारद उवाच ।

पतितं वीरभद्रं तु दृष्ट्वा रुद्रगणा भयात् ।
आगतास्ते रणं हित्वा क्रोशमाना महेश्वरम् ॥ १ ॥

अथ कोलाहलं श्रुत्वा,गणानां चन्द्रशेखरः । अभ्ययाद्वृषभारूढःसङ्ग्रामं प्रहसन्निव
रुद्रमायान्तमालोक्य सिंहनादैर्गणाःपुनः । निवृत्ताःसङ्गरे दैत्यान्निजघ्नुःशरवृष्टिभिः ॥

दैत्याश्च भीषणं रुद्रं दृष्ट्वा सर्वे विदुद्रुवुः ।
कार्त्तिकव्रतिनं दृष्ट्वा पातकानीव तद्भयात् ॥ ४ ॥

अथ जालन्धरो दैत्यान्विद्रुतान्प्रेक्ष्य सङ्गरे । रोषदधावच्चण्डीशं मुञ्चन्बाणान्सहस्रशः॥
शुम्भो निशुम्भोऽश्वमुखःकालनेमिर्वलाहकः । खड्गरोमा प्रचण्डश्च घस्मरश्च शिवं ययुः

बाणान्धकारसंछन्नं दृष्ट्वा गणबलं शिवः ।
तद्बाणजालं विच्छिद्य स्वबाणैरावृणोन्नभः ॥ ७ ॥

दैत्यांश्च बाणवात्याभिःपीडितानकरोत्तदा । प्रचण्डजालबाणौघैरपातयत भूतले ॥

खड्गरोम्णःशिरःकोपात्तथा परशुनाऽच्छिनत् ।
बलाहकस्य च शिरः खट्वाङ्गेनाकरोद् द्विधा ॥ ९ ॥

बद्ध्वा च घस्मरं दैत्यं पाशेनाभ्याहनद्भुवि । वृषभेण हताःकेचित्केचिद्बाणैर्निराकृताः

न शेकुरसुराः स्थातुं गजाः सिंहार्दिता यथा । ततः कोप परीतात्मा वेगाद्रुद्रं जलन्धरः ॥
आह्वयामास समरे तीव्राशनिसमस्वनः ॥ १२ ॥

जलन्धर उवाच ।

युध्यस्वाद्य मया सार्धं किमेभिर्निहतैस्तव । यच्च किंचिद्बलं तेऽस्ति तद्दर्शय जटाधरः

नारद उवाच ।

इत्युक्त्वा बाणसप्तत्या जघान वृषभध्वजम् । तानप्राप्तांश्छितैर्बाणैश्चिच्छेद प्रहसन्निव
ततो हयान्ध्वजं छत्रं धनुश्चिच्छेद सप्तभिः ।
सच्छिन्नधन्वा विरथो गदामादाय वीर्यवान् ॥ १५ ॥
अभ्यधावच्छिवस्तावद्गदाऽबाणैर्द्विधाकरोत् । तथापिमुष्टिमुद्यम्य ययौ रुद्रजिघांसया
तावच्छिवेन बाणौघैःक्रोशमात्रमपाकृतः । ततो जलन्धरो दैत्यो मत्वा रुद्रं बलाधिकम्
ससर्जमायां गान्धर्वीमद्भुतां रुद्रमोहिनीम् । ततो जगुश्च ननृतुर्गन्धर्वाप्सरसांगणाः ॥
तालवेणुमृदङ्गांश्च वादयन्तःपरस्परम् । तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं रुद्रो नादविमोहितः ॥
पतितान्यपि शस्त्राणिकरेभ्यो न विवेद सः । एकाग्रभूतमालोक्य रुद्रं दैत्यो जलन्धरः
कामार्त्तः सञ्जगामाशु यत्र गौरीस्थिताऽभवत् ।
युद्धे शुम्भनिशुम्भाख्यौ स्थापयित्वा महाबलौ ॥ २१ ॥
दशदोर्दण्डपञ्चास्यस्त्रिनेत्रश्च जटाधरः । महावृषभमारूढः स बभूव जलन्धरः ॥२२॥
अथ रुद्रं समायान्तमालोक्य भववल्लभा । अभ्यायययौ सखीमध्यात्तद्दर्शनपथेऽभवत् ॥
यावद्ददर्श चार्वङ्गीं पार्वतीं दनुजेश्वरः । तावत्स वीर्यं मुमुचे जडाङ्गश्चाभवत्तदा ॥२४॥
अथ ज्ञात्वा तदा गौरी दानवं भयविह्वला ।
जगामान्तर्हिता तावत्सा तदोत्तरमानसम् ॥ २५ ॥
तामदृष्ट्वा तदा दैत्यःक्षणाद्विद्युल्लतामिव । जवेनायात्पुनर्युद्धं यत्र देवो वृषध्वजः ॥
पार्वत्यपि महाविष्णुं सस्मार मनसा तदा । तावद्ददर्श तं देवी सोपविष्टं समीपगम् ॥

पार्वत्युवाच ।

विष्णो जलन्धरो दैत्यः कृतवान्परमाद्भुतम् ।

तत्किं न विदितं तेऽस्ति चेष्टितं तस्य दुर्मतेः ॥ २८ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

तेनैव दर्शितः पन्था वयमप्यन्वयामहे । नान्यथा स भवेद्वध्यः पातिव्रत्यात्सुरक्षितः ॥

नारद उवाच ।

जगाम विष्णुरित्युक्त्वा पुनर्जालन्धरंपुरम् । अथ रुद्रश्च गान्धर्वाद्विमुक्तः सङ्गरेस्थितः

अन्तर्धानगतां मायां दृष्ट्वा तु बुबुधे तदा ॥ ३१ ॥

ततःशिवो विस्मितमानसः पुनर्जगाम युद्धाय जलन्धरं रुषा ।

स चापि दैत्यःपुनरागतं शिवं दृष्ट्वा शरौघैःसमवाकिरद्रणे ॥ ३२ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्त्तिक-माहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे दैत्यकपटवर्णनं नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

वृन्दया दुःस्वप्नं दृष्ट्वोद्विग्नया वनान्तरे भ्रमणम् ।

नारद उवाच ।

विष्णुर्जालन्धरं गत्वा तद्दैत्यपुटभेदनम् । पातिव्रत्यस्य भङ्गाय वृन्दयाश्चाकरोन्मतिम्

अथ वृन्दारका देवी स्वप्नमध्ये ददर्शह । भर्त्तारं महिषारूढं तैलाभ्यक्तं दिगम्बरम् ॥२

कृष्णप्रसूनभूषाढ्यं क्रव्यादगणसेवितम् । दक्षिणाशांगतं मुण्डं तमसा व्यावृतं तदा ॥

स्वपुरं सागरे मग्नं सहसैवात्मना सह । ततःप्रबुद्धा सा बाला स्वस्वप्नं प्रविचिन्वती

ददर्शोदितमादित्यं सच्छिद्रं निश्चलं मुहुः ।

तदनिष्टमिति ज्ञात्वा रुदती भयविह्वला ॥ ५ ॥

कुत्रचिन्नालभच्छर्म गोपुराट्टालभूमिषु ।

ततःसखीद्वययुता नगरोद्यानमागमत् ॥ ६ ॥
तत्रापि सा गता बाला नालभत्कुत्रचित्सुखम् । वनाद्वनान्तरं याता नैव वेदात्मनस्तदा
ततो भ्रमन्ती सा बाला ददर्शातीविभीषणौ । राक्षसौ सिंहवदनौ दंष्ट्रानयनभीषणौ ॥
तौ दृष्ट्वा विह्वलातीव पलायनपरा तदा ।
ददर्श तापसं शान्तं सशिष्यं मौनमास्थितम् ॥ ९ ॥
ततस्तत्कण्ठ आसज्य निजां बाहुलतां भयात् । मुने मां रक्ष शरणमागतामित्यभाषत
मुनिस्तां विह्वलां दृष्ट्वा राक्षसानुगतां तदा ।
हुङ्कारेणैव तौ घोरौ चकार विमुखौ रुषा ॥ ११ ॥
तद्धुङ्कारभयत्रस्तौ दृष्ट्वा तौ गगनं गतौ । प्रणम्य दण्डवद्भूमौ वृन्दावचनमब्रवीत्

वृन्दोवाच ।

रक्षिताहं त्वया घोराद्भयात्तस्मात्कृपानिधे । किंचिद्विज्ञप्तुमिच्छामि कृपयातन्निशामय
जलन्धरो हि मे भर्त्ता रुद्रं योद्धुं गतः प्रभो ! ।
स तत्रास्ति कथं युद्धे तन्मे कथय सुव्रत ॥ १४ ॥

नारद उवाच ।

मुनिस्तद्वाक्यमाकर्ण्य कृपयोर्ध्वमवैक्षत । तावत्कपीशावायातौ तं प्रणम्याग्रतःस्थितौ
ततस्तद्भ्रूलतासंज्ञानियुक्तौ गगनं गतौ ।
गत्वा क्षणार्धादागत्य वानरावग्रतःस्थितौ ॥ १६ ॥
शिरःकबन्धहस्तौ तौ दृष्ट्वाब्धितनयस्य सा । पपात मूर्छिता भूमौ भर्तृव्यसनदुःखिता
कमण्डलुजलैः सिक्ता मुनिनाऽऽश्वासिता तदा ।
स्वभर्तृभाले सा भालं कृत्वा खिन्ना रुरोद ह ॥ १८ ॥

वृन्दोवाच ।

यःपुरा सुखसंवादैर्विनोदयसि मां विभो । स कथं न वदस्यद्य वल्लभां मामनागसम् ॥
येन देवाः सगन्धर्वा निर्जिता हरिणा सह ।
स कथं तापसेन त्वं त्रैलोक्यविजयी हतः ॥ २० ॥

नारद उवाच ।

रुदित्वेति तदा वृन्दा तं मुनिं वाक्यमब्रवीत् ॥ २१ ॥

वृन्दोवाच ।

कृपानिधे मुनिश्रेष्ठ जीवनं मेऽस्य सुप्रियम् ।•त्वमेवास्य पुनःशक्तो जीवनाय मतो मम

अथ तद्वाक्यमाकर्ण्य प्रहस्य मुनिरब्रवीत् ॥ २३ ॥

मुनिरुवाच ।

नायं जीवयितुं शक्यो रुद्रेण निहतो युधि । तथापि त्वत्कृपाविष्ट एनं संजीवयाम्यहम्

नारद उवाच ।

इत्युक्त्वान्तर्दधे यावत्तावत्सागरनन्दनः । वृन्दामालिङ्ग्य तद्वक्त्रं चुचुम्बे प्रीतिमानसः

अथ वृन्दापि भर्त्तारं दृष्ट्वा हर्षितमानसा । रेमे तद्वनमध्यस्था तद्युक्ता बहुवासरम् ॥

कदाचित्सुरतस्यान्ते दृष्ट्वा विष्णुं तमेव हि ।

निर्भर्त्स्य क्रोधसंयुक्ता वृन्दा वचनमब्रवीत् ॥ २७ ॥

वृन्दोवाच ।

धिक्तवेदं हरेशीलं परदाराभिगामिनः । ज्ञातोऽसि त्वं मया सम्यङ् मायाप्रत्यक्षतापसः

यौ त्वया मायया द्वाःस्थौ स्वकीयौ दर्शितौ मम ।

तावेव राक्षसौ भूत्वा भार्यां तव हरिष्यतः ॥ २९ ॥

त्वं चापि भार्यादुःखार्तो वने कपिसहायवान् । भ्रम सर्पेश्वरेणायं यस्ते शिष्यत्वमागतः

इत्युक्त्वा सा तदा वृन्दा प्राविशद्धव्यवाहनम् ।

विष्णुना वार्यमाणापि तस्मिन्नासक्तमानसा ॥ ३१ ॥

ततो हरिस्तामनुसंस्मरन्मुहुर्वृन्दाचिताभस्मरजोऽवगुण्ठितः ।

तत्रैव तस्थौ मुनिसिद्धसङ्घैःप्रबोध्यमानोऽपि ययौ न शान्तिम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशतसाहस्र्यांसंहितायां षष्ठेउत्तरखण्डे कार्त्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे वृन्दाचिताग्निप्रवेशो नाम त्र्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १०३ ॥

———

चतुरधिकशततमोऽध्यायः

शङ्करेण युद्धे जालन्धरस्य वधकरणम् ।

नारद उवाच ।

ततो जलन्धरो दृष्ट्वा रुद्रमद्भुतविक्रमम् । चकार मायया गौरीं त्र्यम्बकं मोहयंस्तदा
रथोपरिगतां दृष्ट्वा रुदतीं च तदा शिवः । शुम्भनिशुम्भदैत्यैश्च वध्यमानां ददर्श सः
गौरीं तथाविधां दृष्ट्वा शिवोऽप्युद्विग्नमानसः ।
अवाङ्मुखःस्थितस्तूष्णीं विस्मृत्य स्वपराक्रमम् ॥ ३ ॥
ततो जलन्धरो वेगात्त्रिभिर्विव्याध सायकैः । आपुङ्खमग्नैस्तं रुद्रं शिरस्युरसि चोदरे
ततो जज्ञे स तां मायां विष्णुना संप्रबोधितः ।
रौद्ररूपधरो जातो ज्वालामालातिभीषणः ॥ ५ ॥
तस्यातीव महारौद्रं रूपं दृष्ट्वा महासुरः । न शेकुःप्रमुखेस्थातुं भेजिरे च दिशोदश ॥
ततःशापं ददौ देवस्तयोःशुम्भनिशुम्भयोः ।
मम युद्धादपक्रान्तौ गौर्यावध्यौ भविष्यथः ॥ ७ ॥
पुनर्जलन्धरो वेगाद्ववर्ष निशितैःशरैः । बाणान्धकारसंछन्नं यथा भूमितलं महत् ॥८॥
यावद्रुद्रःप्रचिच्छेद तस्य बाणांस्त्वरान्वितः ।
तावत्स परिघेणाशु जघान वृषभं बली ॥ ९ ॥
वृषस्तेन प्रहारेण परावृत्तो रणाङ्गणात् । रुद्रेणाकृष्यमाणोऽपि न तस्थौ रणभूमिषु ॥
ततःपरमसंक्रुद्धो रुद्रो रौद्रवपुर्धरः । चक्रं सुदर्शनं वेगाच्चिक्षेपादित्यवर्चसम् ॥ ११ ॥
प्रदहद्रोदसी वेगात्तदासाद्य जलन्धरम् । जहार तच्छिरःकायान्महदायतलोचनम् ॥ १२
रथात्कायःपपातोर्व्यां नादयन्वसुधातलम् । तेजश्च निर्गतं देहात्तद्रुद्रे लयमागतम् ॥
दृष्ट्वा देहोद्भवं तेजस्तद्गौरीशे लयंगतम् । अथ चन्द्रादयो देवा हर्षादुत्फुल्लोचनाः ॥
प्रणम्य शिरसा रुद्रं शशंसुर्विष्णुचेष्टितम् ॥ १४ ॥

देवा ऊचुः ।

महादेव त्वया देवा रक्षिताःशत्रुजाद्भयात् । किंचिदन्यत्समुद्भूतं तत्र किं करवामहै ॥
वृन्दालावण्यसंभ्रान्तो विष्णुस्तिष्ठति मोहितः ॥ १६ ॥

ईश्वर उवाच ।

गच्छध्वं शरणं देवा विष्णोर्मोहापनुत्तये । शरण्यां मोहिनीं मायां सावःकार्यं करिष्यति

नारद उवाच ।

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवःसहभूतगणैस्तथा । देवाश्च तुष्टवुर्मूलप्रकृतिंभक्तवत्सलाम् ॥ १८ ॥

देवा ऊचुः ।

यदुद्भवाःसत्त्वरजस्तमोगुणाःसर्गस्थितिध्वंसनिदानकारणम् ।
यदिच्छया विश्वमिदं भवाभवौ तनोति शुद्धां प्रकृतिं नताःस्म ताम् ॥१९॥
याहि त्रयोविंशतिभेदसंज्ञिता जगत्यशेषे समधिष्ठिता पुरा ।
यद्रूपकर्माणि जडास्त्रयोऽपि ते देवा विदुर्न प्रकृतिं नताःस्म ताम् ॥ २० ॥
यद्भक्तियुक्ताःपुरुषांस्तु नित्यं दारिद्र्यव्यामोहपरा भवादिकम् ।
न प्राप्नुवन्त्येव हि भक्तवत्सलां सदैव विष्णोःप्रकृतिं नताःस्म ताम् ॥२१॥

नारद उवाच ।

स्तोत्रमेतत्त्रिसन्ध्यं यःपठेदेकाग्रमानसः । दारिद्र्यमोहदुःखानि न कदाचित्स्पृशन्तितम्
इति स्तुवन्तस्ते देवास्तेजोमण्डलमास्थिताम् ।
ददृशुर्गगने तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तराम् ॥ २३ ॥
तन्मध्याद्भारतीं सर्वे ददृशुर्व्योमचारिणीम् । अहमेव त्रिधाभिन्ना तिष्ठामि त्रिविधैर्गुणैः
गौरी लक्ष्मीःस्वरा चेति रजःसत्त्वतमोगुणैः ।
तत्र गच्छत तत्कार्यं विधास्यन्ति च वः सुराः ॥ २५ ॥

नारद उवाच ।

शृण्वतामिति देवानामन्तर्धानमगान्महः । देवानां विस्मयोत्फुल्लनेत्राणां तत्तदा नृप ॥
ततः सर्वेऽपि ते देवा गत्वा तद्वाक्यनोदिताः ।

गौरीं लक्ष्मीं स्वरां चैव प्रणेमुर्भक्तितत्पराः ॥ २७ ॥
ततस्तास्तान्सुरान्दृष्ट्वा प्रणतान्भक्तवत्सलाः ।
बीजानि प्रददुस्तेभ्यो वाक्यान्यूचुश्च भूमिप ! ॥ २८ ॥

देव्य ऊचुः ।

इमानि क्षेत्रबीजानि विष्णुर्यत्रावतिष्ठते । निर्वपध्वं ततःकार्यं भवतां सिद्धिमेष्यति ॥
ततस्तु हृष्टाः सुरसिद्धसङ्घाः प्रगृह्य बीजानि विचिक्षिपुस्ते ।
वृन्दान्वितो भूमितले स यत्र विष्णुःसदा तिष्ठति सौख्यहीनः ॥ ३० ॥
इतिश्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशतसहस्र्यां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिकमाहात्म्ये
श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे जालन्धरवधो नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

———

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

बीजत्रयोत्पन्नानांधात्रीमालतीतुलसीनांदर्शनेनविष्णोर्भ्रान्तिनिरासः

नारद उवाच ।

क्षिप्तेभ्यस्तवीजेभ्यो वनस्पत्यस्त्रयोऽभवन् । धात्री च मालतीचैवतुलसी च नृपोत्तम
धात्र्युद्भवा स्मृता धात्री मा भवा मालती स्मृता ।
गौरीभवा च तुलसी तमःसत्त्वरजोगुणाः ॥ २ ॥
स्त्रीरूपिण्यौ वनस्पत्यौ दृष्ट्वा विष्णुस्तदा नृपः ।
उत्तस्थौ संभ्रमाद् वृन्दारूपातिशयमोहितः ॥ ३ ॥
ददर्श तास्तदा मोहात्कामासक्तेन चेतसा ।
तं चापि तुलसी धात्री रागेणैव व्यलोकयत् ॥ ४ ॥
यच्च लक्ष्म्या पुराबीजं माययैव समर्पितम् ।
तस्मात्तदुद्भवा नारी तस्मिन्नीर्ष्यायुताऽभवत् ॥ ५ ॥

अतःसा बर्बरीत्याख्या माधवस्यातिगर्हिता । धात्री तुलस्यैतद्रागात्तस्यप्रीतिप्रदे सदा
ततो विस्मृतदुःखोऽसौ विष्णुस्ताभ्यां सहैव तु । वैकुण्ठमगमद्धृष्टःसर्वदेव नमस्कृतः

कार्तिकोद्यापने विष्णोस्तस्मात्पूजा विधीयते ।
तुलसीमूलदेशे तु प्रीतिदा सा यतःस्मृता ॥ ८ ॥

तुलसीकाननं राजन्गृहे यस्यावतिष्ठते । तद्गृहं तीर्थरूपं तु नायान्ति यमकिङ्कराः ॥६॥
सर्वपापहरं पुण्यं कामदं तुलसीवनम् । रोपयन्ति नरश्रेष्ठा न ते पश्यन्ति भास्करीम्
दर्शनं नर्मदायास्तु गङ्गास्नानं तथैव च । तुलसीवनसंसर्गः सममेतत्त्रयं स्मृतम् ॥११॥
रोपणात्पालनात्सेकाद्दर्शनात्स्पर्शनान्नृणाम् । तुलसी दहते पापंवाङ्मनःकायसंचितम्
तुलसीमञ्जरीभिर्यःकुर्याद्धरिहरार्चनम् । न स गर्भगृहं याति मुक्तिभागी न संशयः ॥१३
पुष्करादीनि तीर्थानि गङ्गाद्याःसरितस्तथा । वासुदेवादयो देवास्तिष्ठन्ति तुलसीदले

तुलसीमञ्जरीयुक्तो यदि प्राणान्विमुञ्चति ।
विष्णोःसायुज्यमाप्नोति सत्यं सत्यं नृपोत्तम ॥ १४ ॥
तुलसीमृत्तिकालिप्तो यस्तु प्राणान्विमुञ्चति ।
यमोऽपि नेक्षितुं शक्तो युक्तं पापशतैरपि ॥ १६ ॥

तुलसीकाष्ठजं यस्तु चन्दनं धारयेन्नरः । तद्देहं नस्पृशेत्पापं क्रियमाणमपीह यत् ॥१७

तुलसीविपिनच्छाया यत्रयत्र भवेन्नृप ।
तत्र श्राद्धं प्रकर्त्तव्यं पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ १८ ॥
धात्रीछायासु यः कुर्यात्पिण्डदानं नृपोत्तम ।
तृप्तिं च यान्ति पितरस्तस्य ये नरके स्थिताः ॥ १६ ॥

मूर्ध्निपाणौमुखेचैव देहे च नृपसत्तम । धत्ते धात्रीफलं यस्तु स विज्ञेयो हरिःस्वयम् ॥

धात्रीफलं च तुलसी मृत्तिका द्वारकोद्भवा ।
यस्य देहे स्थिता नित्यं स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ २१ ॥
धात्रीफलविमिश्रैस्तु तुलसीदलमिश्रितैः ।
जलैः स्नाति नरस्तस्य गङ्गास्नानफलं स्मृतम् ॥ २२ ॥

देवार्चनं नरःकुर्याद्धात्रीपत्रैःफलैरपि। सुवर्णपुष्पैर्विविधैरर्चनस्याप्नुयात्फलम् ॥ २३

तीर्थानि मुनयो देवा यज्ञाःसर्वेऽपि कार्त्तिके।
नित्यं धात्रीं समाश्रित्य तिष्ठन्त्यर्के तुलाश्रिते ॥ २४ ॥

द्वादश्यां तुलसीपत्रं धात्रीपत्रं तु कार्तिके। लुनाति स नरो गच्छेन्निरयानतिगर्हितान्

धात्रीच्छायां समाश्रित्य कार्त्तिकेऽन्नं भुनक्ति यः।
अन्नसंसर्गजं पापमाबर्षं तस्य नश्यन्ति ॥ २६ ॥

धात्रीमूले तु यो विष्णुं कार्त्तिकेऽर्चयते नरः। विष्णुक्षेत्रेषु सर्वेषु पूजितस्तेन सर्वदा

धात्री तुलस्योर्माहात्म्यमपि देवश्चतुर्मुखः। न समर्थो भवेद्वक्तुं यथा देवस्य शार्ङ्गिणः

धात्रीतुलस्युद्भवकारणं यःशृणोति यः श्रावयते च भक्त्या।
विधूतपाप्मा सह पूर्वजैश्च स्वर्गं व्रजत्यग्र्यविमानसंस्थः ॥ २९ ॥

इति श्रीपाद्मेमहापुराणे,पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायांषष्ठे उत्तरेखण्डे कार्तिकमाहात्म्ये
श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे धात्रीतुलस्योर्माहात्म्यं नाम
पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

षडधिकततमोऽध्यायः

कलहाचरितवर्णनम्।

पृथुरुवाच।

सेतिहासमिदं ब्रह्मन्माहात्म्यंकथितं त्वया। अत्याश्चर्यकरंसम्यक्तुलस्यास्तु श्रुतं महत्

यदूर्जव्रतिनःपुंसःफलं महदुदाहृतम्। तत्पुनर्ब्रूहि माहात्म्यं केन चीर्णमिदं कथम् ॥ २॥

नारद उवाच।

आसीत्सह्याद्रिविषये करवीरपुरे पुरा। ब्राह्मणो धर्मवित्कश्चिद्धर्मदत्तेति विश्रुतः ॥३॥

विष्णुव्रतकरःशश्वद्विष्णुपूजारतःसदा। द्वादशाक्षरविद्यायां जपनिष्ठोऽतिथिप्रियः ॥४॥

कदाचित्कार्तिके मासि हरिजागरणाय सः ।
रात्र्यां तुर्यांशशेषायां जगाम हरिमन्दिरम् ॥ ५ ॥
हरिपूजोपकरणान्प्रगृह्य व्रजता तदा । तेन दृष्टा समायाता राक्षसी भीमनिःस्वना ॥
वक्रदंष्ट्रा ललज्जिह्वा निमग्ना रक्तलोचना ।
दिगम्बरा शुष्कमांसा लम्बोष्ठी घर्घरस्वना ॥ ७ ॥
तां दृष्ट्वा भयवित्रस्तःकम्पितावयवस्तदा । पूजोपकरणैर्वेगात्पयोभिश्चाहनद्भयात् ॥
संस्मृत्य च हरेर्नाम तुलसीयुतवारिणा ।
सा हता पातकं तस्मात्तस्याः सर्वमगात्क्षयम् ॥ ९ ॥
अथ संस्मृत्य सा पूर्वजन्मकर्मविपाकजाम् । स्वांदशामब्रवीत्सर्वां दण्डवत्तं प्रणम्यसा

कलहोवाच ।

पूर्वकर्मविपाकेन दशामेतां गता ह्यहम् । तत्कथं तु पुनर्विप्र ! याम्युत्तमगतिं शुभाम् ॥

नारद उवाच ।

तां दृष्ट्वा प्रणतामग्रे वदमानां स्वकर्म तत् । अतीवविस्मितो विप्रस्तदा वचनमब्रवीत्

धर्मदत्त उवाच ।

केन कर्मविपाकेन त्वं दशामीदृशीं गता । कुतस्त्वं का च किं शीला तत्सर्वं कथयस्व मे

कलहोवाच ।

सौराष्ट्रनगरे ब्रह्मन्भिक्षुनामाऽभवद्द्विजः । तस्याऽहं गृहिणी पूर्वं कलहाख्याऽतिनिष्ठुरा
न कदाचिन्मया भर्तुर्वचसाऽपि शुभं कृतम् । नार्पितं तस्य मिष्टान्नं भर्तुर्वचनभङ्गया ॥
कलहप्रियया नित्यं भयोद्विग्नस्तदा द्विजः । परिणेतुं तदाऽन्यां स मतिचक्रे पतिर्मम ॥
ततो गरं समादाय प्राणास्त्यक्ता मया द्विज ! ।
अथ बद्ध्वा बध्यमानां मां विनिन्युर्यमानुगाः ।
यमश्च मान्तदा दृष्ट्वा चित्रगुप्तमपृच्छत ॥ १७ ॥

यम उवाच ।

अनया किं कृतं कर्म चित्रगुप्त ! विलोकय । प्राप्नोत्वेषा कर्मफलं शुभं वाऽशुभमेव च

कलहोवाच ।

चित्रगुप्तस्ततो वाक्यं भर्त्सयन्मामुवाच ह ॥ १९ ॥

चित्रगुप्त उवाच ।

अनया तु शुभं कर्म कृतं किंचिन्न विद्यते । मिष्टान्नं भुक्तमनया न भर्तरि तदर्पितम् ॥
अतश्च वल्गुलीयोन्यां स्वविष्ठादावतिष्ठताम् । भर्तुर्द्वेषकरी त्वेषा नित्यं कलहकारिणी
विष्ठादाशूकरीयोन्यां ततस्तिष्ठत्वियं हरे । पाकभाण्डे सदा भुक्तं नित्यं चैवानया यतः

तस्माद्दोषाद्‌ विडाली तु स्वजातापत्यभक्षिणी ।

भर्तारमनयोद्दिश्य ह्यात्मघातः कृतो यतः ॥ २३ ॥

तस्मात्प्रेतपिशाचेषु तिष्ठत्वेषाऽतिनिन्दिता । ततश्चैव मरुदेशं प्रापितव्या भटैःसह ॥२४
तत्र प्रेतशरीरस्था चिरं तिष्ठत्वियं ततः । इत्थं योनित्रयं त्वेषा भुनक्त्वशुभकारिणी ॥

कलहोवाच ।

साऽहं पञ्चशताब्दानि प्रेतदेहे स्थिता किल ।

क्षुत्तृड्भ्यां पीड़िता नित्यं दुःखिता स्वेन कर्मणा ॥ २६ ॥

ततः क्षुत्पीड़िताऽविश्य शरीरं वणिजस्त्वहम् ।

आयाता दक्षिणं देशं कृष्णावेण्यास्तु संगमे ॥ २७ ॥

तत्तीरसंश्रिता यावत्तावत्तस्य शरीरतः । शिवविष्णुगणैर्दूरमपाकृष्टा बलादहम् ॥२८॥
ततःक्षुत्क्षामया दृष्टो भ्रमन्त्या त्वं मया द्विज । प्रक्षिप्ततुलसीवारिसंसर्गगतपापया ॥
तत्कृपां कुरु विप्रेन्द्र ! कथं मुक्तिमवाप्नुयाम् । योनित्रयादतिभयादस्माच्च प्रेतदेहतः

नारद उवाच ।

इत्थं निशम्य कलहावचनं द्विजश्च तत्कर्मपाकभवविस्मयदुःखयुक्तः ।
तद्ग्लानिदर्शनकृपाचलचित्तवृत्तिर्ध्यात्वा चिरं स वचनं निजगाद दुःखात् ॥३१॥

इतिश्रीपाद्मेमहापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे कलहोपाख्यानं नाम षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

———

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

तुलसीमिश्रजलप्रक्षेपात्कलहाया दिव्यदेहावाप्तिवर्णनम् ।

धर्मदत्त उवाच ।

विलयं यान्ति पापानि तीर्थदानव्रतादिभिः । प्रेतदेहस्थितायास्ते तेषु नैवाधिकारिता
त्वद्ग्लानिदर्शनादस्मात्खिन्नं च मम मानसम् ।
नैव निर्वृतिमायाति त्वामनुद्धृत्य दुःखिनाम् ॥ २ ॥
पातकं च तवाऽत्युग्रं योनित्रयविपाकदम् । नैवान्यैः क्षीयते पुण्यैः प्रेतत्वं चातिगर्हितम् ॥
तस्मादाजन्मजनितं यन्मया कार्त्तिकव्रतम् । तत्पुण्यस्यार्धभागेन सद्गतिं त्वमवाप्नुहि
कार्त्तिकव्रतपुण्येन न साम्यं यान्ति सर्वथा । यज्ञदानानि तीर्थानि व्रतान्यपि यतो ध्रुवम्

नारद उवाच ।

इत्युक्त्वा धर्मदत्तोऽसौ यावत्तामभ्यषेचयत् । तुलसीमिश्रतोयेन श्रावयन्द्वादशाक्षरम्
तावत्प्रेतत्वनिर्मुक्ता ज्वलदग्निशिखोपमा । दिव्यवपुर्धरा जाता लावण्याद्भासिता दिशः
ततः सा दण्डवद्भूमौ प्रणनामाथ तं द्विजम् । उवाच च तदा वाक्यं हर्षगद्गदभाषिणी

कलहोवाच ।

त्वत्प्रसादाद् द्विजश्रेष्ठ ! विमुक्ता निरयादहम् ।
पापाब्धौ मज्जमानायास्त्वं नौ भूतोऽसि मे ध्रुवम् ॥ ६ ॥

नारद उवाच ।

इत्थं सा वदती विप्रं ददर्शायातमम्बरात् । विमानं भास्वरं युक्तं विष्णुरूपधरैर्गणैः ॥
अथ सा तद्विमानाग्र्यं द्वाःस्थाभ्यामधिरोहिता ।
पुण्यशीलसुशीलाभ्यामप्सरोगणसेवितम् ॥ ११ ॥
तद्विमानं तदापश्यद्धर्मदत्तः सविस्मयः । पपात दण्डवद्भूमौ दृष्ट्वा तौ पुण्यरूपिणौ
पुण्यशीलसुशीलौ तमुत्थाप्य प्रणतं द्विजम् । अभ्यनन्दयतां वाक्यमूचतुर्धर्मशीलिनौ ॥

गणावूचतुः ।

साधु साधु द्विजश्रेष्ठ यस्त्वं विष्णुरतःसदा । दीनानुकम्पी धर्मज्ञो विष्णुव्रतपरायणः ॥
आजन्म सच्छुभं ह्येतद्यत्त्वया कार्तिकव्रतम् । कृतं तस्यार्धदानेन यदस्याःपूर्वसंचितम् ॥
जन्मान्तरशतोद्भूतं पापं तद्विलयंगतम् । हरिजागरणाद्यैश्च विमानमिदमास्थिता ॥१६

वैकुण्ठं नीयते साधो नानाभोगयुता त्वियम् ।
दीपदानभवैःपुण्यैस्तैजसं रूपमास्थिता ॥ १७ ॥
तुलसीपूजनाद्यैस्तु कार्तिकव्रतकैःशुभैः ।
विष्णुसान्निध्यगा जाता त्वया दत्तैःकृपालुना ॥ १८ ॥
त्वमप्यस्य भवस्याऽन्ते भार्याभ्यां सह यास्यसि ।
वैकुण्ठभवनं विष्णो सान्निध्यं च स्वरूपता ॥ १९ ॥
ते धन्याःकृतकृत्यास्ते तेषां च सफलोभवः ।
यैर्भक्त्याऽऽराधितो विष्णुर्धर्मदत्त ! त्वया यथा ॥ २० ॥
सम्यगाराधितो विष्णुःकिं न यच्छति देहिनाम् ॥ २१ ॥

औत्तानचरणिर्येन ध्रुवत्वे स्थापितःपुरा । यन्नाम स्मरणादेव देहिनो यान्ति सद्गतिम्
ग्राहगृहीतो नागेन्द्रो यन्नामस्मरणात्पुरा । विमुक्तःसन्निधिं प्राप्तो जातो योजयसंज्ञकः

अतस्त्वयाऽर्चितो विष्णुः स्वसान्निध्यं प्रदास्यति ।
बहून्यब्दसहस्राणि भार्याद्वययुतस्य ते ॥ २४ ॥

ततःपुण्यक्षये जाते यदा यास्यसि भूतले । सूर्यवंशोद्भवो राजाविख्यातस्त्वं भविष्यसि
नाम्ना दशरथस्तत्र भार्याद्वययुतःपुनः । तृतीययाऽनयात्रापि या ते पुण्यार्धभागिनी ॥

तत्राऽपि तव सान्निध्यं विष्णुर्यास्यति भूतले ।
आत्मानं तव पुत्रत्वे प्रकल्प्याऽमरकार्यकृत् ॥ २७ ॥
तवाजन्मव्रतादस्माद्विष्णुसंतुष्टिकारकात् ।
न यज्ञा न च दानानि न तीर्थान्यधिकानि ते ॥ २८ ॥
धन्योऽसि विप्र ! प्रयतस्त्वयैतद्व्रतं कृतं तुष्टिकरं जगद्गुरोः ।

यदर्धभागाच्च फलान्मुरारे प्रणीयतेऽस्माभिरियं सलोकताम् ॥ २६ ॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे कलहोपाख्यानं नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥१०७

अष्टाधिकशततमोऽध्यायः

धर्मदत्तविष्णुगणसंवादे विष्णुव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

नारद उवाच ।

इत्थं तद्वचनं श्रुत्वा धर्मदत्तः सविस्मयः । प्रणम्य दण्डवद्भूमौ वाक्यमेतदुवाच ह ॥

धर्मदत्त उवाच ।

आराधयन्ति सर्वेऽपि विष्णुंभक्तार्त्तिनाशिनम् । यज्ञैर्दानैर्व्रतैस्तीर्थस्तपोभिश्च यथाविधि

विष्णुप्रीतिकरं तेषां विष्णुसान्निध्यकारकम् ।

यत्कृत्वा तानि चीर्णानि सर्वाण्यपि भवन्ति हि ॥ ३ ॥

गणावूचतुः ।

साधु पृष्टं त्वया विप्र शृणुष्वैकाग्रमानसः । सेतिहासांकथां विप्रकथ्यमानां पुराभवाम्

कान्तिपुर्यां पुरा चोलश्चक्रवर्ती नृपोऽभवत् ।

यस्य नाम्ना च ते देशाश्चोलाख्या अभवन्किल ॥५॥

यस्मिञ्छासति भूचक्रं दरिद्रो नैव दुःखितः । पापबुद्धिःसरुग्वापि नैव कश्चिदभून्नरः ॥

यस्याप्यत्यन्तं यज्ञस्य ताम्रपर्णी तटावुभौ । सुवर्णयूपैःशोभाढ्यावास्तां चैत्ररथोपमौ

स कदाचिदगाद्राजा ह्यनन्तशयनं द्विज । यत्रासौ जगतांनाथो योगनिद्रामुपाश्रितः ॥

तत्र श्रीरमणं देवं संपूज्य विविधवन्नृपः ।

मणिमुक्ताफलैर्दिव्यैः स्वर्णपुष्पैश्च शोभनैः ॥९॥

प्रणम्य दण्डवद्यावदुपविष्टःस तत्र वै । तावद्ब्राह्मणमायान्तमपश्यद्देवसन्निधौ ॥१०॥

देवार्चनार्थमायान्तं तुलस्युदकपाणिकम् ।
स्वपुरीवासिनं तत्र विष्णुदासाह्वयं द्विजम् ॥११॥
तत्राभ्येत्य स विप्रर्षिर्देवदेवमपूजयत् । विष्णुसूक्तेन संस्नाप्य तुलसीमञ्जरीदलैः ॥१२
तुलसीपूजया तस्य रत्नपूजां तथा कृताम् ।
आच्छादितां समालोक्य राजा क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥१३॥

राजोवाच ।

माणिक्यस्वर्णपूजाऽत्र शोभाढ्या या मयाकृता ।
विष्णुदास ! कथं सेयमाच्छन्ना तुलसीदलैः ॥१४॥
विष्णुभक्ति न जानासि वराकोऽसि मतो मम ।
यस्त्वमामतिशोभाढ्यां पूजामाच्छादयस्यहो ॥१५॥

गणावूचतुः ।

इति तद्वचनं श्रुत्वा सक्रोधःस द्विजोत्तमः । राज्ञो गौरवमुल्लङ्घ्य जगाद वचनं तदा

विष्णुदास उवाच ।

राजन्मुक्ति न जानासि गर्वितोऽसि नृपश्रिया ।
किंस्विद्विष्णुव्रतं पूर्वं त्वया चीर्णं वदस्व तत् ॥१७॥

गणावूचतुः ।

तद्ब्राह्मणवचःश्रुत्वा प्रहस्य स नृपोत्तमः । विष्णुदासं तदा गर्वादुवाच वचनं द्विज

राजोवाच ।

इत्थं ब्रवीषि चेद्विप्र ! विष्णुभक्त्याऽतिगर्वितः ।
भक्तिस्ते कियती विष्णोर्दरिद्रस्याऽधनस्य च ॥ १६ ॥
यज्ञदानादिकं नैव विष्णुतुष्टिकरं कृतम् । नाऽपि देवालयं पूर्वं त्वया विप्र ! क्वचित्कृतम्
ईदृशस्यापि ते गर्वं एष तिष्ठति भक्तितः ।
तच्छृण्वन्तु वचो मेऽद्य सर्वेऽप्येते द्विजोत्तमाः ॥ २१ ॥
साक्षात्कारमहं विष्णोरेष वादो गमिष्यति ।

यथा तु सर्वेऽपि ततो भक्तिं ज्ञास्यथ चावयोः ॥ २२ ॥

गणावूचतुः ।

इत्युक्त्वा स नृपोऽगच्छन्निजं राजगृहं द्विजः ।
आरेभे वैष्णवं सत्रं कृत्वाऽऽचार्यं तु मुद्गलम् ॥ २३ ॥
ऋषिसङ्घसमाजुष्टं बभूव बहुदक्षिणम् । यद्वद्ब्रह्मकृतं पूर्वं गयाक्षेत्रे समृद्धिमत् ॥
विष्णुदासोऽपि तत्रैव तस्थौ देवालये व्रती ।
पञ्चैतान्नियमान्कृत्वा विष्णुतुष्टिकरान्सदा ॥ २५ ॥
माघोर्जयोर्व्रतं सम्यक्तुलसीवनपालनम् । एकादशीव्रतं जाप्यं द्वादशाक्षरविद्यया ॥
उपचारैः षोडशभिर्गीतनृत्यादिमङ्गलैः ।
नित्यं विष्णोस्तथा पूजां व्रतान्येतानि सोऽकरोत् ॥ २७ ॥
नित्यं संस्मरणं विष्णोर्गच्छन्भुञ्जन्स्वपन्नपि ।
सर्वभूतस्थितं विष्णुमपश्यत्समदर्शनः ॥ २८ ॥
माघकार्त्तिकयोर्नित्यं विशेषनियमानपि ।
अकरोद्विष्णुतुष्ट्यर्थं सोद्यापनविधिं तथा ॥ २९ ॥
एवं समाराधयतोः श्रियः पतिं तयोस्तुचोलेश्वरविष्णुदासयोः ।
अगादनेहा बहु तद्व्रतस्थयोस्तन्निष्ठसर्वेन्द्रियकर्मणोस्तयोः ॥ ३० ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्त्तिक-
माहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे कलहोपाख्याने
अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

———

नवाधिकशततमोऽध्यायः

विष्णुदासविप्रचोलराजयोर्भगवन्निरतिशयभक्त्या वैकुण्ठप्राप्तिवर्णनम्

गणावूचतुः ।

कदाचिद्विष्णुदासोऽथ कृत्वा नित्यविधिं द्विजः ।
पाककर्माऽकरोद्यावदहरत्कोऽप्यलक्षितः ॥ १ ॥
तमदृष्ट्वाप्यसौ पाकं पुनर्नैवाकरोत्तदा । सायंकालार्चनस्यासौ व्रतभङ्गभयाद्द्विजः
द्वितीयेऽह्नि ततःपाकं कृत्वा यावत्स विष्णवे । उपहारार्पणं कर्तुं गतःकोऽप्यहरत्पुनः
एवं सप्तदिनं तस्य पाकं कोऽप्यहरद् द्विज ! ।
जातःस विस्मयःसोऽथ मनस्येवं व्यचारयत् ॥ ४ ॥
अहो नित्यं समभ्येत्य कः पाकं हरते मम ।
क्षेत्रसंन्यासिनां स्थानमत्याज्यं सर्वथा मया ॥ ५ ॥
पुनःपाकं विधायात्र भुज्यते यदि चेन्मया । सायंकालार्चनं चैतत्परित्याज्यं कथं मया
किंचित्पाकं विधायैतद्भोक्तव्यं तु मया न हि । अनिवेद्य हरौ सर्वं वैष्णवैर्नैव भुज्यते
उपोषितोऽहं च कथं तिष्ठाम्यत्र व्रतस्थितः ।
अद्य संरक्षणं सम्यक्पाकस्यात्र करोम्यहम् ॥ ८ ॥
इति पाकं विधायाऽसौ तत्रैवाऽलक्षितः स्थितः ।
तावद्ददर्श चाण्डालं पाकान्नहरणे स्थितम् ॥ ९ ॥
क्षुत्क्षामं दीनवदनमस्थिचर्मावशेषितम् । तमालोक्य द्विजाग्र्योऽभूत्कृपयाखिन्नमानसः
विलोक्यान्नहरं विप्रस्तिष्ठ तिष्ठेत्यभाषत । कथमत्सि भवान्रूक्षं घृतमेतद् गृहाण भोः
इत्थं ब्रुवन्तं विप्राग्र्यमायान्तञ्च विलोक्य सः ।
वेगादधावत्तद्भीत्या मूर्च्छितश्च पपात ह ॥ १२ ॥
भीतं तं मूर्च्छितं दृष्ट्वा चाण्डालं स द्विजोत्तमः ।

वेगादभ्येत्य कृपया स्ववस्त्रान्तैरवीजयत् ॥ १३ ॥
अथोत्थितं तमेवासौ विष्णुदासो व्यलोकयत् ।
साक्षान्नारायणं देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ १४ ॥
पीताम्बरं चतुर्बाहुं श्रीवत्साङ्कं किरीटिनम् ।
अतसीपुष्पसङ्काशं कौस्तुभोरःस्थलं विभुम् ॥ १५ ॥
तं दृष्ट्वा सात्त्विकैर्भावैरावृतो द्विजसत्तमः ।
स्तोतुं चापि नमस्कर्तुं तदा नालं बभूव सः ॥ १६ ॥
अथ शक्रादयो देवास्तत्रैवाभ्याययुस्तदा । गन्धर्वाप्सरसश्चापि जगुश्च ननृतुर्मुदा ॥१७
विमानशतसंकीर्णं देवर्षिगणसङ्कुलम् । गीतावादित्रनिर्घोषं स्थानं तदभवत्तदा ॥१८
ततो विष्णुः समालिङ्ग्य स्वभक्तं सात्त्विकं तथा ।
सायुज्यमात्मनो दत्त्वाऽनयद्वैकुण्ठमन्दिरम् ॥ १९ ॥
विमानवरसंस्थानमास्थितं विष्णुसन्निधौ । दीक्षितश्चोलनृपतिर्विष्णुदासं ददर्श ह ॥
वैकुण्ठभवनं यान्तं विष्णुदासं विलोक्य सः ।
स्वगुरुं मुद्गलं वेगादाहूयेत्थं वचोऽब्रवीत् ॥ २१ ॥
चोल उवाच ।
यत्स्पर्धया मया चैतद्यज्ञदानादिकं कृतम् । स विष्णुरूपधृग्विप्रो याति वैकुण्ठमन्दिरम्
दीक्षितेन मया सम्यक्सत्रेऽस्मिन्वैष्णवे त्वया ।
हुतमग्नौ कृता विप्रा दानाद्यैः पूर्णमानसाः ॥ २३ ॥
नैवाद्याऽपि स मे देवः प्रसन्नो जायते ध्रुवम् ।
भक्त्यैव तस्य विप्रस्य साक्षात्कारं ददौ हरिः ॥ २४ ॥
तस्माद्दानैश्च यज्ञैश्च नैव विष्णुः प्रसीदति । भक्तिरेव परन्तस्य निदानं दर्शने विभोः ॥
गणावूचतुः ।
इत्युक्त्वा भागिनेयं स्वमभिषिच्य नृपासने । आबाल्याद्दीक्षितो यज्ञे सोऽपुत्रत्वमगाद्यतः
तस्मादद्यापि तद्देशे सदा राज्यांशभागिनः । स्वस्रेया एव जायन्ते तत्कृताचारवर्तिनः

यज्ञवाटं ततोऽभ्येत्य वह्निकुण्डाग्रतःस्थितः ।
त्रिरुच्चैर्व्याजहाराऽऽशु विष्णुं सम्बोधयंस्तदा ॥ २८ ॥
विष्णो ! भक्तिं स्थिरां देहि मनोवाक्कायकर्मभिः ।
इत्युक्त्वा सोऽपतद्वह्नौ सर्वेषामेव पश्यताम् ॥ २९ ॥
मुद्गलस्तु तदा क्रोधात्स्वशिखामुदपाटयत् ।
ततस्त्वद्याऽपि तद् गोत्रे मुद्गला विशिखाभवन् ॥ ३० ॥

तावदाविरभूद्विष्णुःकुण्डाग्नौ भक्तवत्सलः । तमालिङ्ग्य विमानाग्र्यं समारोहयदच्युतः
तमालिङ्ग्यात्मसारूप्यं दत्त्वा वैकुण्ठमन्दिरम् । तेनैव सह देवेशो जगाम त्रिदशैर्वृतः

नारद उवाच ।

यो विष्णुदासः स तु पुण्यशीलो यश्चोलभूपः स सुशीलनामा ।
एतावुभौ तत्समरूपभाजौ द्वाःस्थौ कृतौ तेन रमाप्रियेण ॥ ३३ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्त्तिक-माहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे कलहोपाख्यानं नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥

दशाधिकशततमोऽध्यायः

जयविजयद्वारपालयोः पूर्वजन्मवृत्तान्तवर्णनम्

धर्मदत्त उवाच ।

जयश्च विजयश्चैव विष्णोर्द्वाःस्थौ मया श्रुतौ ।
किंतु ताभ्यां पुरा चीर्णं यस्मात्तद्रूपधारिणौ ॥ १ ॥

गणावूचतुः ।

तृणबिन्दोस्तु कन्यायां देवहूत्यां पुरा द्विज ! । कर्दमस्य तु दृष्ट्यैव पुत्रौ द्वौसंबभूवतुः
ज्येष्ठो जयःकनिष्ठोऽभूद्विजयश्चेति नामतः। *अन्यस्यामभवत्पश्चात्कपिलो योगधर्मवित्

---

* अस्यामेवा इत्यपि पाठः ।

जयश्च विजयश्चैव विष्णुभक्तिरतौ सदा। संनियम्येन्द्रियग्रामं धर्मशीलौ बभूवतुः ॥
नित्यमष्टाक्षरीजाप्यौ विष्णुव्रतकरावुभौ। साक्षात्कारं ददौ विष्णुस्तयोर्नित्यार्चनेसदा
मरुत्तेन कदाचित्तावाहूतौ यज्ञकर्मणि। जग्मतुर्यज्ञकुशलौ देवर्षिगणसेवितौ ॥ ६ ॥

जयस्तत्राऽभवद् ब्रह्मा याजको विजयोऽभवत्।
ततो यज्ञविधिं कृत्स्नं परिपूर्णं च चक्रतुः ॥ ७ ॥
मरुत्तोऽवभृत(थ)स्नातस्ताभ्यां वित्तं ददौ बहु।
तत्समादाय तौ वित्तं जग्मतुः स्वाश्रमं प्रति ॥ ८ ॥

यजनाय तदाविष्णोस्तुष्ट्यर्थं तौ तदा मुने। तद्धनं विभजन्तौवै पस्पर्धाते परस्परम्
जयोऽब्रवीत्समो भागः क्रियतामिति तत्र सः। विजयश्चाब्रवीत्तत्र यल्लब्धं येन तस्यतत्

ततो जयोऽशपत्क्रोधाद्विजयं क्षुब्धमानसः।
गृहीत्वा न ददास्येतत्तस्माद्ग्राहो भवेति तम् ॥ ११ ॥
विजयस्तस्य तं शापं श्रुत्वा सोऽप्यशपच्च तम्।
मदभ्रान्तोऽशपो यस्मात्तस्मान्मातङ्गतां व्रज ॥ १२ ॥
तौ तथाऽऽचख्यतुर्विष्णुं दृष्ट्वा नित्यार्चने विभुम्।
शापयोस्तु निवृत्तिं तौ ययाचाते रमापतिम् ॥ १३ ॥
भक्तावावां कथं देव! ग्राहमातङ्गयोनिगौ।
भविष्यावः कृपासिन्धो! तच्छापो विनिवर्त्यताम् ॥ १४ ॥

श्रीभगवानुवाच।

मद्भक्तयोर्वचोऽसत्यं न कदाचिद्भविष्यति। मयाऽपि नान्यथा कर्तुं शक्यते तत्कदाचन
प्रह्लादवचनात्स्तम्भेऽप्याविर्भूतो ह्यहं पुरा। तथाम्बरीषवाक्येन जातोमार्गे स्वयं किल
तस्माद्ध्रुवमिमौ शापावनुभूय स्वयं कृतौ। लभेथां मत्पदं नित्यमित्युक्त्वान्तर्दधेहरिः

गणावूचतुः।

ततस्तौ ग्राहमातङ्गावभूतां गण्डकीतटे। जातिस्मरौ च तद्योन्यामपि विष्णुव्रतेस्थितौ
कदाचित्स गजःस्नातुंकार्त्तिके गण्डकींगतः। तावज्जग्राह चग्राहःसस्मरञ्छापकारणम्

ग्राहगृहीतोऽसौ नागःसस्मार श्रीपतिं तदा । तावदाविरभूद्विष्णुःशङ्खचक्रगदाधरः ॥

ततस्तौ ग्राहमातङ्गौ चक्रं क्षिप्त्वा समुद्धृतौ ।

दत्त्वा च निजसारूप्यं वैकुण्ठमनयद्विभुः ॥ २१ ॥

तदा प्रभृति तत्स्थानं हरिक्षेत्रमिति श्रुतम् ।

चक्रसङ्घर्षणाद्यस्मिन्पाषाणोऽपि हि लाञ्छितः ॥ २२ ॥

ताविमौ विश्रुतौ लोके जयश्च विजयश्च ह ।

नित्यं विष्णुप्रियौ द्वाःस्थौ पृष्टौ यौ हि त्वया द्विज ! ॥ २३ ॥

अतस्त्वमपि धर्मज्ञ नित्यं विष्णुव्रते स्थितः । त्यक्तमात्सर्यदम्भो हि भवस्व समदर्शनः

तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नायी सदा भव । एकादशीव्रते तिष्ठ तुलसीवनपालकः ॥ २५ ॥

ब्राह्मणानपि गाश्चापि वैष्णवांश्च सदा भज । मसूराश्चारनालाश्च वृन्ताकानपि खादमा

एवं त्वमपि देहान्ते तद्विष्णोःपरमम्पदम् । प्राप्नोषि धर्मदत्त त्वं तद्भक्त्यैव यथा वयम्

तवाजन्मव्रतात्तस्माद्विष्णुसंतुष्टिकारकात् ।

न यज्ञा न च दानानि न तीर्थान्यधिकानि वै ॥ २८ ॥

धन्योऽसि विप्राग्र्य यतस्त्वयैतद्व्रतं कृतं तुष्टिकरं जगद्गुरोः ।

यत्पुण्यभागात्तफलं मुरारेःप्रणीयतेऽस्माभिरियं सलोकताम् ॥ २९ ॥

नारद उवाच ।

इत्थं तौ धर्मदत्तं तमुपदिश्य विमानगौ । तया कलहया सार्धं वैकुण्ठभवनं गतौ ॥३०॥

धर्मदत्तोऽप्यसौ जात प्रत्ययस्तद्व्रते स्थितः ।

देहान्ते तद्विभोःस्थानं भार्याभ्यामन्वितोऽभ्यगात् ॥ ३१ ॥

इतिहासमिमं पुराभवं शृणुते यश्च पुमान्यथाविधि ।

हरिसन्निधिकारिणीम्मतिं लभतेऽसौ कृपया जगद्गुरोः ॥ ३२ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे कलहोपाख्याने गणपूर्वपुण्यवर्णनं नाम

दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

कृष्णावेण्याद्यनेकनदीनां माहात्म्यवर्णनम्

पृथुरुवाच ।

कृष्णावेण्यातटाद्यस्माच्छिवविष्णुगणैःपुरा । वणिक्छरीरात्कलहानिर्गताकथितात्वया

प्रभावोऽयं तयोर्नद्योःकि वा क्षेत्रस्य तस्य वा ।

तन्मे कथय धर्मज्ञ ! विस्मयोऽत्र महान्मम ॥ २ ॥

नारद उवाच ।

कृष्णा कृष्णतनुःसाक्षाद्वेण्या देवो महेश्वरः । तत्संगमप्रभावं तु नालं वक्तुं चतुर्मुखः

तथापि तत्समुत्पत्तिं कीर्तयिष्यामि तच्छृणु । चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वं मनोर्देवःपितामहः

सह्याद्रिशिखरेरम्ये यजनायोद्यतोऽभवत् । स कृत्वा यज्ञसंभारान्सर्वदेवगणैर्वृतः ॥५॥

युक्तो हरिहराभ्यां च तद्गिरेःशिखरं ययौ । भृग्वादयो मुनिगणा मुहूर्ते ब्रह्मदैवते ॥

तस्य दीक्षा विधानाय समाजंतत्र चक्रिरे । अथ ज्येष्ठां स्वरांपत्नीं विष्णुराह्वयतद्विजैः

सा शनैरायया तावद् भृगुर्विष्णुमुवाच ह ॥ ७ ॥

भृगुरुवाच ।

विष्णो ! स्वरा त्वयाऽऽहूता आयाति न हि सत्वरा ।

मुहूर्तातिक्रमश्चायं कार्यो दीक्षाविधिःकथम् ॥ ८ ॥

विष्णुरुवाच ।

नायाति चेत्स्वरा शीघ्रं गायत्र्यत्र विधीयताम् ।

एषाऽपि न भवत्यस्य भार्या किं पुण्यकर्मणि ॥ ९ ॥

नारद उवाच ।

एवमेव हि रुद्रोऽपि विष्णोर्वाक्यममोदत । तच्छ्रुत्वा स भृगुर्वाक्यंगायत्रीं ब्रह्मणस्तदा

निवेश्य दक्षिणे भागे दीक्षाविधिमथाऽकरोत् ।

यावद्दीक्षाविधिं तस्य विधेश्चक्रुर्विधानतः ॥ ११ ॥
तावदभ्याययौ तत्र स्वरा यज्ञस्थले नृप ! ।
ततस्तां दीक्षितां दृष्ट्वा गायत्रीं ब्रह्मणा सह ॥ १२ ॥
सपत्नीर्षापरा क्रोधात्स्वरा वचनमब्रवीत् ॥ १३ ॥

स्वरोवाच ।

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमः ।
त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्षं मरणं भयम् १४ ॥
ममाऽऽसने कनिष्ठेयं भवद्भिः सन्निवेशिता । तस्मात्सर्वे जडीभूता*नानारूपा भविष्यथः
इयं च दक्षिणे भागे ह्युपविष्टा मदासने । तस्माल्लोकैः सदाऽदृश्यातनुर्वहतु निम्नगा ॥

नारद उवाच ।

ततस्तच्छापमाकर्ण्य गायत्री कम्पिता तदा ।
समुत्थायाऽशपद्देवैर्वार्यमाणाऽपि तां स्वराम् ॥ १७ ॥
तव भर्ता यथा ब्रह्मा ममाप्येष तथा खलु । वृथाऽशपस्त्वं यस्मान्मां भवत्वमपि निम्नगा

नारद उवाच ।

ततो हाहाकृताः सर्वे शिवविष्णुमुखाः सुरा । प्रणम्यदण्डवद्भूमौ स्वरां तत्र व्यजिज्ञपन्

देवा ऊचुः ।

देवि सर्वे वयंशप्ता ब्रह्माद्या यत्त्वयाऽधुना । यदि सर्वे जडीभूता भविष्यामोऽत्रनिम्नगाः
तदा लोकत्रयं ह्येतद्विनाशं यास्यति ध्रुवम् ।
अविवेकः कृतस्तस्माच्छापोऽयं विनिवर्त्यताम् ॥ २१ ॥

स्वरोवाच ।

नार्चितो हि गणाध्यक्षो यज्ञादौ यत्सुरोत्तमाः ।
तस्माद्विघ्नं समुत्पन्नं मत्क्रोधजमिदं खलु ॥ २२ ॥
नाऽपि मद्वचनं ह्येतदसत्यं जायते खलु । तस्मात्स्वांशैर्जडीभूता यूयं भवत निम्नगाः

---

*नदीरूपा इत्यपि पाठः वेङ्कटेश्वर प्रेस पुस्तकान्तरे

आवामपि सपत्न्यौ च स्वांशाभ्यामपि निम्नगे ।
भविष्यावोऽत्र वै देवाः पश्चिमाभिमुखावहे ॥ २४ ॥

नारद उवाच ।

इति तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । जडीभूताभवन्नद्यःस्वांशैररेव तदा नृप ! ॥
तत्र विष्णुरभूत्कृष्णा वेण्या देवो महेश्वरः । ब्रह्माककुद्मती गङ्गा पृथगेवाभवत्तदा ॥२६
देवाः स्वानपि तानंशाञ्जडीकृत्य विचिक्षिपुः ।
सह्याद्रिशिखरेभ्यस्ताः पृथगासन्सुनिम्नगाः ॥ २७ ॥
देवांशै पूर्ववा हिन्यो बभूवुः पश्चिमावहाः । तत्पत्न्यंशैःपृथक्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः ॥
गायत्री च स्वरा चैव पश्चिमाभिमुखे तदा । योगेनाभवतां नद्यौ सावित्रीति प्रथां गते
ब्रह्मणा स्थापितौ तत्र यज्ञे हरिहरावुभौ । महाबलातिवलिनौ नाम्ना देवौ बभूवतुः ॥
तयोर्नद्योस्तु माहात्म्यंनाहं वक्तुं क्षमो नृप ! । ययुर्ब्रह्मादयोदेवाःस्वांशैस्तिष्ठन्ति चापगाः
कृष्णोद्भवं पापहरं परं यः शृणोति यःश्रावयते च भक्त्या ।
स्यात्तस्य पुंसः सकलं फलं यत्तद्दर्शनस्नानसमुद्भवं फलम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्त्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे कृष्णावेण्यामाहात्म्यवर्णनं नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

एकादशीमाघकार्त्तिकतुलसीद्वारकानां भगवत्प्रियत्वम्।

श्रीकृष्ण उवाच ।

इति तद्वचनं श्रुत्वा पृथुर्विस्मितमानसः । संपूज्य नारदं भक्त्या विससर्ज तदा प्रिये !
तस्माद्व्रतत्रयं ह्येतन्ममातीवप्रियङ्करम्। माघकार्त्तिकयोर्यद्वत्तथैवैकादशीव्रतम् ॥ २ ॥

वनस्पतीनां तुलसी मासानां कार्त्तिकः प्रियः ।
एकादशी तिथीनां च क्षेत्राणां द्वारका मम ॥ ३ ॥
एतेषां सेवनं यस्तु करोति च जितेन्द्रियः । स मे वल्लभतां याति न तथा यज्ञादिभिः
पापेभ्यो न भयं तेन कर्तव्यं नियमादपि । एतेषां सेवनं कान्ते ! कुर्वता मत्प्रसादतः ॥

सत्यभामोवाच ।

विस्मापनीयं तन्नाथ यत्त्वया कथितं मम । परदत्तेन पुण्येन कलहा मुक्तिमागता ॥ ६॥
इत्थं प्रभावो मासोऽयं कार्त्तिकस्ते प्रियङ्करः ।
स्वामिद्रोहादि पापानि स्नानदानैर्गतानि यत् ॥ ७ ॥
दत्तं च लभते पुण्यं यत्परेण कृतं विभो ! । अदत्तं केनमार्गेण लभते चापि मानवः ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

अदत्तान्यपि पुण्यानि पापानि च यथा नरैः । प्राप्यन्ते कर्मणा येन तद्यथावन्निशामय
देशग्रामकुलानिस्युर्भागभाञ्जि कृतादिषु । कलौ तु केवलं कर्ता फलभुक्पुण्यपापयोः ॥
अकृतेऽपि हि संसर्गे व्यवस्थेयमुदाहृता ।
संसर्गात्पुण्यपापानि यथा यान्ति निबोध तत् ॥ ११ ॥
एकत्रमैथुनाद्यानादेकपात्रस्थभोजनात् । फलार्धं प्राप्नुयान्मर्त्यो यथावत्पुण्यपापयोः
अध्यापनाद्याजनाद्वाप्येकपङ्क्त्यशनादपि । तुर्यांशं पुण्यपापानां नित्यं प्राप्नो त मानवः
एकासनादेकयानान्निःश्वासस्याङ्गसंगतः । षडंशफलभागीस्यन्नियतं पुण्यपापयोः ॥
स्पर्शनाद्भाषणाद्वापि परस्य स्तवनादपि । दशांशं पुण्यपापानां नित्यः प्राप्नोति मानवः
दर्शनश्रवणाभ्यां च मनोध्यानात्तथैव च । परस्य पुण्यपापानां शतांशं प्राप्नुयान्नरः ॥
परस्यनिन्दां पैशुन्यं धिक्कारं च करोति यः ।
तत्कृतं पातकं प्राप्य स्वपुण्यं प्रददति सः ॥ १७ ॥
कुर्वतःपुण्यकर्माणि सेवां यःकुरुते नरः । पत्नीभृतकशिष्येभ्यो यदन्यःकोऽपि मानवः
तस्य सेवानुरूपेण द्रव्यंकिंचिन्न दीयते । सोऽपि सेवानुरूपेण तत्पुण्यफलभाग्भवेत्
एकपङ्क्त्यश्नतां यस्तु लङ्घयेत्परिवेषणम् । तस्य पापषडंशं तु लभेद्वै परिवेषकः ॥२०॥

कामसन्ध्यादिकं कुर्वन्यःस्पृशेद्वा प्रभाषते । स पुण्यकर्मषष्ठांशं दद्यात्तस्मै सुनिश्चितम्
धर्मोद्देशेन यो द्रव्यमपरं याचते नरः । तत्पुण्यकर्मजं तस्य धनदस्त्वाप्नुयात्फलम् ॥
अपहृत्य परद्रव्यं पुण्यकर्म करोति यः । कर्मकृत्पापभाक्तत्र धनिनस्तद्भवं फलम् ॥२३
नापनुद्य ऋणं यस्तु परस्य म्रियते नरः । धनीतत्पुण्यमाधत्ते स्वधनस्याऽनुरूपतः ॥

बुद्धिदस्त्वनुमन्ता च यश्चोपकरणप्रदः ।
बलकृच्चापि षष्ठांशं प्राप्नुयात्पुण्यपापयोः ॥ २५ ॥
प्रजाभ्यःपुण्यपापानां राजा षष्ठांशमुद्धरेत् ।
शिष्याद्गुरुःस्त्रियो भर्त्ता पिता पुत्रात्तथैव च। २६ ॥

स्वपतेरपि पुण्यस्य योषिदर्धमवाप्नुयात् । चित्तस्यानुव्रता शश्वद्वर्तते तुष्टिकारिणी
परहस्तेन दानादि कुर्वतःपुण्यकर्मणि । विना भृतकपुत्राभ्यां कर्त्ता षष्ठांशमुद्धरेत् ॥

वृत्तिदो वृत्तिसंभोक्तुःपुण्यमष्टांशमुद्धरेत् ।
आत्मनो वा परस्याऽपि यदि सेवां न कारयेत् ॥ २९ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

इत्थं ह्यदत्तान्यपि पुण्यपापान्यायान्ति नित्यं परसञ्चितानि ।
कलौ त्वयं वै नियमो न कार्यःकर्तैवभोक्ता खलु पुण्यपापयोः
शृणुष्व चेमं इतिहासमग्र्यं पुराभवं पुण्यमतिप्रदं च ॥ ३० ॥

इति श्रीपाद्मेमहापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्त्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे पुण्यपापांशकथनं नाम द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ११२ ॥

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

कार्त्तिकव्रतप्रशंसायां धनेश्वरविप्रवृत्तान्तवर्णनम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

पुराऽवन्तीपुरे वासी विप्र आसीद्धनेश्वरः । ब्रह्मकर्मपरिभ्रष्टःपापनिष्ठःसुदुर्मतिः ॥ १ ॥
रसकम्बलचर्मादिविक्रयानृतवर्त्तनः । स्तेयवेश्यासुरापानद्यूतसंसक्तमानसः ॥ २ ॥
देशाद्देशान्तरं गच्छन्क्रयविक्रयकारणात् । माहिष्मतीं पुरीं यातःकदाचित्स धनेश्वरः
महिषेण कृतापूर्वं तस्मान्माहिष्मती स्मृता । यस्यां वप्रतटाभाति नर्मदा पापनाशिनी
कार्त्तिकव्रतिनस्तत्र नानाग्रामागतान्नरान् । स दृष्ट्वा विक्रयं कुर्वन्मासमेकमुवासह
स नित्यं नर्मदातीरे भ्रमन्विक्रयकारणात् । ददर्श ब्राह्मणान्स्नाताञ्जपदेवार्चनेरतान् ॥
कांश्चित्पुराणं पठतःकांश्चित्तच्छ्रवणेरतान् । नृत्यगायनवादित्रविष्णुस्तवनतत्परान् ॥
विष्णुमुद्राङ्किताकांश्चिन्माला तुलसिधारिणः। ददर्श कौतुकाविष्टस्तत्र तत्र धनेश्वरः ॥

नित्यं परिभ्रमंस्तत्र दर्शनस्पर्शभाषणात् ।
वैष्णवानांःतथा विष्णोर्नाम संश्रावितोऽभवत् ॥ ६ ॥
एवं मासंस्थितःसोऽथ कार्त्तिकोद्यापने विधौ ।
क्रियमाणे ददर्शाऽसौ भक्तैर्जागरणंहरेः ॥ १० ॥

पौर्णमास्यांततोऽपश्यद्विविधं पूजनादिकम् । दक्षिणाभोजनाद्यं च दीपदानं व्रतस्थितैः
ततोऽर्कास्तमयेचैवं दीपोत्सवविधिं तदा । क्रियमाणं ददर्शाऽसौ प्रीत्यर्थं त्रिपुरद्विषः

त्रिपुराणां कृतो दाहो यतस्तस्यां शिवेन तु ।
अतस्तु क्रियते तस्यां तिथौ भक्तैर्महोत्सवः ॥ १३ ॥

मम रुद्रस्य यःकश्चिदन्तरं परिकल्पयेत् । तस्य पुण्यक्रियाःसर्वा निष्फलाःस्युर्न संशयः
तत्र नृत्यादिकं पश्यन्बभ्राम स धनेश्वरः । तावत्कृष्णाहिनादिष्टो विकलःस पपात ह

जनास्तं पतितं वीक्ष्य पर्यवव्रुःऽकृपान्विताः ।

तुलसीमिश्रितैस्तोयैस्तन्मुखं सिषिचुस्तदा ॥ १६ ॥
अथ देहे परित्यक्ते तं बद्ध्वा यमकिङ्कराः ।
बाध्यमानं कशाघातैर्निन्युःसंयमिनीं रुषा ॥ १७ ॥
चित्रगुप्तस्तु तं दृष्ट्वा निर्भर्त्स्याविदयत्तदा । यमायतेन बाल्यात्तु कर्मयद्दुष्कृतं कृतम्
चित्रगुप्त उवाच ।
नैवास्य दृश्यते किंचिदाबाल्यात्सुकृतं क्वचित् । दुष्कृतं शक्यते वक्तुं शतवर्षैर्नभास्करे
पापमूर्तिरयं दुष्टःकेवलं दृश्यते विभो । तस्मादाकल्पमर्यादं निरये परिपच्यताम् ॥२०॥
श्रीकृष्ण उवाच ।
निशम्येत्थं वचःक्रोधाद्यमः प्राह स्वकिङ्करान् ।
दर्शयन्नात्मनो रूपं कालाग्निसदृशप्रभम् ॥ २१ ॥
यम उवाच ।
भोःप्रेतप नयस्वैनं विध्यमानं स्वमुद्गरैः । कुम्भीपाके क्षिपस्वाशु दुष्टं कल्मषदर्शनम्
श्रीकृष्ण उवाच ।
ततो मुद्गरनिर्भिन्नमूर्धानं प्रेतपोऽनयत् । कुम्भीपाकेऽक्षिपच्चाशु तैलक्वथनशब्दिते ॥
यावत्क्षिप्तस्तु तत्रासौतावच्छीतलतां ययौ । कुम्भीपाके यथा वह्निः प्रह्लादक्षेपणात्पुरा
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं प्रेतपो विस्मयान्वितः । वेगादागत्य तत्सर्वं यमायाकथयत्तदा ॥
यमस्तु कौतुकं श्रुत्वा प्रेतपेन निवेदितम् ।
आः किमेतदिति प्रोच्य सम्यगेतद्व्यचारयत् ॥ २६ ॥
तावदभ्यागतस्तत्र नारदः प्रहसंस्त्वरन् । यमेन पूजितः सम्यक्तं दृष्ट्वा वाक्यमब्रवीत्
नारद उवाच ।
नैवायं निरयान्भोक्तुं क्षमः सवितृनन्दन ? । यस्मादेतस्य संजातं कर्म यन्निरयापहम् ॥
यः पुण्यकर्मणां कुर्याद्दर्शनस्पर्शभाषणम् । तत्षडंशमवाप्नोति पुण्यस्य नियतं नरः ॥
असङ्ख्यातैस्तु संसर्गैः कृतवानेष यद्वरैः ।
कार्त्तिकव्रतिभिर्मासं तस्मात् पुण्यांशभागयम् ॥ ३० ॥

परिचर्याकरस्तेषां संपूर्णव्रतपुण्यभाक् । अतोऽस्योर्जव्रतोद्भूतपुण्यसङ्ख्या न विद्यते

कार्त्तिकव्रतिनां पुंसां पातकानि महान्त्यपि ।
नाशयत्येव सर्वाणि विष्णुः सद्भक्तवत्सलः ॥ ३२ ॥
अन्ते च नार्मदैस्तोयैस्तुलसीमिश्रितैस्त्वयम् ।
वैष्णवैःस्नापितो विष्णोर्नामसंश्रावितोऽपि च ॥ ३३ ॥

तस्मान्निहतपापोऽयं सद्गतिं प्राप्तुमर्हति । वैष्णवानुग्रहीयस्मान्नरके नैव पच्यते ॥

आर्द्रैः शुष्कैर्यथापापैर्निरये भोगसंनिधिः ॥ ३५ ॥
प्राप्यते सुकृतैस्तद्वत्स्वर्गभोगस्य संनिधिः ।
तस्मादकामपुण्यो हि यक्षयोनिस्थितस्त्वसौ,
विलोक्य नरकान्सर्वान्पापभोगमवाप्नुयात् ॥ ३६ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

इत्युक्त्वा गतवति नारदेऽथ सौरिस्तद्वाक्यश्रवणविबुद्धतत्सुकर्मा ।
विप्रं तं पुनरनयत्स्वकिङ्करेण तान्सर्वान्निरयगणान्प्रदर्शयिष्यन् ॥ ३७ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे [कार्तिक-माहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे धनेश्वरोपाख्याने त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

———

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

धनेश्वरस्यधनयक्षेति नाम्ना कुबेरानुगत्वप्राप्तिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच ।

ततो धनेश्वरं नीत्वा निरयान्प्रेतपोऽब्रवीत् । प्रदर्शयिष्यंस्तान्सर्वान्यमस्यानुचरस्तदा

प्रेतप उवाच ।

पश्येमान्निरयान्घोरान्धनेश्वरमहाभयान् । येषु पापकरा नित्यं पच्यन्ते यमकिङ्करैः ॥

तप्तवालुकनामायं निरयो घोरदर्शनः। यस्मिन्नेतेदग्धदेहाःक्रन्दन्ते पापकारिणः ॥ ३॥
अतिथीन्वैश्वदेवान्ते क्षुत्क्षामानागतान्गृहे।
येनार्चन्ति नरास्ते हि पच्यन्ते स्वेन कर्मणा ॥ ४ ॥
गुर्वग्निब्राह्मणान्देवांस्तथा मूर्धाभिषिक्तकान्।
ताडयन्ति पदा ये वै ते निर्दग्धाङ्घ्रयस्त्विमे ॥ ५ ॥
षड्भेदस्त्वेष निरयो नानापापैः प्रपद्यते।
तथैव चान्धतामिस्रो द्वितीयो निरयो महान् ॥ ६ ॥
पश्यसूचीमुखैर्देहो भिद्यते पापकर्मणा। क्रिमिभिर्घोरवक्त्रैश्च तत्संपर्कागमैर्द्विज ॥७॥
असावपि स्थितः षोढा श्वकाकमृगपक्षिभिः।
परमर्मभिदो मर्त्याः पच्यन्ते तेषु पापिनः ॥ ८ ॥
तृतीयः क्रकचो ह्येष निरयो घोरदर्शनः। यत्रेमे क्रकचैर्मर्त्याः पाट्यन्ते पापकारिणः ॥
असिपत्रवनाद्यैस्तु षट्प्रकारो व्यवस्थितः। पत्नीपुत्रादिभिर्येवै वियोगंकारयन्ति हि ॥
इष्टैरन्यैरपि परान्पच्यन्ते त इमे नराः। असिपत्रैश्छिद्यमानाश्छेदभीत्या पलायिताः ॥
पच्यन्ते पापिनः पश्यक्रन्दमाना इतस्ततः। अर्गलाख्यो महाघोरश्चतुर्थोनिरयो ह्ययम्
पश्य नानाविधैः पाशैराबध्य यमकिङ्करैः। मुद्गराद्यैर्वध्यमानाः क्रन्दन्ते ते च पापिनः
सज्जनान्ब्राह्मणाद्यांश्च विरुन्धतीह ये नराः।
कण्ठग्रहाद्यैस्ते पापाः पच्यन्ते यमकिङ्करैः ॥ १४ ॥
असावपि हि षड्भेदो वध्रभेदादिभिःस्थितः।
कूटशाल्मलिनामानं निरयं पश्य पञ्चमम् ॥ १५ ॥
यत्राङ्गारनिभा एते शाल्मल्याद्याःस्थिता द्विज !।
यत्र षोढा विपच्यन्ते यातनाभिरिमे नराः ॥ १६ ॥
परदारपरद्रव्य परद्रोहरताः सदा। रक्तपूयमिमं पश्य षष्ठं निरयमद्भुतम् ॥ १७ ॥
अधोमुखा विपच्यन्ते यत्र पापकृतो नराः।
अभक्ष्यभक्षका निन्दा पैशुन्यादिरता इमे ॥ १८ ॥

भज्यमाना वध्यमानाः क्रन्दन्ते भैरवान्स्वरान् ।
षट्प्रकारैर्विगन्धाढ्यैरसावपि च संस्थितः ॥ १९ ॥

कुम्भीपाकः सप्तमोऽयं निरयो घोरदर्शनः । षोढा तैलादिभिर्द्रव्यैर्धनेश्वर विलोकय
महापातकिनो यत्र क्वथ्यन्ते यमकिङ्करैः । बहुन्यब्दसहस्राणि सोन्मज्जननिमज्जनैः ॥

चत्वारिंशन्मितानेतान्द्व्यधिकान्पश्य रौरवान् ।
अकामात्पातकं शुष्कं कामादार्द्रमुदाहृतम् ॥ २२ ॥
आर्द्रशुष्कादिभिःपापैर्द्विप्रकारानवस्थितान् ।
चतुरशिति संख्याकैः पृथग्भेदैरवस्थितम् ॥ २३ ॥

यत्प्रकीर्णमपाङ्क्तेयं मलिनीकरणं तथा । ज्ञातिभ्रंशकरं तद्वदुपपातकसंज्ञकम् ॥ २४ ॥
अतिपापं महापापं सप्तधापातकं स्मृतम् । एभिःसप्तसु पच्यन्ते निरयेषु यथाक्रमम् ॥
कार्त्तिकव्रतिभिर्यस्मात्संसर्गो ह्यभवत्तव । तत्पुण्योपचयादेते निर्हृता निरयाः खलु ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

दर्शयित्वेति निरयान्प्रेतपस्तमथाहरत् । धनेश्वरं यक्षलोकं पश्चादासीत्स तत्र हि ॥
धनदस्यानुगः सोऽयं धनयक्षेति सस्मृतः । यदाख्ययाऽकरोत्तीर्थमयोध्यायांतु गाधिजः

एवं प्रभावः खलु कार्त्तिकोऽयं मुक्तिप्रदो मुक्तिकरश्च यस्मात् ।
प्रयात्यनेकार्जितपातकोऽपि व्रतस्थसंदर्शनतोऽपि मुक्तिम् ॥ २९ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्त्तिक-माहात्म्ये धनेश्वरोपाख्याने चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

अश्वत्थवटप्रशंसावर्णनम् ।

सूत उवाच ।

इत्युक्त्वा वासुदेवोऽसौ सत्यभामामतिप्रियाम् ।
सायं सन्ध्यादिकं कर्तुं जगाम जननीगृहम् ॥ १ ॥
एवं प्रभावः प्रोक्तोऽयं कार्त्तिकः पापनाशनः ।
विष्णुप्रियकरो नित्यं भुक्तिमुक्तिप्रदः सदा ॥ २ ॥
हरिजागरणं प्रातः स्नानं तुलसिसेवनम् । उद्यापनं दीपदानं व्रतान्येतानि कार्त्तिके ॥
पञ्चकैर्व्रतकैरेभिः सम्पूर्णं कार्त्तिकव्रतम् । फलंप्राप्नोति तत्प्रोक्तं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥

ऋषय ऊचुः ।

विष्णोः प्रियोऽतिफलदः प्रोक्तोऽयं रोमहर्षणे ! ।
कार्त्तिकस्य विधिः सम्यक्पावनः पापनाशनः ॥ ५ ॥
अवश्यमेवकर्त्तव्यः प्राप्य दुःखनिवारणः । मोक्षार्थिभिर्नरःसम्यग्भोगकामैरथापिवा ॥
एवं स्थिते यथा कश्चिद्व्रतस्थः सङ्कटे स्थितः ।
दुर्गारण्यस्थितो वाऽपि व्याधिभिः परिपीडितः ॥
कथं तेन प्रकर्तव्यं कार्तिकव्रतकं शुभम् ॥ ७ ॥

सूत उवाच ।

यस्मादत्यन्तफलदं कर्तव्यं तु यथानरैः । तत्सर्वं कथयिष्येऽहं शृणुध्वं मुनिपुङ्गवाः ॥
विष्णोःशिवस्य वा कुर्यादालये हरिजागरम् ।
शिवविष्णुग्रहाभावे सर्वदेवालयेष्वपि ॥ ९ ॥
दुर्गारण्यस्थितो यश्च यदि वा यद्गतो भवेत् ।
कुर्यात्तदाश्वत्थमूले तुलसीनां वनेष्वपि ॥ १० ॥

विष्णुनामप्रधानानां गायनाद्विष्णुसन्निधौ । गोसहस्रप्रदानस्य फलंप्राप्नोतिमानवः
वाद्यकृत्पुरुषश्चापि वाजपेयफलं लभेत् । सर्वतीर्थावगाहोत्थं नर्तकः फलमाप्नुयात् ॥
सर्वमेतल्लभेत्पुण्यं तेषां तु द्रव्यदः पुमान् । प्रशंसादर्शनाभ्यां हि तत्षडंशमवाप्नुयात् ॥

आपद्गतो यदाऽप्यम्भो न लभेत्स्नपनाय सः ।
व्याधितो वा पुनः कुर्याद्‌ विष्णोर्नामापमार्जनम् ॥ १४ ॥
उद्यापनविधिं कर्तुं न शक्तो यो व्रते स्थितः ।
ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या व्रतसम्पूर्ति हेतवे ॥ १५ ॥
यस्मादत्यन्तफलदो न त्याज्यः सर्वदा नरैः ।
अव्यक्तरूपिणो विष्णोः स्वरूपं ब्राह्मणा भुवि ॥ १६ ॥

तत्संतुष्ट्या सुसंतुष्टः सर्वदास्यां न संशयः । अशक्तो दीपदाने तु परदीपं प्रबोधयेत्
तेषां वा रक्षणं कुर्याद्वातादिभ्यः प्रयत्नतः । अभावे तुलसीनां तु पूजयेद्वैष्णवं द्विजम्

यस्मात्संनिहितो विष्णुः स्वभक्तेष्वेव सर्वदा ।
सर्वाभावे व्रती कुर्याद्‌ ब्राह्मणानां गवामपि ॥ १९ ॥
सेवां वाश्वत्थवटयोर्व्रतसम्पूर्तिहेतवे ॥ २० ॥

ऋषय ऊचुः ।

कथं त्वयाऽश्वत्थवटौ गोब्राह्मणसमौ कृतौ ।
सवभ्योऽपि तरुभ्यस्तौ कस्मात्पूज्यतरौ कृतौ ॥ २१ ॥

सूत उवाच ।

अश्वत्थरूपी भगवान्विष्णुरेव न संशयः । रुद्ररूपीवटस्तद्वत्पालाशो ब्रह्मरूपधृत् ॥२२॥
दर्शनं पूजनं सेवा तेषां पापहरा स्मृता । दुःखापद्व्याधिदुष्टानां विनाशे करणं ध्रुवम्

ऋषय ऊचुः ।

कथं वृक्षत्वमापन्ना ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । एतत्कथय सर्वज्ञ संशयोऽत्र महान्हि नः ॥

सूत उवाच ।

पार्वतीशिवयोर्देवैः सुरतं कुर्वतोः किल । अग्निर्ब्राह्मणरूपेण प्रेषितो विघ्नकृत्पुरा ॥

ततः सा पार्वती क्रुद्धा शशाप त्रिदिवौकसः। रतोत्सवसुखभ्रंशात्कम्पमाना रुषा तदा

पार्वत्युवाच ।

कृमिकीटादयोऽप्येते जानन्ति सुरतं सुखम्। तद्विघ्नकरणाद्देवा ह्युद्भिज्जत्वमवाप्स्यथ

सूत उवाच ।

एवं सा पार्वती देवानशपत्क्रुद्धमानसा तस्माद्वृक्षत्वमापन्नाः सर्वे देवगणाः किल

तस्मादिमौ विष्णुमहेश्वरावुभौ बभूवतुर्बोधिवटौ मुनीश्वराः।

बोधिस्त्वगादार्किदिनेऽस्पृशत्वमस्पृश्यतामर्कजविष्टियोगात् ॥ २६ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्त्तिक-माहात्म्येऽश्वत्थवटप्रशंसनं नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

———

षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

अश्वत्थवृक्षस्यास्पृश्यत्ववर्णनेऽलक्ष्मीवृत्तान्तवणनम्।

ऋषय ऊचुः।

अस्पृश्यस्त्वं कथं यातः सूत! बोधितरुस्त्वयम्।

स्पृश्यस्त्वं च कथं प्राप्तस्तथा च शनिवासरे। एतद्विस्तरतः सर्वं वक्तुमर्हति नो भवान्

सूत उवाच ।

समुद्रमथनाद्यानि रत्नान्यापुः सुरेश्वराः। श्रियं च कौस्तुभं तेषां विष्णवे प्रददुः सुराः

यावदङ्गीचकारासौ लक्ष्मीं भार्यार्थमात्मनः।

तावद्विज्ञापयामास लक्ष्मीस्तं चक्रपाणिकम् ॥ ३ ॥

लक्ष्मीरुवाच ।

असंस्कृत्य कथं ज्येष्ठां त्वं कनिष्ठां प्रणीयसे। तस्मान्ममाग्रजामेतामलक्ष्मीं मधुसूदन

विवाह्य नय मां पश्चादेष धर्मः सनातनः ॥ ५ ॥

सूत उवाच ।

इति तद्वचनं श्रुत्वा स विष्णुर्लोकभावनः । उद्दालकाय मुनये सुदीर्घतपसे तदा ॥ ६ ॥

आत्मवाक्यानुरोधेन तामलक्ष्मीं ददौ किल ।

स्थूलास्यां शुभ्रदशनां राजतीं बिभ्रतीं तनुम् ॥ ७ ॥

विततां रक्तनयनां रूक्षपिङ्गशिरोरुहाम् । समुनिर्विष्णुवाक्यात्तामङ्गीकृत्य स्वमाश्रमम् ।

वेदध्वनिसमायुक्तमानिनाय च धर्मवित् । होमधूमसुगन्धाढ्यं विद्याघोषविनादितम् ॥

आश्रमं तं समालोक्य व्यथिता साऽब्रवीदिदम् ॥ ९ ॥

ज्येष्ठोवाच ।

न हि वासोऽनुरूपोऽयं वेदध्वनियुतो मम ।

नात्रागमिष्ये भो ब्रह्मन्नयस्वान्यत्र मा चिरम् ॥ १० ॥

उद्दालक उवाच ।

कथं नायासि किं वात्र वर्त्ततेऽसंमतंतव । तव योग्या च वसतिः काभवेच्च वदस्वतत्

ज्येष्ठोवाच ।

वेदध्वनिर्भवेद्यस्मिन्नतिथीनां च पूजनम् । यज्ञदानादिकं वापि नैव तत्र वसाम्यहम् ॥

परस्परानुरागेणदाम्पत्यं यत्र वर्तते । पितृदेवार्चनं यत्र नैव तत्र वसाम्यहम् ॥ १३ ॥

दुरोदररतायत्र परद्रव्यापहारिणः । परदाररताश्चापि तत्र स्थाने रतिर्मम ॥ १४ ॥

गोवधो मद्यपानं च यत्र संजायतेऽनिशम् ।

ब्रह्महत्यादि पापानि तस्मिन्स्थाने रतिर्मम ॥ १५ ॥

वृद्धसज्जनविप्राणां यत्र स्यादपमाननम् । निष्ठुरं भाषणं यत्र तत्र नित्यं वसाम्यहम् ॥

सूत उवाच ।

इति तद्वचनं श्रुत्वा विषण्णवदनोऽभवत् ।

उद्दालकमुनिर्विष्णोर्वाक्यं स्मृत्वा न चोचिवान् ॥ १७ ॥

सोऽगच्छद्यत्र तत्रास्य पूजामालोक्य साऽब्रवीत् ।

नायामीति ततः सोऽपि भ्रमादत्यातुरोऽभवत्,

उद्दालकस्ततो वाक्यं तामलक्ष्मीमुवाचह ॥ १८ ॥

उद्दालक उवाच ।

अश्वत्थवृक्षमूलेऽस्मिन्नलक्ष्मीः स्थीयतां क्षणम् ।
आवासस्थानमालोक्य यावदायाम्यहं पुनः ॥ १९ ॥

सूत उवाच ।

इति तां तत्र संस्थाप्य जगामोद्दालकस्तदा । प्रतीक्षन्तीचिरं तत्र यदा तं न ददर्श सा तदा रुरोदकरुणं भर्तृत्यागेन दुःखिता । तत्रस्थां रुदतीं लक्ष्मीर्वैकुण्ठभवनेऽशृणोत्
तदा विज्ञापयामास विष्णुमुद्विग्नमानसा ॥ २२ ॥

लक्ष्मीरुवाच ।

स्वामिन्मद्भगिनीज्येष्ठा भर्तृत्यागेनदुःखिता ।
तामाश्वासयितुं याहि कृपालोयद्यहं प्रिया ॥ २३ ॥

सूत उवाच ।

लक्ष्म्यासहततो विष्णुस्तत्रागच्छत्कृपान्वितः । आश्वासयदलक्ष्मींतामिदं वचनमब्रवीत्

श्रीविष्णुरुवाच ।

अश्वत्थवृक्षमासाद्य सदाऽलक्ष्मीःस्थिराभव । ममांशसंभवो ह्येषआवासस्ते शनिंविना
शनौ ते भगिनी ज्येष्ठे ! लक्ष्मीरत्रागमिष्यति ।
तस्मादश्वत्थवृक्षोऽसौ शनौपूज्यो विशेषतः ॥ २६ ॥
प्रत्येऽहं येऽर्चयिष्यन्ति त्वां ज्येष्ठां गृहधर्मिणः ।
तेष्वियं श्रीःकनिष्ठा ते भगिनी निश्चलास्तु वै ॥ २७ ॥

सूत उवाच ।

इत्यूर्जस्य च माहात्म्यं ये शृण्वन्तिपठन्ति च । तेषां विष्णुपुरेवासो भवेदाभूतसंप्लवम्
रोगापहं पातकनाशकृत्परं सुबुद्धिदं पुत्रधनादिसाधनम् ।
मुक्तेर्निदानं न हि कार्त्तिकव्रताद्विष्णुप्रियादन्यदिहास्ति भूतले ॥ २९ ॥
विष्णुप्रियं सकलकल्मषनाशनं च सत्पुत्रपौत्रधनधान्यसमृद्धिकारि ।

ऊर्जव्रतं सनियमं कुरुते मनुष्यः किं तस्य तीर्थपरिशीलनसेवया च ॥ ३० ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां षष्ठेउत्तरखण्डे कार्त्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादेऽलक्ष्म्युपाख्यानं नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥

———

सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

शिवषडानन संवादे कार्तिकस्नानमाहात्म्यवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

इति सर्वं समाकर्ण्य सत्राजितसुता तदा । हरेर्वाक्यं महाभागा सत्यावचनमब्रवीत् ॥

सत्योवाच ।

कार्त्तिकस्य च माहात्म्यं न श्रुतं विस्तरात्प्रभो ।
सर्वेषामेव मासानां कार्त्तिकप्रवरः कथम् ॥ २ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

साधु पृष्टं त्वया सत्ये कार्त्तिकव्रतमादरात् । शौनकाय पुराप्रोक्तं सुतेन सुमहात्मना

सूत उवाच ।

श्रूयतां तत्प्रवक्ष्यामि एतत्प्रश्नोत्तरं शुभम् । ईश्वरेण पुराप्रोक्तं पृच्छते षण्मुखाय वै ॥

कार्त्तिकेय उवाच ।

बहूनि पद्मनाभस्य रहस्यानि श्रुतानि च । यथा हि प्रोच्यमानानि वैष्णवेन त्वयाप्रभो
संसारसागरे मग्ना दुःखोरुलहरीवृते । तेषामुत्तारणार्थाय कथयस्व प्रयत्नतः ॥ ६ ॥
कार्त्तिकस्य विधिश्चैव स्नानस्यवदतांवर । येन दुःखाम्बुधिं तातसंतरिष्यन्ति मानवाः
फलं वैष्णवधर्मस्य कथयस्व सुविस्तरम् । येन धर्मप्रभावेन पदं गच्छन्ति वैष्णवम्

दीपदानस्य माहात्म्यं मुनिपुष्पस्य सुव्रत ।
गोपीचन्दनमाहात्म्यं तुलस्यास्तु तथा विभो ! ॥ ९ ॥

मालतीपुष्पमाहात्म्यंवारिजानांतथा वद। धात्रीफलानांमाहात्म्यं-तथा दमनकस्यच
केतकीपुष्पमाहात्म्यं नैवेद्यस्य परन्तप। तीर्थोदकस्य माहात्म्यं माघस्नानफलं विभो
फलंब्रूहि सुरश्रेष्ठ ब्रह्मपत्रेषु भोजनात्। नीराजनफलं स्थाणो परदीपप्रबोधनात् ॥१२

पुष्करक्षेत्रमाहात्म्यं शूकरस्य तथा विभो।
शालग्रामस्य माहात्म्यं स्वस्तिकस्य विधानकम् ॥ १३ ॥
दानानां च फलं ब्रूहि परान्नस्य च वर्जनात्।
मासोपवासस्य फलं खट्वाया मोक्षणाद्विभो ॥ १४ ॥
दीपावल्याश्च माहात्म्यं प्रबोधिन्याश्च सुव्रत।
पञ्चभीष्मस्य माहात्म्यं कथयस्व सुविस्तरात् ॥ १५ ॥

ईश्वर उवाच।

साधुपृष्टं त्वया वत्स लोकोद्धरणहेतवे। कथयामि न संदेहस्त्वत्समो नास्ति वैष्णवः

सत्पुत्रेण त्वया वत्स! तारितोऽहं न संशयः।
निश्चला केशवे भक्तिस्त्वयि तिष्ठति सर्वदा ॥ १७ ॥
नरेभ्यो वैष्णवं धर्मं यो ददाति द्विजोत्तमः।
स सागर महीदाने तत्पुण्यं लभते हि सः ॥ १८ ॥

कार्त्तिकस्य च मासस्य कोट्यंशेनापि नार्हति। एकतःसर्वतीर्थानि सर्वदानि चैकतः ॥
एकतो गोप्रदानानि सर्वे यज्ञाः सदक्षिणाः। एकतःपुष्करेवासःकुरुक्षेत्रे हिमालये ॥२०
एकतो मथुरातीर्थे वाराणस्यां च शूकरे। एकतःकार्त्तिको वत्स सर्वदा केशवप्रियः ॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूल पुनर्वाक्यं जगौ हरः।
कार्त्तिकस्नानमाहात्म्यं कथयिष्ये सुविस्तरात् ॥ २२ ॥

ईश्वर उवाच।

ब्राह्मं कृतयुगं प्रोक्तं त्रेता तु क्षात्त्रियं युगम्।
द्वापरं वैश्यमित्याहुःशूद्रं कलियुगं स्मृतम् ॥ २३ ॥

कलौ वत्स मनुष्याणां शैथिल्यं स्नानकर्मणि ।
तथापि कथयिष्यामि स्नानं कार्त्तिकमाघयोः ॥ २४ ॥
यस्य हस्तौ च पादौ च वाङ्मनश्च सुसंयतम् ।
विद्यातपश्च कीर्त्तिश्च स तीर्थफलभाङ् नरः ॥ २५ ॥
अश्रद्दधानःपापात्मा नास्तिकश्छिन्नमानसः । हेतुवादी च पञ्चैते न तीर्थफलभागिनः
प्रातरुत्थाय यो विप्रस्तीर्थस्नायी सदा भवेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तःपरंब्रह्माधिगच्छति ॥ २७ ॥
स्नानं चतुर्विधं प्रोक्तं स्नानविद्भिः षडानन ! ।
वायव्यं वारुणं दिव्यं ब्राह्मं चेति तथा स्मृतम् ॥ २८ ॥
वायव्यं गोरजःस्नानं वारुणं सगरादिराषु ।
ब्राह्मं ब्रह्मणमन्त्रोक्तं दिव्यं मेघाम्बु भास्करम् ॥ २९ ॥
स्नानानां चैव सर्वेषां विशिष्टं तत्र वारुणम् ।
ब्राह्मणः क्षत्त्रियो वैश्यो मन्त्रवत्स्नानमाचरेत् ॥ ३० ॥
तूष्णीमेव हि शूद्रस्य स्त्रीणांचैव षडानन । बाला च तरुणी वृद्धा नरनारीनपुंसकाः
पापैः सर्वैः प्रमुच्यन्ते स्नानात्कार्त्तिकमाघयोः ।
स्नाता वै कार्त्तिके लोकाःप्राप्नुवन्तीप्सितं फलम् ॥ ३२

इतिश्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशतसाहस्र्यां षष्ठे उत्तरखण्डे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीशिवषडाननसंवादे सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

———

अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

कार्त्तिके तिलधेन्वादिदानकथनम्

सूत उवाच ।

पुनःप्रोवाच भगवान्महादेवो वृषध्वजः । श्रोतारमुपसंगम्य भक्तियुक्तं षडाननम् ॥ १

ईश्वर उवाच ।

कार्त्तिको वैष्णवो मासः सर्वमासेषु चोत्तमः ।
अस्मिन्मासे त्रयस्त्रिंशद्देवासंनिहिताः कलौ ॥ २ ॥

ऊर्जेमासि महाभाग भोजनानि द्विजातये । तिलधेनुं हिरण्यं च रजतं भूमिवाससी ॥
गोप्रदानानि दास्यन्ति सर्वभावेन सुव्रत । सर्वेषामेव दानानां कन्यादानं विशिष्यते ॥

ब्राह्मणायात्र ये कन्या दास्यन्ति विधिवन्नराः ।
वैकुण्ठे वसतिस्तेषां यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ५ ॥
रोमकाले तु संप्राप्ते सोमो भुङ्क्ते तु कन्यकाम् ।
ऋतुकाले तु गन्धर्वा वह्निस्तु कुचदर्शने ॥ ६ ॥

तावद्विवाहयेत्कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत् । विवाहस्त्वष्टवर्षायाःकन्यायाःशस्यते बुधैः
दातव्या श्रोत्रियायैव ब्राह्मणाय तपस्विने । साक्षादधीतवेदाय विधिना ब्रह्मचारिणे ॥
कन्या वरप्रदानस्य एष एवविधिःस्मृतः । यावन्ति चैव रोमाणि कन्यायाश्च तनौसुत
तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते । सहस्रमेव धेनूनां शतं चानुडुहांसमम् ॥ १० ॥
दशानुडुत्समं यानं दशयानसमो हयः । हयदानसहस्रेभ्यो गजदानं विशिष्यते ॥ ११ ॥

गजदान सहस्राणां स्वर्णदानं च तत्समम् ।
स्वर्णभारसहस्राणां विद्यादानं च तत्समम् ॥ १२ ॥

विद्यादानात्कोटिगुणं भूमिदानंविशिष्यते । भूमिदानसहस्रेभ्यो गोप्रदानं विशिष्यते ॥
गोप्रदानसहस्रेभ्यो ह्यन्नदानं विशिष्यते । अन्नाधारमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥

तस्माद्देयं प्रयत्नेन कार्त्तिके शिखिवाहन । त्रीणि तुल्यप्रदानानि त्रीणितुल्यफलानि च

सर्वकामदुघा धेनुः पृथ्वी चैव सरस्वती ॥ १५ ॥

कार्त्तिकेय उवाच ।

अन्यानपि महादेव धर्मान्मे वक्तुमर्हसि । यान्कृत्वा सर्वपापानि प्रक्षाल्य त्रिदशोभवेत्

सूत उवाच ।

इति पृष्टस्तदा शंभुः पुनर्वक्तुं प्रचक्रमे । पार्वकिं बहुधा स्तुत्वा तच्छृणुध्वं तपोधनाः ॥

ईश्वर उवाच ।

परान्नं वर्जयेद्यस्तु कार्त्तिके नियमे कृते । परान्नवर्जनादेव लभेच्चान्द्रायणं फलम् ॥

तं प्राप्तं कार्त्तिकं दृष्ट्वा परान्नं यस्तु वर्जयेत् ।

दिने दिने तु कृच्छ्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ १६ ॥

कार्तिके वर्जयेत्तैलं कार्तिके वर्जयेन्मधु । कार्तिके वर्जयेत्कांस्यं सङ्घान्नं च विशेषतः ॥

राक्षसीं योनिमाप्नोति सकृन्मांसस्य भक्षणात् ।

षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां परिपच्यते ॥ २१ ॥

तन्मुक्तो जायते पापो विष्ठाशी ग्रामसूकरः । प्रवृत्तानां तु भक्षाणां कार्तिके नियमेकृते

अवश्यं विष्णुरूपत्वं प्राप्यते मोक्षदं पदम् । न कार्तिकसमोमासो न दैवं केशवात्परम्

न वेदसदृशं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गयासमम् । न सत्येन समं वृत्तं न कृतेन समंयुगम् ॥

न तृप्ती रसनातुल्या न दानसदृशं सुखम् । न धर्मसदृशं मित्रं न ज्योतिश्चक्षुषासमम्

अव्रतेन क्षिपेद्यस्तु मासं दामोदरप्रियम् । कर्मभ्रष्टः सविज्ञेयो हीनयोनिषु जायते ॥

कार्त्तिकः प्रवरो मासो वैष्णवानां सदाप्रियः ।

समुद्रगा नदीपुण्या दुर्लभा स्नानशालिना ॥ २७ ॥

कुलशीलवतीकन्या दुर्लभा दम्पती नृणाम् । दुर्लभा जननीलोके पिताचैव विशेषतः ॥

दुर्लभं साधुसम्मानं दुर्लभो धार्मिकः सुतः । दुर्लभो द्वारिकावासो दुर्लभं कृष्णदर्शनम्

दुर्लभं गोमतीस्नानं दुर्लभं कार्तिकव्रतम् । ब्राह्मणेभ्यो महींदत्त्वा ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥

यत्फलं लभते वत्स तत्फलं भूमिशायिनः । भोजनं द्विजदम्पत्योः पूजयेच्च विलेपनैः

कम्बलानि च रत्नानि वासांसि विविधानि च ।
तूलकाश्च प्रदातव्याः प्रच्छादनपटैः सह ॥ ३२ ॥

उपानहावातपत्रं कार्तिके देहि पावके । यः करोति नरो नित्यं कार्तिके पत्रभोजनम् ॥
न दुर्गतिमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश । सर्वकामफलं तस्य सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥
न चापि नरकं पश्येद्ब्रह्मपत्रेषु भोजनात् । ब्रह्मा एष स्मृतः साक्षात्पालाशः सर्वकामदः
मध्यमं वर्जयेत्पत्रं कार्तिके शिखिवाहन । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रयोदेवास्त्रिपत्रके ॥
ऐश्वरं वर्जयेत्पत्रं ब्रह्मविष्णवोरनुत्तमम् । सर्वपुण्यमवाप्नोति शेषपत्रेषु भोजनात् ।३७
भोजनान्मध्यपत्रे तु कपिलापयसस्तथा । प्राशनान्मुनिशार्दूल नरो नरकमाप्नुयात् ॥

अज्ञानाद्बुभुजे यस्तु शूद्रो वा कपिलापयः ।
कपिलां ब्राह्मणे दत्वा शुद्धो भवति कार्तिके ॥ ३९ ॥

तिलदानं नदीस्नानं सर्वदा साधुदर्शनम् । भोजनं ब्रह्मपत्रेषु कार्त्तिके मुक्तिदायकम् ॥

मौनी पालाशभोजी च जलस्नायी सदाक्षमी ।
कार्त्तिके क्षितिशायी च हन्यात्पापं युगार्जितम् ॥ ४१ ॥

जागरं कार्तिके मासि यः करोत्यरुणोदये । दामोदराग्रे सेनानीर्गोसहस्रफलं लभेत् ॥
पितृपक्षेऽन्नदानेन ज्येष्ठाषाढे च वारिणा । कार्त्तिके तत्फलं पुंसां परदीपप्रबोधनात् ॥

बोधनात्परदीपस्य वैष्णवानां च सेवनात् ।
कार्त्तिके फलमाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ॥ ४४ ॥
नदीस्नानं कथाविष्णोर्वैष्णवानां च दर्शनम् ।
न भवेत्कार्त्तिके यस्य हरेत्पुण्यं दशाब्दिकम् ॥ ४५ ॥

पुष्करं यः स्मरेत्प्राज्ञः कर्मणा मनसा गिरा । कार्त्तिके मुनिशार्दूल लक्षकोटिगुणं भवेत्

प्रयागो माघमासे तु पुष्करं कार्तिके तथा ।
अवन्ती माधवे मासि हन्यात्पापं युगार्जितम् ॥ ४७ ॥

धन्यास्ते मानवा लोके कलिकाले विशेषतः । कुर्वन्ति स्कन्द नित्यं ये सर्वथा हरिसेवनम्
किं दत्तैर्बहुभिः पिण्डैर्गयाश्राद्धादिभिः सुत । तारितास्तेन पितरो नरकाच्च न संशयः ॥

क्षीरादि स्नपनं विष्णोः क्रियते पितृकारणात् । कल्पकोटिं दिवं प्राप्य वसन्ति त्रिदशैःसह

कार्त्तिके नार्चितो यैस्तु कृष्णस्तु कमलेक्षणः ।

जन्मकोटिषु विप्रेन्द्र न तेषां कमला गृहे ॥ ५१ ॥

दृष्टा मुष्टा विनष्टास्ते पतिताःकलिकन्दरे । यैर्नार्चितो हरिर्भक्त्या कमलैरसितैःसितैः ॥

पद्मेनैकेन देवेशं योऽर्चयेत्कमलापतिम् । वर्षायुतसहस्रस्य पापस्य कुरुते क्षयम् ॥५३

अपराधसहस्राणि तथा सप्तशतानि च । पद्मेनैकेन देवेशः क्षमेत प्रणतोऽर्चितः ॥५४ ॥

तुलसीपत्रलक्षेण कार्तिके योऽर्चयेद्धरिम् । पत्रे पत्रे मुनिश्रेष्ठ मौक्तिकं लभते फलम् ॥

तुलसीगन्धमिश्रं तु यत्किंचित्क्रियते सुत । कल्पकोटि सहस्राणि प्रीतो भवति केशवः

मुखे शिरसि देहे तु कृष्णोत्तीर्णां तु यो वहेत् ।

तुलसीं षण्मुखप्रीत्या न तस्य स्पृशते कलिः ॥ ५७ ॥

कृष्णोत्तीर्णैस्तु निर्माल्यैर्यो गात्रं परिमार्जयेत् ।सर्वरोगैस्तथा पापैर्मुक्तो भवति षण्मुख

विष्णोरङ्गारशेषेण यस्याङ्गं स्पृशते सुत ।

दुरितानि विनश्यन्ति व्याधयो यान्ति संक्षयम् ॥ ५९ ॥

शङ्खोदकं हरेर्भक्तिर्निर्माल्यं पादयोर्जलम् । चन्दनं धूपशेषं तु ब्रह्महत्यापहारकम् ॥६०॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कार्त्तिकमाहात्म्ये श्रीशिवकार्तिकेयसंवादे प्रश्नोत्तरो नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११८॥

एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

माघस्नानादिमाहात्म्यम्

ईश्वर उवाच ।

माघस्नानस्य माहात्म्यं शृणु भागवतोत्तम ।

त्वत्समो नास्ति लोकेऽस्मिन्विष्णुभक्तो महामते ॥ १ ॥

चक्रतीर्थे हरिं दृष्ट्वा मथुरायां च केशवम् । यत्फलं लभते मर्त्यो माघस्नानेन तत्फलम्
जितेन्द्रियःशान्तमनाःसदाचारेण संयुतः । स्नानं करोति यो माघे संसारी न भवेत्पुनः

श्रीकृष्ण उवाच ।

शूकरस्य च माहात्म्यं कथयिष्ये तवाग्रतः । यस्य विज्ञानमात्रेण सान्निध्यं मम सर्वदा

सूत उवाच ।

इत्युक्त्वा भगवान्कृष्णःसत्यायै बहुधा जगौ । तदहं संप्रवक्ष्यामि तच्छृणुध्वं तपोधनाः

श्रीकृष्ण उवाच ।

पञ्चयोजनविस्तीर्णे शूकरे हरिमन्दिरे । यस्मिन्वसति यो जीवो गर्दभोऽपि चतुर्भुजः
त्रीणि हस्तसहस्राणि त्रीणि हस्तशतानि च । त्रयोहस्ताःशूकरस्य परिमाणं विधीयते
षष्टिवर्षसहस्राणि योऽन्यत्र कुरुते तपः । तत्फलं लभते देवि प्रहरार्धेन शूकरे ॥ ८ ॥
सन्निहत्यां कुरुक्षेत्रे राहुग्रस्ते दिवाकरे । तुलापुरुषदानेन तत्फलं परिकीर्तितम् ॥ ९ ॥
काश्यां दशगुणं प्रोक्तं वेण्यां शतगुणं भवेत् । सहस्रगुणितं प्रोक्तं गङ्गासागरसंगमे
अनन्तं चैव विज्ञेयं शूकरे हरिमन्दिरे । अन्यत्र ददते लक्षं संविधानेन भामिनि ॥११
इहैवैकेन दत्ते न शूकरे तत्समं भवेत् । शूकरे च तथा वेण्यां गङ्गासागरसंगमे ॥१२॥
सकृदेव नरःस्नात्वा ब्रह्महत्यां व्यपोहति । अलर्केण पुरा प्राप्ता सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥
शूकरक्षेत्रमाहात्म्यं श्रुत्वा च गजगामिनि ॥ १३ ॥

कार्त्तिकेय उवाच ।

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।
विधिं मासोपवासस्य फलं चास्य यथोचितम् ॥ १४ ॥

यथाविधि नरैःकार्या व्रतचर्या यथा भवेत् । आरभ्यते यथापूर्वं समाप्यं हि यथाविधि
यावत्सङ्ख्यं तु कर्त्तव्यं तत्प्रब्रूहि महेश्वर । व्रतमेतत्सुखश्रीदं विस्तरेण ममानघ ॥

श्रीरुद्र उवाच ।

पावके साधु सत्रं ते यत्पृष्टं प्रब्रुवेऽनघ । भक्त्या मतिमतां श्रेष्ठश्शृणुष्व गदतो मम ॥
सुराणां च यथा विष्णुस्तपतां च यथा रविः ।

मेरुःशिखरिणां यद्वद्वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥ १८ ॥
तीर्थानां तु यथा गङ्गा प्रजानां तु यथा वणिक् ।
श्रेष्ठं सर्वव्रतानां तु तद्वन्मासोपवासनम् ॥ १९ ॥
सर्वव्रतेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु चैव हि । सर्वदानोद्भवं चैव लभेन्मासोपवासकृत् ॥
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैर्विविधैर्भूरिदक्षिणैः । न तत्पुण्यमवाप्नोति यन्मासपरिलङ्घनात् ॥
तेन जप्तं हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं स्वधा । यःकरोति विधानेन नरो मासमुपोषणम्
उद्दिश्य वैष्णवं यज्ञं समभ्यर्च्य जनार्दनम् ।
गुरोराज्ञां ततो लब्ध्वा कुर्यान्मासोपवासनम् ॥ २३ ॥
वैष्णवानि यथोक्तानि कृत्वा सर्वव्रतानि तु ।
द्वादश्यादीनि पुण्यानि ततो मासमुपावसेत् ॥ २४ ॥
अतिकृच्छ्रं च पाराकं कृत्वा चान्द्रायणं ततः । मासोपवासं कुर्वीत गुरोर्विप्राज्ञया ततः
आश्विनस्यामले पक्ष एकादश्यामुपोषितः । व्रतमेतत्तु गृह्णीयाद्यावत्त्रिंशद्दिनानि तु ॥
वासुदेवं समभ्यर्च्य कार्तिकं सकलं नरः । मासं चोपवसेद्यस्तु स मुक्तिफलभाग्भवेत्
अच्युतस्यालये भक्त्या त्रिकालं कुमुदैःशुभैः । मालतीन्दीवरैर्धुस्तैःकमलैश्च सुगन्धिभिः
कुसुमोशीरकर्पूरैर्विलिप्य वरचन्दनैः । नैवेद्यापूपदीपाद्यैरर्चयेच्च जनार्दनम् ॥ २९ ॥
मनसाकर्मणावाचापूजयेद्गरुडध्वजम् । कुर्वन्नरः स्त्री विधवा वृद्धभक्तिर्जितेन्द्रियः ॥
नाम्नामेव तथालापं विष्णोःकुर्यादहर्निशम् ।
भक्त्या विष्णोःस्तुतिर्वाच्या मिथ्यालापविवर्जिता ॥ ३१ ॥
सर्वसत्त्वदयायुक्तःशान्तवृत्तिरहिंसकः ।
सुप्तो वाह्यासनस्थो वा वासुदेवं प्रकीर्तयेत् ॥ ३२ ॥
स्मृत्यालोकनगन्धादि स्वादनं परिकीर्त्तनम् ।
अन्नस्य वर्जयेद्ग्रासं ग्रासानां सम्प्रमोक्षणम् ॥ ३३ ॥
गात्राभ्यङ्गं शिरोऽभ्यङ्गं ताम्बूलं च विलेपनम् ।
व्रतस्थो वर्जयेत्सर्वं यच्चान्यच्च निराकृतम् ॥ ३४ ॥

न व्रतस्थःस्पृशेत्किंचिद्विकर्मस्थं न चालपेत्। देवतायतने तिष्ठन् गृहस्थश्चरेद्व्रतम् ॥
कृत्वा मासोपवासं तु यथोक्तविधिना नरः। नारी वा विधवा साध्वी वासुदेवं समर्चयेत्
अन्यूनाधिकमेवं तु व्रतं त्रिंशद्दिनैरिदम्। कृत्वा मासोपवासं तु संयतात्मा जितेन्द्रियः
ततोऽर्चयेद्द्वपुण्यं द्वादश्यां गरुडध्वजम् । पूजयेत्पुष्पमालाभिर्गन्धधूपविलेपनैः ॥
वस्त्रालङ्कारवाद्यैश्च तोषयेदच्युतं नरः। संस्नापयेद्धरिं भक्त्या तीर्थचन्दनवारिभिः ॥
चन्दनेनानुलिप्ताङ्गं गन्धपुष्पैरलङ्कृतम्। वस्त्रदानादिभिश्चैव भोजयित्वा द्विजोत्तमान्

दद्याच्च दक्षिणां तेभ्यःप्रणिपत्य क्षमापयेत्।
एवं मासोपवासाद्धि कृत्वाऽभ्यर्च्य जनार्दनम् ॥ ४१ ॥

भोजयित्वा द्विजांश्चैव विष्णुलोके महीयते। एवं मासोपवासान्ते कृत्वा विप्रांस्त्रयोदश
निर्वापयेत्ततस्तान्वै विधिना येन तच्छृणु। कारयेद्वैष्णवं यज्ञमेकादश्यामुपोषितः ॥
पूजयित्वा तु देवेशमाचार्यानुज्ञया हरिम्। अर्चयित्वा यथाशक्त्या ह्यभिवाद्य गुरुं तथा
ततोऽनुभोजयेद्विप्रान्नमस्कारपुरःसरम्। विशुद्धकुलचारित्रान्विष्णुपूजनतत्परान् ॥४५
पूजयित्वा तथा सर्वान्भोजयित्वा त्रयोदश। ताम्बूलवस्त्रयुग्मानि भोजनाच्छादनानि च

योगपट्टानि सूत्राणि ब्रह्मसूत्राणि चैव हि।
दद्याच्चैव द्विजाग्र्येभ्यःपूजयित्वा प्रणम्य च ॥ ४७ ॥
ततोऽनुपूजयेच्छक्त्या शय्यांस्तरणसंस्कृताम्।
साच्छादनां शुभां श्रेष्ठां सोपधानामलङ्कृताम् ॥ ४८ ॥
कारयित्वात्मनो मूर्त्तिं काञ्चनीं तु स्वशक्तितः।
न्यस्येत्तस्यां तु शय्यायामर्चयित्वा स्रगादिभिः ॥ ४९ ॥

आसनं पादुकां छत्रं वस्त्रयुग्ममुपानहौ। पवित्राणि च पुष्पाणि शय्यायामुपकल्पयेत्

एवं शय्यां तु संकल्प्य प्रणिपत्य च तान्द्विजान्।
प्रार्थयेच्चानुमोदार्थं विष्णुलोकं व्रजाम्यहम् ॥ ५१ ॥

ततो व्रजेन्नरश्रेष्ठो विष्णोःस्थानमनामयम्। मण्डपस्थांस्तुतान्विप्रानितिवाच्यं मुहुर्मुहुः
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं सर्वहीनं द्विजोत्तमाः। सर्वं संपूर्णतां यातु भवद्वाक्यप्रसादतः ॥

विधिर्मासोपवासस्य यथावत्परिकीर्त्तितः ॥ ५३ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कार्त्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे मासोपवासकथनं नाम एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

शालग्रामार्चनवर्णनम्

सूत उवाच ।

इतिवाक्यं समाकर्ण्य पुनःपप्रच्छ पावकिः । शालग्रामार्चनं भूयस्तच्छृणुध्वं तपोधनाः

कार्त्तिकेय उवाच ।

भगवन्योगिनांश्रेष्ठ सर्वेधर्माःश्रुता मया । शालग्रामार्चनं ब्रूहि विस्तरेण मम प्रभो ॥

ईश्वर उवाच ।

साधुसाधु महाप्राज्ञ यन्मां हि परिपृच्छसि । तदहं संप्रवक्ष्यामि श्रूयतां मम वत्सल ॥

शालग्रामशिलायां तु त्रैलोक्यं सचराचरम् । महाशय महासेन नित्यं तिष्ठति संहितम्

दृष्टं प्रणमितं येन स्नापितं पूजितं तथा । यज्ञकोटिगुणं पुण्यं गवां कोटिफलं लभेत्

छिन्नस्तेन तथा वत्स गर्भवासःसुदारुणः ।
पीतं येन सदा विष्णोःशालग्रामशिलाजलम् ॥ ६ ॥
कामासक्तोऽपि यो नित्यं भक्तिभावविवर्जितः ।
शालग्रामशिलां पुत्र पूजयित्वाऽच्युतो भवेत् ॥ ७ ॥
शालग्रामशिलाबिम्बं हत्वा(त्या)कोटिविनाशनम् ।
स्मृतं संकीर्तितं ध्यातं पूजितं च नमस्कृतम् ॥ ८ ॥

शालग्रामशिलां दृष्ट्वा यान्ति पापान्यनेकशः । सिंहं दृष्ट्वा यथा यान्ति वने मृगगणा भयात्

नमस्कारं तु मनुजःशालग्रामशिलार्चने ।
भक्त्या वा यदि वाऽभक्त्या कृत्वा मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ १० ॥
वैवस्वतभयं नास्ति तथा मरणजन्मनोः । यःकरोति नरो नित्यं शालग्रामशिलार्चनम्
गन्धपाद्यार्थनैवेद्यैर्दीपैर्धूपैर्विलेपनैः । गीतैर्वाद्यैस्तथा स्तोत्रैःशालग्रामशिलार्चनम् ॥
कुरुते मानवो यस्तु कलौ भक्तिपरायणः । कल्पकोटिसहस्राणि रमते विष्णुसद्मनि ॥
शालग्रामनमस्कारो भावेनापि नरैःकृतः । मानुषत्वं कथं तेषां मद्भक्ता ये नरा भुवि
मद्भक्तास्तीव्रपापिष्ठा मत्प्रभुं न नमन्ति ये । वासुदेवं न ते ज्ञेया मद्भक्ताःपापमोहिताः ॥
मद्भक्तोऽपि च यो भूत्वा भुङ्क्ते त्वेकादशीदिने ।
स याति ह्यन्धतामिस्रं निरयं मम घातकः ॥ १६ ॥
मल्लिङ्गस्पर्शनं कार्यं नान्याशुद्धिर्विधीयते । या तिथिर्दयिता विष्णोःसा तिथिर्ममवल्लभा
यस्तां नोपवसेन्मर्त्यः स पापी श्वपचाधिकः ।
शालग्रामशिलायां तु सदा पुत्र वसाम्यहम् ॥ १८ ॥
दत्तं देवेन तुष्टेन स्वस्थानं मम भक्तितः । पद्मकोटिसहस्रैस्तु पूजिते मयि यत्फलम् ॥
तत्फलं कोटिगुणितं शालग्रामशिलार्चनात् । पूजितोऽहं न तैर्मर्त्यैर्नमितोऽहं न तैर्नरैः
न कृतं मर्त्यलोके यैः शालग्रामशिलार्चनम् । शालग्रामशिलाग्रे तु यःकरोति ममार्चनम्
तेनार्चितोऽहं सेनानीर्युगानामेकविंशतिम् । किमर्चितैर्लिङ्गशतैर्विष्णुभक्तिविवर्जितैः ॥
शालग्रामशिलाबिम्बं नार्चितं यदि पुत्रक । अनर्हं मम नैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् ॥
शालग्रामशिलाग्रे तु सर्वं याति पवित्रताम् । भुक्त्वान्यदेवनैवेद्यं द्विजश्चान्द्रायणं चरेत्
भुक्त्वा केशवनैवेद्यं यज्ञकोटिफलं लभेत् । पादोदकेन देवस्य हत्याकोटिसमन्विताः
शुध्यन्ति नात्र संदेहस्तथा शङ्खोदकेन हि । यो हि माहेश्वरो भूत्वा वैष्णवं च न पूजयेत्
द्वेष्टा च याति नरकं यावदिन्द्राश्चतुर्दश । ज्येष्ठाश्रमी गृहे यस्य मुहूर्त्तमपि विश्रमेत् ॥
पितामहा युगान्यष्टौ भवन्त्यमृतभोजिनः । संसारे दुःखकान्तारे निमज्जन्ति नराधमाः
वर्षकोटिसहस्राणि कृष्णाराधनवर्जिताः । स्नेहादभ्यर्चितैर्लिङ्गैःशालग्रामसमुद्भवैः ॥
मुक्तिं प्रयान्ति मनुजा योगसाङ्ख्येन वर्जिताः ।

मल्लिङ्गकोटिभिर्दृष्टैर्यत्फलं पूजितैः स्तुतैः ॥ ३० ॥

शालग्रामशिलायां तु एकस्यामिह तद्भवेत् । द्वादशैव शिला यो वै शालग्रामसमुद्भवाः
अर्चयेद्वैष्णवो नित्यं तस्य पुण्यं निबोध मे । कोटिलिङ्गसहस्रैस्तु पूजितैर्जाह्नवीतटे ॥
काशीवासे युगान्यष्टौ दिनेनैकेन तद्भवेत् । किम्पुनर्बहुना यस्तु पूजयेद्वैष्णवो नरः ॥
नाहं ब्रह्मादयो देवाःसङ्ख्यां कर्तुं समीशते । तस्माद्भक्त्या च मद्भक्तैःप्रीत्यर्थं ममपुत्रक
कर्त्तव्यं मम तद्भक्त्या शालग्रामशिलार्चनम् । शालग्रामशिलारूपी यत्र तिष्ठति केशवः ॥
तत्र देवा सुरा यक्षा भुवनानि चतुर्दश । सुराणां कीर्तनैःसर्वैःकोटिभिश्च फलं लभेत्
तत्फलं कीर्त्तनादेव केशवे सुकृतं कलौ । शालग्रामशिलाग्रे तु सक्तुपिण्डेन तर्पिताः ॥

वसन्ति पितरस्तस्य न सङ्ख्या तत्र विद्यते ।
ये पिबन्ति नरा भक्त्या शालग्रामशिलाजलम् ॥ ३८ ॥

पञ्चगव्यसहस्रैस्तु प्राशितैःकिं प्रयोजनम् । प्रायश्चित्ते समुत्पन्ने किं दानैःकिमुपोषणैः

चान्द्रायणैःसुचीर्णैश्च पीत्वा पादोदकं हरेः ।
यःकरोति तडागे तु प्रतिमां जलशायिनीम् ॥ ४० ॥

कोटिभिश्चापि किं कार्यमन्यदेवैश्च पूजितैः ।
विष्णुमुख्यास्तु वै देवास्तत्र जल्पन्ति वै गुह ॥ ४१ ॥

प्रमाणमस्ति सर्वस्य सुकृतस्य हि पुत्रक । फलप्रमाणं नैवास्ति शालग्रामशिलार्चने
यो ददाति शिलां विष्णोःशालग्रामसमुद्भवाम् । विप्राय विष्णुभक्ताय तेनेष्टं क्रतुभिःशतैः
गृहेऽपि वसतस्तस्य गङ्गास्नानं दिनेदिने । स स्नातःसर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥
शालग्रामशिलातोयैरभिषेकं य आचरेत् । स्वर्गे मर्त्ये च पाताले पाषाणःसन्ति वै गुह

शालग्रामशिलाग्राव्णा नास्ति नास्ति समा पुनः ।
मानुषे दुर्लभे लोके सफलं तस्य जीवितम् ॥ ४६ ॥

तिलप्रस्थशतं भक्त्या यो ददाति दिने दिने । तत्फलं समवाप्नोति शालग्रामशिलार्चनात्
पत्रं पुष्पं फलं तोयं मूलं दूर्वादलं तथा । जायते मेरुणा तुल्यं शालग्रामे समर्पितम् ॥

विधिहीनोऽपि यःकश्चित्क्रियामन्त्रविवर्जितः ।

चक्राङ्कभुज आप्नोति सम्यक्छास्त्रोदितं फलम् ॥ ४६ ॥
यत्तु पूर्वं मया दृष्टं केशवे क्लेशनाशनम् । तत्सर्वं कथयिष्यामि तव स्नेहेन पुत्रक ॥
क त्वं वससि हे विष्णो किमाधारः किमाश्रयः । कथं वा प्रीयसे देव तत्सर्वं कथयस्व मे

श्रीकृष्ण उवाच ।

निवसामि सदा शम्भो शालग्रामोद्भवेऽश्मनि । तत्रैव रथचक्राङ्के यानि नामानिमेश्रृणु
द्वारदेशे समे चक्रे दृश्येते नान्तरं यदि । वासुदेवः स विज्ञेयः शुक्लश्चैवातिशोभनः ॥
प्रद्युम्नः सूर्यवक्त्रस्तु नीलदीप्तिस्तथैव च । सुषिरं छिद्रबहुलं दीर्घाकारं तु तद्भवेत् ॥
अनिरुद्धस्तु पीताभो वर्त्तुलश्चातिशोभनः । रेखात्रयाङ्कितो द्वारि दृष्टपद्मेन चिह्नवत्
श्यामो नारायणो देवो नाभिचक्रे तथोन्नते । दीर्घरेखा समोपेतो दक्षिणे सुषिरान्वितः
ऊर्ध्वं मुखं च जानीयात्सुन्दरं हरिरूपिणम् । कामदं मोक्षदं चैव अर्थदं च विशेषतः
परमेष्ठी च शुक्लाभः पद्मचक्रसमन्वितः । बिम्बाकृतिस्तथा पृष्ठे सुषिरं चातिपुष्कलम् ॥
कृष्णवर्णस्तथा विष्णुर्मूलेचक्रे सुशोभने । द्वारोपरि तथा रेखा लक्ष्यते मध्यदेशतः ॥
कपिलो नरसिंहश्च पृथुचक्रः सुशोभितः । ब्रह्मचर्येण पूज्योऽसावन्यथा विघ्नदो भवेत्
वाराहः शक्तिलिङ्गस्तु चक्रे च विषमे स्मृते । इन्द्रनीलनिभः स्थूलस्त्रिरेखो नाभितः शुभः

दीर्घा काञ्चनवर्णा या बिन्दुत्रयविभूषिता ।
मत्स्याख्या सा शिला ज्ञेया भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥ ६२ ॥

कूर्मस्तथोन्नतः पृष्ठे वर्तुलश्चक्रपूरितः । हरितं वर्णमाधत्ते कौस्तुभेन तु चिह्नितः ॥६३
हयग्रीवो हयाकारो रेखापञ्चकभूषितः । बहुबिन्दुसमाकीर्णः पृष्ठे नीलं च रूपकम् ॥
वैकुण्ठमविभिन्नाङ्गं चक्रमेकं तथा ध्वजम् । द्वारोपरि तथा रेखा गुञ्जाकारा सुशोभना
श्रीधरस्तु तथा देवश्चिह्नितो वनमालया । कदम्बकुसुमाकारो रेखापञ्चकभूषितः ॥
वर्तुलश्चापि ह्रस्वश्च वामनः परिकीर्तितः । अतसीकुसुमप्रख्यो बिन्दुना परिशोभितः ॥
सुदर्शनस्ततो देवः श्यामवर्णो महाद्युतिः । वामपार्श्वे गदाचक्रे रेखा चैव तु दक्षिणे ॥
दामोदरस्तथा स्थूलो मध्ये चक्रं प्रतिष्ठितम् । दूर्वाभं द्वारसंकीर्णं पीतरेखं तथैव च ॥
नानावर्णो ह्यनन्तस्तु नानाभोगेन चिह्नितः । अनेकमूर्तिको भिन्नः सर्वकामफलप्रदः ॥

विदिक्षु दिक्षु सर्वासु यस्योर्ध्वं दृश्यते मुखम् ।
पुरुषोत्तमः स विज्ञेयो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥ ७१ ॥
दृश्यते शिखरे लिङ्गं शालग्रामशिलोद्भवम् । यस्य योगेश्वरो देवो ब्रह्महत्यां व्यपोहति
आरक्तःपद्मनाभस्तु पङ्कजं वक्त्रसंयुतम् । तस्याभ्यर्चनतो नित्यं दरिद्रस्त्वीश्वरो भवेत्
चक्राङ्कितं हिरण्याङ्गं रश्मिजालं विनिर्दिशेत् ।
सुवर्णरेखावहुलं स्फटिकद्युतिशोभितम् ॥ ७४ ॥
अतिस्निग्धा सिद्धिकरी कृष्णा कीर्तिं ददाति च । पाण्डुरा पापदहनी पीता पुत्रफलप्रदा
नीला प्रयच्छती लक्ष्मीं रक्ता रोगप्रदायिनी । रूक्षा उद्वेगजननी वक्रा दारिद्र्यभागिनी
एकं सुदर्शनं ज्ञेयं लक्ष्मीनारायणं द्वयम् । तृतीयं चाच्युतं विद्याच्चतुर्थं तु जनार्दनम् ॥
पञ्चमं वासुदेवं च षष्ठं प्रद्युम्नमेव च । सङ्कर्षणं सप्तमं च अष्टमं पुरुषोत्तमम् ॥७८॥
नवमं च नवव्यूहं दशमं तु तदात्मकम् । एकादशं चानिरुद्धं द्वादशं द्वादशात्मकम् ॥
अतऊर्ध्वं तु चक्राणि दृश्यन्तेऽनन्तसंज्ञके । खण्डिते त्रुटिते भग्ने शालग्रामे न दोषभाक्
इष्टा च यस्य या मूर्तिः स तां यत्नेन पूजयेत् ।
स्कन्धे कृत्वा तु योऽध्वानं वहते शैलनायकम् ॥ ८१ ॥
तस्य वश्यं भवेत्सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् । शालग्रामशिला यत्र तत्र संनिहितो हरिः
तत्र दानं जपःस्नानं वाराणस्याःशताधिकम् । कुरुक्षेत्रे प्रयागे च नैमिषे पुष्करे तथा
तत्र कोटिगुणं पुण्यं वाराणस्यां महाफलम् । ब्रह्महत्यादिकं पापं यत्किंचित्कुरुते नरः
तत्सर्वं निर्दहत्याशु शालग्रामशिलार्चनम् । शालग्रामोद्भवो देवो यत्र द्वारावती भवः ॥
उभयोःसंगमो यत्र मुक्तिस्तत्र न संशयः । ब्रह्मचारिगृहस्थैश्च वानप्रस्थैश्च भिक्षुभिः
भोक्तव्यं विष्णुनैवेद्यं नाऽत्र कार्या विचारणा ।
तत्पूजने न मन्त्राश्च न जपो न च भावना ॥ ८७ ॥
न स्तुतिर्नापि चाचारःशालग्रामशिलार्चने ।
शालग्रामशिलाग्रे तु कृत्वा स्वस्तिकमादरात् ॥ ८८ ॥
कार्त्तिके तु विशेषेण पुनात्यासप्तमं कुलम् । अणुमात्रं तु यःकुर्यान्मण्डलं केशवाग्रतः॥

मृद्दाधातुविकारैश्च कल्पकोटिं वसेद्दिवि । ये तु संवत्सरं पूर्णमग्निहोत्रमुपासते॥१०॥
कार्त्तिके स्वस्तिकं कृत्वा सममेतन्न संशयः । अगम्यागमने चैव ह्यभक्ष्यस्य तु भक्षणे
तत्पापं नाशमायाति मण्डयित्वा हरेर्गृहम् । मण्डलं कुरुते नित्यं या नारी केशवाग्रतः
सप्तजन्मानि वैधव्यं न प्राप्नोति कदाचन ॥ १२ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कार्त्तिक-
माहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे शालग्राममाहात्म्यं नाम
विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२०॥

एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

दीपगन्धधात्रीमाहात्म्यम्

ईश्वर उवाच ।

धात्रीच्छायां समाश्रित्य कुर्यात्पिण्डं तु यो गुह ।
मुक्तिं प्रयान्ति पितरःप्रसादान्माधवस्य तु ॥ १ ॥
मूर्ध्नि पाणौ मुखे चैव देहे चैव तु यो नरः । धत्ते धात्रीफलं वत्स धात्रीफलविभूषितः
धात्रीफलकृताहारो नरो नारायणो भवेत् । यःकश्चिद्वैष्णवो लोके धत्ते धात्रीफलं गुह
प्रियो भवति देवानां मनुष्याणां च का कथा ।
न जह्यात्तुलसीमालां धात्रीमालां विशेषतः ॥ ४ ॥
यावत्तिष्ठति कण्ठस्था धात्रीमाला नरस्य हि । तावत्तस्य शरीरे तु प्रतिष्ठति च केशवः
धात्रीफलं तु तुलसी मृत्तिका द्वारकोद्भवा । सफलं जीवितं तस्य त्रितयं यस्य वेश्मनि
यावद्दिनानि वहते धात्रीमालां कलौ नरः । तावद्युगसहस्राणि वैकुण्ठे वसतिर्भवेत्॥
मालायुग्मं वहेद्यस्तु धात्रीतुलसिसंभवम् । वहते कण्ठदेशे तु कल्पकोटिं वसेद्दिवि ॥

संनियम्येन्द्रियग्रामं शालग्रामशिलार्चनम् ।
यःकुर्यान्मानवो भक्त्या पुष्पे पुष्पेऽश्वमेधजम् ॥ ९ ॥
सुराणां च यथा विष्णुःपुष्पाणां तुलसी तथा ।
तुलस्याऽनुदिनं देवं योऽर्चयेद्गरुडध्वजम् ॥ १० ॥

जन्मदुःखजरारोगैर्मुक्तोऽसौ मुक्तिमाप्नुयात्। तुलसीमालया विष्णुःपूजितो येन कार्तिके
यमाक्षरकृतां मालां स्फुटं शौरिं प्रमार्ष्टि हि । श्रीचन्दनं सकर्पूरमगुरुं च सकुङ्कुमम् ॥
केतकीदीपदानं च सर्वदा केशवप्रियम् । कार्तिके केतकीपुष्पं दत्तं येन कलौ युगे ॥
दीपदानं महासेन कुलानां तारयेच्छतम् । सरोरुहाणि तुलसी केतकी मुनिपुष्पकम् ॥
कार्त्तिके च दिनान्येव दीपदानं तु पञ्चमम् । केतकीमालया येन कार्त्तिके पुष्पमण्डपम्
केशवस्य कृतं वत्स वसतिर्दिवि तस्य च । केतकीपुष्पकेनैव पूजितो गरुडध्वजः ॥
समाःसहस्रं सुप्रीतो जायते मधुसूदनः । अर्चयित्वा हृषीकेशं कुसुमैःकेतकीभवैः ॥
पुण्यं तद्भवनंयाति केशवस्य शिवं गुह । दमनकेनापि देवेशं संप्राप्ते मधुमाधवे ॥१८॥
गोशतस्य मुनिश्रेष्ठ ह्यर्चनाल्लभते फलम् । अगस्तिकुसुमैर्देवं योऽर्चयेत जनार्दनम् ॥
दर्शनात्तस्य भो विप्र नरकाग्निःप्रणश्यति । न तत्करोति विप्रर्षे तपसा तोषितो हरिः
यत्करोति महासेन मुनिपुष्पैरलङ्कृतः । विहाय सर्वपुष्पाणि मुनिपुष्पेण केशवम् ॥

कार्त्तिके योऽर्चयेद्भक्त्या वाजिमेधफलं लभेत् ।
मुनिपुष्पकृतां मालां यो ददाति जनार्दने ॥ २२ ॥

देवेन्द्रोऽपि मुनिश्रेष्ठ कुरुते तस्य सत्कथाम् । गवामयुतदानेन यत्फलं प्राप्यते गुह ॥
मुनिपुष्पेण चैकेन कार्त्तिके लभते फलम् । कौस्तुभेन यथा प्रीतो यथा च वनमालया

तुलसीदलेन संप्रीतःकार्त्तिके च तथा हरिः ॥ २४ ॥

सूत उवाच ।

प्रश्रयावनतं दृष्ट्वा कुमारं भक्तितत्परम् । पुनःप्रोवाच भगवान्महादेवो वृषध्वजः ॥२५॥

ईश्वर उवाच ।

शृणु दीपस्य माहात्म्यं कार्त्तिके शिखिवाहन !

पितरश्चैव वाञ्छन्ति सदा पितृगणैर्वृताः ॥ २६ ॥

भविष्यति कुलेऽस्माकं पितृभक्तःसुपुत्रकः । कार्त्तिके दीपदानेन यस्तोषयति केशवम्

घृतेन दीपको यस्य तिलतैलेन वा पुनः । ज्वलते यस्य सेनानीरश्वमेधेन तस्य किम् ॥

तेनेष्टं क्रतुभिःसर्वैःकृतं तीर्थावगाहनम् । दीपदानं कृतं येन कार्त्तिके केशवाग्रतः ॥

कृष्णपक्षे विशेषेण पुत्र पञ्चदिनानि च ।

पुण्यानि तेषु यो दत्ते दीपं सोऽक्षयमाप्नुयात् ॥ ३० ॥

एकादश्यां परैर्दत्तं दीपं प्रज्वाल्य मूषिका । मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य परां गतिमवाप सा

लुब्धकोऽपि चतुर्दश्यां पूजयित्वा महेश्वरम् । निर्भक्षःपरमं प्राप्य विष्णुलोकं जगामसः

श्वपाकी स्वाश्रयाद्वेश्या दीपं कृत्वा परैःकृतम् ।

शुद्धा लीलावती भूत्वा जगाम स्वर्गमक्षयम् ॥ ३३ ॥

गोपःकश्चिदमायां तु पूजां दृष्ट्वा तु शार्ङ्गिणः । मुहुर्मुहुर्जयेत्युक्त्वा राजराजेश्वरोऽभवत्

तस्माद्दीपाःप्रदातव्या रात्रावस्तमिते रवौ । गृहेषु सर्वगोष्ठेषु सर्वेष्वायतनेषु च ॥

देवालयेषु देवानां श्मशानेषु सरस्सु च । घृतादिना शुभार्थाय यावत्पञ्चदिनानि च ॥

पापिनःपितरो ये च लुप्तपिण्डोदकक्रियाः । तेऽपियान्ति परां मुक्तिं दीपदानस्य पुण्यतः

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कार्त्तिकमाहात्म्ये दीपगन्धधात्रीमाहात्म्यवर्णनं नाम एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२१॥

द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

दीपावलिमाहात्म्यवर्णनम्

कार्त्तिकेय उवाच ।

दीपावलिफलं नाथ विशेषाद्ब्रूहि साम्प्रतम् ।

किमर्थं क्रियते सा तु तस्याःका देवता भवेत् ॥ १ ॥

किं च तत्र भवेद्दुदेयं किं न देयं वद प्रभो । प्रहर्षः कोऽत्र निर्दिष्टः क्रीडा कात्र प्रकीर्तिता

सूत उवाच ।

इति स्कन्दवचः श्रुत्वा भगवान्कामशोषणः । साधूक्त्वा कार्त्तिकं विप्राः प्रहसन्निदमब्रवीत्

श्रीशिव उवाच ।

कार्त्तिकस्यासितेपक्षे त्रयोदश्यां तु पावके । यमदीपं बहिर्दद्यादपमृत्युर्विनश्यति ॥४॥
मृत्युना पाशहस्तेन कालेन भार्यया सह । त्रयोदश्यां दीपदानात्सूर्यजः प्रीयतामिति ॥
कार्त्तिके कृष्णपक्षे च चतुर्दश्यां विधूदये । अवश्यमेव कर्त्तव्यं स्नानं च पापभीरुभिः॥
पूर्वविद्धा चतुर्दश्याः कार्त्तिकस्यसितेतरे । पक्षे प्रत्यूषसमये स्नानं कुर्यादतन्द्रितः ॥७॥

तैले लक्ष्मीर्जले गङ्गा दीपावल्यां चतुर्दशीम् ।
प्रातः स्नानं हि यः कुर्याद्यमलोकं न पश्यति ॥ ८ ॥

अपामार्गस्तथा तुम्बी प्रपुन्नाटं च वाह्वलम् । भ्रामयेत्स्नानमध्ये तु नरकस्य क्षयाय वै
सीतालोष्टसमायुक्त सकण्टकदलान्वित । हर पापमपामार्ग भ्राम्यमाणः पुनः पुनः ॥
अपामार्गं प्रपुन्नाटं भ्रामयेच्छिरसोपरि । ततश्च तर्पणं कार्यं यमराजस्य नामभिः ॥
यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च । वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥
औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने । वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः ॥
नरकाय प्रदातव्यो दीपः संपूज्य देवताः । ततः प्रदोषसमये दीपान्दद्यान्मनोहरान् ॥१४॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां भवनेषु विशेषतः । कूटागारेषु चैत्येषु सभासु च नदीषु च ॥
प्राकारोद्यानवापीषु प्रतोलीनिष्कुटेषु च । मन्दुरासु विविक्तासु हस्तिशालासु चैव हि

एवं प्रभातसमये ह्यमावास्यां तु पावके ।
स्नात्वा देवान्पितॄन्भक्त्या संपूज्याऽथ प्रणम्य च ॥ १७ ॥
कृत्वा तु पार्वणं श्राद्धं दधिक्षीरघृतादिभिः ।
भोज्यैर्नानाविधैर्विप्रान्भोजयित्वा क्षमापयेत् ॥ १८ ॥

ततोऽपराह्णसमये पोषयेन्नागरान्प्रिय । तेषां गोष्ठीं च मानं च कृत्वा संभाषणं नृपः
वक्तॄणां वत्सरं यावत्प्रीतिरुत्पद्यते गुह । अप्रबुद्धे हरौ पूर्वं स्त्रीभिर्लक्ष्मीः प्रबोध्यते ॥

प्रबोधसमये लक्ष्मीं बोधयित्वा तु सुस्त्रिया । पुमान्वै वत्सरं यावल्लक्ष्मीस्तं नैव मुञ्चति

अभयं प्राप्य विप्रेभ्यो विष्णुभीताः सुरद्विषः ।
सुप्तं क्षीरोदधौ ज्ञात्वा लक्ष्मीं पद्माश्रितां तथा ॥ २२ ॥
त्वं ज्योतिःश्रीरविश्चन्द्रो विद्युत्सौवर्णतारकः ।
सर्वेषां ज्योतिषां ज्योतिर्दीपज्योतिःस्थिता तु या ॥ २३ ॥
या लक्ष्मीर्दिवसे पुण्ये दीपावल्यां च भूतले ।
गवां गोष्ठे तु कार्त्तिक्यां सा लक्ष्मीर्वरदा मम ॥ २४ ॥

शङ्करश्च भवानी च क्रीडया द्यूतमास्थितौ । भवान्याभ्यर्चिता लक्ष्मीर्धेनुरूपेण संस्थिता

गौर्या जित्वा पुरा शम्भुर्नग्नो द्यूते विसर्जितः ।
अतोऽयं शंकरो दुःखी गौरी नित्यं सुखे स्थिता ॥ २६ ॥

प्रथमं विजयो यस्यास्तस्य संवत्सरं सुखम् । एवं गते निशीथे तु जने निद्रार्धलोचने तावन्नगरनारीभिस्तूर्यडिण्डिमवादनैः । निष्कास्यते प्रहृष्टाभिरलक्ष्मीश्च गृहाङ्गणात् पराजये विरुद्धं स्यात्प्रतिपद्युदिते रवौ । प्रातर्गोवर्धनः पूज्यो द्यूतं रात्रौ समाचरेत् भूषणीयास्तथा गावो वर्ज्यावहनदोहनात् । गोवर्धनधराधार गोकुल त्राणकारक ॥ विष्णुबाहुकृतोच्छ्राय गवां कोटिप्रदो भव । या लक्ष्मीर्लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु । अग्रतः सन्तु मे गावो गावो मे सन्तु पृष्ठतः ॥

गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥ ३२ ॥

इति गोवर्धनपूजा ।

सद्भावेनैव संतोष्य देवान्सत्पुरुषान्नरान् । इतरेषामन्नपानैर्वाक्यदानेन पण्डितान् ॥ वस्त्रैस्ताम्बूलदीपैश्च पुष्पकर्पूरकुङ्कुमैः । भक्ष्यैरुच्चावचैर्भोज्यैरन्तःपुरनिवासिनः ॥ वृषभान्ग्रासदानैश्च सामन्तान्नृपतिर्धनैः । पदाति जनसङ्घांश्च ग्रैवेयःकटकैःशुभैः ॥३५॥

स्वानमात्यांश्च तान्राजा तोषयेत्स्वजनान्पृथक् ।
यथाऽथ तोषयित्वा तु ततो मल्लान्नटांस्तथा ॥ ३६ ॥

वृषभांश्च महोक्षांश्च युध्यमानान्परैः सह । राजन्यांश्चापि योधांश्च पदातीन्समलङ्कृतान्

मञ्चारूढःस्वयं पश्येन्नटनर्तकचारणान् । योधयेद्वासयेच्चैव गोमहिष्यादिकं च यत् ।
वत्सानाकर्षयेद्गोभिरुक्तिप्रत्युक्तिवादनात् । ततोऽपराह्णसमये पूर्वस्यां दिशि पावके ॥
मार्गपालीं प्रवध्नीयाद्दुर्गस्तम्भेऽथ पादपे । कुशकाशमयीं दिव्यां लम्बकैर्बहुभिर्गुह ॥

वीक्षयित्वा गजानश्वान्मार्गपाल्यास्तले नयेत् ।
गावैर्वृषांश्च महिषान्महिषीर्घण्टिकोत्कटाः ॥ ४१ ॥

कृतहोमैर्द्विजेन्द्रैस्तु वध्नीयान्मार्गपालिकाम् । नमस्कारं ततःकुर्यान्मन्त्रेणानेन सुव्रतः
मार्गपालि नमस्तुभ्यं सर्वलोक सुखप्रदे । मार्गपालीतले स्कन्द यान्ति गावो महावृषाः
राजानो राजपुत्राश्च ब्राह्मणाश्च विशेषतः । मार्गपालीं समुल्लङ्घ्य नीरुजःसुखिनो हि ते
कृत्वैतत्सर्वमेवेह रात्रौ दैत्यपतेर्वलेः । पूजां कुर्यात्ततःसाक्षाद्भूमौमण्डलके कृते ॥
वलिमालिख्य दैत्येन्द्रं वर्णकैःपञ्चरङ्गकैः । सर्वाभरणसंपूर्णविन्ध्यावलिसमन्वितम्
कूष्माण्डमयजम्भोरु मधुदानव संवृतम् । संपूर्णं हृष्टवदनं किरीटोत्कटकुण्डलम् ॥

द्विभुजं दैत्यराजं च कारयित्वा स्वके पुनः ।
गृहस्य मध्ये शालायां विशालायां ततोऽर्चयेत् ॥ ४८ ॥

मातृभ्रातृजनैःसार्धं सन्तुष्टो वन्धुभिःसह । कमलैःकुमुदैःपुष्पैःकह्लारैः रक्तकोत्पलैः ॥
गन्धपुष्पान्ननैवेद्यैःसक्षीरैर्गुडपायसैः । मद्यमांससुरालेह्यचोष्यभक्ष्योपहारकैः ॥५० ॥

मन्त्रेणानेन राजेन्द्रः समन्त्री सपुरोहितः ।
पूजां करिष्यते यो वै सौख्यं स्यात्तस्य वत्सरम् ॥ ५१ ॥

वलिराज नमस्तुभ्यं विरोचनसुत प्रभो । भविष्येन्द्र सुराराते पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥
एवं पूजाविधिं कृत्वा रात्रौ जागरणं ततः । कारयेद्वै क्षणं रात्रौ नटनर्तकगायकैः ॥

लोकैश्चापि गृहस्यान्ते सपर्यां शुक्लतण्डुलैः ।
संस्थाप्य वलिराजं तु फलैःपुष्पैश्च पूजयेत् ॥ ५४ ॥

वलिमुद्दिश्य वै तत्र कार्यं सर्वं च पावके । यानि यान्यक्षयाण्याहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥
यदत्र दीयते दानं स्वल्पं वा यदि वा बहु । तदक्षयं भवेत्सर्वं विष्णोःप्रीतिकरं शुभम्
रात्रौ ये न करिष्यन्ति तव पूजां वले नराः । तेषामश्रोत्रियं धर्मं सर्वं त्वामुपतिष्ठतु ॥

विष्णुना च स्वयं वत्स तुष्टेन वलये पुनः । उपकारकरं दत्तमसुराणां महोत्सवम् ॥
तदा प्रभृति सेनानीःप्रवृत्ता कौमुदी सदा । सर्वोपद्रवविद्रावा सर्वविघ्नविनाशिनी ॥
लोकशोकहरा काम्या धनपुष्टिसुखावहा । कुशब्देन मही ज्ञेया मुद्हर्षे ततो द्वयम् ॥

धातुत्वे निगमैश्चैव तेनैषा कौमुदी स्मृता ।
कौ मोदन्ते जना यस्मान्नानाभावैःपरस्परम् ॥ ६१ ॥

हृष्टतुष्टाःसुखापन्नास्तेनैषा कौमुदी स्मृता । कुमुदानि वलेर्यस्यां दीयन्ते तेन षण्मुख
अर्घार्थं पार्थिवैःपुत्र तेनैषा कौमुदी स्मृता । एकमेवमहोरात्रं वर्षे वर्षे च कार्तिके॥६३
दत्तं दानवराजस्य आदर्शमिव भूतले । यःकरोति नृपो राज्ये तस्य व्याधिभयं कुतः ॥
सुभिक्षं क्षेममारोग्यं तस्य संपदनुत्तमा । नीरुजश्च जनाःसर्वे सर्वोपद्रववर्जिताः ॥६५॥
कौमुदी क्रियते तस्माद्भावं कर्तुं महीतले । यो यादृशेन भावेन तिष्ठत्यस्यां च षण्मुख
हर्षदुःखादिभावेन तस्य वर्षं प्रयाति हि । रुदिते रोदते वर्षं हृष्टे वर्षं प्रहर्षितम् ॥६७॥

भुक्ते भोक्ता भवेद्वर्षं स्वस्थे स्वस्थं भविष्यति ।
तस्मात्प्रहृष्टैःकर्त्तव्या कौमुदी च शुभैर्नरैः ॥ ६८ ॥
वैष्णवी दानवी चेयं तिथिःप्रोक्ता च कार्तिके ॥ ६९ ॥
दीपोत्सवं जनितसर्वजनप्रसादं कुर्वन्ति ये शुभतया बलिराजपूजाम् ।
दानोपभोगसुखवुद्धिमतां कुलानां हर्षं प्रयाति सकलं प्रमुदं च वर्षम् ॥७०॥

स्कन्दैतास्तिथयो नूनं द्वितीयाद्याश्च विश्रुताः । मासैश्चतुर्भिश्च ततःप्रावृट्काले शुभावहाः
प्रथमा श्रावणे मासि तथा भाद्रपदे परा । तृतीयाश्वयुजे मासि चतुर्थी कार्तिके भवेत्
कलुषा श्रावणे मासि तथा भाद्रपदेऽमला । आश्विने प्रेतसंचारा कार्तिके याम्यकामता

गुह उवाच ।

कस्मात्सा कलुषा प्रोक्ता कस्मात्सा निर्मला मता ।
कस्मात्सा प्रेतसंचारा कस्माद्याम्या प्रकीर्तिता ॥ ७४ ॥

सूत उवाच ।

इति स्कन्दवचःश्रुत्वा भगवान्भूतभावनः । उवाच वचनं श्लक्ष्णं प्रहसन्वृषभध्वजः ॥

महेश उवाच ।

पुरा वृत्रवधे वृत्ते प्राते राज्यं पुरन्दरे । ब्रह्महत्यापनोदार्थमश्वमेधःप्रवर्त्तितः ॥ ७६ ॥

क्रोधादिन्द्रेण वज्रेण ब्रह्महत्या निषूदिता ।

षड्विधा सा क्षितौ क्षिप्ता वृक्षतोयमहीतले ॥ ७७ ॥

नार्यां वह्नौ भ्रूणहनि संविभज्य यथाक्रमम् । तत्पापश्रवणात्पूर्वं द्वितीयाया दिनेन च

नारीवृक्षनदीभूमि वह्निभ्रूणहनस्तथा । कलुषीभवनं जातो ह्यतोऽथ कलुषा स्मृता ॥

मधुकैटभयोरक्ते पुरा मग्नानुमेदिनी । अष्टाङ्गुला पवित्रा सा नारीणां तु रजोमलम् ॥

नद्यःप्रावृण्मलाःसर्वा वह्नेरूर्ध्वं मषीमलः । निर्यासमलिना वृक्षाःसङ्गाद्भ्रूणहनोमलाः ॥

कलुषा विचरन्त्यस्यां तेनैषा कलुषा मता ।

देवर्षिपितृधर्माणां निन्दका नास्तिकाःशठाः ॥ ८२ ॥

तेषां सा वाङ्मलात्पूता द्वितीया तेन निर्मला । अनध्यायेषु शास्त्राणि पाठयन्ति पठन्ति च

साङ्ख्यकास्तार्किकाःश्रौतास्तेषां शब्दापशब्दजात् ।

मलात्पूता द्वितीयायां ततोऽर्थे निर्मला च सा ॥ ८४ ॥

कृष्णस्य जन्मना वत्स त्रैलोक्यं पावितं भवेत् ।

नभस्येते विनिर्दिष्टा निर्मला सा तिथिर्बुधैः ॥ ८५ ॥

अग्निष्वात्ता बर्हिषद आज्यपाःसोमपास्तथा । पितॄन्पितामहान्प्रेतसंचारात्प्रेतसंचरा ॥

प्रेतास्तु पितरःप्रोक्तास्तेषां तस्यां तु संचरः । पुत्रपौत्रैस्तु दौहित्रैःस्वधामन्त्रैस्तु पूजिताः

श्राद्धदानमखैस्तृप्ता यान्त्यतःप्रेतसंचरा । महालये तु प्रेतानां संचारो भुवि दृश्यते ॥

तेनैषा प्रेतसंचारा कीर्तिता शिखिवाहन । यमस्य क्रियते पूजा यतोऽस्यां पावके नरैः

तेनैषा याम्यका प्रोक्ता सत्यं सत्यं मयोदितम् ।

एतत्कार्त्तिकमाहात्म्यं ये शृण्वन्ति नरोत्तमाः ॥ ९० ॥

कार्त्तिकस्नानजं पुण्यं तेषां भवति निश्चितम् । कार्त्तिके च द्वितीयायां पूर्वाह्णे यममर्चयेत्

भानुजायां नरःस्नात्वा यमलोकं न पश्यति । कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु द्वितीयायां तु शौनक

यमो यमुनया पूर्वं भोजितःस्वगृहेऽर्चिता । द्वितीयायां महोत्सर्गो नारकीयाश्च तर्पिताः

पापेभ्यो विप्रयुक्तास्ते मुक्ताःसर्वनिबन्धनात् ।
आशंसिताश्च संतुष्टाःस्थिताःसर्वे यदृच्छया ॥ ९४ ॥
तेषां महोत्सवो वृत्तो यमराष्ट्रे सुखावहः । अतो यमद्वितीयेयं त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥
तस्मान्निजगृहे विप्र न भोक्तव्यं ततो बुधैः । स्नेहेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं पुष्टिवर्द्धनम्
दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विधानतः । स्वर्णालङ्कारवस्त्राणि पूजासत्कारसंयुतम्
भोक्तव्यं सहजायाश्च भगिन्याहस्ततःपरम् । सर्वासु भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं बलवर्धनम्
ऊर्जे शुक्लद्वितीयायां पूजितस्तर्पितो यमः । महिषासनमारूढो दण्डमुद्गरभृत्प्रभुः ॥९९॥
वेष्टितःकिङ्करैर्हृष्टैस्तस्मै याम्यात्मने नमः । यैर्भगिन्यःसुवासिन्यो वस्त्रदानादितोषिताः
न तेषां वत्सरं यावत्कलहो न रिपोर्भयम् । धन्यं यशस्यमायुष्यं धर्मकामार्थसाधनम्
व्याख्यातं सकलं पुत्र सरहस्यं मयाऽनघ ! ॥ १०२ ॥
यस्यां तिथौ यमुनया यमराजदेवःसंभोजितःप्रतितिथौ स्वसृसौहृदेन ।
तस्मात्स्वसुःकरतलादिह यो हि भुङ्क्ते प्राप्नोति वित्तशुभसंपदमुत्तमां सः

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे
कार्त्तिकमाहात्म्ये द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

———

त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रबोधिन्येकादशीमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच ।

प्रबोधिन्याश्च माहात्म्यं पापघ्नं पुण्यवर्धनम् । मुक्तिदं तत्त्वबुद्धीनां शृणुष्व सुरसत्तम
तावद्गर्जति सेनानीर्गङ्गा भागीरथी क्षितौ । यावन्नायाति पापघ्नी कार्त्तिके हरिबोधिनी
तावद्गच्छन्ति तीर्थानि आसमुद्रसरांसि च ।

यावत्प्रबोधिनी विष्णोस्तिथिर्नायाति कार्त्तिके ॥ ३ ॥
अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च । एकेनैवोपवासेन प्रबोधिन्यां यथाभवत् ॥४॥
दुर्लभं चैव दुष्प्राप्यं त्रैलोक्ये सचराचरे । तदपि प्रार्थितं विप्र ददाति प्रतिबोधिनी ॥
ऐश्वर्यं संस्रुतिं ज्ञानं राज्यं च सुखसंपदम् । ददात्युपोषिता विप्र हेलया हरिबोधिनी
मेरुमन्दरतुल्यानि पापान्युपार्जितानि च । एकेनैवोपवासेन दहते हरिबोधिनी ॥ ७ ॥
उपवासं प्रबोधिन्यां यःकरोति स्वभावतः । विधिना नरशार्दूल यथोक्तं लभते फलम्
पूर्वजन्मसहस्रेषु पापं यत्समुपार्जितम् । जागरेण प्रबोधिन्यां दह्यते तूलराशिवत् ॥
शृणु षण्मुख वक्ष्यामि जागरस्य च लक्षणम् । यस्य विज्ञानमात्रेण दुर्लभो न जनार्दनः
गीतं वाद्यं च नृत्यं च पुराणपठनं तथा । धूपं दीपं च नैवेद्यं पुष्पं गन्धानुलेपनम् ॥
फलमर्घ्यं च श्रद्धा च दानमिन्द्रियसंयमः ।
सत्यान्वितं विनिद्रं च मुदायुक्तं क्रियान्वितम् ॥ १२ ॥
साश्चर्यंचैव सोत्साहमालस्यादिविवर्जितम् । प्रदक्षिणादिसंयुक्तं नमस्कारपुरःसरम्
नीराजनसमायुक्तमनिर्विण्णेन चेतसा । यामे यामे महाभाग कुर्वन्नीराजनं हरेः ॥१४॥
एतैर्गुणैःसमायुक्तं कुर्याज्जागरणं विभोः । एकाग्रमानसो यस्तु न पुनर्जायते भुवि ॥
य एवं कुरुते भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः । जागरं वासरे विष्णोर्नीयते परमां गतिम्
पुरुषसूक्तेन यो नित्यं कार्त्तिके त्वर्चयेद्धरिम् । वर्षकोटिसहस्राणि पूजितस्तेन केशवः
यथोक्तेन विधानेन पञ्चरात्रोदितेन वै । कार्त्तिके त्वर्चयेन्नित्यं मुक्तिभागी भवेन्नरः ॥
नमो नारायणायेति कार्त्तिके योऽर्चयेद्धरिम् । समुक्तो नारकैर्दुःखैःपदंगच्छत्यनामयम्
हरेर्नाम सहस्रं च गजराजस्य मोक्षणम् । कार्तिके पठते यस्तु पुनर्जन्म न विन्दति ॥
युगकोटिसहस्राणि मन्वन्तरशतानि च । द्वादश्यां कार्त्तिके मासि जागरी वसते दिवि
कुले तस्य च संजाताःशतशोऽथ सहस्रशः ।
प्राप्नुवन्ति पदं विष्णोस्तस्मात्कुर्वीत जागरम् ॥२२॥
कार्त्तिके पश्चिमे यामे स्तवं गानं करोति यः । श्वेतद्वीपे तु वसते पितृभिःसह भामिनि
नैवेद्यदानं हरये कार्त्तिके दिनसंक्षये । युगानि वसते स्वर्गे तावन्ति मुनिसत्तमाः ॥

अक्षयं मुनिशार्दूल मालतीकमलार्चनम् । अर्चयेद्देवदेवेशं स याति परमं पदम् ॥ २५ ॥

कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु कृत्वा ह्येकादशीं नरः ।
प्रातर्दत्त्वा शुभान्कुम्भान्स याति मम मन्दिरम् ॥ २६ ॥

कार्त्तिकेय उवाच ।

भगवन्नुच्यतां पुण्यं व्रतानां परमं व्रतम् । कर्तव्यं कार्त्तिके मासि भवता भीष्मपञ्चकम्
विधानं तस्य च फलं तथैव सुरसत्तम । कथयस्व प्रसादान्मे मुनीनां च पितामह ॥

ईश्वर उवाच ।

प्रवक्ष्यामि महापुण्यं व्रतं विधिमतांवर । भीष्मेणैतद्यतःप्राप्तं व्रतं पञ्चदिनात्मकम् ॥
सकाशाद्वासुदेवस्य तेनोक्तं भीष्मपञ्चकम् । व्रतस्यास्य गुणान्वक्तुं कःशक्तःकेशवादृते
कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु श्रृणु धर्मं पुरातनम् । वसिष्ठभृगुगर्गाद्यैश्चीर्णं कृतयुगादिषु ॥३१॥
अम्बरीषेण भोगाद्यैश्चीर्णं त्रेतायुगादिषु । ब्राह्मणैर्ब्रह्मचर्येण जपहोमक्रियादिभिः ॥३२
क्षत्रियैश्च तथा वैश्यैःसत्यशौचपरायणैः । दुष्करं सत्यहीनानामशक्यं बालचेतसाम्
दुष्करं भीष्ममित्याहुर्न शक्यं प्राकृतैर्नरैः । यस्तत्करोति विप्रेन्द्र तेन सर्वं कृतं भवेत्
व्रतंचैतन्महापुण्यं महापातकनाशनम् । अतो नरैःप्रयत्नेन कर्त्तव्यं भीष्मपञ्चकम् ॥३५

कार्त्तिकस्यामलेपक्षे स्नात्वा सम्यग्विधानतः ।
एकादश्यां तु गृह्णीयाद्व्रतं पञ्चदिनात्मकम् ॥ ३६ ॥
प्रातःस्नात्वा विशेषेण मध्याह्ने च तथा व्रती ।
नद्यां निर्झरगर्ते वा समालभ्य च गोमयम् ॥ ३७ ॥

यवव्रीहितिलैःसम्यक्पितॄन्संतर्पयेत्क्रमात् । स्नात्वा मौनं नरःकृत्वा धौतवासा दृढव्रतः
भीष्मायोदकदानं च अर्घ्यंचैव प्रयत्नतः । पूजा भीष्मस्य कर्त्तव्या दानं दद्यात्प्रयत्नतः
पञ्चरत्नं विशेषेण दत्त्वा विप्राय यत्नतः । वासुदेवोऽपि संपूज्यो लक्ष्मीयुक्तःसदाप्रभुः

पञ्चके पूजयित्वा तु कोटिकल्पानि तुष्यति ।
यत्किञ्चित्क्रियते सर्वं पञ्चधा तु प्रकल्पयेत् ॥ ४१ ॥

संवत्सरव्रतानां च लभते सकलं फलम् । कृत्वा तूदकदानं तु तथार्घ्यस्य च दापनम्

मन्त्रेणानेन यःकुर्यान्मुक्तिभागी भवेन्नरः ॥ ४३ ॥
वैयाघ्रपादगोत्राय साङ्कृतेःप्रवराय च । अपुत्राय ददाम्येतदुदकं भीष्मवर्मणे ॥ ४४ ॥
वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च । अर्घ्यं ददामि भीष्माय ह्याजन्मब्रह्मचारिणे ॥

इत्यर्घ्यमन्त्रः ।

अनेन विधिना यस्तु पञ्चकं तु समापयेत् । अश्वमेधसमं पुण्यं प्राप्नोत्यत्र न संशयः ॥
पञ्चाहमपि कर्तव्यं नियमं च प्रयत्नतः । नियमेन विना पुत्र न भाव्यं व्रतकर्मणा ॥
उत्तरायणहीनाय भीष्माय प्रददौ हरिः । उत्तरायणहीनोऽपि शुद्धि लग्नं विना शुभाः
ततःसंपूजयेद्देवं सर्वपापहरं हरिम् । अनन्तरं प्रयत्नेन कर्तव्यं भीष्मपञ्चकम् ॥ ४६ ॥
स्नापयेत जलैर्भक्त्या मधुक्षीरघृतेन च । तथैव पञ्चगव्येन गन्धचन्दनवारिणा ॥५० ॥
चन्दनेन सुगन्धेन कुङ्कुमेनाथ केशवम् । कर्पूरोशीरमिश्रेण लेपयेद्गरुडध्वजम् ॥ ५१ ॥
अर्चयेद्रुचिरैःपुष्पैर्गन्धधूपसमन्वितैः । गुग्गुलं घृतसंयुक्तं दहेत्कृष्णाय भक्तिमान् ॥५२
दीपकं तु दिवारात्रौ दद्यात्पञ्चदिनादिषु । नैवेद्यं देवदेवस्य परमान्नं निवेदयेत् ॥५३॥
एवमभ्यर्चयेद्देवं संस्मृत्य च प्रणम्य च । ॐनमो वासुदेवाय जपेदष्टोत्तरंशतम् ॥५४॥
जुहुयाच्च घृताभ्यक्तैस्तिलव्रीहियवादिभिः । षडक्षरेण मन्त्रेण स्वाहाकारान्वितेन च ॥
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां प्रणम्य गरुडध्वजम् ।
जपित्वा पूर्ववन्मन्त्रं क्षितिशायी भवेद्व्रती ॥ ५६ ॥
सर्वमेतद्विधानं तु कार्यं पञ्चदिनानि तु । विशेषोऽत्र व्रते ह्यस्मिन्यदन्यूनं शृणुष्व तत्
प्रथमेऽह्नि हरेःपादौ पूजयेत्कमलैर्व्रती । द्वितीये विल्वपत्रेण जानुदेशं समर्चयेत् ॥५८
ततोऽनुपूजयेच्छीर्षं मालतीकुसुमैर्हरेः । कार्त्तिक्यां देवदेवस्य भक्त्या तद्गतमानसः ॥५६
अर्चित्वा तं हृषीकेशमेकादश्यां समासतः । निष्प्राश्य गोमयंसम्यगेकादश्यामुपावसेत्
गोमूत्रं मन्त्रवद्भूमौ द्वादश्यां प्राशयेद्व्रती । क्षीरंचैव त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां तथा दधि
संप्राश्य कायशुद्ध्यर्थं लङ्घःस्थित्वा चतुर्दिनम् ।
पञ्चमे दिवसे स्नात्वा विधिवत्पूज्य केशवम् ॥ ६२ ॥
भोजयेद्ब्राह्मणान्भक्त्या तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ।

पापबुद्धिं परित्यज्य ब्रह्मचर्येण धीमता ॥ ६३ ॥
मद्यं मांसं परित्यज्य मैथुनं पापकारिणः । शाकाहारेण मुन्यन्नैःकृष्णार्चनपरो नरः ॥
ततो नक्तं समश्नीयात्पञ्चगव्यपुरःसरम् । एवं सम्यक्समाप्तस्य यथोक्तं फलमाप्नुयात्
मद्यपो यत्पिबेन्मद्यं जन्मनो मरणान्तिकम् । एतद्भीष्मव्रतं कृत्वा प्राप्नोति परमं पदम्॥
स्त्रीभिर्ब्राह्मणवाक्येन कर्तव्यं धर्मवर्धनम् । विधवाभिश्च कर्तव्यं मोक्षसौख्याभिवृद्धये
सर्वकामसमृद्ध्यर्थं पुण्यार्थमपि पावके । नित्यस्नाने तथा दाने ये कार्त्तिकमुपासते
वैश्वदेवश्च कर्तव्यो विष्णुध्यानपरायणैः । आरोग्यपुत्रदो वत्स महापातकनाशनः ॥
तीर्थेषु कार्त्तिकं कुर्यात्सर्वयत्नेन षण्मुख । संवत्सरव्रतानां तु समाप्तिःकार्त्तिके मता

पापस्य प्रतिमा कार्या रौद्रवक्त्रातिभीषणा ।
खड्गहस्ता विनिष्क्रान्ता लोहदंष्ट्रा करालिनी ॥ ७१ ॥
तिलप्रस्थोपरि स्थाप्या कृष्णवस्त्राभिवेष्टिता ।
रक्तपुष्पकृता पीडा ज्वलत्काञ्चनकुण्डला ॥ ७२ ॥

संपूज्य परया भक्त्या धर्मराजस्य नामभिः । इममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥
यदन्यजन्मनि कृतमिह जन्मनि वा पुनः । पापं प्रशममायातु तव पादप्रसादतः ॥७४ ॥

एवं संपूज्य विधिवत्प्रतिमां तां च काञ्चनीम् ।
कृत्वा पूजां यथाशक्ति विप्राणां वेदवादिनाम् ॥ ७५ ॥

प्रीतये देवदेवस्य कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः । ब्राह्मणाय प्रदातव्यं धर्मो मे प्रीयतामिति ॥
वाचकाय प्रदातव्या यथाशक्ति च दक्षिणा । दद्याद्धिरण्यं गाश्चैव कृष्णो मे प्रीयतामिति

इति पाठः ।

कृतकृत्यःस्थितो भूत्वा विरक्तःसंयतो भवेत् । अन्येषामपि दातव्यं स्वशक्त्या दानमुत्तमम्
शान्तचित्तो निराबाधःपरं पदमवाप्नुयात् । नीलोत्पलदलश्यामश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्भुजः॥७९॥
अष्टपादैकनयनःशङ्कुकर्णःखरस्वनः । जटी द्विजिह्वस्ताम्राक्षो मृगराजतनुच्छदः ॥८० ॥
चिन्तनीयो महादेवो यस्य रूपं न विद्यते । इदं भीष्मेण कथितं शरतल्पगतेन मे॥८१॥
तदेतत्ते मयाऽऽख्यातं दुष्करं भीष्मपञ्चकम् । धन्यं पुण्यं पापहरं युधिष्ठिर! महाव्रतम्

यत्कृत्वा ब्रह्महा गोघ्नः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ८२ ॥

यद्भीष्मपञ्चकमिति प्रथितं पृथिव्यामेकादशीप्रभृतिपञ्चदशीनिरुद्धम् ।

उक्तं न भोजनपरस्य तदा निषेधस्तस्मिन्व्रते शुभफलं प्रददाति विष्णुः ॥८३

सूत उवाच ।

एतत्सर्वाधिकं पुण्यं दुर्लभं भुवने कृतम् । इदं गुह्यं मयाख्यातं शास्त्रसारसमुच्चयम् ॥

सुराणां गोपितं सर्वमतिगुह्यं च मोक्षदम् । श्रुत्वा चैकपदे देवि अगस्त्यागमने रताः ॥

कन्याविक्रीःस्वसाविक्रीर्ह्यभयं तु विमोचयेत् । मोक्षदं च इदं शास्त्रं प्रकाश्यं नेतरे जने

श्रुत्वा चैकपदे यस्तु मोक्षं गच्छति मानवः ।

गोपनीयं प्रयत्नेन ये चापि त्यागिनो नराः ॥ ८७ ॥

न तेषां कथ्यते पुण्यं सत्यं सत्यं च षण्मुख ।

इत्येतत्सर्वमाख्यातं कार्त्तिकस्य तु यत्फलम् ॥ ८८ ॥

श्रीविष्णुरुवाच ।

कथितं देवदेवेन पुत्राय हितकाम्यया । पितुस्तद्वाक्यमाकर्ण्य षण्मुखो हर्षनिर्भरः ॥

ऊचुःप्राञ्जलयःसर्वे तं देवं जगदायुषम् । कृतकृत्या वयं जाताःश्रुत्वा कार्त्तिकजं फलम्

अपरं नास्ति श्रोतव्यं नःप्राप्तं जन्मनःफलम् । माहात्म्यमेतदाकर्ण्य पूजयेद्यस्तु पाठकम्

गोभूहिरण्यवस्त्रैश्च विष्णुतुल्यो यतो हि सः ।

वाचके पूजिते यस्माद्विष्णुर्भवति पूजितः ॥ ९२ ॥

तथा तं पूजयेन्नित्यं यदीच्छेत्सफलं शुभम् । धर्मशास्त्रं पुराणं च वेदविद्यादिकं च यत्

पुस्तकं वाचकायैव दातव्यं धर्ममिच्छता । पुराणविद्यादातारो ह्यनन्तफलभोजिनः ॥

यःपठेत इदं भक्त्या श्रुत्वा चैवावधारयेत् । मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति

धनंधान्यं यशःपुत्रानायुरारोग्यमेव च । माहात्म्यश्रवणादेव लभ्यते च न संशयः ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कार्त्तिकमाहात्म्ये

श्रीकृष्णसत्यभामासंवादे त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

माघमासमाहात्म्यवर्णनम्

ऋषय ऊचुः ।

सूतसूत महाभाग त्वया लोकहितैषिणा । कथितं कार्त्तिकाख्यानं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्
अधुना माघमाहात्म्यं वद नो लोमहर्षणे । श्रुतेन येन लोकानां संशयःक्षीयते महान् ॥

पुरा केन महाभाग लोकेऽस्मिन्संप्रकाशितम् ।
माघस्नानस्य माहात्म्यं सेतिहासं तदाऽऽदिश ॥ ३ ॥

सूत उवाच ।

साधु साधु मुनिश्रेष्ठा यूयं कृष्णपरायणाः। यत्पृच्छथ मुदायुक्ता भक्त्या कृष्णकथा मुहुः

कथयिष्यामि माघस्य माहात्म्यं पुण्यवर्धनम् ।
पापघ्नं शृण्वतां पुंसां स्नातानां चारुणोदये ॥ ५ ॥

एकदा पार्वती विप्राःशङ्करं लोकशङ्करम् । पप्रच्छ विनयोपेता स्पृष्ट्वा तच्चरणाम्बुजम् ॥

पार्वत्युवाच ।

देवदेव महादेव भक्तानामभयप्रद । प्रसीद नाथ विश्वेश यत्पृच्छे तद्वदाऽधुना ॥ ७ ॥

श्रुता नानाविधा धर्मास्त्वत्तःपूर्वं मया विभो ।
अधुना श्रोतुमिच्छामि माहात्म्यं माघजं वद ॥ ८ ॥

तत्तु केन पुरा चीर्णं को विधिः का च देवता ।
तत्सर्वं विस्तराद्ब्रूहि यतस्त्वं भक्तवत्सलः ॥ ९ ॥

महेश उवाच ।

अध्वराऽवभृथस्नात ऋषिभिःकृतमङ्गलः । पूजितो नागरैःसर्वैःस्वपुरान्निर्गतो वहिः ॥

दिलीपो भूभृतां श्रेष्ठो मृगयारसिको नृपः । कौतूहलसमाविष्ट आखेटव्यूहसंवृतः॥११

उपानद्गूढपादस्तु नीलोष्णीष उरच्छदी । बद्धगोधाङ्गुलित्राणो धनुष्पाणिःसरीसृपः

वद्धक्षुद्रासि धानुष्कैस्तथा भूपैश्च पत्तिभिः। गान्धारेषु सुरम्येषु वनेषु विपुलेषु च
उल्लङ्घितमहास्रोता युवा पञ्चास्यविक्रमः।
मुदा क्रीडति तैःसार्धं कुञ्जेषु मृगयन्मृगान् ॥ १४ ॥
हन्यतां हन्यतामेष मृगो वैष पलायते। इति जल्पन्स्वभृत्येषु स्वयमुत्पत्य हन्ति च ॥
इतस्ततःपुनर्याति क्वचित्पश्यन्वनस्थलीम्। विटपोड्डीनसंत्रस्त लीनकेकिकुलाकुलाम् ॥
हरिणीगणवित्रस्तां धावच्छावकदिङ्मुखाम्।
क्वचित्फेरवफेत्कारताराराववि‌भीषणाम् ॥ १७ ॥
खड्गयूथैःक्वचिल्लक्ष्मीं दधानामिव दन्तिनाम्। क्वचित्कोटरसंदष्टोलूकनादविनादिनीम्
मृगारीपदमुद्राभिर्मुद्रितां च क्वचित्क्वचित्। शार्दूलनखनिर्भिन्नरोहिद्रक्तारुणां क्वचित् ॥
पीवरस्तनभारार्तसुस्निग्धमहिषीगणैः। अवरोधाजिरक्षोणीं सूचयन्तीं मनःक्वचित् ॥
क्वचिद्वृक्षघनच्छन्नां वन्यपुष्पसुगन्धिनीम्। क्वचिल्लतागृहद्वारां भृङ्गशब्दसुशोभनाम्
अर्धनिःसृतनिर्मोकनागभीमवृहद्विलाम्। विलेषु लीनाजगरैर्भीमां निर्मोकसर्पिणीम्
क्वचिद्दावानलज्वालां शिलाज्योतिःसुशोभनाम्।
फूत्कारशब्दसंपूर्णमृगव्याघ्रसमाकुलाम् ॥ २३ ॥
प्रविमुञ्चञ्छुनां यूथं शशकेषु क्वचित्क्वचित्। पल्वलेषु च विश्रम्य पुनर्याति वनान्तरम्
एवं व्रजति राजेन्द्रे व्याधवर्गे च वल्गति। कुर्वन्कोलाहलं तत्र सारङ्गो निर्गतो वनात्
स्फालवेगक्रमाक्रान्तदुर्गमार्गमहीतलः। कदाचिद्गगनारूढःकदाचिद्भूमिगोचरः ॥२६॥
वक्रस्रोतोऽतिगम्भीरं कण्टकद्रुमसङ्कुलम्। प्रविष्टो विषमारण्यं राजाऽसौ तत्पदानुगः
दूराद्दूरतरं गत्वा देशाद्देशं च निर्जनम्। मृगादर्शनसंरम्भसंशुष्कगलकन्धरः ॥२८ ॥
ताम्रतालुमुखःखिन्नःश्रान्तपत्तिःस्खलद्ध्वनिः। अतीत्य दीर्घमार्गान्स तृषार्तो मध्यगे रवौ
ददर्शाऽग्रे तु कासारं स्पर्धयन्तमपांपतिम्। घनपादपतीरस्थं सुतीर्थं विमलं शुभम् ॥
विशालं विकचाम्भोजं मधुमत्तमधुव्रतम्। पद्मिनीपत्रपालाशच्छन्नं मरकतैरिव ॥३१
स्वच्छन्दमुच्चलन्मत्स्यं स्वच्छं साधुमनो यथा।
चलज्जलचरैर्मिश्रं वीचिराजिविराजितम् ॥ ३२ ॥

अन्तर्ग्राहगणक्रूरं खलानामिव मानसम् । क्वचिच्छैवालदुर्गम्यं कृपणस्येव मन्दिरम् ॥
नानाविहङ्गसर्वार्तिं शमयन्तं दिवानिशम् । दातारमिव सर्वस्वैरापन्नार्तिप्रणाशनम् ॥
तर्पयन्तं निजाम्भोभिःश्वापदान्स्वपितॄनिव । हरन्तं सर्वसंतापं हिमांशुमिव चाह्निकम्
तं दृष्ट्वा भूदतग्लानिश्चातको जलदं यथा । तत्र पीतजलो राजा कृतमाध्याह्निकक्रियः॥
भुक्त्वा खेटकमांसानि सहायैःसहितो नृपः । उवास सरसस्तीरे सुरम्यां कथयन्कथाम्
ततःशरासने बाणं कृत्वा रात्रौ स्थितस्तरौ । व्याधाःसंधानमास्थाय रुरुधुःककुभां पथः
एवं स्थितेषु वीरेषु वने विस्तार्यवागुराम् । निशार्धे निर्गतं यूथं सूकराणां तटेतटे ॥

चरित्वा सरसीकन्दान्पपात व्याधसङ्कुले ।
राज्ञा विद्धाश्च ते क्रोडा व्याधैश्च वहवो हताः ॥४० ॥

क्षणेनैव वराहास्ते विद्धाःपेतुर्महीतले । तान्दृष्ट्वा तुमुलं नादं व्याधाश्चक्रुःसुदर्पिताः ॥
धावन्तःप्रमुदायुक्ता मिलिता यत्र भूपतिः । तानादाय भटैर्भूयो निःसृतःसरसीतटात्
स्वपुरं गन्तुकामोऽसौ दृष्टवान्पथि तापसम् । ब्राह्मणं वृद्धहारीतं शङ्खचक्रसुशोभितम्
नियमैर्दुष्करैरुग्रैः परिक्षीणकलेवरम् । अस्थिशेषं महादान्तं विस्फुरत्कर्कशत्वचम् ॥
दधानं हारिणं चर्म वसानं मृदुवल्कलम् । कुर्वाणं नैगमं जाप्यं नखलोमजटाधरम् ॥

तं वनाश्रमिणं दृष्ट्वा मार्गं दत्त्वा स संभ्रमः ।
प्रणम्य शिरसा राजा कृतपद्माञ्जलिःस्थितः ॥ ४६ ॥

अथ चैनमलङ्कारैर्द्विजो निश्चित्य भूमिपम् । उवाच श्रेयसे हेतोःपरोपकृतिवाञ्छया ॥
किमर्थं गम्यते राजन्काले पुण्यतमे शुभे । माघमासे विहायैव प्रातःस्नानं सरोवरे ॥

प्रत्युवाच ततो राजा नाहं जाने द्विजोत्तम !! ।
माघस्नानफलं कीदृक्तन्मे कथय विस्तरात् ॥ ४९ ॥

इति भूपवचःश्रुत्वा प्राह वैखानसो मुनिः । भगवान्द्युमणिःशीघ्रमभ्युदेति तमोऽपहा ॥

स्नानकालोऽयमस्माकं न कथावसरो नृप ! ।
स्नात्वा गच्छ वसिष्ठं तं पृच्छस्व स्वकुलप्रभुम् ॥ ५१ ॥
इत्युक्त्वा तापसो मौनी प्रातःस्नानाय निर्गतः ।

प्रत्यावृत्य दिलीपोऽपि तत्र स्नात्वा यथाविधि ॥ ५२ ॥
पुनःस्वनगरीं वीरो गतोऽसौ हर्षपूरितः । अन्तःपुरे निवेद्याथ वानप्रस्थकथां पुनः ॥
श्वेताश्वरथमारुह्य सुश्वेतच्छत्रचामरः । सालङ्कारःसुवासाश्च संवृतो मन्त्रिभिःसह ॥
जयशब्दान्पुनःशृण्वन्स्तुतो मागधवन्दिभिः । वसिष्ठस्याश्रमं यात ऋषिवाक्यमनुस्मरन्
तत्रैव नत्वा ब्रह्मर्षिं विनयाचारपूर्वकम् । दत्तासनो गृहीतार्घ्य आशीर्भिःसमलङ्कृतः॥
सानन्दं मुनिना पृष्टःकुशलं भूपतिर्यदा । तदाऽब्रवीद्वचो राजा हर्षयन्मुनिमानसम् ॥
सोऽपि वैखानसेनोक्तं पप्रच्छ मधुराकृतिः ॥ ५७ ॥

दिलीप उवाच ।

भगवंस्त्वत्प्रसादेन श्रुता विस्तरतो मया । आचारो दण्डनीतिश्च राजधर्माश्च ये परे
चतुर्णामपि वर्णानामाश्रमाणां च याःक्रियाः ।
दानानि तद्विधानानि यज्ञाश्च विधयस्तथा ॥ ५९ ॥
व्रतानि तत्प्रदिष्टानि विष्णोराराधनं तथा ।
अधुना श्रोतुमिच्छामि माघस्नाने च यत्फलम् । विधेयं यद्विधानेन तन्मे ब्रह्मन्मुने वद

वसिष्ठ उवाच ।

सम्यगुक्तं परं श्रेयो लोकत्रयहितावहम् । निर्मलीकरणं तेन मुनिना वनवासिना॥६१॥
कटाक्षैःकामिनीनां ते प्रत्यासन्नमखण्डिताः । कामयन्ते मृगाङ्के ते स्रोतसि स्नातुमेव च
विना वह्निं विनायज्ञमिष्टापूर्तं विना प्रिये । वाञ्छन्ति सद्गतिं स्नातुं प्रातर्माघे बहिर्जले
गोभूहिरण्यमाणिक्यस्वर्णधेन्वादिकानि ये ।
अदत्त्वेच्छन्ति चैकार्णे माघं स्नाता नराधिप ! ॥ ६४ ॥
त्रिःसप्ताहव्रतैःकृच्छ्रैःपराकैश्च निजां तनुम् ।
अशोष्येच्छन्ति ये स्वर्गं तपसि स्नान्तु ते सदा ॥ ६५ ॥
हरेःपूजा च वैशाखे तपःपूजा च कार्त्तिके । तपोहोमस्तथा दानं त्रयं माघे विशिष्यते
सानुबन्धोऽतिपर्यासो धराधीशो भवेद्ध्रुवम् ।
कैवल्योत्पादकाबुद्धिर्यया वा न भवेत्पुनः ॥ ६७ ॥

पद्भ्या वरिवस्या सा विहिता दिव्यलोचनैः । तदनन्तं तपोदानं माघेमासि नृपोत्तम॥

सकामो वा प्रजा ये वा हरये तद्विनापि वा ।

कायशुद्धिं व्रतैर्भूत्वा चतुर्धा स्नानजं फलम् ॥ ६९ ॥

निरन्ना अदितिःसस्नौ माघे द्वादशवत्सरे । पुत्रांश्च द्वादशादित्याँल्लेभे त्रैलोक्यदीपकान्

सुभगा रोहिणी माघा दानशीला त्वरुन्धती । शची च रूपसंपन्ना प्रासादे सप्तभूमिके

विमलीकृतशोभाढ्ये नर्तकीललिताजिरे । दीपवर्णसमुच्छिन्ने रूपवत्स्त्रीजनाकुले ॥

गीतवादित्रनिर्घोषे मङ्गलाचारशोभिते । वेदध्वनिपवित्रे च विद्वद्भिरलङ्कृते ॥ ७३॥

सुरार्चनरते रम्ये सदातिथिनिषेविते । मुदितास्ते वसन्तीह यैःस्नातं मकरे रवौ॥७४॥

यैर्दत्तं बहु माघे च मुरारिश्चार्चितःस्तुतः । इष्टवस्तुपरित्यागान्नियमस्य तु पालनात् ॥

धर्मसूतिःसदामाघःपापमूलंनिकृन्तति । काममूलःफलद्वारा निष्कामो ज्ञानदः सदा ॥

ये लोका ज्ञानशीलानां ये लोका विपिनौकसाम् ।

ये लोका विष्णुभक्तानां ते माघस्नायिनां सदा ॥ ७७ ॥

देवलोकान्निवर्तन्ते पुण्यैरन्यैःपरन्तप । कदाचिन्न निवर्तन्ते माघस्नानरता नराः ॥७८॥

माघे स्नात्वा तु यो धेनुं दद्यान्मर्त्यःपयस्विनीम् ।

तस्या यावन्ति रोमाणि सर्वाङ्गे च नृपोत्तम ॥ ७९ ॥

तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते । माघस्नानं प्रकुर्वाणो यो दद्यात्सगुडांस्तिलान्

पातकं तस्य प्रक्ष्याल्य निर्मलो भाति वै नरः ।

सर्वेषां धान्यराशीनां तिलाःपापप्रणाशनाः ॥ ८१ ॥

तस्मान्माघे प्रयत्नेन तिला देया नृपोत्तम । माघस्नानं प्रकुर्वाणो दद्याद्ब्राह्मणभोजनम्

पितॄन्संतर्प्य शुद्धात्मा याति विष्णोःपरंपदम् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन माघोदानेन नीयते

अदानं न क्षिपेन्माघं सर्वदा नृपसत्तम । वित्तानुसारं ज्ञात्वा वै माघे दानं सदा ददेत्

माघस्नानं तु यःकुर्यादुपानत्ककमण्डलून् । ददाति ब्राह्मणेभ्यश्च स स्वर्गे तिष्ठतिध्रुवम्

माघस्नानमयं राजन्कुर्वाणस्तप उत्तमम् । दानं विना क्षिपेन्नैव दानात्स्वर्गमवाप्यते ॥

दानेन प्राप्यते स्वर्गो दानेन प्राप्यते सुखम् । दानेन हीयते पापं महापातकजं नृप॥८७॥

अदानं न तपो भाति ह्यसूर्यं गगनं यथा। असन्ततिकुलं यद्वदाचारेण विना गृहम्॥
नातःपरतरं किंचित्पवित्रं पापनाशनम्। विद्याधराय सगीतं भृगुणा मणिपर्वते॥

राजोवाच।

ब्रह्मन्कदा भृगुर्विप्रो निजगाद महीधरे। तस्मै धर्मोपदेशं च कथ्यतां मे कुतूहलात्॥

वसिष्ठ उवाच।

द्वादशाब्दं पुरा राजन्न ववर्ष बलाहकः। तेनोद्विग्नाःप्रजाःक्षीणा गताःसर्वा दिशो दश॥
खिलीभूते तदा मध्ये हिमवद्विन्ध्ययोर्नृप!। स्वाहास्वधावषट्कार वेदाध्ययनवर्जिते॥
सोपप्लवे तदा लोके लुप्तधर्मे च निष्प्रभे। फलमूलान्नपानीयशून्ये वै भूमिमण्डले॥
विन्ध्यपादतरुच्छन्नरम्यरेवातटाश्रमात्। सहशिष्यैश्च निर्गम्य हिमाद्रिं स गतो भृगुः
तत्र तिष्ठति कैलासगिरेःपश्चिमतो गिरिः। मणिकूट इति ख्यातो हेमरत्नशिलोच्चयः॥

अधोधःस्फटिकश्वेतो मध्ये नीलशिलो गिरिः।
भूतिभिःसर्वतःशुक्लो नीलकण्ठ इवाऽऽबभौ॥ ९६॥

सर्वत्रासौ नीलशिलो हेमरेखान्तरान्तरः। स्फुरद्विद्युल्लतःकृष्णो जीमूतइव राजते॥
मूर्ध्नि नीलशिलःशैलस्त्वधःकाञ्चनमेखलः। नारायण इवाभाति परिवीत इवाम्बरः॥
अमेखला सुनीलाभो मध्येमध्ये सितोपलः। सतारकमिव व्योम शुशुभे स महीधरः॥
लब्ध्वात्मनस्तनुं शुभ्रां दीप्तदिव्यौषधीधरः। वहुद्योतकरो भाति द्वितीय इव चन्द्रमाः

अधित्यकासु संगीतैःकिन्नरीणां सकीचकैः।
रम्भापत्रपताकाभिःशोभते स सदाऽचलः॥ १०१॥

हरितोपलवैदूर्यपद्मरागशिताश्मनाम्। रुग्रश्मिमण्डलैःसोऽग इन्द्रचापैरिवावृतः॥१०२
सर्वधातुमयैर्हेमैर्नानारत्नैःप्रशोभितः। सोऽग्निज्वालैरिवात्युच्चैःशृङ्गैःसर्वत्र वेष्टितः॥
तस्यागत्य नितम्बेषु सतृणासु शिलासु च। विद्याधर्यःप्रसेवन्ते स्वपतीन्कामविक्लवाः
निरुद्धान्तर्मरुन्मागा जितक्लेशा विरागिणः। ध्यायन्त्यहर्निशं ब्रह्म रम्यसानुगहासु च
साक्षसूत्रकराःसिद्धा अर्धोन्मीलितलोचनाः। आराधयन्ति भूतेशं सुन्दरीषु दरीषु च॥
मन्दारकुसुमामोदसुरभीकृतदिङ्मुखः। एषनिर्झरिणीवारिझंकारमुखरःसदा॥ १०७॥

उपत्यकासु खेलद्भिर्वनस्थैःकलभैर्गजैः । कस्तूरीमृगयूथैश्च चारुचित्रमृगैस्तथा ॥१०८
विलसच्चमरीवृन्दैर्विचित्रैःश्वापदैस्तथा । नदत्पारावतैश्चैव चकोरैश्चापि कोकिलैः ॥
राजहंसैर्मयूरैश्च सदा रम्यःस पर्वतः । सेव्यमानःसदादेवैर्गुह्यकैरप्सरोगणैः ॥ ११० ॥

राजोवाच ।

बह्वाश्चर्यमयःशैलःसर्वसिद्धिसमाश्रयः । भगवन्कियदुच्छ्रायःकियदायामविस्तरः ॥१११

ऋषिरुवाच ।

षट्त्रिंशद्योजनोच्छ्रायो मस्तके दशयोजनः ।
आयामविस्तराभ्यां स मूले षोडशयोजनः ॥ ११२ ॥

हरिचन्दनमन्दारचूतराजिविराजितः । देवदारुद्रुमाकीर्णःसरलार्जुनशोभितः ॥ ११३ ॥
कालागरुलवङ्गैश्च निकुञ्जैश्च लतागृहैः । विराजते गिरिश्रेष्ठःसदा पुष्पफलप्रदः ॥
तं दृष्ट्वा पर्वतं रम्यं तदा दुर्भिक्षपीडितः । भृगुश्चकार तत्रैव वसतिं हृष्टमानसः ॥११५
(तस्मिन्मनोहरे शैले कन्दरेषु वनेषु च) । चिरकालं तपस्तेपे तपःसुनिरतो भृगुः ॥

एवं तिष्ठति राजेन्द्र ! द्विजे स्वाश्रमवासिनि ॥ ११६ ॥
अवतीर्यागतौ शैलाद्द्वौ विद्याधरदम्पती ।
समागम्य मुनिं नत्वा स्थितौ तावतिदुःखितौ ॥ ११७ ॥
तथाविधौ च तौ दृष्ट्वा मञ्जुवाक्यं द्विजोऽब्रवीत् ।
वद विद्याधर!प्रीत्या युवां किमतिदुःखितौ ॥ ११८ ॥

श्रुत्वा तस्य मुनेर्वाक्यं प्राह विद्याधरो द्विजम् ।श्रूयतां तापसश्रेष्ठ! ममदुःखस्य कारणम्

सुकृतस्य फलं प्राप्य प्राप्तोऽस्मि त्रिदशालयम् ।
लब्ध्वाऽपि देवतादेहं मुखं व्याघ्रस्य मेऽभवत् ॥ १२० ॥

न जाने कर्मणःकस्य विपाकोऽयमुपस्थितः । इति संस्मृत्य संस्मृत्य न लेभे शर्म मे मनः
अन्यच्च श्रूयतां विप्र येन मे ह्याकुलंमनः । जायेयं मम कल्याणी मधुवाणी सुरूपिणी
नृत्यगीतकलाभिज्ञा सर्व सद्गुणशालिनी । यस्मिन्काले कुमारीयं तदाचाऽमलयानया
विपञ्ची परिवादिन्या तन्त्रीभिःसप्तभिर्भृशम् । वीणावादरसाभिज्ञस्तोषितो नारदो मुनिः

मुग्धभावेऽपि गायन्त्या त्वनया रक्तकण्ठया । विचित्रस्वरनादज्ञो देवराजोऽपि तोषितः
अस्याः कौतुकभिन्नाङ्ग्या वादयन्त्या विपञ्चिकाम् ।
नानावक्रगतिस्निग्धं श्रुत्वा तं पञ्चमध्वनिम् ॥ १२६ ॥
ततोपोद्भिन्नरोमाञ्चो धुन्वन्मौलिं महेश्वरः । शीलौदार्यगुणग्रामरूपयौवनसंपदा ॥
नानया सदृशी नाके काचिदस्ति नितम्बिनी ।
क्वेयं देवमुखी रामा क्वाहं व्याघ्रमुखः पुमान् ॥ १२८ ॥
इति ब्रह्मन्सदा चिन्त्य दह्यामि हृदि सर्वदा । इति विद्याधरप्रोक्तं श्रुत्वा चेक्ष्वाकुनन्दन
त्रिकालज्ञो भृगुः प्राह प्रहसन्दिव्यलोचनः । शृणु विद्याधरश्रेष्ठ विचित्रं कर्मणां फलम्
प्राप्य प्राज्ञा न मुह्यन्ति मुह्यन्त्यज्ञानचेतसः । मक्षिकापदमात्रं तु यथा हि त्रिदशं विषम्
क्रियात्वविहिताल्पाऽपि विपाके दारुणा तथा ।
उपोष्यैकादशीं माघे तैलाभ्यङ्गः कृतस्त्वया ॥ १३२ ॥
द्वादश्यां प्राग्भवे देहे तेन व्याघ्रमुखो भवान् ।
उपोष्यैकादशीं पुण्यां द्वादश्यां तैलसेवनात् ॥ १३३ ॥
कुरूपं प्राप्तवान्देहं पुराह्येवं पुरूरवाः । दुष्टात्मनः कुकार्यं स तेन दुःखेन दुःखितः ॥
गिरिराजं समागम्य देवतासरसस्तटे । स्थित्वा च परमप्रीत्या शुचिः स्नातः कुशासने
नवनीलघनश्यामं नलिनायतलोचनम् । शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरावृतम् ॥ १३६ ॥
कौस्तुभेन विराजन्तं वनमालाधरं हरिम् । चिन्तयन्हृदये राजा निगृहीताखिलेन्द्रियः
मासत्रयं निराहारस्तपस्तेपे सुदारुणम् । अल्पेन तपसा तुष्टः सप्तजन्मकृतार्चनः ॥ १३८ ॥
संस्मरंस्तस्य भूपस्य तदा प्रादुरभूत्स्वयम् । माघस्य शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां मकरे रवौ
शङ्खाद्भिरभिषिच्याशु मुदा तं चक्रवर्तिनम् । वासुदेवो ददौ तस्मै स्मारयंस्तैलचेष्टितम्
अतीवसुन्दरं रूपं कमनीयं मनोहरम् । येन तं चकमे देवी उर्वशी देवनायिका ॥ १४१ ॥
इत्थं लब्धवरो राजा कृतकृत्यः पुरं गतः । इति कर्मगतिं ज्ञात्वा किं विद्याधर ! खिद्यते ॥
भवान्परिजिहीर्षुश्चेद्दानवस्य विरूपताम् । शीघ्रं मद्वचनादेव प्राचीनाघविनाशनम् ॥
माघमासे कुरु स्नानं मणिकूटनदीजले । मुनिसिद्धसुरैर्जुष्टे कथयिष्यामि तद्विधिम्

तवभाग्यवशान्माघो निकटःपञ्चमेऽहनि । पौषस्यैकादशीं शुक्लामारभ्य स्थण्डिलेशयः
मासमेकं निराहारस्त्रिकालं स्नानमाचर । त्रिकालमर्चयन्विष्णुंत्यक्तभोगो जितेन्द्रियः
माघस्यैकादशीशुक्ला यावद्विद्याधरोत्तम । ततो निर्दग्धपापं त्वां द्वादश्यां पुण्यवासरे
अभिषिच्य शिवैस्तोयैर्मन्त्रपूतैरहं सुर । कामवक्त्रोपमं वक्त्रं करिष्यामि तवानघ ॥
देवतावदनो भूत्वा त्वं विद्याधरसत्तम । अनया वरवर्णिन्या सार्धं क्रीड यथासुखम् ॥
ज्ञातमाघप्रभावस्त्वं माघस्नानं सदा कुरु । यथा मनोरथावाप्तिर्जायते तव सर्वदा ॥
इत्युक्तं भृगुणा तस्मै सर्वज्ञेन महात्मना । विद्याधराय राजेन्द्र पुनर्गाथा उदाहृता ॥
माघस्नानैर्विपन्नाशो माघस्नानैरघक्षयः । सर्वयज्ञाधिको माघःसर्वदानफलप्रदः ॥
माघोगर्जति यज्ञेभ्यो माघो योगाच्च गर्जति । तीव्राच्च तपसो माघो भो विद्याधर गर्जति
पुष्करे च कुरुक्षेत्रे ब्रह्मावर्ते पृथूदके । अविमुक्ते प्रयागे च गङ्गासागरसंगमे ॥ १५४ ॥
यत्फलं दशभिर्वर्षैःप्राप्यते नियमैर्नरैः । तत्फलं प्राप्यते माघे त्र्यहस्नानान्न संशयः ॥
स्वर्गलोके चिरंरागो येषां मनसिवर्तते । यत्र क्वापि जलेतैस्तु स्नातव्यं मकरे रवौ ॥

आयुरारोग्यसंपत्तिरूपसौभाग्यतागुणाः ।
येषां मनोरथास्तैस्तु न त्याज्यं माघमज्जनम् ॥ १५७ ॥
ये च बिभ्यति नरकाद्दारिद्र्याच्च संचितात् ।
सर्वथा तैःप्रयत्नेन माघे कार्यं निमज्जनम् ॥ १५८ ॥

दारिद्र्यपापदौर्भाग्यपङ्कप्रक्षालनाय च । माघस्नानान्न चान्योऽस्ति उपायो राजसत्तम ॥
श्रद्धाहीनानि कर्माणि तथात्यल्पफलानि वै । फलं ददाति संपूर्णं माघस्नानंयथातथा

अकामो वा सकामो वा यत्र क्वाऽपि बहिर्जले ।
इहामुत्र च दुःखानि माघस्नायी न विन्दति ॥ १६१ ॥

पक्षद्वये यथा चन्द्रो वर्धते क्षीयते तथा । पातकं क्षीयते माघे पुण्यराशिश्च वर्धते ॥

यथा च खन्या जायन्ते रत्नानि विविधानि च ।
स्नानात्पुण्यानि जायन्ते नराणां माघतस्तथा ॥ १६३ ॥

आयुर्वित्तं कलत्रादि संपदःप्रभवन्ति च । कामधेनुर्यथा कामं चिन्तामणिस्तु चिन्तितम्

माघस्नानं ददातीह तद्वत्सर्वान्मनोरथान् । कृते तपःपरं ज्ञानं त्रेतायां यजनं तथा ॥
द्वापरे तु कलौ ज्ञानं माघः सर्वयुगेषु च । सर्वेषामेव वर्णानामाश्रमाणां च भूपते ॥
माघस्नानं तु धर्मस्य धाराभिरभिवर्षति ॥ १६६ ॥

वसिष्ठ उवाच ।

इति वाक्यं भृगोःश्रुत्वा तस्मिन्नेवाश्रमे सुरः । सहैव भृगुणा माघे गिरौ निर्झरिणीतटे
यथोक्तविधिना स्नानमकरोद्भार्यया सह । भृगोरनुग्रहात्सोऽथ संप्राप्य मनसेप्सितम् ॥
देवतावदनो भूत्वा मुमुदे मणिपर्वते । आजगाम भृगुर्विन्ध्यं तमनुग्राह्य हर्षितः ॥१६६॥
मणिमयगिरिराजे स्नानमात्रेण माघे मदनवदनरूपस्तत्र विद्याधरोऽभूत् ।
क्षपितनियमदेहो विन्ध्यपादावतीर्णो भृगुरपि सहशिष्यैराजगामाथ रेवाम्
अखिलभुवनसारं माघमाहात्म्यमेतद्द्विजवर भृगुणोक्तं भूपविद्याधराय ।
विविधफलविचित्रं यःशृणोतीह नित्यं रुचिरसकलकामान्देववत्प्राप्नुयात्सः

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे माघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

माघस्नानमाहात्म्ये कार्तवीर्यदत्तात्रेयसम्वादवर्णनम्

वसिष्ठ उवाच ।

अधुना माघमाहात्म्यं प्रवक्ष्यामि नृपोत्तम । पृच्छते कार्तवीर्याय दत्तात्रेयेण भाषितम्
दत्तात्रेयं हरिं साक्षाद्वसन्तं सह्यपर्वते । पप्रच्छ तं द्विजं गत्वा राजा माहिष्मतीपतिः

सहस्रार्जुन उवाच ।

भगवन्योगिनांश्रेष्ठ सर्वेधर्माःश्रुता मया । माघस्नानफलं ब्रूहि कृपया मम सुव्रत ॥ ३॥

दत्तात्रेय उवाच ।

श्रूयतां नृपशार्दूल एतत्प्रश्नोत्तरं शुभम् । ब्रह्मणोक्तं पुरा ह्येतन्नारदाय महात्मने ॥ ४ ॥
तत्सर्वं कथयिष्यामि माघस्नानफलं महत् । यथादेशं यथातीर्थं यथाविधि यथाक्रियम्

अस्मिन्वै भारते वर्षे कर्मभूमौ विशेषतः ।
अमाघस्नायिनां नृणां निष्फलं जन्म कीर्तितम् ॥ ६ ॥

असूर्यं गगनं यद्वद्चन्द्रमुडुमण्डलम् । तद्वन्नाभाति सत्कर्म माघस्नानं विना नृप ॥७॥
व्रतैर्दानैस्तपोभिश्च न तथा प्रीयते हरिः । माघमज्जनमात्रेण यथा प्रीणाति केशवः ॥
न समं विद्यते किंचित्तेजःसौरेणतेजसा । तद्वत्स्नानेन माघस्य न समाःक्रतुजाःक्रियाः
प्रीतये वासुदेवस्य सर्वपापापनुत्तये । माघस्नानं प्रकुर्वीत स्वर्गलाभाय मानवः ॥१०॥
किं रक्षितेन देहेन सुपुष्टेन वलीयसा । अध्रुवेणाप्यशुचिना माघस्नानं विना भवेत् ॥
अस्थिस्तम्भं स्नायुवद्धं मांसक्षतजलेपनम् । चर्मावनद्धं दुर्गन्धं पात्रं मूत्रपुरीषयोः ॥
जराशोकविपद्व्याप्तं रोगमन्दिरमातुरम् । रजस्वलमनित्यं च सर्वदोषसमाश्रयम् ॥
परोपतापितापार्तं परद्रोहि परंविषम् । लोलुपं पिशुनं क्रूरं कृतघ्नं क्षणिकं तथा ॥
दुष्पूरं दुर्धरं दुष्टं दोषत्रयसमन्वितम् । अशुचि स्रावि सच्छिद्रं तापत्रयविमोहितम् ॥
निसर्गतोऽधर्मरतं तृष्णाशतसमाकुलम् । कामक्रोधमहालोभनरकद्वारसंस्थितम् ॥१६
क्रिमिविड्भस्म भवति परिणामे शुनांहविः । ईदृक्छरीरं व्यर्थं हि माघस्नान विवर्जितम्
बुद्बुदा इव तोयेषु पूतिका इव जन्तुषु । जायन्ते मरणायैवमाघस्नानविवर्जिताः ॥
अवैष्णवो हतो विप्रो हतं श्राद्धमयोगि च । अब्रह्मण्यं हतं क्षेत्रमनाचारं हतं कुलम् ॥
सदम्भश्च हतो धर्मःक्रोधेनैव हतं तपः । अदृढं च हतं ज्ञानं प्रमादेन हतं श्रुतम् ॥२०॥
गुर्वभक्ता हता नारी ब्रह्मचारी तथा हतः । अदीप्तेऽग्नौ हतो होमो हताभुक्तिरसाक्षिका

उपजीव्या हता कन्या स्वार्थे पाकक्रियाहता ।
शूद्रभिक्षो हतो यागःकृपणस्य हतं धनम् ॥२२॥

त्वनभ्यासा हता विद्या हतो राजा विरोधकृत् । जीवनार्थं हतं तीर्थं जीवनार्थं हतं व्रतम्
असत्या च हता वाणी तथा पैशुन्यवादिनी । संदिग्धश्च हतो मन्त्रो व्यग्रचित्तो हतो जपः

हतमश्रोत्रिये दानं हतो लोकश्च नास्तिकः । अश्रद्धया हतं सर्वं कृतं यत्पारलौकिकम्

इहलोको हतो नृणां दरिद्राणां यथा नृप ।

मनुष्याणां तथा जन्म माघस्नानं विना हतम् ॥ २६ ॥

मकरस्थे रवौ यो हि न स्नात्यनुदिते रवौ । कथं पापैःप्रमुच्येत कथं स त्रिदिवं व्रजेत

ब्रह्महा हेमहारी च सुरापो गुरुतल्पगः । माघस्नायी विपापःस्यात्तत्संसर्गी च पञ्चमः

माघमासे रटन्त्यापःकिंचिदभ्युदिते रवौ । ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा कं पतन्तं पुनीमहे॥

उपपापानि सर्वाणि पातकानि महान्त्यपि ।

भस्मीभवन्ति सर्वाणि माघस्नायिनि मानवे ॥ ३० ॥

कम्पन्ते सर्वपापानि माघस्नानसमागमे ।

नाशकालोऽयमस्माकं यदि स्नास्यति वारिणि ॥ ३१ ॥

एवं क्रोशन्ति पापानि दृष्ट्वा स्नानोद्यतं नरम् । पावका इव दीप्यन्ते माघस्नानैर्नरोत्तमाः

विमुक्ताःसर्वपापेभ्यो मेघेभ्य इव चन्द्रमाः । आर्द्रशुष्कं लघुस्थूलं वाङ्मनःकर्मभिःकृतम्

माघस्नानं दहेत्पापं पावकःसमिधो यथा । प्रामादिकं च यत्पापं ज्ञानाज्ञानकृतं च यत्

स्नानमात्रेण तन्नश्येन्मकरस्थे दिवाकरे ।

निष्पापास्त्रिदिवं यान्ति पापिष्ठा यान्ति शुद्धताम् ॥ ३५ ॥

संदेहो नाऽत्र कर्तव्यो माघस्नाने नराधिप ! ।

सर्वेऽधिकारिणो माघे विष्णुभक्तौ यथा नृप ! ॥ ३६ ॥

सर्वेषां स्वर्गदो माघःसर्वेषां पापनाशनः । एष एव परो मन्त्रो ह्येतदेव परंतपः ॥३७॥

प्रायश्चित्तं परं चैतन्माघस्नानमनुत्तमम् । नृणां जन्मान्तराभ्यासान्माघस्नाने मतिर्भवेत्

अध्यात्मज्ञानकौशल्यं जन्माभ्यासाद्यथा नृप । संसारकर्दमालेपप्रक्षालनविशारदम् ॥

पावनं पावनानां च माघस्नानं परं नृप । स्नान्ति माघे न ये राजन्सर्वकामफलप्रदे ॥

कथं ते भुञ्जते भोगांश्चन्द्रसूर्यग्रहोपमान् । शृणु राजन्महाश्चर्यं माघस्नानप्रभावजम् ॥

कुब्जिका नाम कल्याणी ब्राह्मणी भृगुवंशजा ।

वालवैधव्यदुःखार्ता तपस्तेपे सुदुस्तरम् ॥ ४२ ॥

विन्ध्यपादे महाक्षेत्रे रेवाकपिलसंगमे। तत्र सा व्रतिनी भूत्वा नारायणपरायणा ॥
सदाचारवती नित्यं नित्यं सङ्गविवर्जिता। जितेन्द्रिया जितक्रोधा सत्यवागल्पभाषिणी
सुशीला दानशीला च देहशोषणशालिनी। पितृदेवद्विजेभ्यश्च दत्त्वा हुत्वा तथानले ॥

षष्ठे काले च सा भुङ्क्ते ह्युञ्छवृत्तिःसदा नृप।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रपाराकतप्तकृच्छ्रादिभिर्व्रतैः ॥ ४६ ॥

पुण्यान्नयति सा मासान्नर्मदायाश्च रोधसि। एवं तया तपस्विन्या वल्कलिन्या सुशीलया
सुमहासत्त्वशालिन्या धृतिसंतोषयुक्तया। षष्टिर्माघास्तया स्नाता रेवाकपिलसंगमे ॥
ततःसा तपसा क्षीणा तस्मिंस्तीर्थे मृता नृप। माघस्नानजपुण्येन तेन सा वैष्णवेपुरे
उवास प्रमुदायुक्ता चतुर्युगसहस्रकम्। सुन्दोपसुन्दनाशाय पश्चात्पद्मभवात्पुनः ॥
तिलोत्तमेति नाम्ना सा ब्रह्मलोकेऽवतारिता। तेन पुण्यस्य शेषेण रूपस्यैकायनं ययौ
अयोनिजाऽबलारत्नं देवानामपि मोहिनी। लावण्यह्रदिनी तन्वी साऽभूदप्सरसां वरा
निपुणस्यविधेःस्रष्टुर्नूनमाश्चर्यकारिणी। तामुत्पाद्य विधाता वै तुष्टोऽनुज्ञां तदा ददौ

एणशावाक्षि! गच्छ त्वं दैत्यनाशाय सत्वरम्।
ततःसा ब्रह्मणोलोकाद्वीणामादाय भामिनी ॥ ५४ ॥

गता पुष्करमार्गेण यत्र तौ देववैरिणौ। तत्र स्नात्वा तु रेवायाःपवित्रे निर्मले जले ॥
परिधायाम्बरं रक्तं बन्धूककुसुमप्रभम्। रणद्वलयिनी चारुशिञ्जन्मेखलनूपुरा ॥ ५६ ॥

लोलमुक्तावली कण्ठी चलत्कुण्डलशोभना।
माधवीकुसुमापीडा कङ्केलीविटपे स्थिता ॥ ५७ ॥
गायन्ती सुस्वरं साऽपि पीडयन्ती तु वल्लकीम्।
स्वरषट्कं मूर्च्छयन्ती सुस्निग्धं कोमलं कलम् ॥ ५८ ॥

इत्थं तिलोत्तमा बाला तिष्ठन्त्यशोककानने। दृष्टा दैत्यभटैरिन्दोःकलेव सुखदा हृदि ॥
तां दृष्ट्वा विस्मितैराजन्सानन्दैःसैनिकैर्भृशम्। त्वरमाणैरदृष्टैव गत्वा सुन्दोपसुन्दयोः
कथिता संभ्रमेणैव वर्णयित्वा पुनःपुनः। हे दैत्यौ न विजानीमो देवी वा दानवी नुकिम्

नागाङ्गनाऽथ वा यक्षी स्त्रीरत्नं सर्वथा तु सा।

युवां रत्नभुजौ लोके रत्नभूता हि साऽबला ॥ ६२ ॥
वर्तते नातिदूरेऽग्रे ह्यशोके शोकहारिणी ।
गत्वा तां पश्यतं शीघ्रं मन्मथस्याऽपि मोहिनीम् ॥ ६३ ॥
इति सेनापतीनां तौ श्रुत्वा वाचं मनोहराम् ।
चषकं सीधुन(शीघ्रत)स्त्यक्त्वा विहाय जलसेचनम् ॥ ६४ ॥
उत्तमस्त्रीसहस्राणि त्यक्त्वा तस्माज्जलाशयात् ।
शतभारायसीं क्रूरां कालदण्डोपमां गदाम् ॥ ६५ ॥
भिन्नाभिन्नां गृहीत्वा तु जवेनाभिप्लुतं गतौ ।
यत्र श्रृङ्गारसज्जा सा हन्तुं चण्डीव संस्थिता ॥ ६६ ॥
राजन्संधुक्षयन्तीव दैत्ययोर्मन्मथानलम् । स्थित्वा तस्याःपुरोजाल्मौ तद्रूपेण विमोहितौ
विशेषान्मधुनामत्तावूचतुस्तौ परस्परम् । भ्रातर्विरम भार्येयं ममास्तु वरवर्णिनी॥६८
त्वमेवार्य त्यजैतां मे भार्यां तु मदिरेक्षणाम् । इत्याग्रहेण संरब्धौ मातङ्गाविव सोन्मदौ
अन्योन्यं कालनिर्दिष्टौ गदया जघ्नतुस्तदा । परस्परप्रहारेण गतासू पतितौ भुवि ॥
तौ मृतौ सैनिकैर्दृष्ट्वा कृतःकोलाहलो महान् ।
कालरात्रिसमा केयं हा किमेतदुपस्थितम् ॥ ७१ ॥
एवं वदत्सु सैन्येषु दैत्यौ सुन्दोपसुन्दकौ । पातयित्वा गिरेःश्रृङ्गे ह्लादिनीव तिलोत्तमा
प्रस्थिता गगनं शीघ्रं द्योतयन्ती दिशो दश । देवकार्यं ततःकृत्वा आगता ब्रह्मणःपुरः॥
ततस्तुष्टेन देवेन विधिना सानुमोदिता । स्थानं सूर्यरथे दत्तं तव चन्द्रानने मया ॥
भुङ्क्ष्व भोगाननेकांस्त्वं यावत्सूर्योऽम्बरे स्थितः ।
इत्थं सा ब्राह्मणी राजन्भूत्वा चाप्सरसाम्वरा ॥ ७५ ॥
भुङ्क्तेऽद्याऽपि रवेर्लोके माघस्नानफलं महत् । तस्मात्प्रयत्नतो राजञ्छ्रद्दधानैःसदा नरैः
स्नातव्यं मकरादित्ये वाञ्छद्भिःपरमांगतिम् । नाऽनवाप्तोऽत्र तस्यास्ति पुरुषार्थोहिकश्चन
नाऽक्षीणं पातकं किंचिन्माघे मज्जति यो नरः ।
तुलयन्ति न ते नाऽत्र यज्ञाःसर्वे सदक्षिणाः ॥ ७८ ॥

माघस्नानेन राजेन्द्र तीर्थेचैव विशेषतः । न चान्यत्स्वर्गदं कर्म न चान्यत्पापनाशनम्
न चान्यन्मोक्षदं यस्मान्माघस्नानसमं भुवि ॥ ८० ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे माघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे माघस्नानप्रशंसायांसुन्दोपसुन्ददैत्यवधो नाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

माघस्नानविधिवर्णनम्

कार्तवीर्य उवाच ।

हेतुना केन विप्रर्षे माघस्नाने महाद्भुतः । प्रभावो वर्ण्यते नूनं तन्मे कथय सुव्रत ॥१॥
गतपापो यदेकेन द्वितीयेन दिवंगतः । वैश्योऽसौ माघपुण्येन ब्रूहि मे तत्कुतूहलम् ॥२

दत्तात्रेय उवाच ।

निसर्गात्सलिलं मेध्यं निर्मलं शुचि पाण्डुरम् । मलहं पुरुषव्याघ्र द्रावकं दाहनाशनम्
तारकं सर्वभूतानां पोषणं जीवनं च यत् । आपो नारायणोदेवःसर्ववेदेषु पठ्यते ॥४
ग्रहाणां च यथा सूर्यो नक्षत्राणां यथा शशी । मासानांच तथा माघःश्रेष्ठःसर्वेषु कर्मसु
मकरस्थेरवौ माघे प्रातःकाले तथाऽमले । गोष्पदेऽपि जलेस्नानं स्वर्गदं पापिनामपि

योगोऽयं दुर्लभो राजंस्त्रैलोक्ये सचराचरे ।
अस्मिन्योगे त्वशक्तोऽपिस्नायाद्यदि दिनत्रयम् ॥ ७ ॥
दद्यात्किंचिदशक्तोऽपि दारिद्र्याभाववाञ्छया ।
त्रिस्नानेनापि माघस्य धनिनो दीर्घजीविनः ॥ ८ ॥

पञ्च वा सप्तवाऽहानि चन्द्रवद्वर्धते फलम् । संप्राप्ते मकरादित्ये पुण्येपुण्यप्रदेनृणाम्

सत्कार्यास्तिथयः सर्वाः स्नानदानादिकर्मसु । कर्तारं यापयन्तीह ह्यक्षयं शाश्वतं पदम् ॥
तस्मान्माघे बहिःस्नायादात्मनो हितकाम्यया ।
अथातः संप्रवक्ष्यामि माघस्नानविधिं परम् ॥ ११ ॥
कर्तव्यो नियमः कश्चिद्व्रतरूपी नरोत्तमैः । फलातिशयहेतोर्वै किंचिद्भोज्यं त्यजेद्बुधः
भूमौ शयीत होतव्यमाज्यं तिलविमिश्रितम् । त्रिकालं चार्चयेद्विष्णुं वासुदेवं सनातनम्
दातव्यो दीपकोऽखण्डो देवमुद्दिश्य माधवम् । इन्धनं कम्बलं वस्त्रमुपानत्कुङ्कुमं घृतम्
तैलं कार्पासकोष्ठं च तूलीं तूलवटीं पटीम् । अन्नंचैव यथाशक्ति देयं माघे नराधिप ॥
सुवर्णं रत्तिकामात्रं दद्याद्वेदविदे तथा । तद्दानमक्षयं राजन्समुद्र इव सर्वदा ॥ १६ ॥
परस्याग्निं न सेवेत त्यजेच्चैव प्रतिग्रहम् । माघान्ते भोजयेद्विप्रान्यथाशक्ति नराधिप
देया च दक्षिणा तेभ्य आत्मनः श्रेयइच्छता ।
एकादशीविधानेन माघस्योद्यापनं तथा ॥ १८ ॥
कर्तव्यं श्रद्धधानेन ह्यक्षय्यस्वर्गवाञ्छया । अनन्तपुण्यावाप्त्यर्थं विष्णुसंप्रीतिहेतवे ॥
मकरस्थे रवौ माघे गोविन्दाच्युतमाधव । स्नानेनानेन भो देव यथोक्तफलदो भव ॥
इति मन्त्रं समुच्चार्य स्नायान्मौनी समाहितः । वासुदेवं हरिं कृष्णं माधवं च स्मरेत्पुनः
गृहेऽपि सजलं कुम्भं वायुना निशि पीडितम् । तत्स्नानं तीर्थसदृशं सर्वकामफलप्रदम्
तत्र व्रतेन दातव्यं सान्नं चोपस्करान्वितम् । तत्स्नानस्य प्रभावेण नरो न निरयं व्रजेत्
तप्तेन वारिणा स्नानं यद्गृहे क्रियते नरैः । षडब्दफलदं तद्धि मकरस्थे दिवाकरे ॥२४
बहिःस्नानं तु वाप्यादौ द्वादशाब्दफलं स्मृतम् ।
तडागे द्विगुणं राजन्नद्यांचैव चतुर्गुणम् ॥ २५ ॥
शतधा देवखातेषु शतधा तु महानदे । शतं चतुर्गुणं राजन्महानद्योश्च संगमे ॥ २६ ॥
सहस्रगुणितं सर्वं तत्फलं मकरे रवौ । गङ्गायां स्नानमात्रेण लभते मानवो नृप ॥२७
गङ्गायां येऽवगाहन्ते माघमासे नृपोत्तम । चतुर्युगसहस्रं तु न पतन्ति सुरालयात् ॥
दिने दिने सहस्रं तु सुवर्णानां विशांपते । तेन दत्तं तु गङ्गायां यो माघे स्नाति मानवः
शतेनगुणितं माघे सहस्रं राजसत्तम । निर्दिष्टमृषिभिः स्नानं गङ्गायमुनसंगमे ॥३०॥

पापौघभूरिभारस्य दाहार्थं च प्रजापतिः । प्रयागं विदधे भूप प्रजानां च हिते स्थितः
शृणु स्थानमिदं सम्यक्सितासितजलं किल । पापरूपपशूनां च ब्रह्मणा विहितं पुरा
सितासितजले मज्जेदपि पापशतान्वितः । मकरस्थे रवौ माघे नैव गर्भेषु मज्जति ॥
सूतारतोऽपि यो मर्त्यःप्रयागे स्नानमाचरेत् । माघेमासि नरव्याघ्र स याति परमंपदम्

सितासिता तु या धारा सरस्वत्याविगर्भिता ।
तन्मार्गं विष्णुलोकस्य सृष्टिकर्ता ससर्ज वै ॥ ३५ ॥

दुस्तरा वैष्णवी माया देवैरपि सुदुर्जया । प्रयागे दह्यते सा तु माघेमासि नराधिप॥
तेजोमयेषु लोकेषु भुक्त्वाभोगाननेकशः । पश्चाच्चक्रिणि लीयन्तेप्रयागे माघमज्जनात्

उपस्पृशति यो माघे मकरार्के सितासिते ।
न तत्पुण्यं च सङ्ख्यातुं चित्रगुप्तोऽपि वेत्यलम् ॥ ३८ ॥
सन्निमज्जति यो माघे मकरस्थसितासिते ।
तस्य पुण्यस्य माहात्म्यं वक्तुं ब्रह्माऽपि न क्षमः ॥ ३९ ॥

संवत्सरशतं साग्रं निराहारस्य यत्फलम् । प्रयागे माघमासे तु त्र्यहस्नानस्य तत्फलम्
स्वर्णभारसहस्रेण कुरुक्षेत्रे रविग्रहे । यत्फलं लभते माघे वेण्याःस्नानाद्दिनेदिने ॥

राजसूयसहस्रस्य राजन्नविकलं फलम् ।
सितासिते तु माघे च स्नानानां भवति ध्रुवम् ॥ ४२ ॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुर्यःसप्त च याःपुनः ।
वेण्यां स्नातुं समायान्ति माघे मासि नृपोत्तम ॥ ४३ ॥

सर्वतीर्थानि कृष्णानि पापिनां सङ्गदोषतः । भवन्ति शुक्लवर्णानि प्रयागे माघमज्जनात्
आकल्पसंचितं पापं जन्मभिर्यन्नरैर्नृप । तद्भवेद्भस्मसान्माघे स्नातानां च सितासिते ॥

वाङ्मनःकायजं पापं नरस्य विलयं व्रजेत् ।
प्रयागे माघमासे तु त्र्यहस्नातस्य निश्चितम् ॥ ४६ ॥
प्रयागे माघमासे यस्त्र्यहं स्नाति च मानवः ।
पापं त्यक्त्वा दिवं याति जीर्णात्वचमिवोरगः ॥ ४७ ॥

विदेशी प्रेरणास्रोत सच्चे राष्ट्रवाद को जन्म नहीं दे सकते। भारत को अपने समस्त प्रेरणा स्रोत भारत की माटी में ही खोजने होंगे। तभी वास्तविक भारत का पुनर्जन्म हो सकेगा। राष्ट्रवाद और संस्कृति के बीच जो अटूट सम्बन्ध हैं उनको नकारने से न तो राजनीतिज्ञों का हित होगा और न ही समाज का। इसे नकारने से भारत में सौहार्द्र का जन्म नहीं होगा। भारतीय संस्कृति कभी भी रूढ़िवादी नहीं रही और न कभी आक्रामक रही। अतः उसे साम्प्रदायिक, रूढ़िवादी या आक्रामक बताना या यह कहना कि भारत का अपना कोई सांस्कृतिक वैशिष्ट्य नहीं है, एक बहुत बड़ी भूल है।

भारत का भविष्य सांस्कृतिक राष्ट्रवाद में निहित है। राजनीति अथवा सत्ता द्वारा थोपी गई परिभाषाएँ, मान्यताएं एवं निष्कर्ष समस्याओं को बढ़ा देंगे। यदि भारत के मूलस्रोतों से प्रेरणा नही ली जाएगी तो इसके कारण विभ्रम ही बढ़ेगा। सामान्यतः राजनीति और सत्ता को केवल अपने ही स्वार्थ दिखायी देते हैं, क्योंकि उनके पास दूरदृष्टि का अभाव होता है। स्वार्थप्रेरित परिभाषाएँ और व्याख्याओं को तिलांजलि देने में ही आनेवाली ... दबाव में आकर भारत के संविधान ने इस राष्ट्र को बहुसंस्कृतिवादी देश कहकर जो प्रस्थापनाएँ दी हैं उन पर पुनर्विचार होना चाहिए। भारत की संस्कृति सामासिक संस्कृति न होकर संपूर्ण ऊर्जावान एक ऐसी संस्कृति है, जो पश्चिमी चिंतन से बिलकुल भिन्न है। सभी से मित्रता, सभी का हित, सभी का कल्याण और सभी की समृद्धि की कामना करनेवाली यह जो सांस्कृतिक धारा भारत में बह रही है,उसके अंतर्मुखी तत्व को पहचानने की आवश्यकता है, न कि उसे भूलने की। भारतीय संस्कृति के अंतर्मुखी तत्व को भूलने का अर्थ होगा अपने ही हाथों अपना अहित करना। राष्ट्र को इससे बचाना ही होगा। इसी में भारत का हित है।

भारतीय मनीषा ने भौगोलिक सीमाओं से बँधी राजनीतिक इकाइयों को 'राष्ट्र' की संज्ञा कभी नहीं दी। यह ठीक है कि भारतीय मन ने राजनीति प्रधान भौगोलिक इकाइयों के अस्तित्व को स्वीकार किया है तथा देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न संदर्भों में उनका मूल्यांकन किया है, पर

... राष्ट्र ... है तथा उसका सही भविष्य भी करना है तो सांस्कृतिक चेतना के तत्व को भी समझना होगा

अनेक शताब्दियाँ लग जाती हैं। शताब्दियों में अनेक उतार-चढ़ावों का सामना करते हुए धीरे-धीरे एक सांस्कृतिक चेतना निःसृत होती है। यह चेतना राजनीति के साथ अपना सामंजस्य स्थापित करती है। कुछ अंशों में इस सामंजस्य को 'एक मर्यादित समझौता' भी कहा जा सकता है, लेकिन यह ,एक ऐसा समझौता होता है जो सर्वकल्याणकारी सर्वहितकारी और सभी के लिए लाभप्रद होता है। एक-दूसरे को हड़प कर लेने की या नष्ट कर डालने की प्रवृत्ति उसमें नहीं होती।

राष्ट्रवाद के लिए राजनीति एक अंग है-सम्भवतःप्रमुख अंग, लेकिन राजनीति राष्ट्रवाद की जन्मदाता नहीं है। इसके विपरीत सांस्कृतिक चेतना का महत्व राष्ट्र के संदर्भ में कुछ वैसा ही है जैसे मानव शरीर के संदर्भ में प्राणों का। जिस क्षण शरीर से प्राण निकल जाते हैं, उसे मृत घोषित करके शव की संज्ञा दे दी जाती है। अपने नागरिकों यानी समाज के संदर्भ में राष्ट्र शिव है अर्थात् जीवंत रूप ... जन्म मात्र राजनीति से नहीं होता। वास्तविक सांस्कृतिक चेतना का निर्माण होने में तो

राष्ट्र एक ऐसी ... जिसे प्रकृति संस्... विकसित करने ... एकता के लिए ... राजनीतिक एकता ... प्राप्त हो तो भी राष्ट्र ... राष्ट्र अनिवार्य रूप ... की ओर अग्रसर ... मिट जाए, तब भी ... करता है, कष्ट उठा... नहीं करता।"

कुल मिलाकर ... उभरता है कि ... सांस्कृतिक सामंजस्य ... सांस्कृतिक सामंज... राष्ट्रवाद के रूप में ... बनाता है। दुर्भाग्य ... वर्तमान राजनीति ... आपको सांस्कृतिक ... रही है।

(स्व. नरेन्द्र मोहन ... सांस्कृतिक ...)

भारत में भी हैं जेसन ब्लेयर

■ **शंकर शरण** बता रहे हैं कि किस तरह भारत में भी मनगढ़ंत खबरें लिखी जाती हैं

विश्व के सबसे प्रसिद्ध अखबार न्यूयॉर्क टाइम्स में पिछले महीने भूचाल आ गया। इसने अपने प्रसिद्ध रिपोर्टर जेसन ब्लेयर को बर्खास्त करके स्वीकार किया कि पिछले चार सालों में जेसन ब्लेयर ने तरह-तरह का फ्रॉड किया था। एकदम मनगढ़ंत रिपोर्ट लिखना, चुराई गई ...

हुये पत्रकारिता कम राजनीति अधिक कर रहे थे। मार्च 2002 के अंग्रेजी अखबारों को उलटकर देख सकते हैं कि निराधार खबरों, कहानियों की बाढ़ ला दी गई थी। अनेक अंग्रेजी अखबारों के प्रमुख पत्रकार सरकार विरोधी आंदोलन में बाकायदा शामिल रहते थे ...

न कोई शिगूफा छोड़ती हैं, जिससे पाकिस्तानी सत्ता की चाह पूरी हो। ऐसे सीनियर रिपोर्टर हैं जो एक्सक्लूसिव के मोह में आतंकवादियों के प्रचारक बन जाते हैं। आतंकवादी और जिहादी सरदार जो भी अनाप शनाप आरोप भारत पर लगाते हैं ...

साप्ताहिक ने 6 सितम्बर ... पर ब्रिगेडियर सुरेन्द्र ... सेनाध्यक्ष के नाम छाप... कारगिल घुसपैठ माम...

...तचीत का ...ल सुधारने ... जाये। इस ...स प्रक्रिया ...ज मुशर्रफ ...कर रहे हैं, ... हो सके। ...ने में लगे

...नावों को ...क उनकी ... मुशर्रफ ...इससे भी ...ल करने ...च्छ मुद्दा ... ही नहीं ... की कर ...हीं आते। ...दायरे से ...त करने ... अपनी ...कता में ... मुशर्रफ ...भी होगा ..., परवेज ... का ही ... उपजा ...नों देशों ...सा कुछ ... किया। ...के बाद ...र्फ के ... किस